ग्रन्थ-संख्या—११३
प्रकाशक और विक्रेता
भारती-भण्डार
लीडर प्रेस
इलाहाबाद

प्रथम संस्करण
सं० २००३ वि०
मूल्य ७)

मुद्रक
महादेव एन० जोशी
लीडर प्रेस, प्रयाग

उमा की पुण्य-स्मृति में

पहला परिच्छेद

१

दिन और तारीख याद नहीं, और उन्हें याद रखने की कोई आवश्यकता भी नहीं, बात सन् १६३० के मई के तीसरे सप्ताह की है।

गरमी ने एकाएक भयानक रूप धारण कर लिया था और थरमामीटर ने बतलाया था कि दिन का टेम्परेचर ११५ तक पहुँच गया है। लू के प्रचंड झोंके चल रहे थे और उन्नाव शहर की सड़कों पर सन्नाटा था। लोगों को घर के बाहर निकलने का साहस न होता था; सूर्य के प्रखर प्रकाश से आँखें झुलसी जाती थीं। उस समय दोपहर के दो बज रहे थे।

पण्डित रामनाथ तिवारी अपने कमरे में सोए हुए थे। दरवाज़ों पर खस की टट्टियाँ लगी थीं जिस पर नौकर हर आध घण्टे बाद पानी छिड़क देता था। पंखा चल रहा था।

पंखाकुली बाहर बरामदे में बैठा हुआ लू के थपेड़े खा रहा था और पंखा खींच रहा था। तीन घण्टे तक लगातार पंखा खींचने के बाद उसे कुछ थकावट मालूम हुई, और उस थकावट पर लू के झुलसा देने वाले थपेड़े भी विजय न पा सके। उसकी आँखें धीरे-धीरे झपने लगीं और हाथ धीरे-धीरे धीमा पड़ने लगा। आँखें झपते-झपते बन्द हो गईं, हाथ धीमा पड़ते-पड़ते रुक गया; और पंखाकुली सपना देखने लगा।

पंखा बन्द हो गया और रामनाथ तिवारी की मीठी नींद टूट गई। उन्होंने ज़ोर से आवाज़ लगाई, "अबे ओ कलुआ के बच्चे—सोने लगा! साले—मारे हंटरों के खाल उधेड़ दूँगा।"

पण्डित रामनाथ का इतना कहना था कि पंखाकुली चौंक पड़ा। उसने अपनी आँखें खोल दीं और उसका हाथ फिर मशीन की भाँति चलने लगा।

पण्डित रामनाथ ने करवट बदली पर उन्हें नींद न आई। लेटे ही लेटे उन्होंने सिरहाने रक्खे चाँदी के गिलौरीदान से पान खाया, उसके बाद उन्होंने घड़ी देखी। अभी केवल दो बजे थे—केवल दो; और उन्हें कचहरी करनी थी पाँच बजे शाम को। तिवारी जी उठ कर बैठ गए, उन्होंने आवाज़ दी, "कोई है?"

"हाँ सरकार!" कहता हुआ उनका निजी खिदमतगार रामदीन बगलवाली दालान से निकल कर उनके सामने खड़ा हो गया।

"वह खिड़की खोल दो!" तिवारी जी ने कोने वाली खिड़की की ओर इशारा किया। रामदीन ने खिड़की खोल दी इसके बाद वह फिर अपनी दालान में चला गया।

तिवारी जी ने मेज़ पर निगाह डाली, उस दिन की डाक पड़ी थी। चश्मे के केस से चश्मा निकाल कर लगाते हुए उन्होंने डाक का ग० उठा लिया और एक बार आदि से अन्त तक वे डाक को उलट-पुलट गए। दो पत्र उन्होंने व्यग्रता के साथ निकाले, एक पर 'आन हिज़ मैजेस्टीज़ सर्विस' लिखा था और दूसरे के पते पर उमानाथ के हाथ की लिखावट थी। कुछ देर तक यह सोच कर कि पहले कौन-सा पत्र खोला जाय, उन्होंने उमानाथ का पत्र खोला।

उमानाथ तिवारी जी का मझला लड़का था, बड़े का नाम था दयानाथ और छोटे का प्रभानाथ था। दयानाथ कानपुर में वकालत कर रहा था और प्रभानाथ इलाहाबाद से एम० ए० की परीक्षा देकर घर आ गया था। दो एक दिन में उसकी परीक्षा का फल भी आने वाला था। उमानाथ दो साल हुए औद्योगिक शिक्षा के लिए जर्मनी गया था। उसका पत्र जापान से आया था जिसमें उसने लिखा था कि वह जून के दूसरे सप्ताह में कलकत्ता में पदार्पण करेगा।

पत्र पढ़ कर रामनाथ मुसकराए। एक क्षण के लिए उमानाथ की मूर्ति उनकी आँखों के आगे आ गई। वे उमानाथ पर और भी कुछ सोचना चाहते

थे, पर इसमें उन्हें सफलता नहीं मिली क्योंकि सरकारी पत्र आँख फाड़ कर उन्हें देख रहा था। उस पत्र को उन्होंने खोला।

उस पत्र को पढ़ कर रामनाथ की मुसकराहट लोप हो गई और उनका मुख गम्भीर हो गया। उन्होंने उस पत्र को तीन बार पढ़ा और प्रत्येक बार उनके मुख की गम्भीरता बढ़ती ही गई। वह पत्र कलक्टर का था जिसमें कलक्टर ने लिखा था कि रामनाथ के बड़े लड़के दयानाथ ने कांग्रेस ज्वाइन कर लिया है और सरगर्मी के साथ कांग्रेस की ग़ैर-क़ानूनी कार्रवाइयों में हिस्सा ले रहा है। साथ ही रामनाथ से यह भी कहा गया था कि सरकार रामनाथ के लिहाज़ से अभी तक दयानाथ के ख़िलाफ़ कार्रवाई करने से रुकी हुई है। कलक्टर साहेब ने यह आशा प्रकट की थी कि रामनाथ अपने बड़े पुत्र दयानाथ को ग़लत मार्ग पर चलने से रोकेंगे।

तिवारी जी ने पत्र मेज़ पर रख दिया, तकिया के सहारे बैठ कर वे सोचने लगे। जितना सोचते थे विचार उतने ही उलझते जाते थे, और अन्त में उन विचारों से ऊब कर उन्होंने फिर पान खाया। इसके बाद उन्होंने घड़ी देखी—साढ़े तीन बजे थे।

वे लेट गए और फिर सोचने लगे। जिस समय आँख खुली, साढ़े पाँच बज रहे थे।

२

पण्डित रामनाथ तिवारी अवध के एक छोटे-से ताल्लुक़दार थे। अपनी रियासत बानापुर में न रह कर वे प्रायः उन्नाव में रहते थे और उसके कारण थे। तिवारी जी सभ्य तथा सुसंस्कृत पुरुष थे, उन्हें सभ्य तथा पढ़े-लिखे लोगों का ही साथ पसन्द था। ग्रामीण जीवन में विद्वानों के संसर्ग का अभाव था। इस अभाव को उन्होंने उन्नाव आकर दूर किया था। यद्यपि उन्नाव छोटा-सा क़स्बा था पर ज़िला का सदर होने के कारण वहाँ कलक्टर, डिप्टी कलक्टर आदि पढ़े-लिखे अफ़सर रहते थे।

दूसरा कारण था तिवारी जी का दयालु होना। किसानों की हालत वैसे कहीं भी अच्छी नहीं है, पर अवध के किसानों की हालत तो बहुत अधिक करुणाजनक है। ये किसान अपनी अपनी फ़रियादें लेकर राजा साहेब, अर्थात तिवारी जी के पास आते थे; और इनकी शिकायतों को दूर करना तिवारी जी अपना कर्तव्य समझते थे। पर शिकायतों को दूर करने के अर्थ प्रायः हुआ करते थे राज्य को, अर्थात तिवारी जी को आर्थिक हानि। इस आर्थिक हानि से बचने के लिए किसानों को ज़िलेदार सरबराकार और मैनेजर से निपटने के लिए उनके भाग्य पर छोड़कर तिवारी जी उन्नाव में आ बसे थे।

तिवारी जी आनरेरी मजिस्ट्रेट थे और किसी का नौकर न होने के कारण अपनी अदालत वे अपने बँगले में ही करते थे। इसमें सरकार को भी कोई आपत्ति न थी क्योंकि यदि तिवारी जी अपने बँगले में अदालत न करते तो सरकार को कोई इमारत किराए पर लेनी पड़ती और इसमें उसका खर्च होता।

किसी का नौकर न होने के कारण तिवारी जी की अदालत का समय भी अनिश्चित था। अदालतों का समय प्रायः दस बजे हुआ करता है। हर एक सम्मन पर यही वक्त दिया होता है और दिहात से आने वाले लोगों को ठीक दस बजे अदालत में हाज़िर होना पड़ता है।

तिवारी जी के बँगले के सामने वाले मैदान में नीम के पेड़ के नीचे मुक़दमों में आए हुए लोगों की भीड़ एक बजे से तिवारी जी के दर्शनों का इंतज़ार कर रही थी। कुछ अपने मुक़दमों की बातें कर रहे थे, कुछ भयानक गरमी और उससे भी भयानक लू पर, जिससे उसी दिन तीन आदमी मर चुके थे, टीका-टिप्पणी कर रहे थे और कुछ दबी ज़बान तिवारी जी को गालियाँ दे रहे थे। तिवारी जी की लाइब्रेरी के कमरे में जो दोपहर बारह बजे से छै बजे शाम तक अदालत का कमरा कहलाता था, पेशकार उस दिन पेश होने वाले मुक़दमों की मिसलों को उलट-पुलट रहा था। उसके इर्द-गिर्द खड़े हुए वकीलों के मुहर्रिर पेशकार साहेब की रुपए और अठन्नी से पूजा कर रहे थे।

ठीक छै बजे तिवारी जी अदालत के कमरे में आए। चपरासी खुदा-
ञ्रा से उन्होंने कहा, "सत्यनारायण से बोलो कि वह मेरी मोटर लावे!"
र फिर उन्होंने पेशकार से कहा, "आज के सब मुक़दमे मुलतवी कर दो,
ी तबीअत ठीक नहीं, अभी कानपुर जाना है।"

कार कमरे के सामने लग गई। सत्यनारायण ड्राइवर ने आकर सूचना
। तिवारी जी ने कुछ सोच कर बाहर चलते हुए कहा, "तुम्हें मेरे साथ
हीं चलना है—देखो प्रभा तैयार हो गया?"

"सरकार छोटे कुँवर तो मोटर पर बैठे आपका इंतज़ार कर रहे हैं!"

"ठीक! प्रभा ड्राइव कर लेगा, तुम्हारी आज की छुट्टी है!" और
वारी जी कार पर बैठ गए।

प्रभानाथ स्टियरिंग व्हील पर बैठा था और रामनाथ पिछली सीट पर बैठे
हीं लेटे थे। उस समय उनका मुख गम्भीर था और उनके मस्तक पर बल
े हुए थे। उन्नाव से कानपुर का फ़ासिला केवल ग्यारह मील का है पर
पेडत रामनाथ तिवारी को वह फ़ासिला ग्यारह सौ मील का मालूम हो रहा
ा। आँखें खोल कर उन्होंने सड़कों की ओर देखा, सड़क पर लगे हुए मील
े पत्थर ने उन्हें बतलाया कि वे अभी केवल दो मील आए हैं। झल्ला कर
न्होंने कहा, "कितना धीमे चल रहे हो प्रभा! तेज़ चलो, मुझे जल्दी है!"

प्रभानाथ ने स्पीडोमीटर की ओर देखा, सुई चालीस पर थी। उसने कार
ी रफ़्तार और तेज़ की, सुई साठ पर पहुँच गई। रामनाथ ने ठंढी साँस ली
ौर फिर आँखें बन्द कर लीं।

इस तरह आँखें बन्द किये हुए वे करीब दो तीन मिनट बैठे रहे कि एक
झटके से चौंक उठे। "कितना आए हैं?" उन्होंने अपने चारों तरफ़ देखते
ुए पूछा।

"पाँच मील!" प्रभानाथ मुसकराया, "दद्दुआ क्या बात है जो आप
इतने व्यग्र हो रहे हैं?"

रामनाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया। यद्यपि प्रभानाथ का मुँह सामने था

और रामनाथ उसे न देख सकते थे, पर फिर भी रामनाथ को मालूम हो ग
कि प्रभानाथ मुसकरा रहा है—और शायद उन पर। पुत्र की इस बात
रामनाथ को हलकी सी झुँझलाहट आई, और उनका मौन उनकी झुँझला
का द्योतक था।

प्रभानाथ ने बात बदली। "ददुआ, साठ मील फ़ी घण्टा की रफ़्तार
गाड़ी दौड़ रही है; अभी उन्नाव छोड़े कुल सात-आठ मिनट हुए होंगे !"

"एँ ! साठ मील फ़ी घण्टा !" कहते हुए पण्डित रामनाथ ने अप
सोने की जेब घड़ी देखी, "अरे—कुल छै मिनट ! गाड़ी धीमी करो प्रभा

लेकिन प्रभानाथ ने गाड़ी धीमी करने के स्थान पर और तेज़ कर दी
स्पीडोमीटर अब सत्तर दिखला रहा था। पर रामनाथ ने गाड़ी की इस ते
पर कोई ध्यान नहीं दिया, अपनी बात कह कर वह फिर सोचने लगे थे।

गंगा के पुल के पास वाले सड़क की मोड़ पर गाड़ी धीमे करते हु
प्रभानाथ ने कहा, "ददुआ—कहाँ चलें बड़के भैया के यहाँ ?"

रामनाथ चौंक उठे, वे तन कर बैठ गए। फिर उन्होंने अपने च
ओर देखा। बाँई ओर गंगा बह रही थीं और सामने करीब दो सौ गज
दूरी पर गंगा का पुल था। उन्होंने कहा, "दया के यहाँ, सीधे और जल
से जल्दी ! समझे !"

दयानाथ का बँगला सिविल लाइन्स में था और वे मशहूर आदमी थे
प्रभानाथ ने देखा कि दयानाथ के बँगले की बरसाती के नीचे तीन-चार क
खड़ी हैं, इसलिए अपनी कार उसे पोर्टिको से कुछ दूर हट कर लगानी पड़
रामनाथ ने कहा, "दया को यहीं बुला लाओ !"

प्रभानाथ गाड़ी से उतर कर बँगले की ओर बढ़ा। वह करीब दस क़द
ही गया होगा कि रामनाथ ने आवाज़ दी, "नहीं—मैं खुद चलूँगा—ठहरे
तुम मेरे साथ-साथ मेरे पीछे रहोगे।" इतना कह कर रामनाथ कार
उतर पड़े।

दयानाथ के ड्राइंग-रूम में नगर के प्रमुख कांग्रेसमैनों की बैठक हो

थी। कमरे के बाहर एक स्वयंसेवक स्टूल पर बैठा हुआ, 'झण्डा ऊँचा रहे हमारा !' गाने की पहिली पंक्ति बड़ी तन्मयता के साथ गा रहा था।

स्वयंसेवक ने स्टूल पर बैठे ही बैठे कहा, "वकील साहेब से इस समय मुलाक़ात नहीं हो सकती, कांग्रेस की बैठक हो रही है!"

स्वयंसेवक की बात पर ध्यान न देकर पण्डित रामनाथ तिवारी तेज़ी के साथ दरवाज़े की ओर बढ़े। स्वयंसेवक उठ खड़ा हुआ, अपने डण्डे को उसने दरवाज़े से लगा कर कहा, "आप भीतर नहीं जा सकते। मैंने कहा न कि सभा हो रही है।"

पण्डित रामनाथ तिवारी की आँखों में खून उतर आया। एक टुकड़खोरे स्वयंसेवक की यह हिम्मत कि वह बानापुर के ताल्लुक़दार पण्डित रामनाथ तिवारी को उनके लड़के के मकान में जाने से रोके। उन्होंने उसी समय एक तमाचा स्वयंसेवक को मारा।

स्वयंसेवक पच्चीस वर्ष का एक नवयुवक था। पर पैंसठ वर्ष के वृद्ध पण्डित रामनाथ तिवारी का तमाचा खा कर उसकी आँखों के आगे अँधेरा छा गया और वह ज़मीन पर बैठ गया। रामनाथ तिवारी ने महान उग्र रूप धारण करके ड्राइंग रूम में प्रवेश किया। प्रभानाथ उसके पीछे था।

३

दयानाथ के ड्राइंग-रूम में दस आदमी थे, सभी कांग्रेस के प्रमुख कार्यकर्ता।

नमक-सत्याग्रह आरम्भ होने से दो महीने तक सरकार चुपचाप सब कुछ देखती रही थी, पर अब सरकार ने भी गिरफ़्तारियाँ आरम्भ कर दी थीं। इधर कांग्रेस ने भी सरगर्मी के साथ अपना युद्ध मोरचा जमा रक्खा था— ज़ोरों के साथ काम चल रहा था।

सन् १९३० के आन्दोलन में एक ख़ास बात यह थी कि देश के व्यापारियों ने कांग्रेस का बहुत साथ दिया था। यद्यपि जेल जाने वालों

में प्रमुख व्यापारियों की संख्या नगण्य सी थी, पर उन्होंने धन से बहुत अधिक सहायता की थी। कानपुर उत्तर भारत का प्रमुख व्यापारिक केन्द्र है और इसलिए वहाँ भी कांग्रेस का बहुत बड़ा ज़ोर था। दयानाथ के यहाँ जो सभा हो रही थी उसमें अमीर श्रेणी वाले भी काफ़ी तादाद में थे।

कमरे में रामनाथ के प्रवेश करने के साथ ही लोगों की बातचीत बन्द हो गई और सबों ने रामनाथ की ओर देखा। अपने पिता को देखते ही दयानाथ उठ खड़ा हुआ, "अरे ददुआ!" और उसने बढ़कर अपने पिता के चरण छुए!

रामनाथ ने दयानाथ को आशीर्वाद नहीं दिया, क्रोध से उनकी आँखें लाल थीं। उन्होंने एक बार ग़ौर से उस कमरे में बैठे हुए समुदाय को देखा, फिर उन्होंने उन लोगों से कहा, "अपने उस बदतमीज़ टुकड़खोर वालण्टियर को, जिसे आप लोगों ने मेरा अपमान करने के लिए दरवाज़े पर बिठला रक्खा था, सम्हालिये। देखिये उसे कुछ चोट-ओट तो नहीं आ गई।"

उत्तर लाला रामकिशोर ने दिया, "आप दयानाथ जी के पिता हैं और उनसे आप सब कुछ कह सकते हैं, लेकिन मेरी समझ में नहीं आता कि आप हम लोगों का अपमान क्यों कर रहे हैं!"

लाला रामकिशोर कानपुर के प्रमुख व्यापारी थे। उनकी चार मिलें थीं, और इनकमटैक्स तथा सुपरटैक्स में वे सरकार को इतना रुपया देते थे जितने की पण्डित रामनाथ तिवारी की निकासी थी। लाला रामकिशोर से पण्डित रामनाथ तिवारी भली भाँति परिचित थे, वे ज़रा धीमे पड़े। एक खाली कुरसी पर बैठते हुए उन्होंने कहा, "लाला रामकिशोर, मैंने आप लोगों का अपमान किया या आप लोगों ने मेरा अपमान किया, यह तो वह स्वयंसेवक ही बतला सकता है जिसको आपने दरवाज़े पर बिठला रक्खा था, लेकिन मैं इतना ज़रूर कहूँगा, खास तौर से आप से कि आप ऐसे शरीफ़ों के लिए यह फ़क़ीरों, बाग़ियों और आवारों की संस्था कांग्रेस नहीं है। फिर भी अगर मैंने कोई सख्त बात कह दी हो तो माफ़ी माँगे लेता हूँ।"

अपने पिता के इस व्यवहार के कारण दयानाथ लज्जा से गड़ा जा रहा था। इस बार उसके बोलने की बारी थी, "दद्दुआ, मुझे ऐसी आशा नहीं थी कि एकाएक आप इस बुरी तरह अपनी मनुष्यता पर अपना अधिकार खो बैठेंगे। वह स्वयंसेवक आपको पहचानता नहीं था, यही उसका और हम लोगों का अपराध था।" कुछ रुककर उसने फिर कहा, "और मेरे अतिथियों का जो अपमान हुआ है उसके लिए आपकी ओर से मैं उनसे माफ़ी माँगे लेता हूँ। अब आप अन्दर चलें, जिस काम के लिए हम लोग एकत्रित हुए हैं वह महत्व का है।"

रामनाथ को बिना कुछ कहने का अवसर दिये ही उसने अपने साथियों से कहा, "आप लोग कार्रवाई जारी रक्खें, मुझे अपने पिता जी से कुछ बातें करनी हैं, तब तक के लिए मैं क्षमा चाहूँगा।" और यह कह कर वह वहां से चल पड़ा।

पण्डित रामनाथ तिवारी चुपचाप उठ खड़े हुए। उनकी शिष्टता और उनकी अहम्मन्यता में उस समय एक भयानक द्वंद्व मचा हुआ था और उस द्वन्द्व के कारण वे विसुध-से हो रहे थे। दयानाथ के साथ रामनाथ और प्रभानाथ ने दयानाथ के शयनगृह में प्रवेश किया।

शयनगृह में दयानाथ की पत्नी राजेश्वरी देवी खादी की धोती पहने हुए तकली पर सूत कात रही थीं। श्वसुर को देखते ही वे उठ खड़ी हुईं और उन्होंने घूँघट काढ़ लिया। इसके बाद उन्होंने रामनाथ के चरण छुए।

रामनाथ उस समय तक किसी हद तक सुव्यवस्थित हो गए थे। उन्होंने आशीर्वाद दिया, "सदा सौभाग्यवती रहो, फलो-फूलो।"

राजेश्वरी देवी कमरे के बाहर चली गईं, और बरामदे में कमरे के दरवाज़े से लगकर खड़ी हो गईं। रामनाथ ने प्रभानाथ की ओर देखा; प्रभानाथ ने अपनी मुस्कराहट दबाने का लाख प्रयत्न किया, पर रामनाथ ने उसकी मुस्कराहट देख ही ली। कड़े स्वर में तिवारी जी ने कहा, "तुम जा कर अपनी भावज से बातचीत करो—यहाँ रहने की कोई ज़रूरत नहीं।"

प्रभानाथ की मुस्कराहट का कारण था उसका कौतूहल। घर से वह इस आशा के साथ चला था कि वह अपने पिता और अपने बड़े भाई की मज़ेदार मुटभेड़ देखेगा। वह अपने पिता को जानता था, वह अपने बड़े भाई को भी अच्छी तरह जानता था। पिता पर उसकी ममता थी, बड़े भाई के प्रति उसकी श्रद्धा थी। दोनों ही चरित्रवान तथा अपने-अपने विश्वासों पर दृढ़ आदमी थे। दोनों में ही स्वामीत्व का भाव प्रबल था, किसी से दबना दोनों में से एक ने भी नहीं जाना।

प्रभानाथ का मुँह उतर गया, एक मज़ेदार और दिलचस्प दृश्य को देखने से वह वंचित रह गया। सर झुकाए हुए वह बाहर निकला। वहाँ उसने अपनी भावज को देखा। राजेश्वरी देवी ने होठ पर उँगली लगा कर चुप रहने का इशारा किया, बेचारा प्रभानाथ वहाँ से भी निराश चल दिया। आँगन में वह पहुँचा—सामने रसोईघर में महाराज बाहर से आये हुए अतिथियों के लिए नाश्ता तैयार कर रहा था। प्रभानाथ को एकाएक याद हो आया कि उसे रामनाथ की आज्ञा से शाम की चाय छोड़ कर ही चला आना पड़ा था। नौकर से एक कुरसी मँगवा कर उसने रसोई घर के सामने डलवा ली, और फिर बैठ कर वह चा पर जुट गया।

प्रभानाथ के जाने के बाद थोड़ी देर तक कमरे में सन्नाटा छाया रहा। रामनाथ सोच रहे थे—किस प्रकार बात आरम्भ की जाय और दयानाथ रामनाथ की बात की प्रतीक्षा कर रहा था।

रामनाथ ने बात आरम्भ की, "तो देख रहा हूँ कि तुम खद्दर-पोश हो गये हो!"

कुछ देर तक अपनी बात का जवाब पाने की प्रतीक्षा के बाद रामनाथ ने फिर कहा, "और सरगर्मी के साथ कांग्रेस का काम कर रहे हो।"

इस बार भी दयानाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया।

रामनाथ का स्वर कड़ा हो गया, "बोलते क्यों नहीं? क्या गूँगे हो गए हो?"

"इसमें मेरे बोलने की क्या आवश्यकता, सब कुछ तो आप देख ही रहे ?" शान्त भाव से दयानाथ ने कहा।

दयानाथ के शान्त और दृढ़ स्वर ने रामनाथ को उत्तेजित कर दिया। हाँ, सब कुछ देख रहा हूँ और उससे भी अधिक सुन रहा हूँ ! जानते हो, म मेरे नाम को, मेरे कुल को कलंकित कर रहे हो !"

"मैंने तो इस सबमें कलंक की कोई बात नहीं समझी—और न समझने ो तैयार हूँ !"

रामनाथ ने अपनी जेब से सरकारी पत्र निकाल कर दयानाथ के सामने ंकते हुए कहा, "इस पत्र को देखते हो ? इसके बारे में तुम्हें क्या हना है ?"

दयानाथ ने पत्र पढ़ा। कुछ सोचकर उसने कहा, "सरकार पुत्र के कामों ी ज़िम्मेदारी पिता पर कैसे रख सकती है, और फिर उसने यही कैसे समझ ंया कि मेरी आत्मा पर आपका पूर्ण अधिकार है ?"

रामनाथ इस उत्तर से चौंक पड़े। उन्होंने आश्चर्य से अपने पुत्र को ेखा। दयानाथ की उम्र पैंतीस वर्ष की थी—वह कानपुर नगर के प्रमुख कीलों में था। पर फिर भी रामनाथ की नज़र में दयानाथ न पैंतीस वर्ष का ादमी था और न कानपुर का प्रमुख वकील था। रामनाथ की नज़र में यानाथ एक लड़का था—उनका लड़का था—जो उनके सामने नंगा घूमा, जो उनकी टेढ़ी नज़र के सामने दबक जाता था, जिसपर उन्होंने हमेशा ासन ही किया। अपने अधिकार की उपेक्षा पर पिता को एक धक्का-सा लगा। थोड़ी देर तक वे अवाक्, एकटक दयानाथ को देखते रहे।

और एकाएक मर्माहत पिता का स्थान अपमानित स्वामी ने ले लिया। रामनाथ तन कर खड़े हो गए। उनकी भृकुटियाँ खिंच गईं, उनके स्वर में ममता के स्थान पर स्वामीत्व की कठोरता आ गई, "अगर सरकार ने यह समझा कि तुम्हारी आत्मा पर मेरा पूर्ण अधिकार है तो उसने ग़लती नहीं की। मैं अपने अधिकार को अच्छी तरह जानता हूँ, यह याद रखना।"

बात अधिक न बढ़े, दयानाथ ने इसलिए कोई उत्तर नहीं दिया।

रामनाथ ने फिर कहा, "मैं तुमसे कहने आया हूँ कि तुम कांग्रेस
दो। जो मार्ग तुमने अपनाया है वह ग़लत है, अकल्याणकारी है। तुम
संस्था में शामिल हो रहे हो जो तुम्हें ही नष्ट कर देने पर तुली हुई है।"

"मुझे नष्ट कर देने पर तुली हुई है?" दयानाथ ने आश्चर्य से पूछ

"हाँ, तुम्हें—मुझे—हम सब लोगों को। इतनी बड़ी और ताक़त
ब्रिटिश सरकार को मिटाने की सोचने वाली संस्था हम ज़मीन्दारों को,
रईसों को छोड़ देगी, यह समझना बहुत बड़ी मूर्खता है।"

दयानाथ ने कहा, "ददुआ आप क्या कह रहे हैं? हमारी लड़ाई तो वि
सरकार से है—यह लड़ाई स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए है। क्या ज़मी
और क्या किसान—हम सब ग़ुलाम हैं। और कांग्रेस हम सब ग़ुलामों
संस्था है जिसका उद्देश्य देश को विदेशियों के शासन से मुक्त करना है।

उपेक्षा की मुसकराहट के साथ रामनाथ ने कहा, "तुमने इतना अध्य
किया, तुमने वकालत पास की लेकिन तुम्हें अक़्ल नहीं आई। यह याद र
कि ग़ुलामी ग़ुलामी ही है, चाहे वह विदेशियों की हो चाहे वह अपने
वालों की हो। विदेशियों की ग़ुलामी से लोगों को छुड़ाने की कोशिश क
वाली संस्था देश-वासियों की ग़ुलामी में लोगों को बँधे रहने देगी—
तुम्हें इसपर यक़ीन है?"

"शायद नहीं!" दयानाथ ने कहा।

"शायद नहीं—नहीं; निश्चय नहीं।" रामनाथ हँस पड़े, "और इसी
मैं कहता हूँ कि कांग्रेस को छोड़ दो। हम ज़मीन्दारों की भलाई काँग्रेस
साथ देने में नहीं है।" यह कहकर रामनाथ बैठ गए। उनके मुख पर वि
का गर्व था, उनके हृदय में सफलता का विश्वास था।

पर रामनाथ की यह प्रसन्नता क्षणिक थी। अभी तक दयानाथ
दबा-सा बात कर रहा था, अब उसने सामना किया। अभी तक वह अ
पिता से बात कर रहा था, अब उसने अपने विपक्षी से बात शुरू की। उ
कुछ थोड़े-से गम्भीर स्वर में आरम्भ किया, "ददुआ, बात सिद्धान्त क

और इसलिए मेरी बात पर आप बुरा न मानियेगा। मैं कांग्रेस का साथ दे रहा हूँ अपनी गुलामी तोड़ने के लिए। आपका कहना यह है कि दूसरों को गुलाम बनाए रखने के लिए मैं गुलाम बना रहूँ; और मैं अपनी गुलामी तोड़ने पर यदि दूसरे मेरी गुलामी से दूर होते हैं तो उसमें कोई हर्ज नहीं समझता। दूसरों को नष्ट करने के लिए स्वयम् नष्ट होने पर आपको विश्वास है; और आप चाहते हैं कि मैं भी इस बात पर विश्वास करूँ!"

रामनाथ ने अपने पुत्र को देखा और थोड़ी देर तक वे एकटक देखते रहे। फिर धीरे से उन्होंने कहा, "दूसरों को नष्ट करने के प्रयत्न में तुम अपने को नष्ट कर रहे हो, मैं नहीं। ब्रिटिश सरकार के शासन में तुम्हें कौन-सा दुख है? कौन-सा अभाव है? अच्छा खाते हो, अच्छा पहनते हो। ज़िन्दगी की सभी सहूलियतें तुम्हारे पास हैं। फिर गुलामी कैसी? और अगर तुम अँगरेज़ों का शासन नापसन्द करते हो," रामनाथ का स्वर एकाएक प्रखर हो गया, "तो याद रखना, ये टुकड़खोर शोहदे तुम्हारे सिर पर अपना पैर रखकर चलेंगे। गुलाम तुम हमेशा रहोगे, गुलामी से बच सकना गैर मुमकिन है। अभी तुम्हें हर तरह से आराम है, सिर्फ़ क़ानून की आज्ञा भर मानना है; और बाद में क़ानून की आज्ञा ही नहीं, इन नीच लोगों के घमण्ड की चक्की में तुम्हें पिसना पड़ेगा। तुम्हें ये तोड़ देंगे, तुम्हें ये कंगाल बनाकर जूतों से ठुकराएँगे और तुम ज़िन्दगी भर के लिए रोओगे। समझे!"

दयानाथ हँस पड़ा, "ऐसी ही बातों से और ऐसे ही विश्वासों से हिन्दुस्तान की यह हालत हो गई है। अपने अन्दर मनुष्यता का अभाव होने के कारण हम दूसरों के अन्दर भी मनुष्यता के अभाव की कल्पना करते हैं। दूसरों को उत्पीड़ित करने का पाप हमारे सिर पर एक भयानक भार सा लदा हुआ है और यह पाप बराबर हमें नीचे गिराता जाता है। हममें सदिच्छा और ईमानदारी नहीं है। लेकिन इसके ये माने नहीं कि दुनिया में सदिच्छा और ईमानदारी है ही नहीं। मैं यह कहता हूँ कि वैभव में पशुता है, पशुता ही नहीं, दानवता है। और हम दानवों को मनुष्यों से डरने की कोई आवश्यकता नहीं।"

रामनाथ तड़प उठे। "हाँ, मैं पशु हूँ, दानव हूँ, पापी हूँ, बेईमान हूँ। बात यहाँ तक पहुँच गई। मेरा लड़का मेरे मुँह पर मुझे गालियाँ दे रहा है।"

दयानाथ ने शांत भाव से कहा, "आप मुझे ग़लत समझ रहे हैं ददुआ—मैं गालियाँ नहीं दे रहा हूँ मैं तो सिद्धान्त की बात कह रहा हूँ!"

रामनाथ का क्रोध उग्र रूप धारण कर रहा था, "तुम सिद्धान्त की आड़ में मुझे गाली दे रहे हो, मैं तुम्हारा मुँह तोड़ दूँगा। मैं तुमसे साफ़ कहे देता हूँ—या तो तुम चौबीस घण्टे के अन्दर कांग्रेस छोड़ दो या फिर मेरे यहाँ पैर मत रखना!"

दयानाथ ने कहा, "अगर मेरे अनजाने में आपका कुछ अपमान हो गया हो तो मैं माफ़ी माँगे लेता हूँ। लेकिन आप ज़रा शान्त हो कर सोचें तो कि मुझे अपने विश्वास पर चलने का और अमल करने का उतना ही अधिकार है जितना आपको अपने विश्वास पर चलने का और अमल करने का। मैंने तो आपसे कभी यह नहीं कहा कि आप अपने विश्वास को छोड़ दें!"

रामनाथ चिल्ला उठे, "मैं तुम्हारा बाप हूँ कि तुम मेरे बाप हो? खबरदार अब जो दूसरी बात ज़बान पर आई तो मैं तुम्हारी ज़बान खींच लूँगा!" रामनाथ आवेश से काँप रहे थे, "चौबीस घण्टे का समय दे रहा हूँ—एक मिनट ज़्यादा नहीं।" इतना कह कर उन्होंने ज़ोर से पुकारा "प्रभा!"

प्रभानाथ ने गरम पकौड़ियाँ खा कर फलों पर हाथ लगाया ही था कि रामनाथ की आवाज़ उसे सुनाई पड़ी। फलों को छोड़ कर वह दौड़ा, रामनाथ कमरे के बाहर आ गए थे। रामनाथ ने कहा, "चलो—जल्दी चलो! इस मकान में मेरा दम घुट रहा है।"

प्रभानाथ ने कमरे के अन्दर नज़र डाली। दयानाथ खड़ा ज़मीन की ओर देख रहा था। प्रभानाथ ने बाहर ही से कहा, "बड़के भइया प्रणाम!"

दयानाथ ने उसी भाँति उत्तर दिया, "आशीर्वाद!"

रामनाथ ने प्रभानाथ का हाथ पकड़ कर दरवाज़े की ओर खींचते हुए कहा, "चलो—जल्दी करो!"

"यही जो ददुआ कह गए हैं कि चौबीस घण्टे के अन्दर कांग्रेस छोड़ दो।"

दयानाथ मुसकराया, "अब मैं क्या करूँगा? तो इसके माने क्या यह हैं कि तुम मुझे समझती नहीं?"—कुछ रुककर दयानाथ ने फिर कहा, "अच्छा, तुम्हीं बतलाओ मैं क्या करूँगा?"

"मैं क्या जानूँ?—मैं तो इतना जानती हूँ कि तुम्हे क्या करना चाहिए!"

"तो फिर यही बतलाओ!"

"अपने पिता की आज्ञा माननी चाहिये, उनसे क्षमा माँग लेनी चाहिये!"

"और अपनी आत्मा की पुकार की उपेक्षा करनी चाहिए, सत्य का गला घोंट लेना चाहिए, कर्तव्य से विमुख हो जाना चाहिए—यही सब करने को तुम मुझसे कह रही हो!" दयानाथ उठ खड़ा हुआ, वह ज़ोर से हँस पड़ा, "पिता ही नहीं, मेरी पत्नी भी मुझे पाप का रास्ता दिखला रही है, मुझे अपना सहयोग, अपनी सहानुभूति, अपना साहस देने के स्थान पर मेरे सामने बाधा के रूप में उपस्थित हो रही है। यह सब विधि का विधान ही है!"

दयानाथ के मुख पर हाथ रखते हुए राजेश्वरी ने कहा, "ऐसा न कहो—हाथ जोड़ती हूँ! मुझे पाप न लगाओ! मैं तुम्हारे भले के लिए ही यह सब कह रही हूँ!"

"अपनी भलाई—बुराई मैं अच्छी तरह समझ रहा हूँ!"

"कहाँ समझ रहे हो? जानते हो, ददुआ वैसे भी उमा बाबू को ज़्याद मानते हैं। ताल्लुक़ा का उत्तराधिकारी वे उमा बाबू को बना देंगे! इस बाद क्या होगा?"

दयानाथ ने कुछ सोचा, "ठीक कहती हो! उसके बाद मैं कंगाल जाऊँगा—तुम यह कहना चाहती हो न! लेकिन मुझे ग़रीबी की कोई चिन् नहीं! कोई भय नहीं!"

"और राजेश-व्रजेश ! उनके लिए क्यों नहीं सोचते ?"

"राजेश, व्रजेश, और तुम—तुम भी ! हाँ, अगर तुम्हें इस गरीबी से लगता है, अगर तुम अपने लड़कों को अपाहिज, लुटेरा और ऐयाश ना चाहती हो तो तुम बड़े मज़े में इन बच्चों के साथ ददुआ के यहाँ जा ती हो—मैं इसमें ज़रा भी बाधा न डालूँगा।" यह कह दयानाथ कमरे के हर चला गया।

२

जिस समय दयानाथ बाहर वाले कमरे में लौटा, नौकर वहाँ बैठे लोगों के मने चा का सामान रख रहा था। मार्कण्डेय ने मुसकराते हुए कहा, "क्यों ाँ—चेहरा क्यों तमतमाया हुआ है, ददुआ से लड़े या भाभी से ?"

"शायद दोनों से !" ब्रह्मदत्त ने चा का प्याला उठाते हुए कहा।

मार्कण्डेय दयानाथ का अभिन्न मित्र था और समवयस्क था। वह दयानाथ साथ बड़ा हुआ था, पढ़ा था और खेला था—रामनाथ के खान्दान में वह र का आदमी समझा जाता था। मार्कण्डेय मिश्र के पिता पण्डित झगड़ू श्र बानापुर गाँव में केवल चार पाई के साझेदार थे, और वैभव तथा सम्पदा पण्डित रामनाथ तिवारी से कहीं नीचे थे। लेकिन मार्फगांव का मिश्र ने के कारण वे अपने को चत्तू के तिवारी पण्डित रामनाथ से अधिक ुलीन समझते थे और इसलिए वे कभी भी ताल्लुक़दार से नहीं दबे। शायद ही कारण था कि तिवारी जी और मिश्र जी में अधिक नहीं बनती थी।

पर दयानाथ और मार्कण्डेय में बहुत अधिक घनिष्टता थी और उनकी घनिष्टता को उनके पिता पसन्द भी करते थे। इन दोनों की घनिष्टता से दो सम्भ्रान्त कुलों की शत्रुता का अन्त हो रहा था, इसको तिवारी जी और मिश्र जी अच्छी तरह जानते थे, और इस पर प्रसन्न भी थे, यद्यपि स्वयम् अपनी-अपनी अहम्मन्यता और अकड़ से मजबूर होने के कारण दोनों ही अक्सर

मुँह दर मुँह एक दूसरे से गाली-गलौज कर लेते थे। मार्कण्डेय कानपुर में वकालत करता था।

मार्कण्डेय, दयानाथ और लाला रामकिशोर के अलावा वहाँ सात आदमी और थे। इनमें सर्व प्रथम नाम श्यामनारायण का आता है। श्यामनारायण एक तरह से दयानाथ का आश्रित था। श्यामनारायण की उम्र अड़तीस साल की थी यद्यपि उसकी उम्र पच्चीस वर्ष और पैंतालीस वर्ष के बीच में कुछ भी अन्दाज़ी जा सकती थी। श्यामनारायण अधिक पढ़ा-लिखा न था, पर वह समझदार और सुलझे दिमाग़ का आदमी था। इस नाटे क़द और इकहरे बदन के आदमी के व्यक्तित्व में किसी प्रकार का कोई आकर्षण न था, आर्थिक कठिनाइयों के भार से वह हरदम दबा रहा। पर उसमें सच्ची लगन थी और दृढ़ता थी। भूखों मरा पर अपनी ईमानदारी को उसने नहीं छोड़ा।

पाँचवें सज्जन का नाम वासुदेव था। वासुदेव कौन है? कहाँ का रहने वाला है? उसकी जाति क्या है? यह कोई नहीं जानता था। वासुदेव की उम्र लगभग पैंतीस वर्ष की थी—लेकिन वह एकदम अकेला था। पाँच वर्ष पहले वह कानपुर में आया था और उसने एक छोटी-सी बिसातखाने की दूकान खोली थी। पाँच वर्ष के अन्दर वह नगर का एक प्रमुख व्यापारी हो गया था। एक छोटे से मकान में वह रहता था—और लोगों को उसके इस जीवन पर आश्चर्य तथा कौतूहल होता था। एक आध बार जब उससे उसके व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में प्रश्न किये गए तब उसने केवल एक ही उत्तर दिया, "मेरे सम्बन्ध में आपको इतनी दिलचस्पी लेने की कोई ज़रूरत नहीं।" फिर भी वासुदेव आदमी महत्व का था, किसी बात में उसकी उपेक्षा न की जा सकती थी। इस बात के प्रमुख कारणों में सर्व प्रथम सम्भवतः उसके जीवन का रहस्यमय होना था। एक बार अपने घनिष्ट सहकारियों के अपने जीवन पर प्रकाश डालने के सानुरोध आग्रह पर वासुदेव ने हँसते हुए स्वयम् कहा था, "आप नहीं समझते होंगे कि मैं अपने जीवन को क्यों रहस्यमय रखता

चाहता हूँ। इसका एकमात्र कारण यह है कि रहस्य में एक विचित्र प्रकार का आकर्षण है। चीज़ों का एक बार असली रूप देख लेने पर हम उनकी उपेक्षा करने लगते हैं। मैं उपेक्षा का पात्र नहीं बनना चाहता—मैं अपने आकर्षण को नष्ट कर देने के लिए तैयार नहीं। जिस समय आप मुझे जान लेंगे, आप मुझमें कोई विशेषता न पाएँगे। आप लोग जो महत्व मुझे देते हैं उसका एकमात्र कारण मेरा रहस्यमय और अप्रकट जीवन है।" बात हँसी में कही गई थी और सुनने वालों ने भी इस बात को मज़ाक ही समझा था।

छठे सज्जन का नाम था मौलाना हामिद अली। मौलाना हामिद अली नाटे-से क़द के खुश-मिज़ाज आदमी थे, पुराने रईस। वे अधिक पढ़े-लिखे न थे और सभा-सुसाइटियों में सिवा एकाध फ़िक़रा कस देने के अक्सर न बोलते थे, लेकिन वे भावना-प्रधान थे। हामिद अली की आय का अधिकांश भाग भूखे और तकलीफ़ में पड़े हुए लोगों को सहायता में खर्च होता था। उनके हृदय में दया थी—करुणा थी; और वे यह समझते थे कि मनुष्य मनुष्य पहले है, हिन्दू-मुसलमान बाद में। कानपुर कांग्रेस की कार्यकारिणी के वे एकमात्र मुसलमान सदस्य थे।

डाक्टर हीरालाल सातवें सज्जन थे। कानपुर नगर में उनकी डाक्टरी उनकी योग्यता से कहीं अधिक उनके कांग्रेस के नेता होने के कारण चलती थी। गोरे-से खूबसूरत आदमी, मिष्टभाषी और चलते-पुरजे। तीन-चार साल के अन्दर ही उन्होंने एक बड़ी-सी जायदाद कर ली थी और वे एक दिन कांग्रेसी सरकार में मन्त्री होने का सपना देखा करते थे।

आठवें सज्जन श्रीयुत रामकृष्ण कानपुर के प्रमुख साप्ताहिक पत्र—आलाप के सम्पादक थे। श्री रामकृष्ण हिन्दी के सुविख्यात कवि थे और हिन्दी के कुछ आलोचकों का खयाल था कि यदि रामकृष्ण थोड़ा-सा समय राजनीति से निकाल कर साहित्य में लगावें तो वे हिन्दी के अमर कलाकार हो सकते हैं। ऊँचे चरित्र के भावुक आदमी, ईमानदार कार्यकर्ता और अच्छे वक्ता, लेकिन दुनियादारी की उनमें कमी थी। वे भावना में बह जाने वाले

दमी थे—राजनीति के लिए सर्वथा अयोग्य। कानपुर की जनता उन्हें
जती थी, रामकृष्ण के मित्र और साथी उन्हें प्यार करते थे। और रामकृष्ण
: महत्वाकांक्षी सहकारी उनकी भावुकता का वेजा फ़ायदा उठा जाते थे।

नवें सज्जन मुंशी इक़बाल शंकर थे। उनका अतीत बड़ा घटनापूर्ण था।
उनके पिता मुंशी उल्फ़त राय ने, जो मरने के समय जज खफ़ीफ़
के पेशकार थे, दो साल पहले अपने एकमात्र सुपुत्र के गुज़र-बसर के लिए
करीब डेढ़ लाख रुपया छोड़ा था। इस डेढ़ लाख में उनकी प्राइवेट डाय
में दर्ज हिसाब के मुताबिक़ अब उनके पास करीब तीस हज़ार रुपया बा
था। हिसाब इस प्रकार है—

आय

नक़द बैंक में—	१०००००)
मकान एक किता—	२००००)
मकान दो किता— (बीबी के नाम)	३००००)
मीज़ान	१,५००००)

व्यय

मिस रोज़ा—	७०००)
मुसम्मात धन्नो—	१००००)
गुलशन बीबी—	१२०००)
मुतफ़र्रिक (नाम अनगिनती हैं)—	२१०००)
शराब —	१५०००)
नशे में यार लोग झटक ले गये—	२५०००)
घर का खर्च—दावत—तवाजा—	१००००)
घुड़दौड़—	१००००)
सूद—	१००००)
मीज़ान	१२००००)

जिस समय वे बीवी को अपने नाम की जायदाद बेचने पर मजबूर कर रहे थे, उसी समय उनके चौदह वर्ष के लड़के ने सर पर गांधी टोपी लगाए हुए और हाथ में तिरंगा झंडा लिए हुए घर में प्रवेश किया। उसके दूसरे हाथ में एक परचा था। मुंशी इक़बाल शंकर झल्लाए हुए तो थे ही, उन्होंने लड़के को दो तमाचे मारे और परचा उसके हाथ से छीन लिया। उस परचे को वे फाड़ कर फेंकने ही वाले थे कि उनकी नज़र उस परचे की लिखावट पर पड़ गई। एक साँस में वे परचे को आदि से अन्त तक पढ़ गए और इसके बाद उन्होंने एक तमाचा अपने मुँह पर मारा। उनकी बीवी उनका यह व्यवहार देख कर डर गई, वह बाहर दौड़ी, नौकर को उसने सीधे डाक्टर हीरालाल के यहाँ भेजा। तेज़ी से वह लौटी, उसी समय मुंशी इक़बाल शंकर ने दूसरी बार उस परचे को पढ़ कर अपने मुँह पर दूसरा तमाचा मारा। बीवी ने हाथ जोड़ कर और आंखों में आंसू भर कर कहा, "बेच दो, अगर तुमसे नहीं रहा जाता तो एक मकान बेच दो; लेकिन यह सब न करो!" मुंशी इक़बाल शंकर बीवी को हृदय से लगाकर फूट फूट कर रोने लगे। तब तक डाक्टर हीरालाल जो पड़ोस ही में रहते थे आ गए। उसी दिन से इक़बाल शंकर कांग्रेसमैन हो गए।

दसवें सज्जन मज़दूर-सभा के सेक्रेटरी थे और उनका नाम था ब्रह्मदत्त। ब्रह्मदत्त के पिता हरदत्त सेठ राधारमन क़िस्त वालों के तगादगीर थे। इंट्रेंस फ़ेल होने पर ब्रह्मदत्त को हरदत्त ने बहुत पीटा। दूसरे दिन ब्रह्मदत्त घर से निकल पड़ा। उसने स्पिनर मिल में कुली का काम कर लिया। पर ब्रह्मदत्त कुलीगीरी करने के लिए न बना था। राजनीति में दिलचस्पी लेने के कारण ही वह फ़ेल हुआ था और यही राजनीति उसके आड़े आई। मिल की नौकरी करते समय उसकी मुलाक़ात मिलों में प्रचार करने के लिए आए हुए समाजवादी नेताओं से हो गई और उनकी सहायता से उसने मज़दूरों के संगठन का काम आरम्भ कर दिया। धीरे-धीरे वह भी मज़दूर-नेता बन गया था।

३

दयानाथ ने बैठते हुए कहा, "हाँ, उन दोनों से लड़कर। और उससे भी अधिक अपने से, अपनी कायरता से लड़कर चला आ रहा हूँ! कहिए—क्या-क्या काम हुआ?"

डाक्टर हीरालाल हँस पड़े, "ही! ही! ही! बड़ी मज़ेदार बात कह दी आपने—अपनी कायरता से लड़कर! वाह—क्या बात कही!"—और एकाएक अपनी बात रोक कर वे फिर हँस पड़े, "ही-ही-ही—काम इतना हुआ कि हम लोग चा पी रहे हैं। भाई इतना तकल्लुफ़ करने की क्या ज़रूरत थी! मेरा तो भोजन यहीं हो गया।"

ब्रह्मदत्त बोल उठा, "डाक्टर साहिब—आप लोग तो सब अमीर आदमी हैं, आप यह सब भले ही कहें, पर हम ग़रीबों को इतना अच्छा खाने को मिल गया, इसके लिए दयानाथ जी को धन्यवाद!"

ब्रह्मदत्त की यह बात वहाँ बैठे हुए अधिकांश आदमियों को अप्रिय लगी। लाला रामकिशोर ने बात बदलते हुए कहा, "क्यों जी दयानाथ, तुम्हारे पिताजी को तो तुम्हारे कांग्रेस में सम्मिलित होने पर बड़ा धक्का-सा लगा होगा! और मुझे तुम्हारे साहस पर ताज्जुब हो रहा है क्योंकि तुम्हीं उत्तराधिकारी हो!"

ब्रह्मदत्त ने ताड़ लिया कि रामकिशोर उसकी बात को उड़ाना चाहते हैं! उसने फिर हठ-पूर्वक कहा, "हाँ, एक ताल्लुक़दार के लड़के का कांग्रेस में शामिल होना ताज्जुब की बात ही नहीं है, हम लोगों के लिए, एक बहुत बड़े ख़तरे की भी बात है!" और ब्रह्मदत्त ज़ोर से हँस पड़ा—मानों वह अपनी बात के ज़हर को अधिक से अधिक बढ़ाने का प्रयत्न कर रहा हो।

मार्कण्डेय ब्रह्मदत्त के पास बैठा था। ब्रह्मदत्त का यह व्यवहार मार्कण्डेय को अखर गया, उसने कहा, "हाँ ख़तरे की बात अवश्य है! और तुम्हारे ऐसे अवसरवादी, ग़ैरज़िम्मेदार और अयोग्य आदमियों के लिए तो खास

तौर से। अगर दयानाथ के से ज़िम्मेदार, समझदार और सचरित्र आदमी क्षेत्र में अधिक संख्या में आ जाँय तो तुम्हें पूछेगा कौन ?"

ब्रह्मदत्त ने मानों इस बात को सुना ही नहीं। वह मुसकरा रहा था।

चा समाप्त हो गई और नौकर चा के बरतन ले गया। उसके बाद कार्रवाई फिर से आरम्भ हुई। रामकिशोर ने कहा, " सवाल हमारे सामने यह है कि इन दो सौ वालंटियरों के जेल जाने के बाद फिर आदमी कहाँ से आवेंगे ?"

दयानाथ ने लापरवाही के साथ कहा, " इसकी चिन्ता ही क्यों ? देश में भूखों मरने वाले किसानों और मज़दूरों की कमी नहीं है। कानपुर शहर में ही दो हज़ार आदमी ऐसे मिल सकते हैं जिन्हें जेल में भोजन पाना उनके बाहर भूखों मरने की अपेक्षा अधिक अच्छा है !"

श्यामनारायण हँस पड़ा, "आप गलती करते हैं मिस्टर दयानाथ ! ये किसान और मज़दूर जेल के बाहर तड़प-तड़प कर भूखों मरना पसन्द करेंगे लेकिन जेल जा कर पेट भरना इन्हें मंजूर नहीं।"

रामकृष्ण ने ब्रह्मदत्त से कहा, "ब्रह्मदत्त जी, आपका क्या खयाल है ? क्या मज़दूर हम लोगों का साथ देंगे ?"

श्यामनारायण बोल उठा, "मज़दूर ! मज़दूरों और मज़दूर-सभा वालों पर निर्भर रह कर आप अगर यह मूवमेण्ट चलाना चाहते हैं तो आप मूर्खता करते हैं। जनाब, मज़दूर और किसान दोनों गए-बीते हैं। वे न सोच सकते हैं न समझ सकते हैं; कायरता उनकी नस-नस में भरी हुई है। और ये मज़दूर-सभा के आदमी—मज़दूरों का भला करने की जगह ये अपना भला कर रहे हैं। मज़दूरों का सहारा लेकर बिना किसी योग्यता के ये लोग नेता बनना चाहते हैं। चाहते ही नहीं हैं, बन भी गए हैं।"

रामकृष्ण ने कहा, "श्यामनारायण जी, इस प्रकार आपस में लड़ने के लिए और गाली-गलौज करने के लिए हम लोग नहीं इकट्ठा हुए हैं। हाँ ब्रह्मदत्त जी, आपने बतलाया नहीं ?"

ब्रजदत्त ने दबी ज़बान कहा, "मज़दूर तो आपको बड़ी तादाद में नहीं मिल सकेंगे!"

इक़बाल शंकर ने पूछा "क्यों?"

"इसलिए कि इस नगर में उनकी संख्या बहुत अधिक तो है नहीं और साथ ही अपना पेट भरने का प्रश्न उनके सामने इस बुरी तरह से रहा है कि उन्हें दूसरी बातों पर सोच-विचार करने की कभी फ़ुरसत ही नहीं मिली।"

"पर इस मूवमेण्ट से तो उनके पेट भरने की समस्या भी हल हो जाती है।" इक़बालशंकर ने कहा।

"इस मूवमेण्ट से मज़दूरों के पेट भरने की समस्या हल होगी?" देवदत्त हँस पड़ा, "बड़ी मज़ेदार बात कह दी आपने। लेकिन मैं कहता हूँ कि आप क्यों दूसरों को और खुद अपने को धोखा दे रहे हैं? मैं देख रहा हूँ कि कांग्रेस पूँजीपतियों की संस्था है और पूँजीपतियों का हित ही कांग्रेस का हित है। चार मिलों का मालिक नगर कांग्रेस कमेटी का सभापति है और ताल्लुक़दार का लड़का कांग्रेस का मंत्री है। आप लोग अपने हितों पर इन बेचारे मज़दूर—किसानों की बलि चढ़ाना चाहते हैं—मैं अच्छी तरह यह सब समझता हूँ!"

इस अप्रिय प्रसंग से ऊब कर रामकिशोर ने कहा, "इस विवाद से कोई फ़ायदा नहीं! हमारे सामने सवाल यह है कि क्या किया जाय! हमें तैयार रहना चाहिए कि सरकार लोगों को गिरफ़्तार करती जाय और लोग बराबर सामने आते चले जायँ। जिस समय लोगों का सामने आना बन्द हो जायगा, हमारी हार हो जायगी।"

थोड़ी देर तक वहाँ मौन छा गया—सब सोच रहे थे। इस मौन को [illegible] ने भंग किया, "लोगों को तैयार किया जाय; अधिक से अधिक [illegible] देहातों में भर्ती किये जायँ!"

"लोगों को किस तरह तैयार किया जाय?" रामकिशोर ने पूछा।

"उन्हें [illegible] देकर। उन्हें जेल जाने के काम पर नौकर रख कर!" [illegible] ने मुसकराते हुए कहा।

"मैं इसका विरोध करता हूँ! किराए के आदमियों ने मूवमेण्ट चलाना हमारी नैतिकता का पतन जाहिर करता है!" भावुकता के वेग में आकर श्री रामकृष्ण बोल उठे।

मौलाना हामिद अली एक कोने में बैठे हुए पान चबा रहे थे, इस बात को सुन कर वे चौंक उठे, "लाहौल विला कू! पण्डित राम किशन साहेब—इस तरह की बात ज़बान पर न लानी चाहिए!"

दयानाथ ने सर उठाया—सभी लोग चुप थे, सभी लोग एक दूसरे का मुँह देख रहे थे। उसने धीरे से कहा, "रामकृष्ण जी ने जो बात कही उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। अगर देश इतना भी तैयार नहीं है कि वह स्वतन्त्रता की लड़ाई में पूर्ण-रूप से भाग ले सके तो इसका अर्थ यह हुआ कि देश अभी स्वतन्त्र होने के लिए तैयार नहीं है।"

ब्रह्मदत्त मुसकराया। "और देश को इतना अपाहिज तथा पंगु आप ही लोगों ने तो बनाया है!"

मारकण्डेय अभी तक सोच रहा था। उसने कहा, "आप लोग बेकार भावुकता के चक्कर में पड़े हैं, ज़रा चीज़ों को ठीक तरह से देखिये और उन पर ठंढे दिमाग़ से ग़ौर कीजिये। अगर आप को लड़ने के लिए सिपाही नहीं मिल रहे तो इसमें लोगों का कोई दोष नहीं है और न हिन्दुस्तान की नैतिकता का ही कोई दोष है। आखिर ये जेल जाने वाले वालण्टियर सिपाही ही तो हैं। तैंतीस करोड़ आदमियों में से अगर सभी आदमी लड़ने के लिए आगे आ जाँय, सभी मरने-मिटने को तैयार हो जाँय तो हम लोग विश्व-विजयी हो सकते हैं। लेकिन दुनिया में कहीं भी यह सम्भव नहीं। अगर तैंतीस करोड़ आदमियों में तैंतीस सौ आदमी मुफ़्त काम करने को और लड़ने को मिल जाँय तो बहुत बड़ी बात होगी। दुनिया के उन्नत से उन्नत राष्ट्रों में भी मुफ़्त काम करने वाले नहीं मिलेंगे। सभी जगह तनख्वाहों पर सिपाही नौकर रक्खे जाते हैं। और इसलिए अगर काँग्रेस मजबूरी की हालत में तनख्वाह देकर लड़ने के लिए सिपाही रखती है तो इसमें हर्ज ही क्या है!"

ब्रह्मदत्त बोल उठा ! पूँजी—पूँजी—पूँजी ! रुपये से आप आदमियों को खरीदें, उन्हें लड़ने को तैयार करें ! अगर काँग्रेस का ध्येय यही है तो मैं इसका विरोध करूँगा !"

रामकृष्ण ने झल्लाकर कहा, "तो फिर तुम्हीं मज़दूरों को क्यों नहीं तैयार करते ? क्या हम इस लड़ाई को बन्द करके हार मान लें !"

ब्रह्मदत्त ने उत्तेजित होकर कहा, "आप लोग इन पूँजीपतियों को, सेठों को, रईसों को, दूकानदारों को, मिल मालिकों को तैयार करें ! ये खून चूसने वाले लोग मौज करें और कटें मरें मज़दूर—यह नहीं हो सकता !"

रामकिशोर ने घण्टी दबाते हुए कहा ! "श्रीब्रह्मदत्त जी, इन बातों की यह जगह नहीं है। हमारे सामने एक सवाल है और उसे हल करने का उपाय श्रीयुत मार्कण्डेय जी ने बतलाया है। इस उपाय से जो लोग सहमत हों वे हाथ उठावें।"

आठ आदमियों ने हाथ उठा दिये।

४

मीटिंग समाप्त हो गई और दयानाथ अपने कमरे में अकेला रह गया।

दयानाथ के पास अब केवल बीस घण्टे थे—दूसरे दिन शाम को छै बजे तक उसे अपना निर्णय दे देना था। वह अपने पिता को अच्छी तरह जानता था—उनके हठ को, उनकी दृढ़ता को, उनके स्वभाव को ! दयानाथ के सामने एक महान समस्या उपस्थित थी—ऐसी समस्या जिस पर उसका सारा जीवन, सारा भविष्य अवलम्बित था। यह उसकी साधना, नैतिकता और आत्मिक बल की परीक्षा का समय था। उसके सामने एक ओर तो—सुख, वैभव, निश्चिन्तता, घर की शान्ति और सम्भवतः मन की भी शान्ति; और दूसरी ओर था—एक अनन्त द्वंद्व, परिस्थितियों से अनवरत युद्ध, हलचल, सत्य के मार्ग में अगणित बाधाओं का मुकाबिला ! लेकिन एक

दूसरा पहलू भी था। पहले मार्ग में था निस्पन्द जीवन जहाँ एक प्रकार का भयानक सूनापन था, जहाँ पशुता और पाप मानवता को निर्जीव बना कर छोड़ देते थे और दूसरे मार्ग में ग़रीबी और त्याग के साथ था एक मानसिक संतोष—अपनी आत्मा की शान्ति। दयानाथ को इन दोनों के बीच में बीस घन्टे के अन्दर ही एक को चुनना था, अपना अन्तिम निर्णय देना था। वह बहुत अधिक उद्विग्न हो उठा था। बीस घण्टे का समय—और इतना महत्व-पूर्ण निर्णय! दयानाथ निश्चेष्ट बैठा हुआ सोच रहा था।

उसके ध्यान को राजेश्वरी ने भंग किया। "क्यों जी इस सड़न की गर्मी में बैठे-बैठे क्या कर रहे हो? उफ़! तुम भी कैसे आदमी हो, चलो खाना खाकर लेटो चलकर!" और राजेश्वरी ने दयानाथ का हाथ पकड़ कर उसे कुरसी से उठाया।

दयानाथ उठ खड़ा हुआ। चुपचाप वह राजेश्वरी के पीछे-पीछे अपने बँगले की ऊपर वाली छत पर गया। उस समय भी गरम हवा चल रही थी। दयानाथ पलंग पर लेट गया—थका सा! राजेश्वरी देवी ने पास बैठते हुये कहा "खाना ले आऊँ! तुम्हें क्या हो गया है?"

"कुछ भी तो नहीं!" मुसकराने का प्रयत्न करते हुए दयानाथ ने कहा, "चा इतनी पी ली है कि अब भूख नहीं रही! तुम खा लो जा कर—मैं बहुत थका हूँ, सोऊँगा।"

"सिर्फ़ दो पूड़ी दूध के साथ! तुम्हें खानी ही पड़ेगी!" राजेश्वरी के स्वर में ममता से भरा आग्रह था।

"अच्छी बात है, ले आओ जाकर!"

राजेश्वरी देवी चली गई, दयानाथ फिर सोचने लगा। उसके पलंग के बगल में ही उसके दोनों लड़के राजेश और ब्रजेश सो रहे थे। दयानाथ ने उन्हें देखा, और उसने मन ही मन कहा, "मैं खुद तो इस वैभव को छोड़ रहा हूँ, पर क्या इन दोनों लड़कों को कंगाल बना देना उचित होगा? माना कि यह सुख-वैभव, यह ताल्लुक़ा—इन्हें मेरे ज़रिये से ही मिल सकता है। पर

ये उत्तराधिकारी तो अवश्य हैं। और राजेश्वरी !—राजेश्वरी भी निर्धनता से, कंगाली से, त्याग से घबराती है—राजेश्वरी भी !"

दयानाथ अपनी दृष्टि उन लड़कों से न हटा सका। चाँदनी छिटकी हुई थी, वे दोनों लड़के सपना देख रहे थे। दयानाथ एकटक उन दो लड़कों को देख रहा था और मानो उसके अन्दर से ही किसी ने उससे कहा, "लेकिन राजेश्वरी इन लड़कों के कारण ही तो इस निर्धनता से, इस त्याग से घबराती है। इनके भाग्य को, इनके अधिकार को, इनके वैभव को, तुम कुचल रहे हो—तुम इन लड़कों के शत्रु हो ! और राजेश्वरी इन लड़कों की जननी है। माता बच्चों की रक्षा करना चाहती है, उन्हें एक लुटेरे से बचाना चाहती है।"

दयानाथ मुसकराया। उसका शोक दूर हो गया था, मनोविज्ञान की एक दिलचस्प समस्या ने उसे उलझा दिया था—थोड़े से समय के लिए उसके अन्दर वाला तार्किक जाग उठा था।

"और मैं ?" दयानाथ की विचारधारा पलटी, "क्या मैं राजेश्वरी का पति नहीं हूँ ? क्या मेरे ऊपर उसकी ममता नहीं है ? इन बच्चों को उसकी गोद में मैंने ही तो दिया—उसका जीवन मेरे जीवन से बिल्कुल घुल मिल गया है। अच्छा—किस पर उसकी ममता अधिक है, मुझपर या इन बच्चों पर ? राजेश्वरी किसका साथ देगी—मेरा या इन बच्चों का ?"

बिजली के पंखे से जो हवा निकल रही थी वह भी गरम थी। दयानाथ ने पंखे को बन्द कर दिया। लौटकर वह लेटा नहीं, वह छत पर टहलने लगा। "लेकिन यह प्रश्न ही क्यों ? क्या मैं वास्तव में इन बच्चों का शत्रु हूँ ? पिता होने के नाते क्या यह मेरा उत्तरदायित्व नहीं है कि मैं इन बच्चों के लिए उचित मार्ग निर्धारित करूँ ? मैं उन्हें इस वैभव से दूर कर रहा हूँ, उन्हें मनुष्य बना रहा हूँ, मैं इन्हें विलासिता और पशुता से छुड़ाना चाहता हूँ। क्या इसमें किसी को आपत्ति हो सकती है ?"

दयानाथ के इस तर्क पर किसी ने उसी के अन्दर से फिर प्रहार किया,

"तुम इन्हें विलासिता और पशुता से छुड़ाना चाहते हो—तुम झूठ बोल रहे हो! क्या इस वैभव को छोड़ने की बात तुमने स्वयम् कभी सोची है? अब जब तुम मजबूर हो रहे हो, तुम आत्मछलना का सहारा ले रहे हो! तुम्हारे बच्चे कार पर चढ़ते हैं, बँगले में रहते हैं, अच्छा पहनते हैं और अच्छा खाते हैं। वे कुँवर कहलाते हैं। वे अपने को साधारण जन समुदाय से पृथक समझते हैं। फिर तुम किस बल पर कहते हो कि तुम उनको उचित मार्ग पर ले जा रहे हो?........."

इसी समय राजेश्वरी देवी थाली लेकर छत पर आ गई। दयानाथ ने मन ही मन राजेश्वरी को इस समय आ जाने पर धन्यवाद दिया क्योंकि उसकी विचारधारा उसे अब असह्य होने लगी थी।

दयानाथ ने खाना खाया, इसके बाद वह फिर टहलने लगा। पर उसके विचारों ने उसका साथ न छोड़ा—ग्यारह बज गए थे। अब केवल उन्नीस घण्टे बाकी थे।

दयानाथ ने एक महीना पहले वकालत छोड़ दी थी। बैंक में उसकी कमाई के पाँच हज़ार रुपये जमा थे। दयानाथ का मासिक खर्च पाँच सौ रुपया महीना था। इस हालत में पाँच हज़ार रुपए से वह उसी हालत में दस महीने तक काम चला सकता था। इसके बाद क्या होगा? दयानाथ की समझ में न आ रहा था। उसे बँगला छोड़ देना चाहिए, उसे कार हटा देनी चाहिए, उसे एक साधारण हैसियत के मनुष्य की तरह रहना चाहिए! इसी शहर में ऐसे भी मनुष्य हैं जो बारह रुपया महीने में अपने बीबी-बच्चों के साथ ज़िन्दगी बिताते हैं। पर नहीं!—बारह रुपया महीने पर जीवित रहना!—उफ़! वह तो पशु का जीवन है। नहीं—पचास रुपए में! यह भी असम्भव है। सौ रुपए महीने?

हाँ, सौ रुपए महीने में वह आराम के साथ रह सकता था। पचीस रुपए महीने का मकान, पचीस रुपए महीने घर का खर्च! पन्द्रह रुपए महीने में लड़कों की पढ़ाई, पन्द्रह रुपए महीने में कपड़े और मुतफ़र्रिक खर्च

प्रभानाथ ने कुछ सोच कर कहा, "बड़के भइया ! ज़रा सोच लीजिये। क्षणिक आवेश में किसी भी काम को कर डालना उचित नहीं। आप इस ताल्लुक़ा को ठुकरा कर बहुत बड़ा त्याग करेंगे—मैं मानता हूँ, पर आप इस ताल्लुक़ा के स्वामी रह कर इससे भी अधिक त्याग तथा उपयोगी काम कर सकते हैं—क्या आप ने इस पर भी सोचा है ? क्या आप उचित अवसर की प्रतीक्षा नहीं कर सकते ?"

दयानाथ ने सर हिलाते हुए कहा, "नहीं प्रभा ! मैं बहुत आगे बढ़ आया हूँ। पीछे हटना कायरता होगी......"

दयानाथ ने अपनी बात पूरी भी न की थी कि रामनाथ ने कमरे में प्रवेश किया। रामनाथ के आते ही दयानाथ और प्रभानाथ दोनों ही उठ खड़े हुए। दयानाथ ने पिता के चरण छुए; आशीर्वाद देकर रामनाथ सोफ़ा पर बैठ गए और दयानाथ तथा प्रभानाथ सामने कुरसियों पर।

थोड़ी देर तक मौन छाया रहा। रामनाथ ग़ौर से दयानाथ के चेहरे को देख रहे थे, मानो वे बिना दयानाथ से सुने हुए ही अपने प्रश्न का उत्तर उसके हृदय से निकाल लेना चाहते हों। दयानाथ सर झुकाए हुए ज़मीन पर देख रहा था, मानो वह अपने को कुछ क्षणों के बाद ही आने वाले तूफ़ान का मुक़ाबला करने के लिए तैयार कर रहा हो। प्रभानाथ उत्सुकता के साथ कभी अपने पिता को और कभी अपने बड़े भाई को देख लेता था।

रामनाथ ने इस मौन से ऊब कर बात आरम्भ की, "हाँ, तो तुम मेरी बात का जवाब देने आए हो। तुमने क्या तै किया ?"

"मैं अन्तिम बार इस घर में अपना पैर रखने और अपने पिता के चरण की धूल लेने आया हूँ !" दयानाथ ने सर झुकाए ही उत्तर दिया।

"क्या कहा ?" जैसे रामनाथ को जो कुछ उन्होंने सुना उस पर विश्वास ही नहीं हुआ।

"मैंने तै कर लिया—पीछे फिरना कायरता है और मैं कायर नहीं हूँ।"

रामनाथ स्तब्ध-से अपने पुत्र को देखते रहे। थोड़ी देर बाद उन्होंने कहा, "हूँ! तुम कायर नहीं हो—यह जान कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मेरा पुत्र कायर नहीं है, मुझे इस पर गर्व है। और मेरा यह वीर पुत्र अपने पिता से ही लड़ने पर तुला है, उसपर ही प्रहार करने को आमादा है! ठीक ही है! दुनिया में सब कुछ सम्भव है!"

बड़े करुण स्वर में दयानाथ ने कहा, "दद्दुआ—आप मेरी बात को ग़लत ढंग से समझ रहे हैं! एक बार मैंने एक संस्था को अपना लिया है, उसमें बहुत आगे बढ़ गया हूँ। अब उससे हट आना, अपने साथियों को इस मौके पर छोड़ देना कायरता का ही काम होगा। फिर मेरे साथी, साथी ही क्यों, सारी दुनिया मुझे धिक्कारेगी, वह यही कहेगी कि मैं डर कर इस लड़ाई से भाग रहा हूँ!"

रामनाथ मानो तैयार बैठे थे, "लेकिन तुम्हारी यह लड़ाई है किसके साथ? ब्रिटिश सरकार के साथ न! और वह ब्रिटिश सरकार ही क्या है अगर हम ज़मीन्दार उसके साथ न हों। हम लोग इस गवर्नमेण्ट के अंग हैं। इस ब्रिटिश गवर्नमेण्ट पर प्रहार करने के माने होते हैं ज़मीन्दारों पर प्रहार करना—मेरे ऊपर प्रहार करना!"

दयानाथ ने केवल इतना कहा, "आप जो चाहे समझ सकते हैं लेकिन मेरा ख्याल तो ऐसा नहीं है।"

रामनाथ ने कुछ सोच कर कहा, "तो फिर तुमने अपना अन्तिम निर्णय दे दिया है? भविष्य पर और परिणाम पर अच्छी तरह सोच-समझ कर!"

"जी हाँ!"

"नहीं, मैं तुम्हें अड़तालीस घण्टे का समय और दे रहा हूँ, इतना महत्व-पूर्ण निर्णय करने के लिए चौबीस घण्टे का समय काफ़ी नहीं है, और ख़ास तौर से उस समय जब तुम्हारा वह निर्णय मेरे साथ हो। तुम मुझे अच्छी तरह जानते हो!" रामनाथ तन कर खड़े हो गए।

दयानाथ ने बैठे ही बैठे उत्तर दिया, "जी हाँ, मैं आपको अच्छी तरह से जानता हूँ। इतनी अच्छी तरह कि आप भी अपने को उतना न जानते होंगे। और मुझे समय की कोई आवश्यकता नहीं; मैंने अपना निर्णय दे दिया और मैं मनुष्य हूँ। बात से फिरना, पीछे लौटना मैं नहीं जानता।"

रामनाथ घूम पड़े, "तो फिर अब मेरा निर्णय भी सुन लो। आज से जब तक मैं जीवित हूँ, तुम इस घर में अपना पैर न रख सकोगे। तुम्हारी बीवी और बच्चे जब चाहे आ सकते हैं, लेकिन तुम नहीं। रही तुम्हारे अधिकारों की बात—उस पर मैं विचार करूँगा। लेकिन इतना तै है कि मेरी ज़िन्दगी भर तुम्हें पाँच सौ रुपया गुज़ारा मिलता रहेगा। हर महीने यह रुपया तुम्हारे घर पर पहुँच जाया करेगा। तुम्हें यहाँ आने की कोई ज़रूरत नहीं। और जब यह रुपया पहुँचना बन्द हो जाय तब तुम समझ लेना कि मैं मर गया। तब तुम आ सकते हो!"

दयानाथ उठ खड़ा हुआ, "आप की आज्ञा शिरोधार्य! लेकिन यह पाँच सौ रुपया महीना गुज़ारे की बात—इसमें से एक पैसे की भी मुझे ज़रूरत नहीं। आप समझते हैं कि आप स्वामी हैं, आप दाता हैं, आप समर्थ हैं; और मैं हीन हूँ, ग़ुलाम हूँ, असमर्थ हूँ! आप ग़लती करते हैं। मैं ग़रीबी में रह सकता हूँ बिना उफ़ किये। मुझे आपके रुपए की कोई आवश्यकता नहीं—वह आप अपने पास रक्खें!" यह कह कर उसने रामनाथ के पैर छुए और वह तेज़ी के साथ कमरे के बाहर चला गया।

तीसरा परिच्छेद

१

रामनाथ जिस तरह खड़े थे, उसी तरह खड़े रह गये। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि यह सब क्या हो गया—उनकी आँखों के आगे शून्य था। उनकी विचार-धारा अचानक अस्पष्ट, धुँधली और स्तब्ध हो गई थी—वे पत्थर की मूर्ति की भाँति निश्चेष्ट खड़े थे।

और उनकी यह दशा उस समय तक रही जब तक उन्हें दयानाथ की मोटर की आवाज़ नहीं सुनाई दी। दयानाथ की मोटर की आवाज़ सुनकर वह एक दम चौंक उठे; उन्होंने प्रभानाथ से कहा, "प्रभा—देखो वह जा रहा है। उसे बुलाओ—जल्दी बुलाओ!"

प्रभानाथ कमरे के बाहर दौड़ा। थोड़ी देर बाद वह लौट आया। उसने कहा, "दद्दुआ—मैं जब पहुँचा बड़के भइया की कार फाटक के बाहर निकल गई थी। मैंने बहुत पुकारा लेकिन शायद उन्हें मेरी आवाज़ नहीं सुनाई दी।"

रामनाथ ने अधीरता से कहा, "प्रभा—बड़ी मोटर निकाल कर जाओ और उसे रास्ते से वापस ले आओ! मुझे उससे अभी कुछ और ज़रूरी बातें करनी हैं! जल्दी करो!"

प्रभानाथ तेज़ी के साथ कमरे के बाहर निकला।

रामनाथ ने तनिक ज़ोर से कहा, स्वयम् अपने से, "गया—मुझे छोड़ कर, घर को छोड़ कर, रुपया-पैसा-ज़मीन-जायदाद—सब कुछ छोड़ कर! सिर्फ़ एक हठ—एक पागलपन! उफ़! मेरा लड़का मुझसे ही लड़ने जा रहा है।" और वे कमरे में टहलने लगे।

उन्होंने फिर कहा, अबकी बार अधिक ज़ोर से, एक-एक शब्द पर ज़ोर देते हुए, "सर उठा कर, गर्व के साथ, रुपयों को ठुकरा कर, ममता को तोड़ कर। मुझसे लड़ने, मुझे मिटाने चल दिया! इतना घमण्ड, इतनी अहम्मन्यता—इतनी अहम्मन्यता, इतना घमण्ड!"

रामनाथ कमरे के बाहर निकल आए। प्रभानाथ कार को गैरेज से निकाल कर ला रहा था। रामनाथ ने आवाज़ दी, "प्रभा!"

प्रभा चौंक उठा। रामनाथ का स्वर, जो दो मिनट पहले करुण था और विवश था, वह एकाएक इतना कठोर कैसे हो गया? उसने मोटर पर बैठे ही बैठे कहा, "कहिए!"

"मोटर रख दो—तुम्हारे जाने की कोई आवश्यकता नहीं।" इसके बाद रामनाथ ने धीरे से गुरुता के भार से लदे हुए शब्दों में कहा, "इतना घमण्ड! तो फिर भुगते—अच्छी तरह से भुगते। वह समझता है कि मैं झुकूँगा!" और वे ज़ोर से हँस पड़े। पर उनकी उस हँसी में एक अप्राकृतिक कर्कशता थी, दबे हुए रुदन की अहम्मन्यता और अभिमान-मिश्रित प्रतिक्रिया थी।

प्रभा ने मोटर गैरेज में रख दी, इसके बाद वह टहलने के लिए चला गया। रामनाथ बाहर मैदान में बैठ गए। उनके ताल्लुका के कर्मचारी उस दिन अपने कागज़ात लेकर आए थे। रामनाथ को घेरे हुए उनके सरबराकार और ज़िलेदार बैठे थे—मैनेजर उनसे कागज़ों पर दस्तखत करा रहा था। एक कागज़ को देख कर रामनाथ ने कहा, "इस आदमी ने लगान क्यों नहीं अदा किया?"

मैनेजर ने कहा, "यह आदमी जेल चला गया—लगान किससे वसूल करूँ?"

"जेल चला गया?—इसी कांग्रेस में?" रामनाथ ने पूछा।

"जी हाँ! और भी कई काश्तकार गए हैं, लेकिन उनकी बीबी-बच्चों ने लगान अ[illegible] दि[illegible] है!"

"तो फिर इसपर बेदखली का मुक़दमा क्यों नहीं दायर करते ?"

"जी—इसलिए कि यह आदमी बराबर अपना लगान अदा करता रहा। इसपर कभी बाक़ी नहीं हुई है—यह पहला ही मौका है! इसके बीवी-बच्चे गाँव में नहीं हैं, नहीं तो वही लगान अदा कर देते। आदमी हैसियत है!"

"हूँ!" रामनाथ ने उस कागज़ पर हुक्म लिखते हुए कहा, "इस दमी पर बेदखली का मुक़दमा दायर कर दो। मैं नहीं चाहता कि मेरे ाक़े में ऐसे आदमी रहें जो बाग़ी हों—जो लड़नेवाले हों! समझे! और तरह के जितने आदमी तुम्हें मिलें, मौक़ा पाते ही उन्हें बेदखल कर दो!"

सरबराकार ने हाथ जोड़ कर कहा, "सरकार! इस तरह के आदमी रीब करीब सब के सब सरकश हैं। उन्हें दबाने में मुसीबत पड़ेगी—ज़दारी का अन्देशा है!"

"पुलिस की मदद लो—मैं कलक्टर से और कप्तान से कह दूँगा! जब हो तब तुम्हें पुलिस की मदद मिल सकती है। बाकी कागज़ों को ठीक रके सुबह मेरे सामने पेश करना!" यह कह कर रामनाथ उठ खड़े हुए।

२

दूसरे दिन शाम के समय प्रभानाथ को तार से सूचना मिली कि वह फ़र्स्ट ड्वीज़न में एम-ए० पास हो गया। तार लेकर वह सीधे अपने पिता के पास हुँचा, तार उनके सामने रखते हुए उसने पिता के पैर छुए। प्रसन्न होकर मनाथ ने प्रभानाथ को आशीर्वाद दिया। इसके बाद बैठने का इशारा रते हुए उन्होंने कहा, "अब इसके बाद तुम्हारा क्या इरादा है?"

"अभी कुछ सोचा नहीं! चाचाजी से बातचीत करके तै करूँगा!"

"चाचा जी! चाचा जी!—श्यामू के पास दिमाग़ भी है जो सोचे-मझे! तुम क्या करना चाहते हो—मुझसे कहो!"

"चाचा जी का कहना तो है कि मैं कम्पीटीशन इक्ज़ामिनेशन में बैठूँ! इम्पीरियल पुलिस में बैठने की तैयारी करने के लिए उन्होंने मुझसे कहा है।"

"और तुम क्या करना चाहते हो?"

"मैं तो यूनीवर्सिटी की सर्विस ज़्यादा पसन्द करता हूँ। फर्स्ट डिवीज़न पाने के कारण मुझे अच्छी सरविस पाने में ज़्यादा मुसीबत न पड़ेगी और मेरे प्रोफ़ेसर ने यह वादा भी किया है कि जब तक कोई जगह खाली नहीं होती तब तक वे मुझे रिसर्च-स्कालर की तरह यूनीवर्सिटी में रक्खेंगे।"

कुछ सोचकर रामनाथ ने कहा, "मैं कह नहीं सकता कि तुम नौकरी कर सकोगे या नहीं; मुझे तो उम्मीद कम ही मालूम होती है। अपने लड़कों को मैं जानता हूँ—सभी स्वामी हैं; गुलामी करने को कोई भी तैयार नहीं! और सर्विस!—वह कहीं की भी हो, गुलामी ही है! लेकिन बहुत सम्भव है तुम्हारे चाचा जी का असर तुम पर पड़ा हो!"

प्रभानाथ ने उत्तर दिया, "यह तो समय बतलाएगा! और रही गुलामी की बात—यहाँ गुलामी करने से कोई बचा नहीं है। फिर चिन्ता किस बात की!"

रामनाथ मुसकराए। "देख रहा हूँ मेरे सभी लड़के विद्वान हो गए हैं..." और एकाएक उनकी मुसकराहट ग़ायब हो गई। उन्हें दयानाथ की याद हो आई—कुछ रुक कर उन्होंने फिर कहा, "प्रभा! यह विद्वत्ता—ये सिद्धान्त! ये सबकी सब धोखे की चीज़ें हैं—यह याद रखना! इनके फेर में पड़ कर मनुष्य अपनी वास्तविकता, जीवन की वास्तविकता—सभी कुछ कुछ खो बैठता है। ये सारे सिद्धान्त—यह सारी बुद्धि!—यही हमारे विनाश के कारण हैं। प्रभा—इनसे डरना—इनसे दूर भागना!" और यह कह कर रामनाथ उठ खड़े हुए।

प्रभानाथ ने कहा, "दद्दुआ! चाचा जी ने बुलाया है—आज ही सुबह उनकी चिट्ठी मिली है!"

"हूँ!" रामनाथ फिर बैठ गए, "तो फिर तुम कब जाना चाहते हो?"

"जब आप आज्ञा दें!"

रामनाथ थोड़ी देर तक मौन बैठे रहे, फिर एकाएक वे उठ खड़े हुए, "ज़रा ठहरो—मैं अभी आता हूँ—तुमसे एक ज़रूरी काम है!" यह कहकर वे अन्दर चले गए। उमानाथ का पत्र लिए हुए वे लौटे। पत्र प्रभानाथ को देते हुए उन्होंने कहा, "इसे पढ़ डालो!"

प्रभानाथ ने आदि से अन्त तक पत्र को पढ़ लिया। उसने कहा, "जी हां!—क्या आज्ञा है?"

"उमानाथ को लेने के लिए किसी आदमी का जाना ज़रूरी है। तुम देख ही रहे हो कि मैं नहीं जा सकता, और दया—खैर छोड़ो उसकी बात! उसी के कारण तो मेरी यह हालत है। श्यामू को शायद छुट्टी न मिले, अब रहे तुम!"

"तो क्या मुझे कलकत्ता जाना है?"

"हाँ, तुम्हीं को जाना पड़ेगा। उमा को आने में अभी करीब पन्द्रह दिन का समय है। तुम कल फ़तहपुर अपने चाचा के यहाँ चले जाओ, वहाँ दो दिन ठहरकर कलकत्ता चले जाना। कलकत्ता में इतनी गर्मी भी न होगी और इसलिए तुम वहाँ पन्द्रह-बीस दिन मज़े में घूम सकते हो।" रामनाथ मुसकराए, "एम-ए० पास कर लेने पर कुछ घूम लेना, सैर कर लेना बेजा न होगा।"

प्रभानाथ ने अपनी प्रसन्नता को दबाते हुए कहा, "जैसी आज्ञा!"

"और तुम्हें कलकत्ता जाना है मेरी ब्ुइक कार पर। नई कार खरीदने की बात कर ली है, बदले में यह पुरानी कार देनी है—इसे दे देना। और नई कार लेकर उसपर चले आना। कार के कागज़ पत्र और रुपया तुम साथ लेते जाना।"

प्रभानाथ ने कुछ हिचकिचाते हुए कहा, "भौजी जी से भी पूछ लूँ—शायद वह भी कलकत्ता जाना चाहें।"

"हाँ, तुमने ठीक कहा—पूछ लो!" पर एकाएक उन्होंने फिर कहा, "नहीं, अपनी भौजी को मत ले जाओ, उसका जाना ठीक न होगा!

"क्यों?" प्रभानाथ ने आश्चर्य से पूछा।

"इसलिए कि उमा अभी विलायत से लौट रहा है। बिना प्रायश्चित्त करवाए उसे घर में ले लेने के मानी होंगे सामाजिक बहिष्कार! समझ गए!"

"जी हाँ।"

"और देखो, उमा के आने के साथ ही मुझको तार कर देना। इसके बाद कलकत्ता में एक हफ़्ता और ठहरकर यहाँ के लिए रवाना होना। साथ ही जब वहाँ से चलो तब भी इत्तिला कर देना। इस बीच में मैं प्रायश्चित्त का इन्तज़ाम कर रखूँगा।"

प्रभानाथ को दूसरे दिन सुबह उठकर चलने की तैयारियाँ करनी थीं। वह सीधा अपनी भावज—उमानाथ की पत्नी महालक्ष्मी के पास गया। महालक्ष्मी अपने लड़के अवधेश को सुलाकर अपने ससुर के गिलौरीदान में पान लगाकर रख रही थी। प्रभानाथ ने पहुँचते ही कहा, "भौजी, मिठाई खिलाओ, मिठाई!"

"वाह, मिठाई मैं क्यों खिलाऊँ। तुम पास हुए हो—तुम खिलाओ! लेकिन बाबूजी—अकेले मिठाई खिलाकर ही नहीं छूटोगे—कुछ उपहार भी देना होगा!"

महालक्ष्मी के सामने पड़ी हुई कुरसी पर बैठते हुए प्रभानाथ ने कहा, "अच्छी बात है भौजी—मैं तुम्हें उपहार दूँगा, ऐसा उपहार जिससे अधिक क़ीमती चीज़ तुम न पा सकोगी!"

"उँह—बड़े उपहार देने वाले!" मुसकराते हुए महालक्ष्मी ने कहा, और अपने देवर के सामने उसने पान की तश्तरी बढ़ा दी। "बाबू जी आज कल मेरे साथ तुम खाना नहीं खाते—कुछ नाराज़ हो?"

"बहुत ज़्यादा—इसीलिए तो तुम्हारे लिए उपहार लेने कलकत्ता जा रहा हूँ!" प्रभानाथ हँस पड़ा, "सच भौजी सिर्फ़ तुम्हारे लिए उपहार लेने कलकत्ता जा रहा हूँ!"

"सच बाबू जी—कलकत्ता जा रहे हो!" महालक्ष्मी ने पूछा, "कब?"

"कल फ़तहपुर जाऊँगा—दो दिन रुक कर कार में सीधा कलकत्ता के लिए रवाना! समझीं! मझले भइया आ रहे हैं, उन्हें लेने के लिए! अब तो खिलाओ मिठाई!"

महालक्ष्मी उठ खड़ी हुई; व्यग्रता से उसने कहा, "आ रहे हैं?—कब आ रहे हैं—बोलो बाबू जी—दद्दुआ ने तो मुझे नहीं बताया! सच कह रहे हो? बोलो बाबू जी, तुम्हें मेरी सौगंद है—सच कहो!"

प्रभानाथ ने कुरसी पर पैर फैला कर कहा, "तो तुमसे झूठ कहूँगा! कह दिया न कि अपने पास होने की खुशी में मैं तुम्हारे लिए सब से बड़ी सौगात लाऊँगा। भौजी—अब मिठाई की बात न टालो, निकालो रुपए!"

महालक्ष्मी ने आलमारी खोली और पाँच गिन्नियाँ निकालीं। अपने देवर के हाथ में गिन्नियाँ रखते हुए उसने कहा, "बाबू जी—मुँह मीठा कर लेना!" और प्रभानाथ ने देखा कि उसकी भावज की आँखों में आँसू भरे हैं।

प्रभानाथ ने उठते हुए कहा, "भौजी तो मेरा सामान ठीक कर दो कल शाम को चार बजे मैं यहाँ से चल दूँगा!"

महालक्ष्मी ने ज़रा संकोच के साथ कहा, "बाबू जी, अगर मैं आपके साथ कलकत्ता चलूँ तो कोई हर्ज होगा?"

"हाँ!" शांतभाव से प्रभानाथ ने उत्तर दिया, "मैंने दद्दुआ से कहा था, और पहले वे राजी भी हो गए थे—लेकिन फिर एकाएक उन्होंने मना कर दिया! मझले भइया विलायत से आ रहे हैं न!"

महालक्ष्मी ने निराशा की एक ठंडी साँस ली, "जैसी आप लोगों की मर्ज़ी!"

२

सुबह सात बजे पण्डित रामनाथ तिवारी उन्नाव के डिपटी कमिश्नर मिस्टर डाबसन के बँगले में पहुँचे। मिस्टर डाबसन तिवारी जी को बहुत

मानते थे और इसका कारण यह था कि उन्नाव नगर के प्रमुख नागरिक होने के साथ-साथ पण्डित रामनाथ तिवारी में चरित्र बल था, व्यक्तित्व था। तिवारी जी की अवस्था पैंसठ वर्ष की थी और उनके बाल सन की तरह सफ़ेद थे। वे एकहरे बदन के लम्बे और हृष्ट-पुष्ट आदमी थे—गोरे और खूबसूरत ! सिवा उनके सफ़ेद बालों के, उनके शरीर पर बुढ़ापे का और कोई चिह्न न था। उनके बत्तीसों दाँत मौजूद थे, उनकी चाल में अकड़ थी, उनके मुख पर सौम्य और गुरुता का विचित्र सम्मिश्रण था। तिवारी जी की आँखों में अहम्मन्यता की चमक थी, उनकी वाणी में स्वामीत्व की गम्भीरता थी। तिवारी जी शिक्षित व्यक्ति थे, और शिक्षित से कहीं अधिक सुसंस्कृत।

मिस्टर डावसन जब कलक्टर हो कर उन्नाव आए थे, उनसे नगर के प्रमुख रईस और ज़िले के प्रमुख ताल्लुक़दार तथा ज़मीन्दार मिलने गए थे। सबों ने उन्हें झुक कर सलाम किया था, सबोंने उन्हें हुज़ूर और अन्नदाता कहा था, सबों ने उनकी खुशामद की थी। एक तिवारी जी ही ऐसे थे जिन्होंने उनके साथ बराबरी का बर्ताव किया था। मिस्टर डावसन को तिवारी जी का यह बराबरी वाला व्यवहार पसन्द नहीं आया था, और अपनी नाराज़गी को उन्होंने तिवारी जी पर उसी समय यह कह कर प्रकट कर दिया था, "पण्डित रामनाथ ! ज़मीन्दारों की जो ज़्यादतियाँ किसानों पर हो रही हैं, मेरा काम उन्हें रोकना है। तुम ताल्लुक़दारों और ज़मीन्दारों को मेरे शासन-काल में सम्हल कर रहना होगा।"

और तिवारी जी ने मिस्टर डावसन को उसी समय उत्तर दिया था, "मिस्टर डावसन ! आप डिपटी कमिश्नर हो कर आए हैं—लेकिन इसके ये माने नहीं कि आप हम लोगों से इस तरह की बातें करें। यह याद रखियेगा कि आप उस सरकार की नौकरी कर रहे हैं जो ज़मीन्दारों के बल पर क़ायम है। यह एक विडम्बना ही है कि हम ज़मीन्दार और ताल्लुक़दार अपढ़ और कायर होने के कारण अपने स्थान और अपनी महत्ता को गवाँ बैठे हैं, नहीं तो आप हम लोगों के साथ किसी हालत में इस तरह से पेश न आ

सकते जिस तरह पेश आ रहे हैं। आप यह समझ लें कि ज़मींन्दारों और ताल्लुक़दारों को अपना शत्रु बना लेना, सरकार के लिए आत्महत्या कर लेना होगा।"

उस डाँट का असर मिस्टर डावसन पर पड़ा, उन्होंने देखा कि उनके सामने वाला आदमी शरीफ़ है, स्वाभिमानी है। उस दिन से मिस्टर डावसन तिवारी जी का आदर करने लग गए। जिस समय चपरासी ने तिवारी जी का कार्ड मिस्टर डावसन को दिया, वे चा पी रहे थे। उन्होंने चपरासी से तिवारी जी को डाइनिंग रूम में ही बुलवा लिया।

मुसकराते हुए मिस्टर डावसन ने तिवारी जी से कहा, "गुडमार्निंग राजा साहेब! आज बहुत सवेरे आ गए!"

"गुडमार्निंग सर!" कहते हुए तिवारी जी एक खाली कुरसी पर बैठ गए।

"आप मेरे यहाँ की चा तो पीजियेगा नहीं—लीजिये, ये फल खाइये!" कहते हुए मिस्टर डावसन ने फलों की तश्तरी तिवारी जी के सामने बढ़ा दी, "क्यों, क्या बात है जो आप इतने गम्भीर हैं?"

"कुछ खास महत्वपूर्ण बात करने आया हूँ!" तिवारी जी ने कहा।

"कहिये!"

"मेरे पास परसों एक पत्र गया था जिसमें मेरे लड़के दयानाथ के कांग्रेस ज्वाइन कर लेने की बात लिखी थी।"

"अरे हाँ...मुझे याद आ गया। कमिश्नर के डी० ओ० के आधार पर ही मैंने वह पत्र भिजवाया था। फिर?...क्या दयानाथ ने वाक़ई काँग्रेस ज्वाइन कर लिया है?"

"ज्वाइन ही नहीं कर लिया है, वह इस वक्त काँग्रेस का सेक्रेटरी भी है। वह इस मामले में बहुत आगे बढ़ गया है!"

"ऐसी बात है। फिर?" उत्सुकता से मिस्टर डावसन ने पूछा।

"मैं परसों शाम को उसके यहाँ गया था। मैंने उसको बहुत समझाया-बुझाया, लेकिन सब बेकार! कल उसने मुझसे साफ़-साफ़ कह दिया कि वह काँग्रेस किसी हालत में नहीं छोड़ सकता, चाहे उसे घर-बार भले ही छोड़ना पड़े।"

"क्या आपने उसे कोई ऐसी धमकी दी थी?" मिस्टर डाबसन ने गम्भीर हो कर पूछा।

"मैंने उसे धमकी नहीं दी, मैंने उससे तथ्य की और वास्तविकता की बात कही थी। देखिये, अगर यह काँग्रेस का मूवमेण्ट केवल गवर्नमेण्ट के ही ख़िलाफ़ होता तो मैं चुप रहता, लेकिन मैं देखता हूँ कि हम ज़मीन्दारों का स्वार्थ गवर्नमेण्ट के साथ कुछ इस बुरी तरह बँध गया है कि गवर्नमेण्ट के खिलाफ़ कोई भी मूवमेण्ट ज़मीन्दारों के खिलाफ़ पड़ जाता है। ऐसी हालत में जब मेरा बड़ा लड़का रियासत का उत्तराधिकारी इस मूवमेण्ट में हिस्सा ले रहा है तब इसके माने ये हुए कि वह रियासत को, रियासत को ही नहीं, मुझको नष्ट करने पर तुला हुआ है। ऐसी हालत में उसे कोई अधिकार नहीं कि वह मेरे—अपने शत्रु के—साथ रहे।"

मिस्टर डाबसन ने आश्चर्य के साथ अपने सामने बैठे हुए बूढ़े को देखा, फिर धीरे से उन्होंने कहा, "और अगर आज ब्रिटिश गवर्नमेण्ट आप ज़मींदारों का साथ छोड़ कर जनता का हित करने पर तुल जाय?"

तिवारी जी ने तन कर उत्तर दिया, "तब मैं समझ लूँगा कि ब्रिटिश सरकार अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार रही है। मैं जानता हूँ कि हम ज़मीन्दार मिट जाएँगे, लेकिन हमारे पहले ब्रिटिश गवर्नमेण्ट मिट जायगी।"

मिस्टर डाबसन मुसकराए, "आप शायद ठीक कहते हैं! लेकिन मैं व्यक्तिगत रूप से इतना ज़रूर कहूँगा कि यह अवस्था बहुत दिनों तक नहीं रह सकती। राजा साहेब, कांग्रेस का इतना बड़ा मूवमेण्ट यह साबित कर रहा है कि जनता जाग रही है। यह साफ़ है कि लोग भूखों मर रहे हैं, लोग कंगाल हैं। यह सब किसलिए? इन लोगों को कौन भूखा मार रहा है? इन

लोगों को कौन कंगाल बनाए है ? हमें इस सवाल पर ग़ौर करना ही पड़ेगा। और मैं समझता हूँ कि इनको भूखों मारने में और कंगाल बनाने में आप ज़मीन्दारों का बहुत बड़ा हाथ है !"

तिवारी जी तिलमिला उठे, "और ज़मीन्दारों से ज़्यादा उन सरकारी अफ़सरों का हाथ है जो दो हज़ार रुपया महीना तनख्वाह पाते हैं, लम्बा भत्ता वसूल करते हैं; बीस साल की नौकरी के बाद जो नक़द दस-पाँच लाख रुपया हिन्दुस्तान के बाहर विदेश में ले जाते हैं। मिस्टर डावसन ! जो रुपया ज़मीन्दारों को मिलता है वह हिन्दुस्तान में ही तो रहता है, घूम-फिर कर वह जनता को तो मिलता है ; लेकिन विदेश में जाने वाला रुपया हिन्दुस्तान की तबाही का कारण होता है।"

मिस्टर डावसन ने अपने सामने खड़े हुए चपरासी से कहा, "पेशकार से बोलो कि काग़ज़ों पर दस्तखत मैं कचहरी में करूँगा। और जो मिलने आवें उससे कह दो कि साहेब को फ़ुरसत नहीं है—शाम के वक्त मुलाक़ात होगी।"

इतना कहकर मिस्टर डावसन सम्हल कर बैठ गए, "क्या कहा आपने ? ज़मीन्दारों को जो रुपया मिलता है वह हिन्दुस्तान में रहता है ? आप कितनी बड़ी ग़लती कर रहे हैं ? कुछ थोड़े से इने-गिने अंग्रेज़ अफ़सर हैं—ये कितना रुपया बाहर ले जा सकते हैं ? ज़्यादा नहीं—राजा साहेब, मैं आपको यक़ीन दिलाता हूँ ! और ये ज़मीन्दार ! इनका अधिकांश रुपया विलायत में जाता है, मोटरों की क़ीमत में, सिगरेट में, शराब में, विलायती कपड़ों में और न जाने भोग-विलास की कितनी चीज़ों में। आप ज़रा ग़ौर करें—जितने राजे-महाराजे, ताल्लुक़दार—रईस विलायत जाते हैं, वहाँ कितना खर्च करके लौटते हैं ! दो लाख—चार लाख रुपया प्रति वर्ष पैदा करने वाले, और इसमें से आधा से अधिक विलायत में भेज देने वाले को हमारे दो हज़ार रुपए महीने पर आपत्ति क्यों हो रही है ? और राजा साहेब, आप यह भी याद रक्खें कि हम शासक हैं; हमने अपनी ताक़त से, अनेक कष्ट सहकर, अपना खून बहाकर हिन्दुस्तान को जीता है, उसे बर्बरता से ऊपर उठाया है; हम हिन्दुस्तान का प्रबन्ध कर रहे हैं।" . . . .

तिवारी जी चुप थे। मिस्टर डावसन ने जो बात कह दी थी उसमें सत्य था। उस सत्य की उपेक्षा तिवारी जी न कर सकते थे।

मिस्टर डावसन रुके नहीं, वे बातें करने ही बैठे थे। "राजा साहेब! यह ब्रिटिश गवर्नमेण्ट इस गरीब हिन्दुस्तान से अधिक लाभ कर भी नहीं सकती। बहुत थोड़े से अंग्रेज़ सरकारी नौकरियों में हैं और केवल उन्हीं की आजीविका चल रही है। और ये अँगरेज़ संख्या में इतने कम हैं कि अगर हिन्दुस्तान में इनकी आजीविका चलना बन्द हो जाय तो इँगलैण्ड वासियों को मालूम तक न होगा। फिर एक बात आप और याद रक्खें। हिन्दुस्तान के स्वाधीनता पा जाने के बाद अभी बहुत दिनों तक हिन्दुस्तान को विदेशी विद्वानों की आवश्यकता पड़ेगी। यह तनख्वाह जो हिन्दुस्तान हम लोगों को दे रहा है, अभी कई साल तक हम विदेशियों को मिलती रहेगी।

"अब आती है व्यापार की बात! मैंने माना कि हिन्दुस्तान के साथ व्यापार से इँगलैण्ड को बहुत अधिक फ़ायदा हुआ है, लेकिन यह फ़ायदा किसी भी दूसरे देश को होता जो हिन्दुस्तान के साथ व्यापार करता; और अब यह फ़ायदा दूसरे देश वालों को ही हो रहा है। जापान, जर्मनी, अमेरिका! ये देश अधिक लाभ उठा रहे हैं। यहाँ भी हमारा लाभ अधिक नहीं है। हिन्दुस्तान इतना ग़रीब है कि वह मँहगा ब्रिटिश माल खरीद ही नहीं सकता, उसे सस्ता जापानी माल चाहिए। मैं आपसे फिर कहता हूँ कि हिन्दुस्तान से इंगलैण्ड को कोई व्यापारिक लाभ भी नहीं है। फिर यह सब क्यों? हम लोग जो अपने सर पर यह मुसीबत उठाए हुए पशुता के पाप के भागी बन रहे हैं, यह सब क्यों?"

तिवारी जी मानो सपना देख रहे हों। उन्हें यक़ीन न हो रहा था कि एक अंग्रेज़ डिप्टी कमिश्नर उनसे यह सब बातें कर सकता है! वे अवाक बैठे हुए थे।

मिस्टर डावसन ने चा का दूसरा प्याला बनाया; इसके बाद उन्होंने अपनी बात फिर आरम्भ की, "हिन्दुस्तान में अंग्रेज़ों को केवल एक मोह है,

वह है साम्राज्य का। इतना बड़ा मुल्क जिसकी जन-संख्या तैंतीस करोड़ के ऊपर; लोग बहादुर और समझदार! इतना बड़ा मुल्क किसी भी साम्राज्य की बहुत बड़ी ताक़त बन सकता है। आज संसार के अन्य राष्ट्र जो ब्रिटिश साम्राज्य से दबते हैं, उनके सामने सर नहीं उठा सकते, उसका प्रमुख कारण यह है कि ब्रिटिश गवर्नमेण्ट के पास हिन्दुस्तान ऐसा मुल्क है। लेकिन यह भूखा-कंगाल और अपाहिज हिन्दुस्तान कब तक हमारी ताक़त बना रह सकेगा? ब्रिटिश सरकार यह अनुभव करने लग गई है कि अगर हालत अधिक दिनों तक ऐसी ही रही तो हमें हिन्दुस्तान से हाथ धोना पड़ेगा। हरेक चीज़ की हद होती है, निर्दयता की, उत्पीड़न की, कुशासन की! और हिन्दुस्तान की हालत अब अन्तिम पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी है। इस अन्तिम पराकाष्ठा तक हिन्दुस्तान की हालत पहुँचाने के लिए हम लोग विवश किए गए हैं, और हमें विवश करने वाले ज़मीन्दार ही हैं। शायद भविष्य में ब्रिटिश सरकार ज़मीन्दारों का साथ न दे सकेगी।"

तिवारी जी सुन रहे थे, समझ रहे थे। उन्होंने अपना सर उठाया, सामने बैठे हुए मिस्टर डाबसन मुस्करा रहे थे। गला साफ़ करते हुए तिवारी जी बोले, "आपने जो कुछ कहा मिस्टर डाबसन, मैं मानता हूँ कि उसमें सत्य है; लेकिन केवल अर्ध-सत्य है। हिन्दुस्तान से इँगलैण्ड को और भी फ़ायदे हैं जिन्हें आपने नहीं कहा। आप यह मानेंगे कि हिन्दुस्तान के धन का बहुत बड़ा भाग इँगलैण्ड उस रुपए के सूद में ले लिया करता है जो उसने जबर्दस्ती हिन्दुस्तान को क़र्ज़ दिया है। यह रकम अरबों तक पहुँच गई है मिस्टर डाबसन! इंगलैण्ड यह जानता है कि यह आर्थिक गुलामी हिन्दुस्तान के लिए राजनीतिक गुलामी से कहीं अधिक घातक है। फिर आप कहते हैं कि हिन्दुस्तान से इंगलैण्ड को कोई व्यापारिक लाभ नहीं हो रहा है! यहाँ भी आपने केवल अर्ध-सत्य कहा है। इंगलैण्ड के जहाज़ माल लाते हैं, ले जाते हैं। इंगलैण्ड से काफ़ी अधिक माल आता भी है। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि हिन्दुस्तान की व्यापारिक नीति इंगलैण्ड ही निर्धारित करता है। अगर इंगलैण्ड को हिन्दुस्तान से कोई व्यापारिक लाभ नहीं है तो

इंगलैण्ड हिन्दुस्तान के उद्योग-धंधों को क्यों नहीं पनपने देता ? हिन्दुस्तानी माल का मुक़ाबिला क़ीमत में इंगलैण्ड का माल नहीं कर सकता। इंगलैण्ड के मुक़ाबिले में हिन्दुस्तानी व्यवसाय तेज़ी के साथ उन्नति करता जा रहा है। और यहाँ इंगलैण्ड ने हिन्दुस्तान के मुक़ाबिले जापान को सुविधाएँ देकर हिन्दुस्तानी व्यवसाय को तोड़ने का प्रयत्न किया है। जापान को इंगलैण्ड जब चाहे रोक सकता है, उसके व्यापार को जब चाहे तोड़ सकता है; लेकिन हिन्दुस्तान अगर खुद एक दफ़े जम गया तब इंगलैण्ड के लिए उसे तोड़ना असम्भव हो जायगा। इसीलिए इंगलैण्ड हिन्दुस्तान को लुटवा रहा है ताकि यह देश हरदम अपाहिज ही बना रहे। और आपने ठीक कहा कि इंगलैण्ड को हिन्दुस्तान से मोह साम्राज्य के मामले में ही है, पर हिन्दुस्तान को जन्म-जन्मान्तर तक गुलाम बनाए रखने के लिए यह ज़रूरी है कि हिन्दुस्तान के सामने हरदम ऐसी समस्याएँ रहें जिनके ऊपर उठकर या जिनसे अलग होकर उसे अपनी गुलामी पर ध्यान देने की फ़ुरसत ही न मिले। सम्पन्न हिन्दुस्तान अपनी सारी शक्तियाँ गुलामी से लड़ने में लगा सकता है, लेकिन ग़रीब हिन्दुस्तान को पहले अपनी भूख से, ग़रीबी से लड़ना है ; पीछे गुलामी की बात आती है मिस्टर डाबसन !"

मिस्टर डाबसन इस बात का उत्तर देना चाहते थे लेकिन रामनाथ ने उन्हें इशारे से रोक दिया, "और मैं आप की बात का भी तथ्य जानता हूँ। जिस समय लोगों में अपनी भूख और ग़रीबी तथा गुलामी को एक रूप में देखने की क्षमता आ गई उसी समय आप लोगों ने एक दूसरा रुख ले लिया। जिन साधनों से आपने लोगों को ग़रीब और अपाहिज बनाया उन से लोगों का ध्यान हटाने के लिए आप बेवक़ूफ़ अपढ़ तथा मूर्ख ज़मीन्दारों को सामने ला कर और उन्हें महत्व दे कर हिन्दुस्तान में गृह-कलह मचवा सकते हैं। नए-नए सवाल उठा लेना, हिन्दू-मुसलमान; वर्णाश्रम-अछूत, किसान-ज़मीन्दार—ये सब छोटे-छोटे बिना महत्व के प्रश्न हैं। इनको महत्व देकर [illegible] लोगों की शक्तियों का इन बेकार की बातों पर अपव्यय करा के [illegible] गुलामी की अवधि को लम्बा बनाना चाहते हैं। मैं मानता हूँ

आपकी सूझ को—आपके दिमाग़ को। इसी से आप थोड़े-से आदमी इतने बड़े हिन्दुस्तान पर निरंकुश शासन कर रहे हैं।" इतना कहकर पण्डित रामनाथ तिवारी उठ खड़े हुए।

मिस्टर डावसन मुसकराए, "आप हमें ग़लत समझ रहे हैं! अच्छा जाने दीजिये इस बात को। आपने बताया नहीं कि किस प्रकार मैं आपकी सहायता कर सकता हूँ?"

"इस बात-चीत के बाद मुझे आप से सहायता की कोई आवश्यकता नहीं मालूम होती", रामनाथ ने भी मुसकराने का प्रयत्न करते हुए कहा, "एक बहुत बड़ा सत्य जान कर मैं यहाँ से जा रहा हूँ। मैं आया था आपसे यह पूछने कि दयानाथ की विरासत किस तरह कटवाई जा सकती है; लेकिन मैं समझता हूँ कि मैंने गलती की!"

"शायद आपने ग़लती ही की क्योंकि विरासत का मामला डिप्टी कमिश्नर के हाथ में न हो कर चीफ़ कोर्ट के हाथ में होता है!" और मिस्टर डावसन ज़ोर से हँस पड़े।

४

पण्डित रामनाथ तिवारी जिस समय कलक्टर के यहाँ से लौटे, बहुत उद्विग्न थे। उन्होंने दयानाथ के साथ अन्याय किया, वे यह मानने को किसी भी हालत में तैयार न थे, लेकिन फिर भी उनका मन भारी था। उनकी समझ में न आ रहा था कि यह सब क्या हो रहा है। दुनिया एकाएक बदल गई थी—वे अपने सामने एक अजीब तरह का अन्धकार देख रहे थे। एक बहुत बड़ी रियासत का भार उनके कंधे पर लदा था, और वे अकेले थे। उनकी अहम्मन्यता, उनकी गुरुता, उनका स्वामीत्व!—इन सबों को एक धक्का लगा, और इस धक्के से वे स्तब्ध हो गए आज के पहले उन्होंने दूसरे पहलू पर विचार ही न किया था।

वे अपने बँगले तक न पहुँच पाए थे कि एक बहुत बड़ा जलूस उन्हें

दिखाई दिया। रास्ता भीड़ से रुक गया था इसलिए ड्राइवर को कार सड़क के एक किनारे रोक देनी पड़ी। वह कांग्रेस का जलूस था। लोग तिरंगे झण्डे लिए और तरह-तरह के नारे लगाते हुए चल रहे थे। कोई 'इन्क़िलाब ज़िन्दाबाद' चिल्ला रहा था, कोई 'झण्डा ऊँचा रहे हमारा!' गा रहा था।

साधारण परिस्थिति में तिवारी जी को अपनी कार का रुकना बुरा लगता, पर उस दिन उन्हें बुरा न लगा। अपने अन्दर वाले द्वंद्व से वे इतने स्तब्ध और विचलित थे कि उस जलूस का निकलना उन्हें बुरा लगने के स्थान पर अच्छा ही लगा। वे जलूस देखने लगे। उन्होंने मन ही मन कहा, "ये निहत्थे आदमी ब्रिटिश सरकार से लड़ रहे हैं! क्या यही लड़ाई है? एक मशीनगन! और ये सब कहाँ होंगे? कोई भी तो नज़र न आएगा! आखिर ब्रिटिश सरकार बल का प्रयोग क्यों नहीं करती? इस पागलपन को क्यों नहीं रोकती?"

कुछ लोगों ने रामनाथ की ओर उँगली उठा कर कहा, "टोडी बच्चा हाय हाय!"

रामनाथ चुप रहे। उनको यह नहीं मालूम था कि टोडी बच्चा के अर्थ क्या होते हैं, पर वे जानते थे कि जो कुछ उनके सम्बन्ध में कहा गया है वह उनके स्वाभिमान के विरुद्ध है, शायद उनको गाली भी दी गई हो। पर पण्डित रामनाथ को उस समय वह गाली नहीं अखरी, वे एकटक जलूस को देख रहे थे और सोच रहे थे, "इतने अधिक आदमी! अगर इनके हाथ में शस्त्र होते तो! उनाव ऐसे छोटे क़स्बे में इतने अधिक आदमी कांग्रेस के जलूस के साथ हैं। तो क्या कांग्रेस पर लोगों की श्रद्धा वास्तव में इतनी अधिक हो गई है? ये लोग—ये गवाँर—जिन्हें बोलने और बात करने की तमीज़ नहीं है, जो सोच नहीं सकते, समझ नहीं सकते; जिनमें नैतिकता और चरित्र का सर्वथा अभाव है। ये किसान और मज़दूर—ये लोग इस जलूस के साथ क्यों हैं! क्या ये जानते हैं कि स्वाधीनता किसे कहते हैं? क्या ये जानते हैं कि अधिकार और कर्त्तव्य के अर्थ क्या होते हैं?"

रामनाथ ने देखा कि छोटे-छोटे बच्चे गाना गाते चले जा रहे हैं। उन्होंने फिर सोचा, "और ये बच्चे !"

वे मुसकराए, "ये बच्चे भी तो जलूस के साथ हैं। भला ये बच्चे क्या समझ सकते हैं ? ये जो मस्तक ऊँचा किये हुए नारे लगाते चले जा रहे हैं— ये सुकुमार और भोले बच्चे ! ये क्या जानें कि लड़ाई क्या है ! इनमें कौन-सा जोश भर गया है ? कौन-सा उन्माद इनकी नस-नस में समा गया है ? यह लोग कहाँ जा रहे हैं ? इस जलूस को बनाकर कौन-सी लड़ाई लड़ने की तैयारी कर रहे हैं ? लड़ाई !"

रामनाथ हँस पड़े, "लड़ाई ! ब्रिटिश गवर्नमेण्ट से लड़ाई ? एक मशीन-गन—सिर्फ़ एक मशीनगन ! हॉविट्ज़र, गैस, टैंक, टारपीडो, हवाई जहाज़। जर्मनी के पास यह सब कुछ था। और इन हिन्दुस्तानियों के पास क्या है ? बाँस में लगा हुआ एक झण्डा, एक 'झण्डा ऊँचा रहे हमारा' वाला गाना, एक धरना ! और इसके अलावा—कड़ाह में मिट्टी डालकर नमक बनाओ ! बस इसी बिरते पर ये लोग ब्रिटिश गवर्नमेण्ट से लड़ रहे हैं। आखिर इस सबसे होता क्या है ? ठीक ही है ! अगर ब्रिटिश गवर्नमेण्ट बल का प्रयोग नहीं करती तो इसमें बेजा ही क्या है ? ये निहत्थे अपाहिज हिन्दुस्तानी उसका बिगाड़ ही क्या सकते हैं ? ये किसका क्या बिगाड़ सकते हैं ? कुछ नहीं— किसी का कुछ नहीं—बेकार की बात !"

अब जलूस का सब से महत्वपूर्ण भाग रामनाथ के सामने आ गया था। क़स्बे के प्रमुख व्यापारी, वकील, डाक्टर आदि संभ्रान्त आदमी पैदल खद्दर के कपड़े पहने चल रहे थे। रामनाथ ने उन्हें देखा—उनमें से कुछ लोगों को पहचाना भी, और एक क्षण के लिए वे अपनी आँखों पर विश्वास न कर सके। उन्होंने मन ही मन कहा, "ये भी ! ये अमीर लखपती आदमी ! ये भी कांग्रेस के साथ शामिल हैं—शरीक हैं ! ये क्यों ? इन्हें कौन-सा कष्ट है, कौन-सा दुख है ? ये लोग अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार रहे हैं ! तो फिर दयानाथ ही अकेला मूर्ख नहीं है; मूर्खों का एक बहुत बड़ा दल है जो

स्वयम् नष्ट होने के लिए तेज़ी के साथ बढ़ा चल रहा है! आखिर ये सब के सब चाहते क्या हैं? स्वराज्य? यह स्वराज्य है क्या चीज़? जनता के प्रतिनिधियों के द्वारा जनता का शासन! और जनता? यह अपढ़, मूर्ख और कंगाल जनता? किसी के भी बरगलाने में यह जनता आ सकती है। इसके माने यह हैं कि जो जितना ही मक्कार, चालाक और बेईमान होगा वही इनका प्रतिनिधि बन सकेगा और इनका प्रतिनिधि बन कर शासन कर सकेगा! इस स्वराज्य के यही अर्थ होंगे! रूस, जर्मनी, इटली! इन देशों में भी जहाँ की जनता शिक्षित है, अपना हित-अहित समझ सकती है, वहाँ भी तो यही हो रहा है!"

जलूस निकल गया था और रास्ता साफ़ हो रहा था। ड्राइवर ने कार स्टार्ट की; रामनाथ ने अपने सामने देखा—वही सन्नाटा, वही निस्तब्धता! उन्होंने फिर सोचा, "लेकिन यह सब—यह सब! इसमें है कुछ ज़रूर! इस उन्माद में, इस पागलपन में, ऐसी कोई बात ज़रूर है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती, जो अमीर-ग़रीब, बच्चे-बूढ़े, सभी पर अपना अधिकार जमाए हुए है, जिससे मैं डर रहा हूँ, डिप्टी कमिश्नर डर रहा है, यह विश्वविजयी और शक्तिशाली ब्रिटिश सरकार डर रही है! आखिर यह क्या है?—क्यों है?"

५

शाम को चार बजे प्रभानाथ ने रामनाथ के पास जा कर कहा, "दद्दुआ! अब आज्ञा दीजिये!"

रामनाथ उस समय अपने कमरे में लेटे थे। उनकी उद्विग्नता वैसी की वैसी ही थी—वे सोच रहे थे, दयानाथ के सम्बन्ध में। सुबह से जो कुछ हुआ, जो कुछ उन्होंने देखा उससे उन्हें कुछ ऐसा लगने लगा था मानो उन्होंने दयानाथ के सम्बन्ध में तनिक कड़ाई से काम लिया है। लेकिन फिर भी उनके अन्दर वाला हठी स्वामी और शासक बराबर उनके अन्दर वाले पिता

से लड़ रहा था। वह दयानाथ को दोषी घोषित कर रहा था, और वह अपने अन्दर वाला द्वंद्व उन्हें किसी हद तक अखर रहा था। प्रभानाथ की आवाज़ सुन कर वे चौंक उठे। उन्होंने पूछा, "क्या कहा?" और वे उठ कर बैठ गए।

"मैं फतेहपुर जा रहा हूं!" प्रभानाथ ने कहा।

"अरे हां!" यह कह कर उन्होंने कमरे के बाहर देखा' "अभी! अभी तो बहुत तेज़ गरमी है..."

रामनाथ की बात काटते हुए प्रभानाथ ने कहा, "कोई बात नहीं! अगर अभी चलूँगा तो आठ बजे के करीब फतेहपुर पहुँचूँगा।"

"अच्छी बात है!" कह कर रामनाथ ने उसी समय श्यामनाथ के नाम एक पत्र लिखा। पत्र प्रभानाथ को देते हुए उन्होंने कहा, "देखो, यह पत्र श्यामू को दे देना, और फतेहपुर में दो दिन से अधिक मत रुकना। समझे!"

प्रभानाथ ने पत्र ले लिया, लेकिन वह चला नहीं। सर झुकाए वह खड़ा रहा। रामनाथ ने पूछा, "क्या बात है—कुछ कहना है?"

"जी!" प्रभानाथ ने कुछ हिचकिचाते हुए कहा, "मैं कानपुर में बड़के भइया के यहाँ दो घण्टे के लिए जाना चाहता हूँ।

"दया के यहाँ? कुछ काम है?"

प्रभानाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया।

रामनाथ ने कुछ देर चुप रह कर कहा, "नहीं—तुम उसके यहाँ नहीं जा सकोगे!"

प्रभानाथ ने अपना स्वर दृढ़ करते हुए कहा, "दद्दुआ, आप बड़के भइया के साथ ही नहीं, मेरे साथ भी अन्याय कर रहे हैं!"

रामनाथ ने चौंक कर सर उठाया, "क्या कहा? मैं क्या कर रहा हूँ?" उनका स्वर कर्कश था।

"अन्याय! आपने बड़के भइया को बहुत बड़ा दण्ड दिया, एक बहुत

जीवन के सम्बन्ध में बात चीत कर रहा था। प्रभानाथ ने दयानाथ के पैर छुए और मार्कण्डेय से प्रणाम करके वह बैठ गया।

दयानाथ ने बातें बन्द कर दीं। प्रभानाथ से उसने कहा, "कहो प्रभा! कैसे आ गए?"

"फ़तेहपुर जा रहा हूँ! वहाँ से दो दिन के बाद कलकत्ता जाना है।"

"कलकत्ता जाना है! क्यों?"

"मझले भइया आ रहे हैं!"

"उमा आ रहा है! कब?"

"आज के बीस दिन बाद! ददुआ ने मुझे रिसीव करने के लिए भेजा है!"

"तुम्हें भेजा है!" दयानाथ कुछ रुका. "ठीक है! वे जा नहीं सकते, काकाजी को फ़ुरसत नहीं है! और मैं!—मैं त्याज्य हूँ। कुल का शत्रु हूँ!" दयानाथ हँस पड़ा—पर उसकी उस हँसी में एक अजीब तरह का रूखापन था,—"प्रभा ददुआ ने तुम्हें मेरे यहाँ आने की आज्ञा दे दी?"

"जी नहीं! उन्होंने मुझे आपके यहाँ आने से रोक दिया था।"

दयानाथ ने प्रभानाथ को ग़ौर से देखा! "और तुम उनकी बात को काट कर चले आए! शायद तुमने अच्छा नहीं किया। तुम उन्हें अच्छी तरह जानते हो, फिर भी तुमने यह किया!"

प्रभा मुसकराया, "जी हाँ, मैं उन्हें अच्छी तरह जानता हूँ! लेकिन मैं यह भी जानता हूँ कि वे मेरी इच्छाओं पर, मेरी भावनाओं पर मनमाना नियन्त्रण नहीं लगा सकते! उनको कोई अधिकार नहीं कि वे मेरे बड़े भाई को मुझसे छुड़वा दें!"

मार्कण्डेय अभी तक चुप बैठा था। इस बार उसने कहा, "प्रभा! तुम ग़लती करते हो। जब तक तुम उनके साथ हो, जब तक उनके और तुम्हारे हित-अहित एक हैं तब तक उन्हें पूरा अधिकार है!"

दयानाथ ने मार्कण्डेय को उत्तर दिया, "क्या कहा? तुम इस गुलामी

के समर्थक हो ? क्या तुम चाहते हो कि एक आदमी के पागलपन को दस आदमी अपना कर अपना व्यक्तित्व नष्ट कर दें, उस एक आदमी के गुलाम बन जांय ?"

मार्कण्डेय मानो इस तर्क के लिए तैयार बैठा था, "हाँ, एक आदमी के पागलपन को दस आदमियों का अपना लेना, और शान्ति पूर्वक उसी एक पागलपन को सत्य मान कर रहना अधिक श्रेयस्कर होगा बनिस्बत इसके कि दस आदमी अपना-अपना पागलपन ले कर लड़ें—झगड़ें और अपनी ज़िन्दगी कलहपूर्ण बना लें।"

दयानाथ ने ज़रा गरम हो कर कहा, "मार्कण्डेय ! अगर सत्य और औचित्य की क़ीमत अशान्ति है तो मैं उस अशान्ति को उस शान्ति से कहीं अधिक अच्छी समझूँगा जो अपने विश्वास की, भावना की हत्या करके खरीदी जाती है।"

मार्कण्डेय ने कहा, "दयानाथ ! तुम क्या कह रहे हो ? तुम्हारा विश्वास तुम्हारा है ! दुनिया का नहीं है। तुम्हारी भावना भी तुम्हारी है। दुनिया की नहीं है। तुम्हें यह स्मरण रखना पड़ेगा कि दुनिया में तुम्हारी ही भांति हर एक आदमी का अपना निजी विश्वास है, अपनी निजी भावना है। और वही तुम्हारा निजी विश्वास और निजी भावना दूसरों की नज़र में पागलपन है क्योंकि दूसरों के विश्वास और दूसरों की भावनाएँ बिल्कुल दूसरे हैं। और इसलिए तुम्हारी बात ही बेकार हो जाती है, क्योंकि जिस अधिकार को तुम मांग रहे हो, वही अधिकार तुम्हें दूसरों को भी देना पड़ेगा !"

यह तर्क-वितर्क प्रभानाथ को अखर रहा था। एक तो उसे जाने की जल्दी थी, दूसरे यह तर्क उस पर ही केन्द्रित था। उसने घड़ी देखते हुए कहा, "माफ़ करना. अब मुझे तो आज्ञा दें क्योंकि मुझे फ़तेहपुर जाना है। मोटर से जा कर वहीं से चला आऊँगा !"

दयानाथ हँस पड़ा, "ठीक [illegible] हो ! अरे हाँ, मैं तुम्हारे पास [illegible] पर तुम्हें बधाई [illegible]

प्रभानाथ उठ खड़ा हुआ। दयानाथ ने फिर कहा, "कलकत्ता जा रहे हो—अच्छा शहर है। ज़रा घूम ही आओगे। और चाचा जी से मेरा प्रणाम कह देना।"

"बहुत अच्छा।" कह कर प्रभानाथ अन्दर जाने लगा। दयानाथ ने प्रभा के निकट आ कर फिर कहा, "देखो, उमा से मेरी स्थिति समझा देना; दानापुर जाते समय, अगर वह अनुचित न समझे तो मुझसे मिल ले—अगर मैं उस समय तक जेल के बाहर रहा।"

प्रभा ने दयानाथ के चरण छुए और मार्कण्डेय को प्रणाम किया। इसके बाद वह अन्दर चला गया। उसके जाते ही मार्कण्डेय और दयानाथ फिर बातें करने लगे!

६

जिस समय प्रभानाथ फ़तेहपुर पहुँचा, पण्डित श्यामनाथ तिवारी अपने बँगले में नहीं थे। वे क्लब में बैठे ब्रिज खेल रहे थे। नौकर से प्रभानाथ ने श्यामनाथ को अपने आने की सूचना दिलवाई। श्यामनाथ वैसे ही क्लब से उठ कर घर चले आए।

पण्डित श्यामनाथ तिवारी की अवस्था पचपन वर्ष की थी, पर वे पैंतालीस वर्ष से अधिक के न दिखते थे। वे फ़तेहपुर में सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस थे। अपने बड़े भाई के समान ही लम्बे और स्वस्थ, पण्डित श्यामनाथ तिवारी अपनी वीरता के लिए प्रान्त भर में प्रसिद्ध थे। बड़े-बड़े डाकू उनके नाम से थर-थर काँपते थे। पुलिस के कर्मचारी उनसे डरते थे।

श्यामनाथ तिवारी की पत्नी का स्वर्गवास उस समय हुआ जिस समय उनकी अवस्था चालीस वर्ष की थी। दूसरा विवाह करने के लिए उनपर बहुत ज़ोर डाले गए, पर उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया। उस समय श्यामनाथ को देखकर कोई भी उनकी अवस्था तीस वर्ष से अधिक न कह सकता था; लेकिन वे चालीस वर्ष के हैं—इसे वे अच्छी तरह जानते थे। इसके

अलावा एक तर्क उनके पास और था—वह यह कि पुलिस की नौकरी खतरे से खाली नहीं है, और एक नवयुवती को विधवा बनने के लिए अपने गले में मढ़ लेना वे अनुचित समझते थे। पर असली कारण दूसरा ही था। श्यामनाथ भावना-प्रधान आदमी थे, और उनका अपनी स्वर्गीया पत्नी के प्रति असीम प्रेम था।

श्यामनाथ तिवारी के कोई सन्तान न थी; पर रामनाथ तिवारी के तीन लड़के थे। रामनाथ के सबसे छोटे लड़के प्रभानाथ को ही श्यामनाथ ने अपना लड़का मान लिया था, बिना गोद लिए हुए। श्यामनाथ अपने बड़े भाई को देवता की तरह मानते थे; रामनाथ का कथन श्यामनाथ के लाख विरोध करने पर भी उनके लिए वेदवाक्य के समान था। रामनाथ की भी श्यामनाथ के प्रति अगाध ममता थी।

श्यामनाथ के हाथ में प्रभानाथ ने रामनाथ का पत्र रख दिया। पत्र को आदि से अन्त तक पढ़कर श्यामनाथ के मुख पर एक विषाद की छाया घिर आई, "दया ने कांग्रेस ज्वाइन कर लिया! यह तो अच्छी बात नहीं।"

प्रभानाथ ने उस बात का उत्तर देना बेकार समझा।

श्यामनाथ कुछ देर तक सोचते रहे, फिर उन्होंने कहा, "फ़तेहपुर आते हुए तुम दया से मिले थे?"

"जी हाँ! यद्यपि दद्दुआ ने मुझे वहाँ जाने से रोक दिया था!"

"भइया ने तुम्हें भी दया के यहाँ जाने से रोका था!—यह क्यों?" कहते हुए श्यामनाथ ने अपना हाथ मेज पर पटक दिया, "भइया को यह नितान्त पागलपन सूझा! क्या हम सब लोग दया को छोड़ दें? मैं कभी भी भइया का यह अन्याय नहीं बर्दाश्त कर सकता!

प्रभानाथ ने मुस्कराते हुए कहा, "यह सब आप दद्दुआ से तै कर लें। लेकिन आप उनसे यह न कह दीजियेगा कि मैं चुपके भइया के यहाँ गया था!

"उनसे क्या तै कर लूँ—खाक ! अपनी ज़िद वे छोड़ेंगे नहीं। दया को घर से निकाल दिया। निकाल ही नहीं दिया, एक लाटसाहबी हुक्म जारी कर दिया कि हम लोग सब के सब उससे अपना सम्बन्ध तोड़ लें ! कल ही मैं उन्नाव जा कर उनसे बात-चीत करूँगा। इस तरह से कब तक चलता रहेगा !"

प्रभानाथ श्यामनाथ की कमज़ोरी को अच्छी तरह जानता था, उसने कहा, "बेकार आप गरम हो रहे हैं ! ददुआ के सामने तो आप के होश हवास सब ग़ायब हो जाते हैं !"

"चुप बदतमीज़ ! देखना—देख लेना—कल इतवार है। कल ही !"

"लेकिन मुझे तो कल रात ही कलकत्ता के लिए रवाना हो जाना है !"

"अरे हाँ !—क्यों, दो-चार दिन बाद चले जाना ! कोई हर्ज है !"

"नहीं काका जी—ददुआ ने क्या लिखा है। आप तो अपनी सफ़ाई देकर अलग हो जाएँगे, बीतेगी मेरे सर पर !"

श्यामनाथ ने पत्र एक बार फिर पढ़ा। मत्थे पर हाथ लगाते हुए उन्होंने कुछ सोचा, फिर धीरे से बोले, "अच्छी बात है। भइया का तो लाटसाहबी हुक्म चलता है। तो फिर कल ही सही, मैं परसों जाऊँगा !"

चौथा परिच्छेद

१

हुगली नदी के किनारे कलकत्ता नगर अपने वैभव पर उन्नत-मस्तक खड़ा है। हुगली नदी को कलकत्ता के हिन्दू गंगा कह उसमें बड़ी भक्ति के साथ स्नान करते हैं और अँग्रेज उसे समुद्र का एक हिस्सा मान कर उसमें छोटे-छोटे जहाज़ कलकत्ता तक ले आते हैं।

जन-संख्या के अनुसार कलकत्ता ब्रिटिश साम्राज्य का द्वितीय नगर है, और सन् १९१० तक उसे समस्त भारतवर्ष की राजधानी होने का श्रेय प्राप्त था। उसके साथ ही कलकत्ता का एक और भी ऐतिहासिक महत्व है जिसे अधिकांश लोग उस नगर की चहल पहल में तथा उसके वैभव के आगे भुला देते हैं। कलकत्ता ही हिन्दुस्तान की ग़ुलामी की पहिली सीढ़ी है—अँग्रेज़ों ने कलकत्ता से ही हिन्दुस्तान को विजय किया है।

और शायद इसीलिए इस नगर में दानवता के साक्षात दर्शन होते हैं। एक अनियन्त्रित हाहाकार इस नगर में प्रत्येक क्षण सुन पड़ेगा, करोड़पति महाजनों के अन्दर वाली पशुता के दर्शन यहाँ की वेश्याओं में, कंगालों में और इनसे भी पैसा कमाने के लिए आए हुए नित्य ही आत्महत्या करने वाले या बिना भूखों मर जाने वाले बेकारों में हो सकते हैं। देश के सभी महाजन इस नगर में मौजूद हैं, और यह पशु मनुष्य मानवता का गला घोट कर बढ़ रहा है। इस नगर में शान्ति नहीं है, इस नगर में सहानुभूति नहीं है, यहाँ जो कुछ है वह धन का निशान है और उस निशान में ग़ुलाम बनने की प्रबल अभिलाषा है।

और यह धन वालों की अभिलाषा।

यह इस नगर का ही नहीं, यह आज की दुनिया का, आज की संस्कृति का, हमारी ही सभ्यता के सब से बड़ा अभिशाप है। यह अभिशाप—इस नगर

में अपने महान वीभत्स और नग्न रूप में प्रदर्शित है। कोई इस बात को नहीं सोचता कि किस उपाय से यह धन प्राप्त किया जाता है, इस बात पर सोचने का किसी के पास समय भी तो नहीं है। हर समय एक आवाज़—'पैसा!' चोरी, डकैती, झूठ, दग़ाबाज़ी, हत्या। अपना शरीर बेच कर, अपनी आत्मा बेचकर, अपनी मनुष्यता बेच कर। धन ही अस्तित्व है, धन ही स्वामी है, धन ही परमेश्वर है।

यह धन की नृशंसता इस नगर को एक भयानक अभिशाप बन कर घेरे है। रोज़ सुबह कंगालों का झुण्ड उस दिन जीवित रहने की चिन्ता को लेकर निकलता है; दर-दर की ठोकरें खाते हुए, आशीर्वाद बाँटते हुए वह उस नगर के चक्कर लगाता है। उनके सामने सम्पन्न आदमी हँसते हुए और अठखेलियाँ करते हुए निकलते हैं, और वह उन लोगों को देखता है। पर वह उन पर ईर्ष्या नहीं करता; वह उनको जय मनाता है, उनके सामने नाक रगड़ता है। उसे अपने जीवित रहने के अधिकार का पता नहीं—वह लुटेरों की कृपा पर ही अपने जीवन को निर्भर समझता है। और रात के समय मैदानों में, सड़कों पर, नालियों पर, जहाँ भी जगह मिल जाय, पड़ा रहता है—सुबह जीवित उठ कर कुत्तों की ज़िन्दगी बिताने के लिए, या रात में ही भूख और ठंड से मर जाने के लिए।

रोज सुबह कुलियों का झुण्ड अपने काम पर जाता है, दिन भर वह मशीनों के नीचे पिसता है भावना-हीन, चेतना हीन! और रोज़ शाम को वह लौटता है, थका-माँदा, टूटा हुआ! इसके बाद रात! थकावट से चूर आदमी का या तो ताड़ी अथवा सड़ी शराब पीकर बीबी-बच्चों को उत्पीड़ित करना या फिर सड़ा-बासी, रूखा-सूखा खाकर पेट भरना और मुरदे की तरह एक सँकरी और गन्दी कोठरी में, जिसमें चार या पाँच आदमी रहते हैं, एक कोने में लुढ़क जाना! यही उसका नित्य का जीवन है।

रोज़ सुबह क्लर्कों का झुण्ड बच्चों के रुदन के बीच में उठता है, अपने सर पर दिन भर की गुलामी के कार्यक्रम को लिए हुए। दफ़्तर जाना है, साहेब

का मुक़ाबिला करना है, उसकी गालियाँ सुनना है, ठोकर खाना है। और रोज़ शाम के समय वह चिन्तित और अशान्त लौटता है। लम्बी गृहस्थी के भार से उसका मस्तक झुका हुआ है, बच्चों को गुलामी के लिए तैयार करने के लिए उसे शिक्षा देनी है। माता, विधवा दादी, बहिन और न जाने कितने आश्रित उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं—उसकी नौकरी की, उसकी कमाई की खैर मना रहे हैं।

और इसके बाद! इसके बाद आते हैं छोटे-मोटे दूकानदार जो सुबह से शाम तक पशु की तरह अपनी दूकान के खूँटे में बँधकर पैसा पैदा करते हैं। और पैसा पैदा करने के लिए मानो उनकी यह मेहनत अकेले काफ़ी नहीं होती; उन्हें झूठ, फ़रेब, दग़ाबाजी का अवलम्ब लेना होता है।

और फिर इसके बाद! लम्बे-लम्बे व्यापारी और पूँजीपति, जिनका एक-मात्र उद्देश्य है पैसा पैदा करना, दुनिया को लूटना, मनुष्यों को भूखों मारना। रुपया पैदा करने के लिए ये सब कुछ कर सकते हैं, इनके पास न धर्म है, न ईमान है। इनकी शक्ति है इनका साहस—खुलकर खेलना। इनपर कोई बन्धन नहीं है, इनके लिए कोई नियम नहीं है।

ये वेश्याएँ, ये शराबखाने, ये थियेटर, ये सिनेमा, ये घुड़दौड़ और कितने ही ऐसे सामान इन्हीं लोगों की कृपा के फल हैं, इन्हीं लोगों को प्रसन्न करने के लिए कलकत्ता का जन-समुदाय नरक का जीवन व्यतीत कर रहा है, इन्हीं लोगों की दानवता को तुष्ट करने के लिए मनुष्य ने अपने को पशु से भी गया बीता बना लिया है।

२

युक्त-प्रान्त से कलकत्ता जाने वाले रईस और ताल्लुक़दार अक्सर चौरंगी के मशहूर प्रिंसेज़ होटल में ठहरा करते हैं। प्रभानाथ ने उन्नाव से ही उस होटल में दो कमरों का एक सूट रिज़र्व करा लिया था। अपनी पुरानी कार देकर उसने नई कार भी खरीद ली। अब उसके सामने चहल-पहल से भरा

विराट कलकत्ता नगर था और उसके सामने उसकी छै सिलेण्डर की नई ब्यूक कार थी।

चौथे दिन प्रभानाथ लैंसडाउन रोड पर अपनी कार लिए जा रहा था—लेक की तरफ़ घूमने के लिए। गाड़ी की स्पीड काफ़ी धीमी थी, प्रभानाथ अपने विचारों में मग्न था। प्रभानाथ को कलकत्ता अच्छा नहीं लगा था; कृत्रिमता के उस विशाल नगर में, स्वच्छन्द वातावरण में पले हुए नवयुवक का मानो दम घुट रहा था। जिस उल्लास और उत्साह को लेकर वह चला था, चार दिन में ही वह ठंडा पड़ गया था। कलकत्ता की दानवता ने उस भोले नवयुवक की आत्मा पर एक प्रहार-सा किया। उसे कलकत्ता के अनियंत्रित हाहाकार से अरुचि हो रही थी—वह सोच रहा था।

उसने कार एक सूनी गली में मोड़ दी। भवानीपुर के उस हिस्से में उसे एक प्रकार की शान्ति सी मिली। वह कुछ थोड़ी दूर ही गया होगा कि उसे पिस्तौल की एक आवाज़ सुनाई पड़ी। एक के बाद दूसरी और दूसरी के बाद तीसरी। प्रभानाथ अपने विचारों से चौंक उठा। जिस ओर से ये आवाज़ें आईं, उसने उस ओर देखा। वह एक मकान का पिछवाड़ा था जिसका सामना लैंसडाउन रोड पर था।

और उसने देखा कि उसकी मोटर के सामने करीब पाँच गज़ की दूरी पर एक युवती पिस्तौल ताने खड़ी है। कार की स्पीड वैसे भी तेज़ न थी—प्रभानाथ ने कार रोक दी। युवती ने झपट कर कार को बाईं ओर वाला दरवाज़ा खोला और वह प्रभानाथ के बग़ल में बैठ गई। उसके दाहिने हाथ वाली पिस्तौल की नली प्रभानाथ की पसलियों से लगी थी।

"तेज़ी के साथ चलो—एकदम! पुलिस पीछे है।" भर्राए हुए गले से युवती ने कहा।

पिस्तौल की आवाज़ें फिर हुईं, प्रभानाथ ने कार तेज़ कर दी। कार तेज़ी के साथ चली जा रही थी और युवती का पिस्तौल प्रभानाथ की पसलियों में चुभ रहा था। प्रभानाथ ने कनखियों से उस युवती की ओर देखा। वह

क़रीब बीस या बाईस वर्ष की बंगाली युवती थी और उसके मुख पर कठोरता थी। उसकी आँखें नीले चश्मे से ढकी थीं, और ढलती हुई संध्या के अंधकार में प्रभानाथ उन आँखों को देख न पा रहा था। पर उसे यह विश्वास हो गया था कि वे आँखें बड़ी-बड़ी हैं और प्रकाशवान हैं। युवती मझोले क़द की थी और दुबली थी; उसका रंग गेहुँआ था और यदि वह कुरूप न थी तो वह सुन्दर भी नहीं थी। प्रभानाथ तेज़ी से गाड़ी चलाए जा रहा था; अब वह बालीगंज लेक के करीब पहुँच गया था। धीरे-धीरे उसे अनुभव हुआ कि युवती का हाथ कुछ शिथिल होने लगा है। स्टियरिंग ह्वील उसके दाहिने हाथ में था, एक झटके के साथ उसने अपने बाएँ हाथ से युवती का हाथ पकड़ कर ऐंठ दिया। पिस्तौल युवती के हाथ से छूट पड़ी। पिस्तौल उठाकर प्रभानाथ ने अपनी जेब में रख ली, मुसकराते हुए उसने युवती से कहा, "कहिए! अब आप क्या चाहती हैं?"

युवती अपने विचारों में मग्न थी; सम्भवतः वह उस काण्ड पर ही सोच रही थी जिससे वह बच कर आई थी। इसी कारण उसका हाथ ढीला पड़ गया था। प्रभानाथ के इस साहस के काम की उसने कल्पना न की थी और इसलिए तैयार भी न थी। और प्रभानाथ ने इतनी शीघ्रता से यह सब किया था कि वह स्तब्ध तथा विमूढ़ रह गई। उसने प्रभानाथ की ओर आश्चर्य से देखा, पर प्रभानाथ की बात का कोई उत्तर न दिया।

इस बार प्रभानाथ ने अंग्रेज़ी में कहा, "मैंने आप से पूछा कि अब आप के क्या इरादे हैं! आप शायद क्रांतिकारी हैं!"

युवती ने भी अँग्रेज़ी में उत्तर दिया, "आप जो चाहें अनुमान कर सकते हैं!"

प्रभानाथ मुसकराया, "एक तो क्रांतिकारी होना ही बहुत बड़ा अपराध है, फिर क्रांतिकारी हो कर असावधानी करना! यह उससे भी बड़ा अपराध है!"

युवती चुपचाप प्रभानाथ को एक टक देख रही थी। प्रभानाथ ने फिर

कहा, "और हर एक शान्ति-प्रिय, राजभक्त और नेक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह अपराधी को पुलिस के हवाले कर दे!"

युवती ने प्रभानाथ की ओर से मुँह फेर लिया। उसने केवल इतना कहा, "हाँ, हर एक शान्ति-प्रिय राजभक्त कायर गुलाम का यह कर्तव्य है कि वह विदेशी सरकार की सहायता करे!"

प्रभानाथ हँस पड़ा! "खूब कहा शाबाश! लेकिन इससे मेरे प्रश्न का उत्तर तो नहीं मिला। मैंने आपसे पूछा कि आप के क्या इरादे हैं? मेरी कार में इतना पेट्रोल नहीं कि मैं इस कलकत्ता नगर का चक्कर लगाता फिरूँ और फिर इस नगर से मैं भलीभाँति परिचित भी नहीं हूँ!"

युवती ने कोई उत्तर नहीं दिया, वह चुपचाप बैठी थी।

प्रभानाथ ने फिर कहा, "बोलिये न! आप कहाँ चलेंगी?"

"आप मुझे पुलिस-स्टेशन ले चलना चाहते हैं न! वहीं चलिये!" युवती ने कहा।

प्रभानाथ मुसकराया, "जाने भी दीजिये—सरकार को एहसानमन्द बनाने की अभी मुझे कोई ज़रूरत नहीं! घर में एक नहीं, दो-दो आदमी यह काम बड़ी खूबी के साथ कर रहे हैं।"

युवती ने आश्चर्य से प्रभानाथ को देखा, "क्या कहा? मैं समझी नहीं!"

"यही कि मेरे पिता और मेरे काका यह काम कर रहे हैं। घर में दो राजभक्त ज़रूरत से ज़्यादा हैं!"

इस बार युवती ने ग़ौर से प्रभानाथ को देखा। लम्बा और गोरा-सा खूबसूरत नवयुवक—मुख पर तेज। आँखों में चमक, चौड़ा सीना और बात-चीत में एक लापरवाही की अजीब मस्ती! युवती कुछ क्षणों के लिए अपनी बगल में बैठे हुए नवयुवक को देखती रही।

प्रभानाथ युवती को न देख रहा था, फिर भी उसे उसकी दृष्टि का पता

था। कार उस समय तक लेक का एक चक्कर लगा चुकी थी। उसने फि
कहा, "तो फिर आपने बतलाया नहीं कि मैं आपको कहाँ पहुँचा दूँ। जि
काम को मुझे जबरदस्ती अपने ऊपर लेना पड़ा है, अब उसे प्रसन्नता पूर्व
पूरा भी कर देना चाहता हूँ!"

युवती एकाएक काँप उठी! अभी तक वह शांत थी, अब एकाएक उ
उस खतरे की याद हो आई जिससे वह निकल कर आई थी। उस
लड़खड़ाते हुए स्वर में कहा, "मुझे......मुझे श्याम बाज़ार...नहीं—न
श्याम बाज़ार में ही ले चलिये!"

प्रभानाथ ने अपनी कार रसा रोड से श्याम बाज़ार की तरफ़ मोड़ दी
उसने फिर पूछा, "क्या उस घर में और भी लोग थे?"

"हाँ, दो और! लेकिन पुलिस के आते ही एक निकल भागा था, अ
दूसरे के मत्थे पर दो गोलियाँ लगीं। उफ!......" युवती काँप रही थी।

प्रभानाथ ने फिर कोई बात न की, वह कुछ सोचने लगा। धरमतल्ला
पास पहुँच कर उसने फिर कहा, "क्या पुलिस आप को पहचानती है?"

"शायद नहीं!"

"फिर उसने उस मकान पर छापा क्यों मारा?

"मैं ठीक नहीं कह सकती। शायद उस मकान पर उसका शक था!"

"क्यों? वह मकान किसका है?"

"किराए का! हम लोगों की वहाँ बैठक भर हुआ करती थी? हाँ हम
हथियार भी वहीं रहते थे लेकिन वहाँ रहता कोई नहीं था।"

"यह बात है!" कह कर प्रभानाथ मौन हो गया।

श्याम बाज़ार के पास पहुँच कर प्रभानाथ ने गाड़ी धीमी करते हुए क
"देखिए, आप यहीं कहीं उतर जाइये—शायद मेरा आप का मकान देख
उचित न होगा।"

"क्यो?"

"इसलिए कि आपको बचाने वाला अभी तक आप का पूरा पता नहीं जानता।" यह कह कर प्रभानाथ ने कार रोक दी। युवती कार से उतरी नहीं प्रभानाथ ने फिर कहा, "देखिये मैं आप का नाम नहीं जानता, आप का पता नहीं जानता; और मैं आप का नाम और पता पूछूँगा भी नहीं। मुझे आप के साहस पर आश्चर्य है, आप के प्रति मुझमें एक प्रकार के आदर का भाव जाग उठा है। लेकिन अगर आप को मेरी किसी प्रकार की सहायता की आवश्यकता पड़े, ऐसी सहायता जो मैं बिना जोखिम में पड़े कर सकता हूँ तो आप मुझ से सहर्ष ले सकती हैं!" यह कह कर प्रभानाथ ने अपने पर्स से अपना कार्ड निकाल कर युवती को दे दिया। उसके कार्ड पर उसका कलकत्ता वाला पता लिखा था।

युवती ने कार्ड ले लिया और प्रभानाथ की ओर कृतज्ञता से देखा। वह कार से उतर पड़ी, उसने प्रभानाथ को आदरपूर्वक नमस्कार किया और वह चल दी।

एकाएक प्रभानाथ को युवती के पिस्तौल की याद हो आई। उसने युवती को बुला कर अपनी जेब की तरफ़ इशारा किया, "और यह! क्या इसकी आपको कोई आवश्यकता पड़ेगी?"

"इस भीड़ में इसे किस तरह ले जाऊँगी?" युवती के स्वर में एक प्रकार की अनिश्चितता थी।

"और शायद अभी इसका आपके पास होना खतरनाक भी साबित हो! खैर मेरे पास यह आपकी अमानत है, जब जी चाहे ले लीजियेगा।"

२

युवती को श्याम बाज़ार में उतार कर प्रभानाथ अपने होटल में लौट आया। होटल में पहुँचकर उसने देखा कि अभी केवल साढ़े आठ बजे हैं। बिजली का पंखा खोल कर वह एक आरामकुर्सी पर बैठ गया, और सोचने लगा। वह धीरे-धीरे उस नाटक की महत्ता का अनुभव करने लगा जिसके

अभिनय में एक आकस्मिक परन्तु प्रमुख अभिनय करके वह लौटा था। उसने मन ही मन पूछा, "लेकिन क्या यही अन्त है ?"

और एकाएक उस युवती की शक्ल जिसे उसने पूरी तरह देखा भी न था, उसकी आँखों के आगे नाच उठी। वह दुबला-पतला शरीर, लम्बा और निस्तेज मुख, बड़ी-बड़ी चमकती हुई आँखें ! वह युवती सुन्दरी न थी, प्रभानाथ ने इस विषय में अपना निर्णय मन ही मन दे दिया था; पर वह कुरूप है—यह वह किसी हालत में स्वीकार न कर सकता था। और उस युवती का स्वर ! अजीब तरह का, कुछ फटा हुआ, कुछ दृढ़ और कुछ मीठा ! आखिर वह युवती कौन थी ? प्रभानाथ ने सुन रक्खा था कि बंगाल में क्रान्तिकारियों का एक बहुत बड़ा दल है, और उस दल में स्त्रियाँ भी हैं। उसने पढ़ा था कि वे स्त्रियाँ भी अपने प्राणों की बाज़ी लगाकर काम कर रही हैं। पर उसने कभी गम्भीरतापूर्वक इस बात पर न सोचा, सोचने की शायद उसे ज़रूरत भी नहीं पड़ी थी। उसके कुल और समाज में स्त्रियाँ कोमल, परतन्त्र तथा विवश होती थीं; वे ममता की मूर्ति थीं, उनकी मुस-कराहट में करुणा थी, उनके जीवन में त्याग था। और प्रयाग के सभ्य समाज के एक अंग में उसने देखा था कि स्त्री विलासिता और वासना की प्रतिमूर्ति है। वह नाचती है, गाती है, लुभाती है और अपने इस कृत्रिम स्वर्ग में लोगों को डुबा कर वह नरक दिखला देती है। स्त्री के उस रूप को, जिसे उसने उस दिन देखा था, उसने पहले कभी न जाना था।

प्रभानाथ ने पढ़ा था कि स्त्री शक्ति है, वह दुर्गा है, वह काली है। पर उसने केवल पढ़ा भर था, उस दिन उसने काली के साक्षात दर्शन भी किये। यह करुणा और विलासिता की मूर्ति नारी—यह प्राणों पर खेलने कैसे निकल आई ?

और किसी ने प्रभानाथ के अन्दर से कहा, "इसमें आश्चर्य ही क्या है ? नारी मिटना जानती है, मरना जानती है !"

प्रभानाथ मुसकराया, "नारी मिटना जानती है, मरना जानती है; पर

वह मारना कब से जान गई है? दूसरों के खून से हाथ रँगना, पिस्तौल ले कर बाहर निकल आना—उफ़!"

एकाएक प्रभानाथ को युवती के पिस्तौल की याद हो आई जो उसकी जेब में पड़ा था। वह उठा, खूँटी पर टँगे हुए कोट की जेब से उसने पिस्तौल निकाली, पिस्तौल को उसने ग़ौर से देखा। वह एक सस्ते मेल की जापानी पिस्तौल थी, छै कारतूस उसमें मौजूद थे।

प्रभानाथ ने अभी तक क़ीमती और अच्छे पिस्तौल ही देखे थे। उसके पिता के पास तीन पिस्तौलें थीं—ताल्लुक़दार होने के कारण पण्डित रामनाथ तिवारी को लाइसेंस की ज़रूरत नहीं थी। उसके पास भी एक पिस्तौल थी, लेकिन उसे लाइसेंस लेना पड़ा था। उसकी पिस्तौल कोल्ट थी—क़ीमती और निशाने की पक्की! प्रभानाथ ने उलट-पुलट कर उस पिस्तौल को देखा, फिर धीरे से उसने उस पिस्तौल को अपने ड्रार में बन्द कर दिया। उसके पास जो लाइसेंस था उसके अनुसार वह बंगाल में अपनी पिस्तौल नहीं ला सकता था।

उस रात प्रभानाथ का सिनेमा जाने का प्रोग्राम था, उसने टिकट मँगवा लिया था। वह उठा, लेकिन उसे ऐसा मालूम हुआ कि उसके पैरों में बल नहीं है, उसके शरीर में बल नहीं, उसके प्राणों में बल नहीं। एक अजीब तरह की थकावट उसमें भर गई है।

४

दूसरे दिन प्रभानाथ देर से सो कर उठा; रात भर वह सपने देखता रहा, और वे सपने सुखद न थे।

सुबह की चा उसने अपने कमरे में ही मँगा ली। नौकर जिस समय चा की ट्रे लाया, उसके हाथ में काग़ज़ का एक टुकड़ा था जिस पर अंग्रेज़ी में लिखा था, "वीणा मुकर्जी।"

प्रभानाथ के सामने रात वाली बंगाली युवती की तस्वीर आ गई। तो

उस स्त्री का नाम वीणा मुकर्जी था। नौकर ने कहा, "सरकार! क्या हुक्म है?"

"यहीं भेज दो, और साथ में एक ट्रे चा और!"

नौकर चला गया। थोड़ी देर बाद वीणा ने प्रभानाथ के कमरे में प्रवेश किया, पर वह अकेली न थी। उसके साथ एक और स्त्री थी। इन दोनों के कमरे में प्रवेश करते ही प्रभानाथ उठ खड़ा हुआ, "आइये—नमस्कार!" कह कर उन दोनों का उसने स्वागत किया।

"नमस्कार!" कह कर दोनों युवतियाँ कुरसियों पर बैठ गईं।

वीणा ने अपने साथ वाली युवती की ओर इशारा करते हुए, "ये मेरी सखी श्री प्रतिभा दे हैं। और ये हैं मिस्टर प्रभानाथ, जिनकी बातें हम कर रही थीं!

"आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई!" प्रतिभा ने कहा।

"मुझे भी आपसे मिल कर प्रसन्नता हुई!" प्रभानाथ ने उत्तर दिया, इसके बाद उसने ग़ौर से प्रतिभा को देखा। साँवला-सा लम्बा मुख, गाल पिचके हुए, आँखें धँसी हुई और उन आँखों पर मोटे-मोटे काँचों वाला चश्मा। मझोले क़द की दुबली-सी स्त्री थी। उसके मुख पर कठोरता थी, उसकी आँखों में कठोरता थी, उसके शरीर में कठोरता थी, उसके स्वर में कठोरता थी—उसके व्यक्तित्व में कठोरता थी।

प्रभानाथ ने प्रतिभा से अपनी आँखें हटाकर वीणा को देखा—दोनों में कोई विशेष अन्तर न था। दोनों में ही कठोरता थी, दोनों में ही पुरुषत्व था। अन्तर केवल इतना था कि वीणा इन दोनों में अधिक अच्छी दिखती थी, वीणा की आँखों में कठोरता होते हुए भी चमक थी, तरलता थी। वीणा के मुख वाली कठोरता में निहित एक प्रकार की कोमलता थी जो कभी-कभी उभर आती थी, उसमें एक विशेष प्रकार का आकर्षण था जिसे प्रभानाथ समझ न पा रहा था। वीणा के स्वर में भी कृत्रिम कठोरता के अन्दर सरसता थी—भावना थी।

नौकर चा की एक और ट्रे लाकर रख गया। प्रभानाथ ने मुसकराने का प्रयत्न करते हुए कहा, मैं अभी चा पीने बैठा ही था कि आप लोग आ गईं! आप लोग भी चा पीजियेगा न!" कुछ रुक कर उसने फिर कहा, "और आप लोगों के मौजूद रहते मैं अपने हाथ से चा तैयार करूँ, यह तो ठीक न होगा!"

प्रतिभा ने उत्तर दिया, "क्यों?—इसलिए कि यह सब काम अभी तक स्त्री करती आई है; आप लोगों के लिए स्त्री सुख का सामान जुटाने की साधन है!" और मानो अपनी इस कटुता पर वह स्वयम् ज़ोर से हँस पड़ी।

लेकिन वीणा ने चा तैयार कर दी। उसने एक प्याला प्रभानाथ को दिया।

वीणा के हाथ से चा का प्याला लेते हुए प्रभानाथ ने कहा, "आपने ग़लत नहीं कहा; स्त्री सुख का सामान जुटाने की साधन ही नहीं है, वह स्वयम् सुख है!"

"स्त्री सुख है या उसका शरीर सुख है, उसकी सुन्दरता सुख है? स्त्री का रूप उससे छीन लो, उसकी मोहिनी उससे हटा लो, और फिर? फिर वही स्त्री तुम्हारे वास्ते नरक बन जाएगी!" प्रतिभा के स्वर में एक अजीब तरह की कर्कशता थी।

प्रतिभा के इस कथन से, उसके स्वर की कर्कशता से प्रभानाथ सहम-सा गया। उसने एक बार फिर ग़ौर से प्रतिभा को देखा और वह घबरा गया। अचानक उसका ध्यान प्रतिभा की उम्र पर गया, उसकी अवस्था क़रीब पचीस वर्ष की थी। एकाएक उसके मन में यह प्रश्न उठा, "क्या ये दोनों युवतियाँ अभी तक अविवाहित हैं और अगर अविवाहित हैं तो क्यों? और अगर नहीं हैं तो ये इतनी स्वतन्त्र किस प्रकार हैं?"

प्रभानाथ ने प्रतिभा की उस बात का कोई उत्तर नहीं दिया, शायद उसके पास कोई अच्छा उत्तर था भी नहीं। वह चुपचाप चा पीने लगा। प्रतिभा भी चुपचाप चा पी रही थी। यह मौन वीणा को किसी हद तक अप्रिय लग रहा

था; पर वह भी मौन रहने को विवश थी। चा समाप्त हो गई। प्रभानाथ ने अपना प्याला रखते हुए कहा, "तो फिर!"

इस "तो फिर!" के अन्दर वाले प्रश्न को प्रतिभा समझी, वीणा नहीं। प्रतिमा ने कहा, "हम लोग अपना पिस्तौल वापस लेने आई हैं और साथ ही आपको साहस के लिए बधाई देने आई हैं।"

प्रभानाथ मुसकराया, "मेरे साहस पर आप लोग मुझे बधाई देने आई हैं! धन्यवाद! पर मैं समझता हूँ कि बधाई मुझे देनी चाहिये, आपको नहीं! आप लोग स्त्री होकर प्राणों का खेल खेल रही हैं!"

प्रतिभा पर प्रभानाथ की मुसकराहट का कोई असर नहीं पड़ा, उसी गम्भीरता और शुष्कता के साथ उसने कहा, "यह इसलिए कि हमारे देश के नवयुवक नपुसंक और कायर हैं; न उनमें साहस है और न उनमें स्वाभिमान है!"

"शायद आप ठीक कहती हैं!" प्रभानाथ इस सम्बन्ध में अधिक तर्क नहीं करना चाहता था।

थोड़ी देर तक फिर मौन छाया रहा। प्रभानाथ ने कुछ देर पहले तर्क-वितर्क को बचा दिया था, लेकिन उससे रहा न गया, उसके अन्दर वाली उत्कण्ठा, उसके अन्दर वाला कौतूहल और उसके अन्दर वाला मानव जानना चाहता था कि क्या हो रहा है और क्यों हो रहा है। उस मौन को प्रभानाथ ने तोड़ा, "आखिर यह सब क्यों? आप लोगों ने जो मार्ग अपनाया है उससे होगा क्या? क्या वास्तव में आप समझती हैं कि इस मार्ग पर चल कर आप लोग कुछ कर सकेंगी—आप लोगों को कोई सफलता मिलेगी?"

इस बार वीणा के बोलने की बारी थी, "हम लोग कुछ कर सकेंगे या नहीं, इसको जानने की मुझे तो कोई आवश्यकता नहीं। अन्त को किसने जाना है—कोई बतला सकता है? फिर उस अन्त की चिन्ता ही क्यों की जाय!"

इस उत्तर से प्रभानाथ सकपका गया। अजीब तरह की स्त्री थी वह

जिसने यह उत्तर दिया था, और अजीब तरह का उसका तर्क था। फिर भी उसने कहा, "मैं मानता हूँ कि अन्त को कोई नहीं जान सका है, पर उसकी कल्पना तो की जा सकती है! कल्पना करने के लिए ही तो यह बुद्धि हमें मिली है!"

"लेकिन तुम्हारी यह कल्पना सही है या गलत है—इसका निर्णय कौन करेगा? तुम जिस वातावरण में रह रहे हो, जिस तरह की शिक्षा तुम पा रहे हो, जिस दृष्टिकोण को तुम्हारे सामने पेश किया जा रहा है उस सब का असर तुम्हारी कल्पना पर पड़ता है या नहीं?" वीणा ने पूछा।

प्रभानाथ ने देखा कि वे स्त्रियाँ जिनसे वह बातें कर रहा है, काफ़ी आगे बढ़ी हुई हैं; फिर भी अपनी पराजय, और खास तौर से स्त्रियों के हाथ से, उसे स्वीकार न थी। उसने कहा, "पर वास्तविकता के प्रति अन्धे होना भी तो अच्छा नहीं है! हमें वास्तविकता को देखना ही पड़ेगा। यह इतनी बड़ी ब्रिटिश सरकार जिसके पास बड़े से बड़े विनाशकारी अस्त्र-शस्त्र मौजूद हैं, इसको थोड़े से नौजवान जिनके पास निशाने के पक्के हथियार तक नहीं हैं, किस प्रकार के बल से हरा सकेंगे? आप एक आदमी को मार देंगे, लेकिन इससे क्या? और जिस आदमी को आप मार देंगे, बहुत सम्भव है वह बेचारा उतने बड़े दण्ड का भागी भी न हो जो आप उसे देंगी। फिर यह सरकार एक आदमी की जान का बदला दस आदमियों की जान से लेगी महज़ अपनी शान, अपना गौरव क़ायम रखने के लिए।"

वीणा हँस पड़ी, "हाँ, आप ठीक कहते हैं। वास्तविकता को भुलाना ठीक नहीं। और मैं तो केवल एक वास्तविकता जानती हूँ; वह यह कि हम सब ग़ुलाम हैं—पशुओं से गए-बीते हैं। ग़ुलाम को अपने ऊपर कोई अधिकार नहीं, उसकी ज़िन्दगी दूसरों के वास्ते है। उस ज़िन्दगी से फ़ायदा ही क्या? दस नहीं; अगर सौ बल्कि हज़ार आदमी मारे जाँय तो मुझे खुशी होगी। मैं समझूँगी कि दुनिया में हज़ार ग़ुलामों की कमी हुई!"

प्रभानाथ ने आश्चर्य से वीणा को देखा! भावना के आवेश में उसने

बहुत भयानक बात कह डाली थी, लेकिन उस बात में रक्त को जमा देने वाली भयानकता के साथ उससे अधिक ठंढा और कुरूप सत्य था। वह एकटक वीणा को देखता रहा।

प्रतिभा प्रभानाथ की यह मुद्रा देख कर मुसकराई, "बहुत सम्भव है आप को हमारी बातें कुछ विचित्र-सी लगें, आप हमारी बातों से सहमत न हों। आप को बहलाने के लिए दुनिया में बहुत कुछ है। सुख-वैभव, उल्लास-विलास, सभी कुछ! लेकिन हमारे सामने सत्य है, महा कुरूप सत्य! हमारे सामने भूख, बेकारी, अपमान और पशुता का जीवन है। हम लोग लाख कोशिश करने पर भी अन्धे नहीं बन सकते!"

प्रभानाथ कह उठा, "मैं समझ नहीं पा रहा हूँ, ज़रा भी नहीं समझ पा रहा हूँ! मैंने कभी इस पहलू पर सोचा ही नहीं!" और वह उठ खड़ा हुआ। ड्रार से पिस्तौल निकाल कर उसने सामने मेज़ पर रख दी, उसने कहा, "लीजिये!"

वीणा ने पिस्तौल उठा कर अपने झोले में डाल ली। और एकएक उसे खयाल हो आया कि जो कुछ बातें अभी हुईं उनसे बहुत सम्भव है प्रभानाथ के दिल को आघात पहुँचा हो। उसने मुसकराते हुए कहा, "हम लोगों की बात का बुरा न मानियेगा—जो कुछ हमने कहा, आवेश में आ कर कहा; आप को दुखाने के लिए ज़रा भी नहीं!"

प्रभानाथ को भी मुसकराना पड़ा, "नहीं—नहीं—मैंने एक नया दृष्टिकोण देखा जो शायद ठीक हो। आप निःसंकोच रहें, मुझे बुरा लगने के स्थान पर यह बात-चीत अच्छी ही लगी।"

प्रतिभा और वीणा उठ खड़ी हुईं। वीणा ने चलते हुए कहा, "क्या फिर कभी हम लोग आप के यहाँ आ सकती हैं? आप अभी कितने दिन और कलकत्ता रहियेगा?"

"मैं कह नहीं सकता, लेकिन अभी कम से कम पन्द्रह दिन तो यहाँ रहना ही होगा; और रही आप लोगों के आने की बात, वहाँ मैं आप से कभी-

कभी आ जाने के लिए कहना ही चाहता था, लेकिन संकोचवश कह नहीं सका।"

५

वे दोनों युवतियां चली गईं और प्रभानाथ अकेला रह गया। अब उसका मन भारी न था, उसके शरीर में स्फूर्ति थी, उसकी विचार-धारा में हलचल थी। उसने एक नई दुनिया देखी, एक नया दृष्टिकोण देखा। वह उठ खड़ा हुआ।

फोन करने के लिए वह नीचे उतरा। फोन करने वाले कमरे में पहुँच कर उसने देखा कि एक दुबला-सा बंगाली युवक वहाँ के बंगाली क्लर्क से बात कर रहा है। बंगाली क्लर्क ने कहा, "नहीं, अब मेरे पास रुपया नहीं है। अभी दस दिन पहले तुम पाँच रुपए ले गए थे, वही वापस नहीं मिले। मैं कहाँ से दूँ ?"

उस युवक ने कहा, "सिर्फ़ दो रुपए ! मा की हालत बहुत खराब है ! सवा रुपए दवा के लिए और बारह आने पथ्य के लिए। बड़ी दया होगी। मैं आपका सब रुपया अदा कर दूँगा।"

उस बंगाली क्लर्क ने उस युवक की ओर बड़ी विवशता की दृष्टि से देखते हुए कहा, "नहीं सोमेन—मेरे पास कुल बारह आने पैसे हैं। भला चालीस रुपए महीने की नौकरी करके और कलकत्ता में रहकर मैं बचा ही क्या सकता हूँ ?"

प्रभानाथ ने उस युवक को देखा, एक मोटी और मैली धोती, और एक कुरता। उसके पैरों के चप्पल जवाब देने लगे थे। पर शक्ल से वह पढ़ा-लिखा मालूम होता था। प्रभानाथ ने क्लर्क के पास जाकर कहा, "माफ़ कीजियेगा—क्या बात है ?"

प्रभानाथ की इस दस्तन्दाज़ी पर उस समय उस बंगाली क्लर्क ने बुरा नहीं माना, उसने एक ठंडी साँस लेते हुए कहा, "क्या बतलाऊँ—यह मेरा

करते हुए कहा, "तुम कौन हो? छोड़ो मेरा हाथ!" और उसने झटका दिया। लेकिन उसको ऐसा मालूम हुआ कि उसका हाथ फ़ौलाद के शिकंजे में जकड़ा हुआ है।

प्रभानाथ ने कहा, "मैं कोई भी हूँ, इससे तुम्हें मतलब नहीं। मैं सिर्फ़ यह कहता हूँ कि क्या इस रिक्शेवाले की मेहनत सिर्फ़ एक आना ही है?"

दूसरे मारवाड़ी ने कहा, "जाओ बाबू—अपना काम देखो जा कर!"

जिस ढंग से और जिस स्वर में यह बात कही गई थी उससे प्रभानाथ को बुरा लगना स्वाभाविक ही था। प्रभानाथ ने उससे डाँट कर कहा, "चुप रहो!" और फिर वह रिक्शावाले की ओर मुड़ा, "क्यों जी तुम्हारी मज़दूरी कितनी होती है?"

"सरकार! मिलना तो मुझे चार आना चाहिए, लेकिन दो आने, दस पैसे, जितना भी मिल जाय ले लेता हूँ। आखिर पेट तो भरना ही पड़ता है!"

प्रभानाथ ने उस मारवाड़ी से, जिसका हाथ वह पकड़े हुए था, कहा, "एक आना और इस रिक्शेवाले को देना होगा।"

भीड़ इकट्ठा हो रही थी और लोग आपस में टीका-टिप्पणी कर रहे थे। उस मारवाड़ी ने जो मुक्त था आँखे तरेरते हुए कहा, "अगर हम न दें तो!"

प्रभानाथ ने हाथ को कसते हुए कहा, "तो का सवाल ही नहीं उठता।" एक आना देना ही पड़ेगा।

मारवाड़ी दर्द से कराह उठा, उसने अपने साथी से कहा, "अरे दो भी एक आना पैसा।"

लोगों की सहानुभूति उस समय तक रिक्शेवाले की तरफ़ नहीं जो कि वास्तव में पीड़ित और ग़रीब था बल्कि प्रभानाथ की तरफ़ हो गई थी क्योंकि प्रभानाथ उस दृश्य का प्रमुख अभिनेता था। कुछ लोग कह उठे, "अब मिला सेर का सवा सेर! बच्चू की अकल दुरुस्त हो गई!"

उस समय तक दूसरे मारवाड़ी ने जेब से इकन्नी निकाल कर रिक्शावाले के सामने फेंक दी थी।

प्रभानाथ वहाँ से चल दिया।

अब प्रभानाथ बाग बाज़ार की ओर बढ़ा, नगर की गन्दगी को पार करते हुए। उस समय दोपहर के बारह बज रहे थे पर प्रभानाथ को भूख न मालूम हो रही थी। धूप काफ़ी तेज़ थी, पर प्रभानाथ को गरमी भी न मालूम हो रही थी। वह चल रहा था, सब कुछ देखता हुआ, सब कुछ सुनता हुआ! उसके मन में कोई विचार न था, वह कोई तर्क न कर रहा था। यही देखना-सुनना उसका सारा विचार था, उसका सारा तर्क था।

जिस समय प्रभानाथ होटल लौटा, चार बज चुके थे। वह बुरी तरह थका हुआ था!

६

उस दिन के बाद तीन दिन तक प्रभानाथ होटल के बाहर न निकला। दिन भर वह अपने कमरे में लेटा रहता था। एकाएक उसकी विचारधारा पर, उसके दृष्टिकोण पर, उसके अस्तित्व पर एक भयानक प्रहार हुआ था—ऐसा प्रहार जिसके लिए वह ज़रा भी तैयार न था। वह विश्वास न कर सकता था उन घटनाओं पर जो दो दिन के अन्दर ही जाड़े की बरफ से लदी हुई उत्तरीय हवा की भाँति उसके अन्दर वाली हरीतिमा को झुलसाती हुई; उजाड़ती हुई निकल गईं।

वीणा, प्रतिभा, वह बंगाली युवक जिसका नाम सोमेन था—और वह रिक्शावाला। इनमें से हर एक व्यक्ति अपना व्यक्तित्व लिए हुए था, हर एक व्यक्ति हिन्दुस्तान की ही नहीं, मानवता की दुरवस्था पर प्रकाश डाल रहा था, हर एक व्यक्ति प्रभानाथ की सोई हुई चेतना पर प्रहार कर रहा था। होटल का खाना, होटल का सुख! ये सब पाशविक हँसी हँस रहे थे, मानवता का उपहास कर रहे थे। और इसी पाशविकता के वातावरण में प्रभानाथ की आत्मा मनुष्यता का मनन कर रही थी, उसको समझने की कोशिश कर रही थी, उसको अपनाने का संकल्प कर रही थी।

चौथे दिन सुबह के समय जब प्रभानाथ चा पीने के लिए खाने वाले कमरे में गया, वहाँ के बंगाली क्लर्क ने उसके पास आकर दबी ज़बान कहा, "कुँवर साहेब! उस दिन आपने जो मेरे भतीजे को देखा था न! कल रात गले में फाँसी लगा कर उसने आत्म-हत्या कर ली!"

प्रभानाथ के हाथ वाला चा का प्याल छूट गया, "क्या कहा? आत्म-हत्या कर ली?"

"जी हाँ!" अपनी आँखों में उमड़ते हुए आँसुओं को हाथ से पोछते हुए उसने कहा, "उसकी मा का परसों देहान्त हो गया! अन्त्येष्टि-क्रिया के लिए भी प्रबन्ध करने को उसके पास पैसा न था। हम लोगों ने किसी प्रकार सब कुछ किया। और कल!—कल सुबह न जाने क्यों वह अजीब तरह की बातें करने लगा था। कहता था कि मा को एक दिन को भी सुख—शान्ति वह नहीं दे सका! मा ने उसे पढ़ाने-लिखाने में अपना गहना-कपड़ा सब बेच दिया था और उसका लड़का उसकी दवा-इलाज तक न कर सका!"

प्रभानाथ ने ठंढी साँस भर कर कहा, "फिर!"

"हम लोगों ने उसे बहुत समझाया-बुझाया सब बेकार! मुझे तो यहाँ हाज़िरी बजानी थी; और आज सुबह मालूम हुआ कि उसने आत्म-हत्या कर ली! हे भगवान!"

प्रभानाथ उठ खड़ा हुआ, उससे चा नहीं पी गई। वह अपने कमरे में लौट आया और लेट गया। पर उससे लेटे भी न रहा गया—उसकी आत्मा छटपटा रही थी। क्या यह सब कुछ सच था—या एक भयानक दर्दनाक सपना? वह उठ पड़ा; उसने घड़ी देखी थी—ग्यारह बजे थे।

कपड़े पहन कर वह पैदल ही घूमने निकल पड़ा। अभी वह बहुत दूर भी न गया था कि उसने देखा—सामने एक बहुत बड़ी भीड़ खड़ी है। वह भीड़ की ओर बढ़ा—कौतूहलवश! भीड़ चीरता हुआ वह आगे पहुँचा और उसने देखा कि एक रिक्शावाला ज़मीन पर पड़ा है और उसके मुँह से खून निकल रहा है। लोग आते हैं—उसे देखते हैं—और चले जाते हैं। कोई

कुछ कहता नहीं, करता नहीं। प्रभानाथ ने और बढ़ कर रिक्शावाले की शक्ल देखी और वह चौंक उठा—"अरे!" यह वही रिक्शावाला था जिसे प्रभानाथ ने कुछ दिन पहले मारवाड़ी से इकन्नी दिलवाई थी। प्रभानाथ वहाँ खड़ा न रह सका—वह एकदम वहाँ से चल पड़ा।

उसे एक टैक्सी दिखाई दी—वह उसी में बैठ गया। टैक्सी वाले ने पूछा—"कहाँ?"

"जहाँ जी चाहे!" प्रभानाथ ने अन्यमनस्क भाव से कहा।

टैक्सीवाले ने एक बार प्रभानाथ को ग़ौर से देखा, यह अन्दाज़ने की कोशिश करते हुए कि बाबू जी कितनी पिये हुए हैं और बाबूजी की हैसियत क्या है। पर उसका शक जाता रहा। न बाबू पिये हुए थे और न बाबू की हैसियत कम थी। उसने कार चौरंगी रोड पर मोड़ दी। रास्ते में उसने कहा, "बाबू! क्या कलकत्ता पहली मरतबा आए हैं?"

"हाँ!" प्रभानाथ ने मानो उस प्रश्न पर ध्यान ही नहीं दिया।

"तभी! अच्छा तो कलकत्ता की खास-खास जगहें देखेंगे?" यह कहते हुए कार म्यूज़ियम के सामने रोक दी, "बाबूजी! यह म्यूज़ियम है!"

"देख चुका हूँ! बढ़े चलो!"

टैक्सी आगे बढ़ी। विक्टोरिया मेमोरियल के पास पहुँचकर टैक्सी वाले ने टैक्सी धीमी करते हुए कहा, "बाबूजी—यह विक्टोरिया मेमोरियल है।"

"बढ़े चलो—देख चुका हूँ!"

टैक्सी अब अलीपुर में चली जा रही थी। ड्राइवर ने पूछा, "चिड़िया-घर देख चुके हैं बाबू साहेब?"

"हाँ, अच्छी तरह से!"

टैक्सी वाला झल्लाया। उसने कहा, "और बाबू साहेब—टैक्सी का मीटर देख रहे हैं?"

मीटर पर पाँच रुपए आठ आने आ गए थे। प्रभानाथ ने मुसकराते हुए कहा, "हाँ, मीटर भी देख रहा हूँ! अच्छा, अब मोड़ दो!"

"और मैंने भी इस वर्ष एम-एस-सी पास किया है। और आगे क्या करूँगा, मैं भी नहीं जानता," यह कहकर प्रभानाथ अपनी ही बात पर हँस पड़ा।

"जानने से न कोई लाभ है, न जानने की कोई आवश्यकता है। क्या प्रतिभा जानती थी कि आगे उसे क्या करना पड़ेगा!" वीणा ने करुण स्वर में कहा।

"क्या प्रतिभा आपकी रिश्तेदार थी!"

"नहीं, वह कायस्थ थी, मैं ब्राह्मण हूँ। लेकिन इससे क्या? वह मेरी अभिन्न साथिन थी, मेरी बहिन की तरह थी।" वीणा ने कुछ रुक कर फिर कहा, "हम लोग साथ रही हैं, साथ पढ़ी हैं और साथ ही हम लोगों ने काम आरम्भ किया। पर अब!—अब वह मेरा साथ छोड़ गई! हे भगवान! मुझे अकेली छोड़ गई, एकदम अकेली छोड़ गई!"

प्रभानाथ चुपचाप वीणा की बात सुन रहा था; अन्दर ही अन्दर वह सोच रहा था, बड़ी तेज़ी के साथ! वह एक विचित्र दुनिया में आ पड़ा था—उस दुनिया के अस्तित्व पर उसका विश्वास करने का जी न चाहता था, लेकिन वह विश्वास करने को मजबूर था। उसने कहा, "कौन किसके साथ रहा है? प्रतिभा ने अपना किया और उसने अपना जीवन सार्थक कर लिया। शायद वह उन अनगिनती लोगों से कहीं ऊँची थी, कहीं भाग्यवान थी जो सुख-वैभव का अकर्मण्यता-मय जीवन बिता कर पशु की मौत मर जाते हैं!"

प्रभानाथ ने यह बात वीणा को सान्त्वना देने को कही थी, पर बात समाप्त होने के बाद उसने यह अनुभव किया कि उसने अपने अन्दर निहित एक बहुत बड़े सत्य को ढूँढ़ निकाला। जो बात उसने कह दी थी, वह उसकी थी, उसके अन्दर वाली मानवता का वह एक महत्वपूर्ण निर्णय था। और प्रभानाथ को इसपर आश्चर्य हुआ।

"शायद आप ठीक कहते हैं। पर मैं इस समय कुछ समझ नहीं पा रही हूँ, कुछ भी नहीं!"

थोड़ी देर तक दोनों मौन रहे। प्रभानाथ ड्राइव कर रहा था, और उसके मुख पर एक दृढ़ता थी—एक अजीब तरह की चमक उसकी आंखों में थी। एकाएक वह अपनी इस अस्पष्ट और धुँधली विचार-धारा से जाग पड़ा, उसने चौंक कर वीणा की ओर देखा। और वीणा बैठी थी, शान्त—करुण—दयनीय!

प्रभानाथ ने वीणा से कहा, "क्या मैं जान सकता हूँ आप कहाँ रहती हैं! चलिये, आपके घर पर चलूँ!"

कुछ सोचकर वीणा ने कहा, "शायद आपका मेरे मकान में जाना उचित न होगा। बहुत सम्भव है वहाँ हमारे दल के कुछ लोग इकट्ठा हों और आप उनसे मिलना चाहें!"

"बहुत सम्भव है वे मुझ से न मिलना चाहें!" प्रभानाथ ने मुसकराते हुए कहा, "एक अजनबी आदमी—उसका आप लोगों का समुदाय किस प्रकार भरोसा कर सकता है!"

वीणा ने तनिक ज़ोर देकर कहा, "चलिये, आप ज़रूर चलिये! वे लोग आप पर भरोसा करें या न करें, पर मैं आप पर भरोसा कर सकती हूँ, कर ही नहीं सकती, करती हूँ। मैं जानती हूँ कि आप मनुष्य हैं, और जब मैं भरोसा करती हूँ तब उन्हें भी भरोसा करना होगा।"

"आपको अपने ऊपर बहुत बड़ा विश्वास है!" हँसते हुए प्रभानाथ ने कहा।

"आप ग़लत कहते हैं; मुझे आपके ऊपर बहुत बड़ा विश्वास है!" वीणा ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया।

प्रभानाथ ने इस बार वीणा को ग़ौर से देखा; नारी—असहाय और निर्बल! दूसरों पर भरोसा करने वाली और विश्वास करने वाली नारी! वीणा सर झुकाए बैठी थी; उसके मुख पर वही दृढ़ता थी, वही कठोरता थी! पर उस कठोरता और उस दृढ़ता के भीतर छिपी हुई नारी ने ही कहा था, "मुझे आपके ऊपर बहुत बड़ा विश्वास है।"

प्रभानाथ ने कहा, "तो फिर चलिये—मैं चलता हूँ!"

७

जिस मकान में वीणा रहती थी वह एक गली में था। मकान छोटा-सा और गंदा-सा था। सड़क पर ही प्रभानाथ को रोक कर वीणा ने कहा, "आप थोड़ी देर ठहरिये, मैं आती हूँ!"

करीब पाँच मिनट बाद वीणा लौटी, उसने कहा, "आइये!"

जिस कमरे में वीणा प्रभानाथ को ले गई वह दुमंज़िले पर था। उस समय उस कमरे में तीन युवक बैठे थे। वीणा के साथ प्रभानाथ के कमरे में प्रवेश करते ही वे तीनों युवक उठ खड़े हुए। उनमें से एक ने अंग्रेज़ी में कहा, "आपका स्वागत है!"

प्रभानाथ ने कमरे को अच्छी तरह देखा। वह काफ़ी बड़ा कमरा था, लेकिन उसमें थोड़ा-सा सामान था। दो टीन के छोटे-छोटे ट्रंक, दो खूँटियाँ जिन पर दो धोतियाँ लटक रही थीं, कुछ किताबें जो उन ट्रंकों पर रक्खी थीं या बिस्तरों पर बिखरी पड़ी थीं, और दो बिस्तरे जो फ़र्श पर अगल-बगल बिछे थे और जिन पर वे तीनों युवक बैठे थे। इसके बाद प्रभानाथ ने उन तीनों युवकों को देखा। प्रभानाथ को खड़ा देख कर वीणा ने कहा, "मेरे यहाँ कुरसी तो कोई नहीं है, आप ज़मीन पर बैठने का ही कष्ट करें।"

प्रभानाथ लज्जित-सा ज़मीन पर बैठ गया।

प्रभानाथ जिस युवक के सामने बैठा था वह लम्बा-सा और गठे बदन का था। उसका रंग किसी हद तक साँवला कहा जा सकता था, लेकिन वह कुरूप न था। उसकी अवस्था लगभग तीस वर्ष की रही होगी उसका नाम अपूर्व गंगोली था, पर उसके साथी उसे 'बड़दा' कहते थे। अपूर्व ने एम० एस-सी० पास किया था और कलकत्ता विश्व-विद्यालय में वह रिसर्च-स्कालर रह चुका था। उसका प्रमुख विषय था केमेस्ट्री, और वह उन दिनों एक केमिकल फ़र्म में नौकरी कर रहा था।

बड़दा की दाहिनी तरफ़ दूसरा युवक था। वह भी लम्बा था, पर वह दुबला और गोरा था। उसकी आँखों में चश्मा लगा था और उसके कपड़ों से मालूम होता था कि उसके सम्बन्धियों की आर्थिक अवस्था अच्छी है। वह विश्व-विद्यालय में एम० ए० का विद्यार्थी था और उसकी अवस्था लगभग इक्कीस वर्ष की रही होगी। उसका नाम था अविनाश घोष।

बड़दा की बाँईं ओर वाला युवक काला था और किसी हद तक कुरूप कहा जा सकता था। उसके कपड़े मैले और मोटे थे। उसकी अवस्था लगभग चौबीस वर्ष की रही होगी और उसका नाम हरिपद मलिक था। पर उसके साथी उसे 'महाजन' कहते थे। हरिपद को देखने वाला इस बात की कल्पना भी न कर सकता था कि इस युवक ने अपने दल के संचालन में करीब दस हज़ार रुपए अपने घर से दिये हैं।

वीणा भी एक कोने में बैठ गई। बड़दा से उसने कहा, "यही श्रीयुत प्रभानाथ हैं जिनका ज़िक्र अभी मैंने आप से किया था।

बड़दा ने प्रभानाथ को ग़ौर से देखा, मानो वह प्रभानाथ के हृदय की तह तक पहुँचने का प्रयत्न कर रहा हो। थोड़ी देर तक वह इस प्रकार प्रभानाथ को एकटक देखता रहा, इसके बाद उसने कहा, "आपने हमारे एक सदस्य की जो सहायता की उसके लिए हम लोग आप को धन्यवाद देते हैं!" इसके बाद उसने वीणा से कहा, "वीणा! तुम्हें यह मकान छोड़ना पड़ेगा। इस मकान में तुम्हारा रहना खतरनाक है—समझीं!"

"और अगर मैं यह मकान न छोड़ूँ?" वीणा ने पूछा।

"इसका सवाल ही नहीं उठता। प्रतिभा के मकान का पता पुलिस लगा रही है।"

प्रभानाथ के मन में एकाएक प्रश्न उठा, "क्या यह दूसरा बिछौना प्रतिभा का है? क्या प्रतिभा वीणा के साथ ही रहती थी?"

और उसके इस प्रश्न का उत्तर, अविनाश के उस प्रश्न से जो वीणा से

किया गया था, दे दिया, "हमने प्रतिभा के पहिचान की सब चीज़ें नष्ट कर दीं?"

"नहीं। थोड़ी-सी ज़रूर नष्ट की हैं, लेकिन कुछ थोड़ी सी नहीं की!"

"कुछ थोड़ी सी क्यों नहीं नष्ट कीं? क्या तुम हम लोगों का विनाश चाहती हो?" अविनाश ने तेज़ी के साथ पूछा।

"मैं तुम लोगों पर आँच न आने दूँगी—इतना विश्वास रक्खो! पर वे चीज़ें—नहीं, मैं अपनी सखी की यादगार को कभी-भी नष्ट न करूँगी। तुम लोगों के सम्बन्ध की कोई चीज़ इस कमरे में नहीं है!" वीणा ने करुण-भाव से कहा।

थोड़ी देर तक मौन छाया रहा। जिस स्वर में वीणा ने यह बात कही थी, उससे यह स्पष्ट हो गया था कि उन चीज़ों को नष्ट करने में वीणा की भावना को गहरी ठेस लगेगी, उसके मन को महान पीड़ा होगी।

अपूर्व मुसकराया, प्रभानाथ की ओर देखते हुए उसने कहा, "हरि इच्छा! स्त्री हठ ही है, रहेगा, और उसे रहना पड़ेगा।

हरिपद बोल उठा, "हाँ, इसमें क्या शक है, स्त्री-हठ रखना ही पड़ेगा। फिर अपनों के स्मृति चिह्न को पूर्णतया नष्ट कर डालना असम्भव है!"

"और अपनों के स्मृति-चिह्न को रखने के लिए अपना हृदय ही सब से उपयुक्त स्थान है।" अपूर्व ने प्रभानाथ से कहा, "क्यों न मिस्टर प्रभानाथ, अपना हृदय ही ऐसी चीज़ है जिसकी अन्त तक रक्षा की जा सकती है। बाकी चीज़ें चोर चुरा ले जा सकता है, डाकू छीन सकता है, ज़रा सी भी लापरवाही से वे दूसरों के हाथ में पड़ सकती हैं, और फिर वही स्मृति-चिह्न अपना काल बन सकती हैं!"

"आपका कहना बिल्कुल ठीक है!" प्रभानाथ को उस तर्क की सार्थकता को स्वीकार करना पड़ा।

"आप भी ऐसा कहते हैं, आप भी मुझे यह हृदय-हीन काम करने को प्रेरित करते हैं!" बड़े करुण और विवश स्वर में वीणा ने प्रभानाथ की

ओर देखते हुए कहा, "प्रतिभा ठीक ही कहती थी कि पुरुष कठोर होते हैं; उनके पास हृदय नहीं है, उनके पास भावना नहीं है।" यह कह कर वीणा उठ खड़ी हुई और एक टीन का ट्रंक उठा कर उसने अपूर्व के सामने रख दिया, "यह ट्रंक है जिसमें कुछ कपड़े हैं और कुछ पत्र हैं। ये पत्र प्रतिभा की मा के हैं। इसके अलावा यह बिस्तर है जिसपर आप बैठे हैं। केवल इतनी चीज़ें हैं, और इन्हें आप ले सकते हैं, इन्हें भी आप नष्ट कर सकते हैं।"

हरिपद ने कहा, "तुम्हारे पास कोई और चीज़ है जो प्रतिभा ने तुम्हें दी हो?"

"हाँ, एक धोती जो उसने मुझे दुर्गापूजा के अवसर पर ले दी थी, और एक पुस्तक—रवि बाबू की "चयनिका"—कहिए तो उन्हें भी दे दूँ!"

"नहीं, उन्हें नष्ट करने की कोई आवश्यकता नहीं। पर एक काम करना होगा।" अपूर्व ने कहा।

"वह काम?"

"इस मकान को कल तक छोड़ देना पड़ेगा। इसमें रहना तुम्हारे लिए निरापद नहीं है। मकान मैंने देख लिया है, कल सुबह उसका पेशगी किराया देकर उसकी चाभी ले लूँगा।"

"कल क्यों, मैं आज, इसी समय इस मकान को छोड़ने को तैयार हूँ। यह मकान मुझे काटने लगा है!" वीणा ने कहा।

"और यह प्रतिभा का ट्रंक तथा उसका बिस्तर! इन्हें नष्ट कर डालना उचित है। मुझे दे दो, मैं इन्हें गंगा के सिपुर्द कर दूँ, जहाँ उसकी अस्थियाँ गई हैं, वहीं यह चीज़ें भी चली जाँय!" हरिपद ने मुसकराते हुए कहा।

वीणा सिहर उठी। उसने केवल इतना कहा, "आप जो जी चाहे करें, पर यह न उपहास का विषय है, न अवसर है।" यह कह कर वह उठी। उसने प्रतिभा का ट्रंक प्रतिभा के बिस्तर में लपेट कर हरिपद के हवाले किया। उस समय उसकी आँखें तरल थीं, बड़ी कोशिश से वह अपने फूट पड़ने वाले रुदन को सम्हाले थी।

इतने ही में एक और युवक ने कमरे में प्रवेश किया। वह युवक विचलित था। आते ही उसने कहा, "पुलिस को प्रतिभा के मकान का शायद पता लग गया है—मुझे अभी-अभी यह सूचना मिली है। बहुत सम्भव है आज ही इस मकान पर पुलिस का धावा हो!" इतना कह कर वह तेज़ी से चला गया।

इतना सुनते ही वे तीनों युवक भी उठ खड़े हुए। हरिपद ने पुलिन्दा बगल में दबाया; उसने कहा, "वीणा अपना सामान सम्हालो; और यहाँ से अभी, इसी समय चल दो। मैं तो रवाना हुआ।"

"लेकिन मैं कहाँ जाऊँ? इस समय—रात में!"

अपूर्व ने उन दोनों युवकों से कहा, "आप लोग चलें, मुझे वीणा का तो प्रबन्ध करना ही होगा!" यह कह कर वह कमरे में बिखरे हुए सामान को बटोरने लगा।

सब लोग चले गए, अपूर्व, वीणा और प्रभा रह गए। अपूर्व ने कहा, "वीणा—तुम मेरे यहाँ चल सकती हो, लेकिन तुम जानती ही हो, मेरे पास सिर्फ एक कमरा है! खैर—मैं रात किसी मित्र के यहाँ काट लूँगा!"

वीणा ने प्रभानाथ की ओर देखा।

प्रभानाथ अभी तक मौन यह सब देख रहा था, अब उसने कहा, "नहीं, आपका रात के समय किसी होटल में रहना ठीक होगा। आप मेरे होटल में चल कर रह सकती हैं, मैंने दो कमरे ले रक्खे हैं!"

अपूर्व ने संतोष की एक गहरी साँस ली, "इससे अच्छा और क्या होगा! केवल एक प्रश्न है मिस्टर प्रभानाथ! हम लोगों के सम्पर्क में इतना अधिक आकर आप अपने को खतरे में डाल रहे हैं!"

वीणा का सामान उस समय तक अपूर्व ने लपेट लिया था। उस सामान को उठाते हुए प्रभानाथ ने कहा, "इस खतरे पर विचार करने का अभी मेरे पास समय नहीं है!"

८

प्रभानाथ के साथ वीणा प्रिंसेज़ होटल में आ गई। होटल के दरबान को प्रभानाथ के साथ एक स्त्री को देख कर आश्चर्य हुआ, लेकिन उसने कुछ कहा नहीं। रईसों और ताल्लुक़दारों का रात के समय किसी स्त्री के साथ होटल में वापस लौटना दरबान के लिए बड़ी साधारण सी बात थी। वह केवल मुसकरा दिया। लेकिन प्रभा की तीव्र दृष्टि और गम्भीर मुद्रा देखकर वह सहम गया—और उसके सामने से हट गया।

वीणा जिस कमरे में ठहरी थी उसका रास्ता प्रभानाथ के कमरे में से होकर था। वीणा ने कमरे में पलंग के नीचे अपना असबाब रख दिया, स्तम्भित-सी उसने अपने चारों ओर देखा।

वह कमरा काफ़ी बड़ा था, और अच्छी तरह से सजा हुआ था। वीणा कुछ देर तक मौन खड़ी रही, इसके बाद वह पलंग पर निर्जीव की तरह गिर पड़ी। प्रभानाथ के और वीणा के कमरे के बीच का दरवाज़ा बन्द था, लेकिन वीणा प्रभानाथ के पैरों की चाप साफ़-साफ़ सुन रही थी। प्रभानाथ बड़ी व्यग्रता के साथ अपने कमरे में टहल रहा था।

वीणा कुछ देर तक मौन लेटी रही, वह अपने हृदय को धड़कन को शान्त कर रही थी। करीब दस मिनट तक वह न कुछ सोच सकी, न समझ सकी; वह केवल इतना अनुभव कर सकी कि वह एक अजीब दुनिया में आ पड़ी है—एकदम अनोखी, एकदम अज्ञान! उसने एक बार फिर उस कमरे को ग़ौर से देखा और वह सर से पैर तक सिहर उठी। उसने अपने को उस कमरे में, जहाँ का प्रत्येक कण उसके लिए अनजान, अपरिचित और नया था, अकेला—एकदम अकेला पाया। वह चौंककर उठ खड़ी हुई। उसने दरवाज़ा खोला—और उसने देखा कि वह प्रभानाथ के कमरे में प्रभानाथ के सामने खड़ी हुई है।

दरवाज़ा खुलने की आवाज़ सुनकर प्रभानाथ टहलते-टहलते रुक गया

था। वीणा को अपने सामने खड़ी देखकर उसने मुसकराने का प्रयत्न किया, "क्यों क्या बात है!"

वीणा ने प्रभानाथ के प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया, एकटक वह प्रभानाथ को देख रही थी, चित्रलिखित-सी और भूली-सी! एक नए और अनजाने वातावरण में वह अचानक आ पड़ी थी—उस वातावरण को वह समझ न पा रही थी, अपना नहीं पा रही थी।

वीणा को इस प्रकार अपनी ओर एकटक देखते देखकर प्रभानाथ हँस पड़ा, उसने कहा, "क्या बात है? आप इस प्रकार मुझे देख क्यों रही हैं?"

वीणा प्रभानाथ के निकट जाकर खड़ी हो गई। उसने कुछ रुककर बहुत धीमे स्वर में कहा, "आप मनुष्य हैं या देवता?" और उसकी आँखों में आँसू भरे थे।

प्रभानाथ का हाथ वीणा के मस्तक पर चला गया। उसने कहा, "न मैं देवता हूँ, न मनुष्य! मैं केवल पशु हूँ; और सोच रहा हूँ कि क्या आप लोगों के सम्पर्क में आकर मैं मानवता का रूप देख सकूँगा।"

"और मैं कहती हूँ कि हम लोगों के सम्पर्क में आकर आप अपने को बहुत बड़े खतरे मे डाल रहे हैं। हम लोग प्राणों का खेल खेल रहे हैं; किसी भी समय हमारा शरीर गोलियों से छलनी हो सकता है, हमारा गला फाँसी के फन्दे में फँस सकता है, किसी भी समय हमारा टिमटिमाता हुआ जीवन-प्रदीप बुझ सकता है!" वीणा ने प्रभानाथ की आँखों से अपनी आँखें मिलाते हुए कहा।

प्रभानाथ का स्वर गम्भीर हो गया, "हाँ, मैं जानता हूँ! और मैं यह भी जानता हूँ कि कोई भी मनुष्य अमर नहीं है; मृत्यु का कोई विधान नहीं, नियम नहीं और अवधि नहीं। वह कभी भी आ सकती है—उसपर मनुष्य का कोई भी वश नहीं! फिर भय कैसा?"

कुछ देर तक दोनों एकटक एक दूसरे को देखते रहे। दोनों एक दूसरे के पास खड़े हुए थे, इतने पास कि एक दूसरे की साँस एक दूसरे को लग रही थी। वीणा प्रभानाथ के और पास आ गई, इतने पास कि दोनों का शरीर स्पर्श कर गया। उसने कहा, "क्या आप सच कह रहे हैं?—कहिए—बत-

लाइये—यह सब आप क्यों कर रहे हैं ? आप हम लोगों के सम्पर्क में न आइये—आप अपने को खतरे में न डालिये !"

प्रभानाथ मुसकराया, "क्यों नहीं ? अगर मैं तुम्हारे दल में शामिल भी हो जाऊँ तो इसमें तुम्हें क्या आपत्ति हो सकती है !"

वीणा ने बहुत धीमे से कहा, "आप नहीं समझ पा रहे ! नहीं, आप न आइये—आप न आइये ! मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ !"

प्रभानाथ ने आश्चर्य से वीणा को देखा।

और वीणा अब पागल की तरह कह रही थी, "नहीं, मरने के लिए मैं हूँ—और सब हैं। लेकिन आप ! आपके मरने का अभी समय नहीं है। आप अगर विपत्ति में पड़ जाएँगे तो मैं नहीं रह सकूँगी—नहीं रह सकूँगी !..."

एकाएक वीणा चौंक उठी। वह क्या कह रही है, क्यों कह रही है ? लज्जा से उसका मुख लाल हो गया। वह घूम पड़ी, तेज़ी के साथ वह अपने कमरे में भाग गई और उसने भीतर से कमरे का दरवाज़ा बन्द कर लिया !

× × ×

दूसरे दिन प्रभानाथ देर से सोकर उठा। उसी दिन उमानाथ को कलकत्ता आना था। पिछले दिन उसे सूचना मिल चुकी थी।

वीणा अन्दर वाले कमरे में ही थी ! वह रात वाली घटना से लज्जित-सी थी। प्रभानाथ ने द्वार खटखटाया और वीणा ने द्वार खोल दिया। उस समय आठ बजे थे। दोनों ने साथ बैठकर चा पी। चा पीते हुए प्रभानाथ ने कहा, "आज मेरे भाई आने वाले हैं !"

"आज ही !" वीणा ने पूछा।

"हाँ—दस बजे के करीब उनका जहाज़ आ जायगा।"

"अच्छी बात है। मैं अभी जा रही हूँ—कोई मकान अपने लिए ठीक कर लूँगी !"

चा पीकर प्रभानाथ डाक्स की तरफ़ उमानाथ को रिसीव करने के लिए रवाना हुआ और वीणा मकान ढूँढ़ने के लिए शहर की ओर !

पाँचवाँ परिच्छेद

१

"हलो प्रभा !" उमानाथ ने प्रभानाथ से हाथ मिलाते हुए कहा, "कौन-कौन मुझे रिसीव करने आया है ?"

"अकेला मैं !"

"अकेले तुम ! चलो यह अच्छा हुआ !" उमानाथ ने कुछ रुक कर कहा, "बात यह है कि मेरी बीबी भी साथ में आई है—वह अभी स्टीमर में ही है। मैं साथ इसलिए नहीं लाया कि कहीं दद्दुआ, काकाजी या बड़के भइया न आए हों !" उमानाथ के मुख पर अब मुसकराहट आ गई थी, "ख़ैर, अब चिन्ता की कोई बात नहीं—उसे भी मैं साथ ही लिये आता हूँ !" यह कह कर उमानाथ फिर से जहाज़ के अन्दर चला गया और प्रभानाथ उमानाथ को आश्चर्य से देखता रह गया।

करीब पन्द्रह मिनट बाद उमानाथ एक स्त्री के साथ वापस आया। वह स्त्री योरोपियन थी और उसकी अवस्था लगभग तीस वर्ष की रही होगी। वह सुन्दरी कही जा सकती थी; उसकी आँखें गहरी नीली और उनमें चमक थी, उसका चेहरा लम्बा और कठोर और बाल छोटे-छोटे तथा अस्तव्यस्त। उमानाथ उस स्त्री के साथ आकर प्रभानाथ के सामने खड़ा हो गया, 'प्रभा, यह मेरी पत्नी हिल्डा है—और हिल्डा—ये मेरे भाई प्रभानाथ !"

हिल्डा ने अपना हाथ बढ़ाया, लेकिन प्रभानाथ वैसा ही खड़ा रहा। उसका सारा शरीर सुन्न-सा पड़ गया था; उसका जी न हो रहा था कि वह अपनी आँखों और अपने कान पर विश्वास करे। उसने कहा, "तो क्या आपने जर्मनी में एक विवाह और कर लिया !"

उमानाथ हँस पड़ा, "देख तो रहे ही हो—मेरी पत्नी मेरे साथ है। लेकिन प्रभा तुम एकदम सन्नाटे में कैसे आ गए?"

प्रभानाथ ने अपने अन्दर वाले उमड़ते हुए रुदन को दबाते हुए कहा, "और क्या यह जानती है कि आप विवाहित हैं?"

"हाँ! और यह भी जानती है कि मैंने अपनी पहली पत्नी से अपनी इच्छा के अनुसार विवाह नहीं किया, वह मेरे गले में जबर्दस्ती मढ़ दी गई है। मैं उससे प्रेम नहीं करता, कर भी नहीं सकता; वह मेरे लिए त्याज्य है!" और यह कह कर उसने हिल्डा से अंग्रेज़ी में कहा, "हिल्डा—मेरा भाई जानना चाहता है कि क्या तुम्हें यह मालूम था कि हिन्दुस्तान में मेरा विवाह हो चुका है और मेरी पत्नी वहाँ मौजूद है!"

हिल्डा ने प्रभानाथ से अंग्रेज़ी में कहा, "हाँ-हाँ—उमा ने सब बातें मुझे बतला दी थीं—कितना भला आदमी है यह तुम्हारा भाई!" और यह कह कर उसने वहीं उमानाथ को चूम लिया।

प्रभानाथ ने अपनी आँखें फेर लीं—उमानाथ हँस पड़ा। उसने प्रभानाथ से कहा, "अच्छा चलो, यह न तो बात करने की जगह है और न समय है!"

प्रभानाथ स्टियरिंग ह्वील पर बैठा और उमानाथ उसकी बग़ल में। हिल्डा पीछे की सीट पर बैठी थी।

उमानाथ ने पूछा, "क्यों प्रभा, ददुआ के न आने का कारण तो मैं समझ सकता हूँ कि वह कहीं आते-जाते नहीं, और काका जी के भी न आनें का, क्योंकि उन्हें छुट्टी न मिली होगी। लेकिन बड़के भइया क्यों नहीं आए, यह ताज्जुब की बात है!"

प्रभानाथ ने अनमने भाव से कहा, "बड़के भइया को ददुआ ने घर से अलग कर दिया है।"

"क्या कहा?" उमानाथ चौंक उठा, "बड़के भइया को ददुआ ने घर से अलग कर दिया! यह क्यों?"

"बड़के भइया कांग्रेसमैन हो गए हैं!"

"तो इसमें बुरा ही क्या है!"

"बुरा-भला तो ददुआ जानें!"

"समझा!" उमानाथ मुसकराया, "तो फिर मैं अकेला नहीं हूँ, बड़के भइया भी मेरे साथ हैं।"

"क्या कहा आपने ?—क्या आप भी कांग्रेसमैन हैं ?"

"नहीं—इतना बड़ा बेवकूफ़ नहीं हूँ कि कांग्रेस-वांग्रेस के चक्कर में पड़ूँ।" उमानाथ हँस पड़ा, फिर कुछ गम्भीर होकर उसने कहा, "देखो प्रभा—किसी को बतलाना नहीं! मैं बड़के भइया से कहीं अधिक महत्वपूर्ण, कहीं अधिक उपयोगी, कहीं अधिक सार्थक काम कर रहा हूँ। मैं समाजवादी हूँ!"

प्रभानाथ ने उमानाथ की बात ध्यान से सुनी, लेकिन उसने उसपर कुछ कहा नहीं। उसने केवल एक बार अपने भाई की ओर ग़ौर से देखा!

"क्यों? इस तरह मुझे क्यों देख रहे हो? जानते हो, मेरी पत्नी भी समाजवादी है! प्रभा, इस युग की उलझनों की एकमात्र सुलझन है समाजवाद। मैं जहाँ से आ रहा हूँ, जिस वातावरण में मैं रहा हूँ, वहाँ मैंने जीवन का संघर्ष देखा है और मैंने उस पर मनन किया है।"

कार इस समय तक होटल के सामने पहुँच गई थी। प्रभानाथ ने कार रोकते हुए कहा, "लीजिये हम लोग पहुँच गए।"

सब लोग कार से उतर कर ऊपर गए। प्रभानाथ ने खाना आर्डर किया। फिर वह अपने भाई के पास आकर बैठ गया। हिल्डा ने अपना सिगरेट-केस निकालकर एक सिगरेट उमानाथ को दी, फिर उसने सिगरेट-केस प्रभानाथ की तरफ़ बढ़ाया।

प्रभानाथ ने ग्लानि से अपना मुँह फेरते हुए कहा, "धन्यवाद! मैं सिगरेट नहीं पीता।"

"अच्छा करते हो!" उमानाथ ने सिगरेट सुलगाते हुए कहा, "क्या

बतलाऊँ यार प्रभा! मैं इन लोगों के चक्कर में पड़ कर न जाने क्या-क्या पीना सीख गया हूँ, और पीना इतना बुरा भी नहीं है जितना कुछ लोगों ने समझ रक्खा है। फिर भी मैं तुम्हें पीने की सलाह न दूँगा, अगर बिना पिये मस्त रह सको तो इससे बढ़ कर कोई बात नहीं।"

प्रभानाथ चुप बैठा सोच रहा था। उसके सामने बैठा था उसका बड़ा भाई उमानाथ जिसे वह लड़कपन से बहुत अधिक मानता रहा था, जिससे उसके पिता को और उसके परिवार को बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं, जिसकी उसकी देवी के तुल्य भाभी घर में उत्कण्ठा के साथ प्रतीक्षा कर रही थी। और उस भाई के बगल में बैठी थी एक जर्मन-स्त्री जो उमानाथ की पत्नी बनकर उसके घर में भयानक अभिशाप के रूप में उसकी भाभी के लिए साकार वैधव्य बन कर आई थी। और यह स्त्री उमानाथ से उम्र में बड़ी थी।

इतने में वीणा ने कमरे में प्रवेश किया। वीणा के कमरे में आते ही सब लोग चौंक पड़े। प्रभानाथ ने खड़े होकर वीणा से कहा, "वीणा! ये मेरे भाई मिस्टर उमानाथ हैं और—ये मेरे भाई की दूसरी पत्नी श्रीमती हिल्डा तिवारी हैं।...और" इस बार उसने उमानाथ की ओर घूम कर कहा, "ये मेरी मित्र श्री वीणा मुकर्जी हैं।"

वीणा ने नमस्कार किया और उमानाथ और हिल्डा ने नमस्कार का उत्तर दिया। हिल्डा कुर्सी पर बैठ गई।

थोड़ी देर ठहर कर वीणा ने प्रभानाथ से कहा, "मैंने अपने वास्ते मकान ले लिया है। अपना सामान लेने आई हूँ, नीचे रिक्शा खड़ा है!"

"अरे! रिक्शा क्यों लेती आईं? मैं अपनी कार पर आपको पहुँचा दूँगा। और अब आप खाना खा कर ही यहाँ से जा पाइयेगा!" प्रभानाथ ने दरवाज़े की ओर बढ़ते हुए कहा, "रिक्शा विदा करके मैं अभी आता हूँ!"

प्रभानाथ बाहर चला गया। थोड़ी देर तक उमानाथ वीणा को ध्यान-पूर्वक देखता रहा, फिर इसके बाद उसने मुसकराते हुए वीणा से पूछा, "आपसे प्रभानाथ की कितने दिन की दोस्ती है?"

उमानाथ के इस प्रश्न से, और उससे भी अधिक उमानाथ की मुस-कराहट से वीणा तिलमिला उठी। शुष्क स्वर में उसने कहा, "पता नहीं कि मुझसे यह प्रश्न करने का आपको कितना अधिकार है ! आप सभ्य समाज के आदमी हैं, देश-विदेश घूमे हैं, आपको साधारण शिष्टाचार का तो पता होना चाहिये !"

"अरे—आप तो नाराज़ हो गईं," उमानाथ को अपनी ग़लती महसूस हुई या नहीं यह नहीं कहा जा सकता क्योंकि वह कहता गया, "देखिए—मेरी बातों पर बुरा मानकर आप ग़लती करेंगी क्योंकि जिसे आप सब लोग शिष्टाचार कहते हैं उस पर मैं ज़रा भी विश्वास नहीं करता—मैं—क्यों हम आज कल के प्रगतिशील लोग, ज़रा भी विश्वास नहीं करते। दुनिया के आदमियों ने अपना जीवन कितना कृत्रिम बना लिया है, इसी शिष्टाचार, इन्हीं झूठे और आडम्बरपूर्ण आचार और विचार के कारण !" उमानाथ ने हिल्डा की ओर संकेत किया, "देखिये, ये हैं मेरी पत्नी हिल्डा ! आप कोई भी बात इनसे पूछिये, यह आपको बिना किसी हिचकिचाहट के स्पष्ट उत्तर देंगी। और फिर मैंने तो आपसे एक बहुत सादा-सा प्रश्न किया था, मेरा मंशा ज़रा भी आपके हृदय को दुखाने का न था।"

उस उत्तर से वीणा हत-प्रभ सी हो गई, उसे अपने अकारण क्रोध पर क्रोध आ रहा था। उसने कहा "प्रभानाथ जी से मेरा करीब पन्द्रह-सोलह दिन का परिचय है।"

"इतने ही दिनों में इतना घनिष्ट परिचय हो गया। देख रहा हूँ हिन्दुस्तान बड़ी तेज़ी के साथ तरक्की कर रहा है—मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई।" इस बार वह अपनी पत्नी की ओर घूमा, "हिल्डा—सुना तुमने ! यहाँ की हालत इतनी बुरी नहीं है जितनी मैं समझे हुए था।"

और उसी समय प्रभानाथ कमरे में आ गया। वीणा से उसने कहा, "रिक्शावाले को मैंने विदा कर दिया !"

२

जिस समय प्रभानाथ वीणा को उसके नए मकान में पहुँचा कर लौटा, वह उदास था। वह स्वयम् इस बात को न जानता था कि वह क्यों उदास है। उस समय वह अपने कमरे में अकेला था; हिल्डा और उमानाथ कलकत्ता घूमने के लिए निकल पड़े थे।

वह आकर कुर्सी पर बैठ गया—और उसने अपने चारो ओर देखा; एक भयानक सूनापन उसके कमरे में व्याप्त था, और कमरे का वह भयानक सन्नाटा मानो बरबस उसके प्राणों में भरा जा रहा था।

उसका भाई! कितनी आशा और उत्साह के साथ वह उसका स्वागत करने आया था! और सारा उत्साह ठंढा पड़ गया था। लेकिन उसके सूनेपन का कारण शायद कुछ दूसरा ही था।

एक रात—केवल एक रात उसके आश्रय में रहकर वीणा चली गई थी। और उस एक रात में उसने अपनी ज़िन्दगी को पूरी तरह से भरा-पूरा देखा था। केवल एक रात—विश्वास, प्रेम और श्रद्धा से (वह भी एक अनजान, असुन्दर, विजातीय लड़की की) भरी हुई एक रात! बस वही उसके सामने थी—वह सपने वाली रात! और वह लड़की भी चली गई—हठात्!

न जाने कितनी देर तक मौन, विचारमग्न, अस्थिर और चंचल, प्रभानाथ बैठा रहा। एकाएक उसका ध्यान टूटा; उसकी तन्मयता भंग हुई एक तेज़ और सुरीली आवाज़ से तथा उसके साथ ही उठने वाले एक हँसी के ठहाके से। हिल्डा और उमानाथ घूम कर आ गये थे। हिल्डा ने अंग्रेज़ी में कहा, "अरे! यह तो बिल्कुल एक दार्शनिक की तरह ध्यानमग्न है!" और उमानाथ ने हँस कर जवाब दिया, "प्रेम की गम्भीरता और दार्शनिक की विचारशीलता के ऊपरी लक्षणों में अधिक भेद नहीं है।"

प्रभानाथ चौंक कर उठ खड़ा हुआ—आँख मलते हुए, मानो वह नींद

की हैसियत से अकसर सुना है ?" मारीसन ने हिल्डा के सामने झुकते हुए कहा।

मुसकराते हुए हिल्डा ने उत्तर दिया, "हाँ, वही हिल्डा क्रैमर और अब हिल्डा तिवारी !"

प्रभानाथ ने इस बार बड़े आश्चर्य से हिल्डा को देखा। वह स्वल्प-भाषी स्त्री जो उसके सामने इतनी शान्त और गम्भीर बैठी थी, क्या वह कभी एक जबर्दस्त संस्था की सेक्रेटरी रही होगी ! और एकाएक उसे वीणा की याद हो आई, पिछली रात वाली वीणा की, जिसने भावावेश में प्रभानाथ से न जाने क्या-क्या कह डाला था ! वह वीणा भी कितनी शान्त, कितनी सौम्य और कितनी सरल है ! पर वह भी तो खुलकर प्राणों से खेल रही है !

प्रभानाथ और अधिक वीणा के सम्बन्ध में न सोच सका, मारीसन एक मज़ेदार कहानी सुना रहा था, "तो कामरेड उमानाथ, मुझे परसों ही इत्तिला मिल गई थी कि तुम्हारा जहाज़ कब आ रहा है, और सुबह के वक्त ही तुम्हें रिसीव करने के लिए जाने का प्रोग्राम बना लिया था। लेकिन, तुम्हें पता नहीं, यहाँ की सी० आई० डी० बुरी तरह मेरे पीछे पड़ी है—कामरेड, क्या बतलाऊँ, दम मारने की फ़ुरसत नहीं मिलती। तो बड़ी मुश्किल से कहीं दोपहर को उन्हें चकमा दे सका। सीधे डाक्स पहुँचा। मालूम हुआ तुम होटल चले गए। वहीं से तुम्हारे होटल का पता लिया। इधर आ रहा था कि फिर वही इंसपेक्टर जिसे मैं चकमा देकर आया था मिल गया। अब फिर मुसीबत पड़ी। तो शाम के वक्त पिक्चर्स की तरफ़ की ठानी। ग्लोब का टिकट खरीदा। खेल शुरू होने के पाँच मिनट बाद ही मैं बाहर निकला। देखा कि हज़रत एक पान की दूकान पर खड़े बीड़ी सुलगा रहे हैं। बस एक टैक्सी पर बैठकर मैं वहाँ से ग़ायब हुआ......"

"और अब ?" हिल्डा ने हँसते हुए पूछा।

"मुझे ढूँढ रहा होगा। लेकिन ढूँढने दो, जब लौटूँगा तब मेरे मकान के सामने चहलक़दमी करता हुआ मिलेगा।" कुछ रुककर उसने कहा, "कामरेड

तिवारी, मैं तुम्हारे वास्ते ही अभी तक यहाँ रुका हूँ। कहा न कि पुलिस की नज़रों में मैं बेतरह चढ़ गया हूँ और इसलिए मेरा यहाँ रहना असम्भव हो गया है। हिन्दुस्तान का चार्ज तुम्हें देना है!"

"हाँ—हाँ! अब तो मैं आ ही गया हूँ! लेकिन यहाँ की हालत मुझे समझनी होगी। और एक बात मुझे और स्पष्ट कर देनी होगी—मैं पार्टी का हेड-क्वार्टर यहाँ से यू० पी० की तरफ़ ले जाना पसन्द करूँगा!"

"जैसी आपकी मर्ज़ी हो करें। इसमें न मुझे कोई एतराज़ हो सकता है और न इंटरनेशनल को ही हो सकता है।"

हिल्डा ने सिगरेट-केस निकाल कर एक सिगरेट उमानाथ को दी, फिर उसने सिगरेट केस मारीसन की तरफ़ बढ़ाया। मारीसन ने मुसकराते हुए कहा, "धन्यवाद कामरेड! मैं सिगरेट नहीं पीता, पी भी नहीं सकता। सिगरेट के लिए रुपया चाहिए न! और जब इतने लोग भूखों मर रहे हैं—" प्रभानाथ की ओर देखते हुए उसने कहा, "तब भला मैं किस तरह रुपया ऐश-आराम पर खर्च कर सकता हूँ। देख रहा हूँ आप भी सिगरेट नहीं पीते," प्रभानाथ ने भी सिगरेट लेने से सधन्यवाद इनकार कर दिया था, "और आप अच्छा करते हैं। आखिर यह ऐश-आराम ही तो है—और बक़ौल गांधी हमें इस ऐश-आराम से दूर ही रहना चाहिए। सुना कामरेड उमानाथ—यह गांधी भी मज़ेदार आदमी है, ज़रा थोड़ा-सा बहका हुआ और ख़ब्ती तो ज़रूर है लेकिन आदमी मज़े का है। कभी-कभी बड़े पते की कह देता है। कहता है कि शराब मत पियो, सिगरेट मत पियो! और उसका कहना ग़लत भी नहीं है। दुनिया के सामने तो पेट भरने का सवाल इस बुरी तरह से है, और हम लोग इन छोटी-छोटी बातों पर बेरहमी के साथ पैसा खर्च कर रहे हैं। इस पैसे पर हमारा क्या अधिकार? यह पैसा नियमानुसार जाना चाहिए सड़कों पर भूख और ठंढ से ठिठुर कर मर जाने वाले भिखारियों के पास!"

उमानाथ शायद मारीसन की इस स्पीच से कुछ आवश्यकता से अधिक प्रभावित हो गया था। ताली पीटते हुए उसने कहा, "वेल सेड कामरेड! वाक़ई सिगरेट पीना बहुत बुरा है। हरेक आदमी को सिगरेट पीना छोड़ देना

यह है कि तुम मेरे बराबरी की हो; अपने मानामान का उत्तरदायित्व तुम पर है; तुम स्वयम् उसका बदला ले सकती थीं, और तुमने बदला लिया भी।"

हिल्डा तड़प उठी, "फिर तुमने मुझसे विवाह क्यों किया—तुम मेरे पति क्यों हुए कायर कहीं के! मैंने अभी तक सुना भर था कि हिन्दुस्तानी कायर और गुलाम हैं; आज मैंने अपनी आँखों देखा भी!

उमानाथ मुसकराया, "देखो हिल्डा क्रोध करने की कोई आवश्यकता नहीं। इसके पहले हम लोगों को अपने अधिकारों को समझ लेना पड़ेगा। समाजवाद के मत में स्त्री और पुरुष सम हैं, किसी का किसी के ऊपर कोई अधिकार नहीं, कोई किसी का स्वामी नहीं है। पत्नी पति की संगिनी भर है, वह पति की नहीं है, ठीक उसी प्रकार जैसे कोई भी व्यक्ति मेरा मित्र हो सकता है। पति और पत्नी का विवाह-विच्छेद किसी भी समय किसी की इच्छा से हो सकता है, ठीक उसी तरह जैसे दो मित्र कभी भी अपनी मित्रता तोड़ सकते हैं। ऐसी हालत में तुम्हारा अपमान, तुम्हारा सुख दुख मेरा नहीं है और मेरा सुख-दुख तुम्हारा नहीं है। हमारा और तुम्हारा केवल एक आर्थिक सम्बन्ध है—और केवल उस आर्थिक सम्बन्ध को ही मैं ठीक मानता हूँ!"

हिल्डा इस तर्क को समझने के लिए नहीं तैयार थी—उमानाथ कह रहा था और वह ग्लानि के साथ यह सब सुन रही थी। उमानाथ के तर्कों का वह खण्डन नहीं कर सकती थी, लेकिन उसके अन्दर वाला समाजवादी जिसने कार्ल-मार्क्स का अध्ययन किया था, जिसने लेलिनवाद को इस दुनिया का ध्रुव सत्य मान लिया था, जो पुरुषों की ही भाँति ग़लत और दूषित मार्ग पर जाते हुए समाज का उद्धार करने के लिए कार्य-क्षेत्र में कूद पड़ी थी; जिसने दुनिया के भोग-विलास को ठुकरा दिया था, जो सिद्धान्तों के नशे में सराबोर थी, वह समाजवादी हिल्डा इस तर्क का विरोध नहीं कर सकती थी; लेकिन उसके अन्दर वाली नारी—वह नारी जो पुरुष का [illegible] चाहती है, जो उसमें रहना चाहती है, जो पुरुष की छाया में रह कर

उसकी गुलामी करना चाहती है, जिसका जीवन सेवा-मार्ग में अर्पित है, वह नारी विवाह और प्रेम के इस विकृत-रूप को सहन न कर सकी। उसने कहा, "उमा—ऐसी बातें मत कहो। मैंने विवाह के इस रूप को स्वीकार करके तुमसे विवाह नहीं किया है—तुम जानते हो!" और यह कह कर उसने दोनों हाथ उमानाथ के गले में डाल दिये, उमा, तुम जानते हो कि मैं तुम्हारी हूँ। हर तरह से तुम्हारी हूँ।"

जिस समय भावुकता का यह दृश्य हो रहा था, प्रभानाथ ने अपनी आँखें फेर ली थीं।

४

कामरेड मारीसन जब अपने फ्लैट में पहुँचे, उस समय रात के ग्यारह बज चुके थे। उनका फ्लैट एक बहुत बड़ी कोठी में था, जिसमें वह एक कमरा जसके साथ बाथ-रूम भी था, किराए पर लिए हुए थे। उनके कमरे वाले फ्लैट से मिले हुए फ्लैट में एक अँग्रेज़ महिला रहती थीं और उनका नाम था मिसेज़ सिम। मेसेज़ सिम विधवा थीं और काफ़ी अमीर थीं क्योंकि वे अकेली अपने लिए तीन कमरों का फ्लैट लिए थीं। उनके चार नौकर थे, और तीन मोटरें थीं।

मिसेज़ सिम के पास प्राणों से भी अधिक प्यारी दो बिल्लियाँ थीं जो उन्होंने फ़ारस से मँगाई थीं। सुबह पाँच बजे जब कामरेड मारीसन की नींद टूटी, और उन्होंने अपने कमरे का दरवाज़ा खोला तो उन्होंने देखा कि एक बिल्ली उनके कमरे के सामने वाले बरामदे में घूम रही है। कामरेड मारीसन को देखते ही बिल्ली ने कहा, "म्याउँ" और उनके सामने खड़ी होकर वह दुम हिलाने लगी।

कामरेड मारीसन बिल्ली से खेलने लगे; और एकाएक उनका हाथ उसके मुख पर पड़ा। मुँह पर हाथ पड़ते ही बिल्ली की तरह एक विचार उनके हृदय में चमक उठा, और वैसे ही उनके मुख पर एक मुसकराहट खिल उठी। उन्होंने बिल्ली को पकड़ लिया और अपने कमरे में दाखिल हो गए। कमरा

रहा हूँ, बल्कि इसलिए कि मैं आप पर रहम कर रहा हूँ, इंसान पर रहम कर रहा हूँ, उसके दुखों को मैं देख नहीं सकता। रही मेरे खर्च की बात उनकी आप चिन्ता न कीजियेगा—उसका मैं किसी न किसी तरह इंतज़ाम कर लूँगा।"

यह पत्र कामरेड मारीसन ने बिल्ली के गले में बाँध कर बिल्ली को छोड़ दिया। बिल्ली सीधी अपनी मालकिन के कमरे में तीर की भाँति गई, और अपनी प्यारी मालकिन के पास दुबक कर बैठ गई। बिल्ली को देखते ही नौकरों ने शोर मचाया, "बिल्ली आ गई—बिल्ली आ गई।"

मिसेज़ गिम, जो अभी तक इउडी कलोन की पट्टियों तक से होश में नहीं आई थीं, इस आवाज़ को सुनते ही आँखें खोल कर उठ बैठीं।

जिस समय कामरेड मारीसन लंच खाकर अपने कमरे में लौटे, उन्हें कमरे में पड़ा हुआ एक लिफ़ाफ़ा मिला। लिफ़ाफ़े में धन्यवाद के पत्र के साथ पाँच सौ रुपए का एक चेक था। पत्र कामरेड मारीसन ने फाड़कर फेंक दिया, चेक उन्होंने अपनी जेब के हवाले किया।

५

उमानाथ को कलकत्ता आए एक सप्ताह से अधिक हो गया। हिल्डा को स्टीमर पर चढ़ाकर जब उमानाथ के साथ प्रभानाथ लौटा, उस समय दोपहर दो बजे थी। रास्ते में प्रभानाथ ने उमानाथ से पूछा, "अब घर कब चलियेगा ?"

"कल सुबह चार बजे! मुझे अब कलकत्ता में रुकने की कोई ज़रूरत नहीं; सिर्फ़ कामरेड मारीसन से मिल लेना है। बहुत सम्भव है वह भी हमारे साथ चलें।"

"कामरेड मारीसन! क्या वे उन्नाव चलेंगे ?"

"नहीं जी—कामरेड मारीसन को मैं कानपुर में छोड़ दूँगा। मुझे अपना हेडक्वार्टर कानपुर बनाना है—वे कुछ थोड़ी-सी मेरी मदद ही करेंगे।

शाम के समय उमानाथ मारीशन से मिलने चला गया।

प्रभानाथ अकेला रह गया। इधर तीन-चार दिन से वह वीणा से न मिला था। सुबह उसे कानपुर के लिए रवाना होना था—वीणा से उसका मिल लेना ज़रूरी था। वह वीणा के मकान की ओर चल पड़ा।

उस समय दिन ढल चुका था और सड़कों पर बिजली का प्रकाश होना आरम्भ हो गया था। प्रभानाथ ने कोई सवारी नहीं ली, पैदल वह चल रहा था। वीणा के मकान के सामने वह रुका। उसे साहस न हो रहा था कि वह मकान के अन्दर प्रवेश करे—वह जानता था कि उसका कलकत्ता से जाना वीणा को अच्छा न लगेगा। उसे भी तो अपना जाना खुद अच्छा न लग रहा था। उसी समय उसे सुनाई पड़ा, "प्रभा बाबू!"

प्रभानाथ ने देखा कि वीणा मुसकराते हुए उसकी ओर बढ़ रही है। वीणा ने उसके पास आकर कहा, "मैं अभी आपके ही यहाँ जाने को निकली हूँ, यह देखने के लिए कि आप अभी कलकत्ता में हैं या नहीं। देखिये इधर कई दिनों से आपके दर्शन नहीं हुए!"

"और अगर मैं कलकत्ता से चला गया होता?" प्रभानाथ ने न जाने क्यों यह प्रश्न पूछ दिया।

वीणा ने वैसे ही उत्तर दिया, "तो मैं समझती कि मेरी साधना में बल नहीं है!" और वह खिलखिलाकर हँस पड़ी, "आप चले कैसे जाते—बिना मुझसे मिले हुए और मुझे अपना आशीर्वाद दिये हुए!"

इस बार वीणा की आँखें प्रभानाथ की आँखों से मिल गईं, वीणा का स्वर कुछ करुण हो गया, उसने कहा, "आप आए क्यों नहीं? मैंने आपकी कितनी प्रतीक्षा की! तीन दिन तक मैं घर के बाहर नहीं निकली हूँ—इसलिए कि कहीं आप आकर निराश न चले जायँ। और आज!—आज मुझसे न रहा गया, आज मैं अपने से विवश हो गई और आपको ढूँढ़ने के लिए निकल पड़ी। मैं जानना चाहती थी कि मेरी भावना, मेरी तपस्या—यह सब झूठ तो नहीं है!"

छठाँ परिच्छेद

१

प्रभानाथ के साथ मारीसन और उमानाथ कानपुर पहुँच गये। ग्रान्ड
ट्रंक रोड से कानपुर नगर में प्रवेश करते हुए उमानाथ ने कहा, "प्रभा !
पहले बड़के भइया के यहाँ चलो। कामरेड मारीसन जब तक कानपुर में हैं
तब तक बड़के भइया के मेहमान होकर रहेंगे। तुम्हारा क्या ख्याल है ?"

दयानाथ के बँगले की तरफ़ कार मोड़ते हुए प्रभानाथ ने कहा, "वहीं
चल रहा हूँ। लेकिन जहाँ तक बड़के भइया के घर पर मिलने की बात है,
उसके बारे में अभी कुछ कह नहीं सकता।

"क्यों, क्या बात है ?" उमानाथ ने पूछा।

"जब मैं कलकत्ता जा रहा था तब उन्होंने मुझ से कहा था कि वे कभी-
भी जेल जा सकते हैं।" कुछ रुक कर प्रभानाथ ने फिर कहा, "अगर बड़के
भइया अभी तक जेल न गए हों तो बड़ा अच्छा हो ! आपसे मिलने के लिए
कितने उत्सुक थे !" कार इस समय तक मेस्टन रोड पर आ गई थी।

मेस्टन पर बड़ी भीड़ थी, कार को रुक जाना पड़ा। सामने से कांग्रेस का
एक जलूस आ रहा था, और जलूस में सब से आगे थे दयानाथ। दयानाथ
के गले में गजरे लटक रहे थे, उनके मस्तक पर तिलक लगा था, और उनके
हाथ में था तिरंगा झण्डा। पीछे-पीछे जन-समुदाय महात्मा गांधी की जय,
भारतमाता की जय, कांग्रेस की जय तथा दयानाथ की जय के नारे लगाता
हुआ चला आ रहा था। अगल-बगल की पटरियों पर लोग खड़े तमाशा देख
रहे थे।

उमानाथ ने कहा, "अरे, ये तो बड़के भइया हैं। इसके माने हैं कि
अभी तक जेल के अन्दर नहीं पहुँचे !"

"अन्दर पहुँचने की तैयारी है !" किसी ने मुसकराते हुए कहा। उमानाथ और प्रभानाथ ने देखा कि मार्कण्डेय कार के पास खड़ा हुआ मुसकरा रहा है। मार्कण्डेय ने फिर कहा, "स्वागत है उमानाथ ! मज़े में तो रहे ? और देख रहे हो न ! ठीक बलि-वेदी के बकरे की तरह दयानाथ को लोग लिए चल रहे हैं ब्रिटिश-सरकार की भेंट चढ़ाने के लिए ! गजरों से लाद कर, उनकी आरती उतार कर, उनकी जयजयकार करके यह जन-समुदाय दयानाथ को जेल की तरफ़ लिए जा रहा है !"

"मैं समझा नहीं मार्कण्डेय भइया ! यह जलूस तो जेल की तरफ़ नहीं जा रहा है।" उमानाथ ने कहा।

"हाँ, यह जलूस जेल की तरफ़ नहीं जा रहा है, लेकिन दयानाथ जेल की तरफ़ जा रहे हैं। जानते हो ? दयानाथ कानपुर के डिक्टेटर बनाये गये हैं, और डिक्टेटर बनने के माने होते हैं दूसरे ही दिन जेल में ठूँस दिये जाना। कल या परसों दयानाथ गिरफ़्तार कर लिए जाएँगे, और फिर उसके बाद कोई दूसरा डिक्टेटर नियुक्त होगा। शायद वे लोग मुझको ही नियुक्त करें। और इस प्रकार यह लड़ाई चल रही है।" मार्कण्डेय हँस पड़ा।

उमानाथ भी हँस पड़ा, "लड़ाई तो दिलचस्प मालूम होती है। लेकिन मैं यह ज़रूर कह सकता हूँ कि यह लड़ाई हिन्दुस्तान को ही शोभा दे सकती है। लड़ते जाइये यह लड़ाई, देखें, आप लोग कब तक लड़ते हैं।"

जलूस इस समय तक निकल गया था। प्रभानाथ ने कार स्टार्ट करते हुए कहा, "मार्कण्डेय भइया, चलिये हमारे यहाँ चल रहे हैं न।"

मार्कण्डेय ने जाते हुए जलूस पर एक नज़र डाली, "नहीं, जलूस के साथ चला हूँ तो उसके साथ अन्त तक रहना भी चाहिए। अभी एक घण्टे में मैं दयानाथ के साथ तुम्हारे यहाँ आता हूँ।" यह कह कर मार्कण्डेय चला गया।

जिस समय मोटर ने दयानाथ के बँगले के कम्पाउण्ड में प्रवेश किया, राजेश्वरी देवी बरामदे में चिन्ताग्रस्त बैठी कुछ सोच रही थीं। दयानाथ सज-धज कर जलूस के साथ गए थे। दयानाथ को पहिला तिलक उन्होंने लगाया

"अच्छा-अच्छा! पहले मुँह-हाथ धो लो और कपड़े बदल बदल डालो—एक दम भूत बने हो!" हँसते हुए राजेश्वरीदेवी ने कहा, "फिर जितना तर्क-वितर्क करना हो वह अपने बड़े भइया से कर लेना—वह आते ही होंगे!" यह कह कर राजेश्वरी देवी ने सुखिया को सब इंतज़ाम कर देने का आदेश दिया और खुद रसोई-घर में नाश्ता बनाने चली गई।

२

प्रभानाथ और उमानाथ जिस समय मुँह-हाथ धोकर बाथरूम के बाहर निकले, नाश्ता हो गया था। उमानाथ ने कहा, "भौजी, मेरे साथ मेरे एक दोस्त भी हैं—नाश्ता आप बाहर भिजवा दें। और चलिये, मैं अपने दोस्त से आपको इंट्रोड्यूस भी करवा दूँ—बड़े मज़ेदार आदमी हैं!"

राजेश्वरी ने आश्चर्य से उमानाथ को देखा। राजेश्वरी की इस मुद्रा को देख कर प्रभानाथ हँस पड़ा, उसने उमानाथ से कहा, "मझले भइया, अब आप योरोप में नहीं हैं, हिन्दुस्तान में हैं। यह आप मत भूल जाया करिये।"

"अरे हाँ।" अपनी ग़लती महसूस करते हुए उमानाथ ने कहा, "मैं भूल ही गया था कि मैं इस वहशी मुल्क में आ गया हूँ। अच्छा तो भौजी जी प्रभा को आप यहीं नाश्ता करा दीजिये और मेरा तथा मेरे दोस्त का नाश्ता बाहर भिजवा दीजिये।" यह कह कर उमानाथ बाहर वाले कमरे की ओर चल दिया।

जिस समय उमानाथ ड्राइंग-रूम में पहुँचा, कामरेड मारीसन सोफ़ा पर लेटे हुए एक गाना गा रहे थे। उमानाथ के पहुँचते ही उन्होंने कहा, "कामरेड उमानाथ—बड़ी देर लगा दी। अब बतलाओ कि मेरे ठहरने का इंतज़ाम कहाँ होगा?"

"पहले चा तो पी लो, फिर बात चीत होगी।" उमानाथ ने उत्तर दिया, "उस समय तक मेरे बड़े भाई भी लौट आवेंगे।"

दोनों कामरेड चा पर जुट गए। चा समाप्त कर लेने के बाद उमानाथ ने मारीसन से कहा, "कामरेड—तुम्हारी उम्र क्या होगी ?"

कुछ सोच कर और कुछ हिसाब लगा कर कामरेड मारीसन ने बतलाया, "अट्ठाईस वर्ष, सात महीने, उन्नीस दिन !"

थोड़ी देर चुप रह कर उमानाथ ने फिर पूछा, "कामरेड—अगर बुरा न मानो तो मैं पूछूँगा कि तुम्हारा विवाह हुआ है कि नहीं !"

"इसमें बुरा मानने की क्या बात है !" मारीसन ने जम्हुआई लेते हुए कहा, "नहीं कामरेड, विवाह करने की बात कभी सोची ही नहीं; और सोचता भी कैसे ? यहाँ तो हर समय इस बात की चिन्ता रही कि ज़िन्दा रहने के लिए रुपया कैसे पैदा करूँ ! और फिर इसकी पवित्र सिद्धान्त की सेवा में लग गया।"

उमानाथ मुसकराया, "हाँ कामरेड ! मैं समझता हूँ कि तुम्हारी ऐसी परिस्थिति में पड़े हुए आदमी के लिए विवाह करना उचित न था। लेकिन अब तो परिस्थिति बदल गई है—अब तुम विवाह कर सकते हो !"

"शादी तो कर सकता हूँ कामरेड", कुछ खिन्न-सा होकर मारीसन ने कहा, "लेकिन क्या बताऊँ, हिम्मत नहीं पड़ती। न जाने बीबी के साथ कैसी निपटे। और तुम जानते ही हो कि आजकल की औरतें क़ाफ़ी बढ़ी-चढ़ी होती हैं। बजाय इसके कि वे पुरुष की सेवा करें, वे पुरुषों से सेवा कराना चाहती हैं।"

"और अगर तुम्हें ऐसी बीबी मिल जाय जो तुम्हारी सेवा करे, सेवा ही नहीं, बल्कि तुम्हारी दिन-रात पूजा करे, और इसके साथ जो कुछ भी रूखा-सूखा मिल जाय उससे पेट भर ले तो ?"

क़ामरेड मारीसन ने काम्रेड उमानाथ को विस्फारित नयनों से देखा, "कामरेड उमानाथ ! क्यों बेकार की बातें करते हो ! मेरा वक्त ज़्यादा क़ीमती है—और मज़ाक करने के मूड में मैं कतई नहीं हूँ !"

मार्कण्डेय ने उमानाथ का हाथ अपने हाथ में लेते हुए कहा, "उमा, मैं वचन देता हूँ कि मैं यह बात किसी से न कहूँगा! मुझे अफ़सोस है कि यह बात मेरे कान में पड़ गई, और इससे भी अधिक अफ़सोस इस बात का है कि तुम, जितना मैंने समझा था, उससे अधिक मूर्ख निकले।" मार्कण्डेय मुसकरा पड़ा। मार्कण्डेय अब कुरसी पर बैठ गया था। उसने ग़ौर से कामरेड मारीसन को देखते हुए उमानाथ से फिर कहा, "और अपने इन साथी का परिचय तुमने मुझसे अभी तक नहीं कराया, यद्यपि हम दोनों में बातचीत हो गई है।" मार्कण्डेय इस बार मारीसन से बोला, "मेरा नाम मार्कण्डेय मिश्र है—मैं आपका परिचय जानना चाहता हूँ!"

"मार्कण्डेय मिश्र! अनुप्रास-युक्त नाम है मिस्टर मार्कण्डेय मिश्र! और मेरा नाम है कामरेड मारीसन। मैं कम्यूनिस्ट हूँ; कामरेड उमानाथ के साथ उत्तरभारत में घूमने का इरादा है!"

"कामरेड मारीसन! ये मिस्टर मिश्र पक्के बुर्जुआ हैं—यह मैं आपको बतला दूँ, और बुर्जुआ होने के साथ किसी हद तक सिनिक भी हैं। आप ज़रा इनसे होशियार रहियेगा—ये कांग्रेसमैन हैं।" उमानाथ ने मुसकराते हुए कामरेड मारीसन को आगाह किया।

"ऐसी बात है!" मारीसन अब मारकण्डेय की ओर घूमा, "हाँ, देख रहा हूँ आप खादी पहनते हैं, आप राष्ट्रीयता को मानने वाले हैं; और राष्ट्रीयता पर विश्वास करने वाला आदमी मानव-समाज का घोर शत्रु होता है। मानवता में यह भेद, यह श्रेणी-विभाजन, यह विषमता! तुम हिन्दुस्तानी हो, तुम हिन्दू हो, तुम ब्राह्मण हो! और इन सब बातों के फेर में पड़ कर तुम यह भूल जाते हो कि तुम मनुष्य हो।"

मार्कण्डेय ने मारीसन को ग़ौर से देखा "आप जो कुछ कह रहे हैं वह नई बात नहीं है। मैंने इसे बहुत सुना है, बहुत पढ़ा है—और आप जानते हैं मैं इन बातों को क्या समझता हूँ?—अन्तर्राष्ट्रीयता का प्रलाप!"

"आप इसे प्रलाप कह सकते हैं। आपके पास शब्द हैं, आपके पास

ज़बान है। लेकिन यह अमिट और अक्षय सत्य है। तुम किस बात के लिए लड़ रहे हो? तुम क्या चाहते हो? तुम कहोगे—'स्वतन्त्रता!' और मैं पूछता हूँ कि तुम्हारी यह स्वतन्त्रता क्या बला है? जिस स्वतन्त्रता के लिए तुम लड़ रहे हो, क्या उसे पा जाने पर जनता के साथ होने वाला यह उत्पीड़न बन्द हो जायगा? आज करीब डेढ़ सौ वर्ष ही तो हुए हैं तुम हिन्दुस्तानियों को गुलाम हुए। उसके पहले क्या था? मनुष्य का मनुष्य पर अत्याचार, रक्त-शोषण, निर्बल को गुलाम बनाना—गुलाम ही नहीं, उसे पशु बना देना। तुम कुछ थोड़े से आदमी जो समाज के नेता हो, जो समाज के श्रेष्ठ अंग होने का दम भरते हो; तुम स्वतन्त्रता पाना चाहते हो, निरीह और बेज़ुबान जनता को और भी भयानक गुलाम बनाने के लिए! तुम गुलामी से छूटना चाहते हो दूसरों को अपनी गुलामी की चक्की में पीसने के लिए!"

कुछ रुक कर कामरेड मारीसन ने फिर कहा, "ब्रिटिश सरकार पूँजीवादी है—तुम पूँजीवादी हो। सरकार शक्तिशाली है। तुम शक्तिहीन हो! अँग्रेज़ मौज करते हैं, मलाई और माल वे ले जाते हैं। तुम्हें बचा-खुचा मिलना है। और इसीलिए तुम लड़ते हो। यह मलाई और माल तुम पाना चाहते हो। लेकिन यह मूक और उत्पीड़ित जन समुदाय जिसे भिखारी बनाकर यह माल मारा जा रहा है, कब तुमने इस पर ध्यान दिया? नहीं मिस्टर मिश्र! यह लड़ाई ग़लत है, बेकार है! इस लड़ाई में मेरी कोई सहानुभूति नहीं है। मैं तो कहता हूँ कि जन-समुदाय को आगे आना चाहिए। उन्हें डट कर मोरचा लेना चाहिए तुम लोगों से—तुम शोषण करने वालों से..."

मारीसन रुक गए, उसी समय दयानाथ ने कमरे में प्रवेश किया। उमानाथ की ओर बढ़ते हुए दयानाथ ने कहा, "तो तुम लौट आए! तुम्हारा स्वागत! ठीक मौक़े पर तुम आ गए हो उमा! अगर दो एक दिन की और देर हो जाती तो छै महीने के लिए मैं तुम्हें न देख पाता!"

"यह मेरे मित्र कामरेड मारीसन हैं—और ये मेरे बड़े भाई श्री दयानाथ तिवारी हैं!" उमानाथ ने अपने बड़े भाई और कामरेड मारीसन का परिचय

आस-पास खड़े थे। दयानाथ ने दोनों बच्चों को प्यार किया, फिर पत्नी के मस्तक पर हाथ रख कर उन्होंने कुछ ममता भरे, कुछ स्नेह-युक्त और कुछ गम्भीर स्वर में कहा, "राजेश्वरी! यह मेरी तीर्थ-यात्रा है! अविचलित भाव से, अपनी शुभ कामनाओं के साथ मुझे विदा दो! साहस करो और धैर्य धारण करो!"

राजेश्वरी ने अपने पति को इस बार पूरी नज़र से देखा—और उसके सामने खड़ा था लम्बा हृष्ट-पुष्ट, गौर-वर्ण का एक वीर, हिमालय की भाँति अचल, मेघ-माला की भाँति गम्भीर! कितना तेजवान, सुन्दर, साहसी और श्रेष्ठ था उसका पति! उसका अन्तर प्रसन्नता से भर गया, उसकी छाती अभिमान से फूल उठी। दौड़कर रसोई से दही अक्षत ले आई। उसने अपने पति का तिलक किया और फिर बड़ी भक्ति के साथ उसने अपने पति के चरण छुए।

प्रभानाथ के साथ दयानाथ बाहर निकला। थानेदार भूपसिंह दयानाथ के इंतज़ार में ड्राइंग-रूम में बैठे हुए उमानाथ से बातें कर रहे थे। जिस समय दयानाथ ड्राइंग-रूम में आया; उमानाथ थानेदार भूपसिंह की बात का समर्थन कर रहा था, "जी हाँ, यह तो आप का फ़र्ज़ है। भला हिन्दुस्तानी कहीं नमकहरामी कर सकते हैं? हिन्दुस्तानी सिपाहियों ने लार्ड क्लाइव और उनके साथियों को चावल खिलाया और खुद माड़ पीकर लड़े—हिन्दुस्तान में अँग्रेज़ों का राज्य क़ायम कराने के लिए; सन ५७ के स्वतन्त्रता-संग्राम के समय सिखों ने न जाने कितने हिन्दुस्तानी बाग़ियों को पेड़ों पर लटका दिया। सब से बड़ा पाप है नमकहरामी!"

थानेदार भूपसिंह की समझ में न आ रहा था कि उनकी तारीफ की जा रही है या उनका मज़ाक उड़ाया जा रहा है; लेकिन अपनी नेकनीयती और भलाई का सबूत देने की गरज़ से उन्होंने कहा, "क्या बताऊँ कुँवर साहेब! दिल से मैं महात्मा गांधी का बड़ा भारी भक्त हूँ! लेकिन नौकरी कर रहा हूँ! लम्बी गृहस्थी है—"

भूपसिंह की बात बीच में ही काट कर उमानाथ ने कहा, "और आप अपने बीवी-बच्चों को फाँसी पर लटकाने को क़तई तैयार नहीं। और एक दफ़े आप उन्हें फाँसी पर लटकाने को तुल भी जाँय तो भला वे कब मानने लगे। लम्बी गृहस्थी चलाने के लिए लम्बा खर्च भी चाहिए, और यह लम्बा ख़र्च निकालने के लिए लम्बी रक़म की भी ज़रूरत होती है और इस लम्बी रक़म के लिए लम्बा झूठ, लम्बी दग़ाबाज़ी, लम्बी रिश्वत इन सबों का सहारा लेना होता है !"

थानेदार भूपसिंह मुँह बाए हुए उमानाथ की बात सुन रहे थे। ऐसे मुँह फट, मुँह पर गाली सुनाने वाले आदमी से उन्हें अभी तक वास्ता न पड़ा था; लेकिन साथ ही उमानाथ भूपसिंह पर पूरी तरह से हावी हो गया। दयानाथ यह बात चीत सुन कर मुसकराया, उसने भूपसिंह के पास आ कर कहा, "थानेदार साहेब ! मैं आपकी सेवा में उपस्थित हूँ !"

दयानाथ को सामने खड़ा देखकर भूपसिंह की जान में जान आई। उठ कर उन्होंने दयानाथ को सलाम किया, "मुझे अफ़सोस है कि आपकी गिरफ़्तारी का वारंट मुझे सौंपा गया है !"

"इसमें अफ़सोस की क्या बात है ? मैं तैयार हूँ, आप अपना फ़र्ज़ अदा कीजिये !"

"नहीं पण्डित जी—इसमें जल्दी की कोई ज़रूरत नहीं। आपको जो-जो काम करना हो, कर लें। और अगर आप कहें, तो मैं कल आऊँ !" भूपसिंह ने कहा।

दयानाथ ने उत्तर दिया, "नहीं थानेदार साहेब, इतनी तकलीफ़ करने की कोई ज़रूरत नहीं। जैसा कल वैसा आज ! चलिये, मैं तैयार हूँ !"

दयानाथ को विदा करके प्रभानाथ और उमानाथ अपनी भावज के पास अन्दर चले गए। जब तक दयानाथ नहीं गए, राजेश्वरी साहस-पूर्वक खड़ी रही; पर उनके जाते ही वह एकाएक फूट पड़ी। राजेश और ब्रजेश भी रो रहे थे, अपने पिता के जाने पर नहीं—उन्हें शायद यह पता भी न था कि

उनके पिता जेल गए हैं—बल्कि अपनी माता के रोने पर। उमानाथ ने क
"भौजी! यह क्या हो रहा है? छी! छी! कहीं इस तरह से धीरज खं
जाता है! बड़के भइया अगर यह जान गए तो उन्हें कितना दुख होगा!"

राजेश्वरी ने आँखें पोछ कर सामने देखा, उसके दोनों देवर उसके अ
खड़े थे। सब से नज़दीकी, उसके निजी! उसे कुछ ढाँढस हुआ। उ
कहा, "बाबू जी! अकेली हूँ, क्या करूँगी! कुछ समझ में नहीं आता।"

"क्यों अकेली क्यों हो? हम लोग तो हैं! कल सुबह हम लोग उ
जा रहे हैं। तैयारी कीजिये। आपका घर-द्वार सभी कुछ तो है!" उमा
ने कहा।

"नहीं बाबू जी! मेरा घर-द्वार कुछ नहीं है! वह सब तो उसी दिन
गया जिस दिन उन्होंने इस रास्ते पर क़दम रक्खा। मैं और ये दोनों ब
बस हम लोग अकेले और सामने सारी दुनिया! ददुआ ने तो हम लोगों
अलग कर दिया है!"

इस बार प्रभानाथ के बोलने की बारी थी, "भौजी जी! ददुआ
आप लोगों को कब अलग किया है! बड़के भइया से उन्होंने मेरे ही सा
साफ़-साफ़ शब्दों में कहा था कि आप लोग, आप और राजेश-व्रजेश
चाहें घर में आ सकती हैं। आपको हमारे साथ चलना पड़ेगा; यहाँ अके
कैसे रहियेगा?"

एकाएक राजेश्वरी देवी तन कर खड़ी हो गई, "इन्हें अलग कर दि
और हम लोग सर-आँखों पर! प्रभा बाबू! आप क्या समझ कर यह कह
हैं? आप समझते हैं कि जिस घर में ये कलंकित, अपमानित और निर
हैं, जहाँ त्याज्य हैं, उस घर में मैं पैर रक्खूँगी! भूखों मर जाऊँगी, भ
माँग लूँगी, मजूरी कर लूँगी, लेकिन उन्नाव में पैर न रक्खूँगी! इतना अ
समझ लीजिये!"

उमानाथ ने ताली पीटते हुए कहा, "वेल सेड, भौजी जी! चाहिये
यही! ददुआ को भी ज़रा पता लग जाय कि उनकी अहम्मन्यता को।

स्त्री तक कुचल सकती है ! लेकिन भौजी जी, आप का खर्च कैसे चलेगा, हमारे सामने यह सवाल है। और अगर आप मानें तो एक बात मैं आप से कहूँ !"

"बाबूजी—मानने लायक बात होगी तो मैं ज़रूर मानूंगी !"

उमानाथ ने अपना पर्स निकाला, "अगर हम लोग आपको आपके खर्च के लिए इस समय कुछ रुपया दें तो आप उसे स्वीकार करने से इनकार न कीजिये। और हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि यह रुपया हम लोग अपनी जेब-खर्च से देंगे—ददुआ से न माँगेंगे।"

और इसके पहिले कि राजेश्वरी कुछ कहे, उमानाथ ने अपना पर्स खाली कर दिया। लेकिन उसके पर्स में सिर्फ़ दस-दस रुपए के सोलह नोट निकले। "अरे! मैं भूल गया था; कलकत्ता में बहुत अधिक खर्च हो गया था! प्रभा, देखो तुम्हारे पास कितना रुपया है ?"

प्रभानाथ ने भी अपना पर्स खाली किया, और उसके पास पाँच सौ रुपए थे।

राजेश्वरी ने कहा, "बाबूजी, रहने दीजिये ! अभी तो मेरे पास रुपया है। जब ज़रूरत होगी, माँग लूँगी !"

"अरे ! जब आपको ज़रूरत पड़े तब हमारे पास रुपया निकले या न निकले—कौन जानता है। रखिये भी इसे।

दूसरे दिन सुबह मारीसन को एक होटल में टिकाकर प्रभानाथ के साथ उमानाथ ने अपने घर को प्रस्थान किया।

सातवाँ परिच्छेद

तमाखू फाँकते हुए पण्डित परमानन्द सुकुल ने आवाज़ लगाई, "का हो बाजपेयी जी, कितना विलम्ब है ?"

पण्डित बैजनाथ बाजपेयी ने अपना हाथ रोका। सामने सिल पर भाँग के गोले को, जिसे वे एक घण्टे से पीस रहे थे, देखकर उनके मुख पर संतोष की मुसकराहट आई। उन्होंने उत्तर दिया, "बस सुकुल जी तैयारै है।"

परमानन्द सुकुल ने अपने सामने बैठे हुए नीलकण्ठ अवस्थी से कहा, "सो महाराज कबौं विलहितियनों का प्रायश्चित्त भा है कि आजै होई ?"

बात यद्यपि नीलकण्ठ अवस्थी से कही गई थी पर उत्तर मन्नू दुबे ने दिया, "न कबौं भा है और न आज होई। हम लोग आन कनौजिया और ऊमा बटकुल। ई भ्रष्टाचार हमरी यहाँ नाहीं चल सकत है, यू विश्वास राखौ !"

गणपति अग्निहोत्री से, जो अभी तक बैजनाथ बाजपेयी के सिल-लोढ़े को देख रहे थे, अब न रहा गया; खखार कर बोले, "ई आय बैसवाड़ा, कनौजियन का गढ़ ! हम लोग जो कुछ कर देब वह सास्त्र-सम्मत। हाँ, पंचन की राय अलबत्ता चाही !"

अलगू दीक्षित ने गर्व से अपना मस्तक ऊँचा करके कहा, "ई मा कौनो सक है ! हम जो कर देई ऊ का कौनो काट नहीं सकत है। तौन महाराज इहै लिए हम कहा कि जो कुछ कीन जाय तो जरा सोच-समझ के कीन जाय !"

तब तक बैजनाथ बाजपेयी ने आवाज़ लगाई, "अच्छा ! एक दफ़ा बोलौ विजया-भवानी की जै ! तौन पहिले छानि लेव तब सास्त्रार्थ कीन्हेव !"

ये प्रमुख सभ्य-गण वानापुर में पण्डित रामनाथ तिवारी के अतिथि होकर आए थे। सुबह दस बजे के करीब उमानाथ मोटर से आने वाला था; और तिवारी जी ने अपने लड़के के प्रायश्चित्त का विधान करवाया था। इस प्रायश्चित्त में योग देने के लिए आस-पास के कनौजिया जाति के सरपंच आमंत्रित किये गए थे।

जिस समय भाँग छन रही थी, झगड़ू मिश्र भी आ पहुँचे। भाँग छानकर सरपंच फिर बैठे, अभी केवल आठ बजे थे।

पण्डित परमानन्द सुकुल ने पण्डित झगड़ू मिश्र के सामने चूना-तमाखू से भरी अपनी गदेली फैलाते हुए कहा, "लेव मिसिर जी सुरती! हाँ, तौन तिवारी जी केर बिटवा जर्मनी माँ पढ़ि के लौट रहा है—है न ऐस बात!"

झगड़ू मिश्र ने एक चुटकी तमाखू लेते हुए उत्तर दिया, "हाँ-हाँ! तमाम दुनिया छान के आवा है, तीन साल विलायत में रहा है—मजाक है!"

"तो फिर तुरुकनौ के देस माँ गा होई!" मन्नू दुबे ने एक कुटिल मुसकराहट के साथ पूछा।

मन्नू दुबे की मुसकराहट की कुटिलता को झगड़ू मिश्र नहीं समझ सके, सीधे-सादे उन्होंने उत्तर दिया, "हाँ, काहे नाहीं। तुरुकनौ के देस माँ घूमा है। हम कहा नाहीं कि दुनिया घूम के आय रहा है!"

परमानन्द सुकुल ने अब बम का गोला फेंका, "तो काहे हो मिसिर जी, तुरकन के देस माँ तुरकन के हाथ का भोजनौ कीन्हिस होई! और फिर तुरकन के देस माँ खाद्य-अखाद्य सबै चलत है।

पण्डित परमानन्द के इस प्रश्न से पण्डित झगड़ू मिश्र भड़क उठे। अब उनकी समझ में आया कि मन्नू दुबे और परमानन्द सुकुल का मतलब क्या है। पण्डित मन्नू दुबे और परमानन्द सुकुल अपनी कुलीनता, अपने अभिमान और अपने कटु-स्वभाव के लिए बैसवाड़े में प्रसिद्ध थे। अगर ये दोनों कुलीन कनौजिया किसी से दबते थे तो पण्डित रामनाथ तिवारी से या पण्डित झगड़ू मिश्र से। पण्डित रामनाथ तिवारी से इसलिए कि वे ताल्लुक़दार थे,

शिक्षित थे और चरित्रवान थे; और परिडत झगड़ू मिश्र से इसलिए कि वे सेर के सवासेर थे। अब उन्हें मौक़ा मिला था कि वे पण्डित रामनाथ तिवारी पर हावी हो सकें; और झगड़ू ने इन दोनों के दृष्टिकोण को अच्छी तरह समझ लिया। झगड़ू ने एक बार इन दोनों को कड़ी नज़र से देखा, फिर उन्होंने अपने स्वर को और भी कठोर बनाते हुए कहा, "खटकुल के लिए कौनो चीज अखाद्य नाहीं—यू समझ राख्यो!"

बैजनाथ बाजपेयी, जो छटाक भर भाँग का गोला चढ़ा कर आँख मूँदे गड़गप्प बैठे थे, झगड़ू के इस कड़े स्वर से चौंक उठे। आँखें खोल कर उन्होंने कहा, "ठीक है मिसिर जी! हम लोग स्पर्श-मात्र से अखाद्य का खाद्य, अशुद्ध का शुद्ध बनाय सकित है! कृपा बनी रहे मरघट-निवासी बम भोला-नाथ की। तो भाई एक दफे फिर बोलो विजया भवानी की जै!"

लेकिन बैजनाथ तिवारी का यह वाक्य फीका रहा। यह अवसर हँसी का नहीं था, बातों ने उग्र रूप धारण करना आरम्भ कर दिया था।

नीलकण्ठ अवस्थी इन उपस्थित सज्जनों में सब से अधिक विद्वान समझे जाते थे क्योंकि काशी में उन्होंने पाँच वर्ष तक वैद्यक पढ़ी थी और वहाँ से यह कहते हुए लौटे थे कि परीक्षाफल को योग्यता की कसौटी बनाना सब से बड़ी मूर्खता है। एक बार खखार कर और अति गम्भीर मुद्रा बना कर अवस्थी जी ने कहा, "शास्त्र का विधान जो है शो तोड़ना मनुष्य के लिए वर्जित है। बाजपेयी जी, हम जो कुछ कर सकते हैं वह शास्त्र के विधान से और जो है शो जो कुछ नहीं कर सकते वह भी शास्त्र के विधान से!"

गजपति अग्निहोत्री और नीलकण्ठ अवस्थी में एक ज़मीन के पीछे पुरानी अदावत चली आती थी। अभी तक तो वे मौन दर्शक की भाँति बैठे बात-चीत का रस ले रहे थे, पर अब उनसे न रहा गया। उन्होंने कुछ अजीब तरह से मुँह बना कर कहा, "अवस्थी जी, तुम्हें यह सास्तर की बात करब सोभा नाहीं देत। पाँच बरस कासी माँ रहिके भाड़ै तो झोंकत रहेव—नापास हुई के लौट आएव!"

परमानन्द सुकुल नीलकण्ठ अवस्थी के बहनोई थे। साले का यह अपमान उन्हें अखर गया। कड़क कर उन्होंने कहा, "गजपति पण्डित जरा जवान सम्हाल के बात कीन्देव नाहीं तो जीभ काढ़ लेब !"

गजपति सकपकाए, लेकिन झगड़ू ने गजपति को सहारा दिया क्योंकि गजपति का अपमान परमानन्द सुकुल द्वारा हुआ था। उन्होंने तन कर कहा, "कौन सार ऐस है जो गजपत पर हाथ लगावे—जरा देखी तो! और गजपत कही, फिर कही, एक माँ नाहीं, हजार माँ कही !"

मन्नू दुबे ने अपनी लाठी सम्हालते हुए कहा, "मिसिर जी, तिवारी जी की कोठी माँ बैठि के ई बातें भले करि लेव, बाहर निकसि के करौ तो हम बताई !" यह कह कर मन्नू ने परमानन्द को गर्व से देखा। परमानन्द को सहारा मिला। लाठी लेकर वे खड़े हो गए, "तो फिर मिसिर जी, हम तुम्हार और गजपत की मर्दानगी—। एक दफ़ा ई फिर वह बात निकारैं जबान से; और अगर इहाँ खून-खराबा न हुई गा तो हम बाम्हन नाहीं चमार !"

झगड़ू मिश्र के लिए यह बहुत बड़ी चुनौती थी, उन्होंने भी अपनी लाठी सम्हालते हुए गजपति से कहा, "गजपति पण्डित ! फिर से कहो, और फिर जिहका हमार मर्दानगी देखैं का होय, आवै हमारे सामने !"

गजपति को इसमें तो कोई आपत्ति नहीं थी कि झगड़ू मिश्र में तथा परमानन्द सुकुल एवं मन्नू दुबे में चले; उन्हें इनकी लड़ाई देखने की इच्छा भी थी; पर इस मामले में उन्हें शक था कि पहला वार झगडू पर होगा या उनपर होगा; सम्भावना यही थी कि पहला वार उन्हीं पर हो, और अपने ऊपर पहला हाथ पड़ने में उन्हें बहुत बड़ी आपत्ति थी। इसलिए उन्होंने झगड़ू का आश्वासन होते हुए भी मौन रहना ही उचित समझा।

कुछ देर तक गजपति का इंतज़ार करने के बाद झगड़ू ने ज़रा ज़ोर से कहा, "काहे हो गणपति पण्डित ! गूंगे हुइ गए हौ का ? कहौ ना—देखी ई लोग का बिगाड़े लेत हैं !"

लेकिन गजपति लड़ाई-झगड़े के बीच में पड़ने को जरा भी तैयार नहीं नज़र आए।

झुँझला कर झगड़ू ने कहा, "कायर कहूँ का सार! अच्छा तो सुनौ परमानन्द और मन्नू! हम कहित है नीलकण्ठ से कि पाँच बरस तक उइ कासी मां भाड़ झोंकिन! शास्त्र की बात चलावब उन्हें सोभा नाहीं देत है! अब जेहिकी-जेहिकी इच्छा होय वह बाहर निकल आवे और निपट लेय!"

लाठी उठाकर मन्नू दुबे और परमानन्द सुकुल दोनों उठ खड़े हुए! झगड़ू के साथ दोनों बाहर निकले। और उनके पीछे-पीछे अन्य अतिथिगण दर्शक की हैसियत से उन लोगों को भड़काते हुए, या बीच-बराव कराने की कोशिश करते हुए चले।

लेकिन उस दिन वाली फ़ौजदारी शायद भगवान को मंजूर न थी क्योंकि जैसे ही इन सज्जनों ने दालान पार की वैसे ही पण्डित रामनाथ तिवारी अपनी कोठी से बाहर निकले। इन लोगों को शोर मचाते हुए और लाठी लिए हुए निकलते देखकर रामनाथ तिवारी को शक हुआ। आगे बढ़कर उन्होंने पूछा, "क्यों क्या मामला है?"

झगड़ू ने रामनाथ से कहा, "बैठो हो तिवारी जी, हम लोग अबहीं आवत हन! जरा हम लोगन माँ कुछ विवाद उठ खड़ा रहै सो उइका निर्णय करैं का है।"

रामनाथ तिवारी ने गम्भीरता पूर्वक कहा, "इस विवाद पर आप लोग फिर कभी निर्णय कर लीजियेगा, अभी इसका अवसर नहीं है।"

परमानन्द ने कहा, "तिवारी जी, आप न बोलैं! जरा हम देख लेई कि ई कहाँ के धन्नासाह हैं!"

"अच्छा—बहुत हो चुका। चलिये, बैठिये चलकर!" कुछ आज्ञ के स्वर में पण्डित रामनाथ तिवारी ने कहा।

पण्डित रामनाथ तिवारी के इस स्वर से सब लोग भलीभाँति परिचि थे, चुपचाप सब लोग घूम पड़े। दालान में पहुँच कर फिर सब पंच लोग बै गए; रामनाथ भी अब उस समुदाय में शामिल हो गए थे।

इसी समय मोटर का हार्न सुनाई पड़ा। रामनाथ तिवारी उत्सुकता के साथ बाहर निकले, झगड़ू मिश्र भी उनके साथ थे!

२

कार रोकते हुए प्रभानाथ ने उमानाथ से कहा, "मझले भइया, आपको याद है न कि हिंदुस्तान में, और खास तौर से बानापुर में पिता के चरण छूने की प्रथा है!"

"हाँ प्रभा! तुम निश्चिंत रहो। मैं जानता हूँ कि यह जंगली प्रथा हम लोगों में प्रचलित है!" उमानाथ ने मुसकराते हुए उत्तर दिया।

"जी हाँ, लेकिन कहीं यह न भूल जाइयेगा कि दद्दुआ इस जंगली प्रथा के बहुत बड़े हिमायती हैं!" यह कहकर प्रभानाथ कार से उतर पड़ा। उसने बढ़कर अपने पिता के चरण छुए।

उमानाथ को भी अपने पिता के चरण छूने पड़े। फिर झगड़ू की ओर देखकर उसने कहा, "हलो झगड़ू काका! प्रणाम। आप, अच्छी तरह तो हैं!"

इस 'हलो' तथा कुशल-क्षेम के प्रश्न को सुनकर झगड़ू गदगद हो गए। "आशीर्वाद मझले कुँवर। बहुत दिनन बाद आए हो! तीन दुनिया घूम के अब ई दिहात माँ आय रहे हौ......" और यह न समझ पा कर कि अब आगे क्या कहा जाय, झगड़ू चुप हो गए।

रामनाथ ने कहा, "उमा! घर के अन्दर प्रवेश करने के पहले तुम्हें मेरे साथ चलना पड़ेगा!" यह कह कर वे घूम पड़े।

झगड़ू के साथ उमानाथ ने रामनाथ का अनुसरण किया; प्रभानाथ कार से असबाब उतरवाने में लग गया।

जिस समय ये लोग प्रायश्चित्त में सम्मिलित होने के लिए आमन्त्रित सभ्यगणों के सामने पहुँचे, सभ्यगण विवाद में व्यस्त थे। विवाद का विषय

झुँझला कर झगड़ू ने कहा, "कायर कहूँ का सार! अच्छा तो सुनौ परमानन्द और मन्नू! हम कहित है नीलकण्ठ से कि पाँच बरस तक उइ कासी मां भाड़ झोंकिन! शास्त्र की बात चलावब उन्हें सोभा नाहीं देत है! अब जेहिकी-जेहिकी इच्छा होय वह बाहर निकल आवे और निपट लेय!"

लाठी उठाकर मन्नू दुवे और परमानन्द सुकुल दोनों उठ खड़े हुए! झगड़ू के साथ दोनों बाहर निकले। और उनके पीछे-पीछे अन्य अतिथिगण दर्शक की हैसियत से उन लोगों को भड़काते हुए, या बीच-बराव कराने की कोशिश करते हुए चले।

लेकिन उस दिन वाली फ़ौजदारी शायद भगवान को मंजूर न थी क्योंकि जैसे ही इन सज्जनों ने दालान पार की वैसे ही पण्डित रामनाथ तिवारी अपनी कोठी से बाहर निकले। इन लोगों को शोर मचाते हुए और लाठी लिए हुए निकलते देखकर रामनाथ तिवारी को शक हुआ। आगे बढ़कर उन्होंने पूछा, "क्यों क्या मामला है?"

झगड़ू ने रामनाथ से कहा, "बैठो हो तिवारी जी, हम लोग अबहीं आवत हन! जरा हम लोगन माँ कुछ विवाद उठ खड़ा रहै सो उइका निर्णय करै का है।"

रामनाथ तिवारी ने गम्भीरता पूर्वक कहा, "इस विवाद पर आप लोग फिर कभी निर्णय कर लीजियेगा, अभी इसका अवसर नहीं है।"

परमानन्द ने कहा, "तिवारी जी, आप न बोलैं! जरा हम देख लेई कि ई कहाँ के धन्नासाह हैं!"

"अच्छा—बहुत हो चुका। चलिये, बैठिये चलकर!" कुछ आज्ञा के स्वर में पण्डित रामनाथ तिवारी ने कहा।

पण्डित रामनाथ तिवारी के इस स्वर से सब लोग भलीभाँति परिचित थे, चुपचाप सब लोग घूम पड़े। दालान में पहुँच कर फिर सब पंच लोग बैठ गए; रामनाथ भी अब उस समुदाय में शामिल हो गए थे।

इसी समय मोटर का हार्न सुनाई पड़ा। रामनाथ तिवारी उत्सुकता के
थ बाहर निकले, झगड़ू मिश्र भी उनके साथ थे!

२

कार रोकते हुए प्रभानाथ ने उमानाथ से कहा, "मझले भइया, आपको
द है न कि हिंदुस्तान में, और खास तौर से बानापुर में पिता के चरण
ने की प्रथा है।"

"हाँ प्रभा! तुम निश्चित रहो। मैं जानता हूँ कि यह जंगली प्रथा हम
गों में प्रचलित है!" उमानाथ ने मुसकराते हुए उत्तर दिया।

"जी हाँ, लेकिन कहीं यह न भूल जाइयेगा कि ददुआ इस जंगली प्रथा
बहुत बड़े हिमायती हैं!" यह कहकर प्रभानाथ कार से उतर पड़ा। उसने
ुकर अपने पिता के चरण छुए।

उमानाथ को भी अपने पिता के चरण छूने पड़े। फिर झगड़ू की ओर
खकर उसने कहा, "हलो झगड़ू काका! प्रणाम। आप अच्छी तरह
हैं!"

इस 'हलो' तथा कुशल-क्षेम के प्रश्न को सुनकर झगड़ू गदगद हो गए।
आशीर्वाद मझले कुँवर। बहुत दिनन बाद आए हो! तीन दुनिया घूम के
ब ई दिहात माँ आय रहे हौ......" और यह न समझ पा कर कि अब
ागे क्या कहा जाय, झगड़ू चुप हो गए।

रामनाथ ने कहा, "उमा! घर के अन्दर प्रवेश करने के पहले तुम्हें मेरे
ाथ चलना पड़ेगा!" यह कह कर वे घूम पड़े।

झगड़ू के साथ उमानाथ ने रामनाथ का अनुसरण किया; प्रभानाथ
ार से असबाब उतरवाने में लग गया।

जिस समय ये लोग प्रायश्चित्त में सम्मिलित होने के लिए आमन्त्रित
भ्यगणों के सामने पहुँचे, सभ्यगण विवाद में व्यस्त थे। विवाद का विषय

झुँझला कर झगड़ू ने कहा, "कायर कहूँ का सार! अच्छा तो सुनौ परमानन्द और मन्नू! हम कहित है नीलकण्ठ से कि पाँच बरस तक उइ कासी मां भाड़ झोंकिन! शास्त्र की बात चलावब उन्हें सोभा नाहीं देत है! अब जेहिकी-जेहिकी इच्छा होय वह बाहर निकल आवे और निपट लेय!"

लाठी उठाकर मन्नू दुवे और परमानन्द सुकुल दोनों उठ खड़े हुए! झगड़ू के साथ दोनों बाहर निकले। और उनके पीछे-पीछे अन्य अतिथिगण दर्शक की हैसियत से उन लोगों को भड़काते हुए, या बीच-बराव कराने की कोशिश करते हुए चले।

लेकिन उस दिन वाली फ़ौजदारी शायद भगवान को मंजूर न थी क्योंकि जैसे ही इन सज्जनों ने दालान पार की वैसे ही पण्डित रामनाथ तिवारी अपनी कोठी से बाहर निकले। इन लोगों को शोर मचाते हुए और लाठी लिए हुए निकलते देखकर रामनाथ तिवारी को शक हुआ। आगे बढ़कर उन्होंने पूछा, "क्यों क्या मामला है?"

झगड़ू ने रामनाथ से कहा, "बैठो हो तिवारी जी, हम लोग अबहीं आवत हन! जरा हम लोगन माँ कुछ विवाद उठ खड़ा रहै सो उइका निर्णय करैं का है।"

रामनाथ तिवारी ने गम्भीरता पूर्वक कहा, "इस विवाद पर आप लोग फिर कभी निर्णय कर लीजियेगा, अभी इसका अवसर नहीं है।"

परमानन्द ने कहा, "तिवारी जी, आप न बोलैं! जरा हम देख लेई कि ई कहाँ के धन्नासाह हैं!"

"अच्छा—बहुत हो चुका। चलिये, बैठिये चलकर!" कुछ आज्ञा के स्वर में पण्डित रामनाथ तिवारी ने कहा।

पण्डित रामनाथ तिवारी के इस स्वर से सब लोग भलीभाँति परिचित थे, चुपचाप सब लोग घूम पड़े। दालान में पहुँच कर फिर सब पंच लोग बैठ गए; रामनाथ भी अब उस समुदाय में शामिल हो गए थे।

इसी समय मोटर का हार्न सुनाई पड़ा। रामनाथ तिवारी उत्सुकता के साथ बाहर निकले, झगड़ू मिश्र भी उनके साथ थे !

२

कार रोकते हुए प्रभानाथ ने उमानाथ से कहा, "मझले भइया, आपको याद है न कि हिंदुस्तान में, और खास तौर से बानापुर में पिता के चरण छूने की प्रथा है।"

"हाँ प्रभा ! तुम निश्चित रहो। मैं जानता हूँ कि यह जंगली प्रथा हम लोगों में प्रचलित है !" उमानाथ ने मुसकराते हुए उत्तर दिया।

"जी हाँ, लेकिन कहीं यह न भूल जाइयेगा कि ददुआ इस जंगली प्रथा के बहुत बड़े हिमायती हैं !" यह कहकर प्रभानाथ कार से उतर पड़ा। उसने बढ़कर अपने पिता के चरण छुए।

उमानाथ को भी अपने पिता के चरण छूने पड़े। फिर झगड़ू की ओर देखकर उसने कहा, "हलो झगड़ू काका ! प्रणाम। आप अच्छी तरह तो हैं !"

इस 'हलो' तथा कुशल-क्षेम के प्रश्न को सुनकर झगड़ू गदगद हो गए। "आशीर्वाद मझले कुँवर। बहुत दिनन बाद आए हो ! तीन दुनिया घूम के अब ई दिहात माँ आय रहे हौ......" और यह न समझ पा कर कि अब आगे क्या कहा जाय, झगड़ू चुप हो गए।

रामनाथ ने कहा, "उमा ! घर के अन्दर प्रवेश करने के पहले तुम्हें मेरे साथ चलना पड़ेगा !" यह कह कर वे घूम पड़े।

झगड़ू के साथ उमानाथ ने रामनाथ का अनुसरण किया; प्रभानाथ कार से असबाब उतरवाने में लग गया।

जिस समय ये लोग प्रायश्चित्त में सम्मिलित होने के लिए आमन्त्रित सभ्यगणों के सामने पहुँचे, सभ्यगण विवाद में व्यस्त थे। विवाद का विषय

झुँझला कर झगड़ू ने कहा, "कायर कहूँ का सार! अच्छा तो सुनौ परमानन्द और मन्नू! हम कहित हैं नीलकण्ठ से कि पाँच बरस तक उइ कासी मां भाड़ झोंकिन! शास्त्र की बात चलावब उन्हैं सोभा नाहीं देत है! अब जेहिकी-जेहिकी इच्छा होय वह बाहर निकल आवे और निपट लेय!"

लाठी उठाकर मन्नू दुबे और परमानन्द सुकुल दोनों उठ खड़े हुए! झगड़ू के साथ दोनों बाहर निकले। और उनके पीछे-पीछे अन्य अतिथिगण दर्शक की हैसियत से उन लोगों को भड़काते हुए, या बीच-बचाव कराने की कोशिश करते हुए चले।

लेकिन उस दिन वाली फ़ौजदारी शायद भगवान को मंजूर न थी क्योंकि जैसे ही इन सज्जनों ने दालान पार की वैसे ही पण्डित रामनाथ तिवारी अपनी कोठी से बाहर निकले। इन लोगों को शोर मचाते हुए और लाठी लिए हुए निकलते देखकर रामनाथ तिवारी को शक हुआ। आगे बढ़कर उन्होंने पूछा, "क्यों क्या मामला है?"

झगड़ू ने रामनाथ से कहा, "बैठो हो तिवारी जी, हम लोग अबहीं आवत हन! जरा हम लोगन माँ कुछ विवाद उठ खड़ा रहै सो उइका निर्णय करैं का है।"

रामनाथ तिवारी ने गम्भीरता पूर्वक कहा, "इस विवाद पर आप लोग फिर कभी निर्णय कर लीजियेगा, अभी इसका अवसर नहीं है।"

परमानन्द ने कहा, "तिवारी जी, आप न बोलैं! जरा हम देख लेई कि ई कहाँ के धन्नासाह हैं!"

"अच्छा—बहुत हो चुका। चलिये, बैठिये चलकर!" कुछ आज्ञा के स्वर में पण्डित रामनाथ तिवारी ने कहा।

पण्डित रामनाथ तिवारी के इस स्वर से सब लोग भलीभाँति परिचित थे, चुपचाप सब लोग घूम पड़े। दालान में पहुँच कर फिर सब पंच लोग बैठ गए; रामनाथ भी अब उस समुदाय में शामिल हो गए थे।

इसी समय मोटर का हार्न सुनाई पड़ा। रामनाथ तिवारी उत्सुकता के साथ बाहर निकले, झगड़ू मिश्र भी उनके साथ थे!

२

कार रोकते हुए प्रभानाथ ने उमानाथ से कहा, "मझले भइया, आपको याद है न कि हिंदुस्तान में, और खास तौर से बानापुर में पिता के चरण छूने की प्रथा है।"

"हाँ प्रभा! तुम निश्चिंत रहो। मैं जानता हूँ कि यह जंगली प्रथा हम लोगों में प्रचलित है!" उमानाथ ने मुसकराते हुए उत्तर दिया।

"जी हाँ, लेकिन कहीं यह न भूल जाइयेगा कि ददुआ इस जंगली प्रथा के बहुत बड़े हिमायती हैं!" यह कहकर प्रभानाथ कार से उतर पड़ा। उसने बढ़कर अपने पिता के चरण छुए।

उमानाथ को भी अपने पिता के चरण छूने पड़े। फिर झगड़ू की ओर देखकर उसने कहा, "हलो झगड़ू काका! प्रणाम। आप, अच्छी तरह तो हैं!"

इस 'हलो' तथा कुशल-क्षेम के प्रश्न को सुनकर झगड़ू गदगद हो गए। "आशीर्वाद मझले कुँवर। बहुत दिनन बाद आए हो! तीन दुनिया घूम के अब ई दिहात माँ आय रहे हौ......" और यह न समझ पा कर कि अब आगे क्या कहा जाय, झगड़ू चुप हो गए।

रामनाथ ने कहा, "उमा! घर के अन्दर प्रवेश करने के पहले तुम्हें मेरे साथ चलना पड़ेगा!" यह कह कर वे घूम पड़े।

झगड़ू के साथ उमानाथ ने रामनाथ का अनुसरण किया; प्रभानाथ कार से असबाब उतरवाने में लग गया।

जिस समय ये लोग प्रायश्चित्त में सम्मिलित होने के लिए आमन्त्रित सभ्यगणों के सामने पहुँचे, सभ्यगण विवाद में व्यस्त थे। विवाद का विषय

झुँझला कर झगड़ू ने कहा, "कायर कहूँ का सार! अच्छा तो सुनौ परमानन्द और मन्नू! हम कहित है नीलकण्ठ से कि पाँच बरस तक उइ कासी मां भाड़ झोकिन! शास्त्र की बात चलावब उन्हें सोभा नाहीं देत है! अब जेहिकी-जेहिकी इच्छा होय वह बाहर निकल आवे और निपट लेय!"

लाठी उठाकर मन्नू दुबे और परमानन्द सुकुल दोनों उठ खड़े हुए! झगड़ू के साथ दोनों बाहर निकले। और उनके पीछे-पीछे अन्य अतिथिगण दर्शक की हैसियत से उन लोगों को भड़काते हुए, या बीच-बराव कराने की कोशिश करते हुए चले।

लेकिन उस दिन वाली फ़ौजदारी शायद भगवान को मंजूर न थी क्योंकि जैसे ही इन सज्जनों ने दालान पार की वैसे ही पण्डित रामनाथ तिवारी अपनी कोठी से बाहर निकले। इन लोगों को शोर मचाते हुए और लाठी लिए हुए निकलते देखकर रामनाथ तिवारी को शक हुआ। आगे बढ़कर उन्होंने पूछा, "क्यों क्या मामला है?"

झगड़ू ने रामनाथ से कहा, "बैठो हो तिवारी जी, हम लोग अबहीं आवत हन! जरा हम लोगन माँ कुछ विवाद उठ खड़ा रहै सो उइका निर्णय करै का है।"

रामनाथ तिवारी ने गम्भीरता पूर्वक कहा, "इस विवाद पर आप लोग फिर कभी निर्णय कर लीजियेगा, अभी इसका अवसर नहीं है।"

परमानन्द ने कहा, "तिवारी जी, आप न बोलैं! जरा हम देख लेई कि ई कहाँ के धन्नासाह हैं!"

"अच्छा—बहुत हो चुका। चलिये, बैठिये चलकर!" कुछ आज्ञा के स्वर में पण्डित रामनाथ तिवारी ने कहा।

पण्डित रामनाथ तिवारी के इस स्वर से सब लोग भलीभाँति परिचित थे, चुपचाप सब लोग घूम पड़े। दालान में पहुँच कर फिर सब पंच लोग बैठ गए; रामनाथ भी अब उस समुदाय में शामिल हो गए थे।

इसी समय मोटर का हार्न सुनाई पड़ा। रामनाथ तिवारी उत्सुकता के साथ बाहर निकले, झगड़ू मिश्र भी उनके साथ थे !

२

कार रोकते हुए प्रभानाथ ने उमानाथ से कहा, "मझले भइया, आपको याद है न कि हिंदुस्तान में, और खास तौर से बानापुर में पिता के चरण छूने की प्रथा है।"

"हाँ प्रभा ! तुम निश्चित रहो। मैं जानता हूँ कि यह जंगली प्रथा हम लोगों में प्रचलित है !" उमानाथ ने मुसकराते हुए उत्तर दिया।

"जी हाँ, लेकिन कहीं यह न भूल जाइयेगा कि ददुआ इस जंगली प्रथा के बहुत बड़े हिमायती हैं !" यह कहकर प्रभानाथ कार से उतर पड़ा। उसने बढ़कर अपने पिता के चरण छुए।

उमानाथ को भी अपने पिता के चरण छूने पड़े। फिर झगड़ू की ओर देखकर उसने कहा, "हलो झगड़ू काका ! प्रणाम। आप, अच्छी तरह तो हैं !"

इस 'हलो' तथा कुशल-क्षेम के प्रश्न को सुनकर झगड़ू गदगद हो गए। "आशीर्वाद मझले कुँवर। बहुत दिनन बाद आए हो ! तौन दुनिया घूम के अब ई दिहात माँ आय रहे हौ......" और यह न समझ पा कर कि अब आगे क्या कहा जाय, झगड़ू चुप हो गए।

रामनाथ ने कहा, "उमा ! घर के अन्दर प्रवेश करने के पहले तुम्हें मेरे साथ चलना पड़ेगा !" यह कह कर वे घूम पड़े।

झगड़ू के साथ उमानाथ ने रामनाथ का अनुसरण किया; प्रभानाथ कार से असबाब उतरवाने में लग गया।

जिस समय ये लोग प्रायश्चित्त में सम्मिलित होने के लिए आमन्त्रित सभ्यगणों के सामने पहुँचे, सभ्यगण विवाद में व्यस्त थे। विवाद का विषय

यह था कि क्या उमानाथ के प्रायश्चित्त करने से रामनाथ तिवारी का कुल अपनी मर्यादा क़ायम रख सकेगा या नहीं। पर इन लोगों के पहुँचते ही विवाद बन्द हो गया। रामनाथ तिवारी ने बैठते हुए कहा, "तो मिश्र जी, फिर प्रायश्चित्त के लिए सब तैयारी पूरी है न!"

झगड़ू ने एक बार सभ्यगणों पर निगाह डाली, फिर वे बोले, "हाँ तिवारी जी, सब कुछ तैयार है!"

मन्नू दुबे ने, जो प्रायश्चित्त विरोधी दल के नेता थे, साहस किया, "तिवारी जी, हम कनौजियन माँ बिलइतिहन का न कबौं प्रायश्चित्त भा है, और न आज होई। हम सब पंचन की तो राय कुछ ऐसी है।"

रामनाथ तिवारी ने अपने सम्मुख बैठे हुए लोगों को एक बार आश्चर्य पूर्वक ध्यान से देख कर कहा "दुबे जी, आपके साथ जो-जो पंच शामिल हों वे स्वयम् यह बात कहें; मौन का अर्थ स्वीकृति समझा जायगा!"

अब परमानन्द सुकुल ने कहा, "हम लोग सब हीं अपन कुल और समाज की मर्यादा भला इहाँ को छोड़ सकत हैं?"

"हाँ ठीकै तो है!" पण्डित नीलकण्ठ अवस्थी ने परमानन्द का साथ दिया, "भला हम लोग कबौं शास्त्र के बाहर जाय सकित है? कुल और समाज की मर्यादा सब के ऊपर है!"

झगड़ू मिश्र से अब न रह गया, उन्होंने नीलकण्ठ की आँख से आँख मिलाकर कहा, "काहे हो अवस्थी जी जब तुम्हरी राँड़ भौजाई घर से निकसि गई, तब कुल की मर्यादा कहाँ गई रहै?"

"कहा कहेव मिसिर जी!" परमानन्द ने लाठी उठाते हुए कहा, "जरा एक दफा फिर तो ई बात बोलो!"

झगड़ू के हाथ में भी लाठी तन गई थी, वे बोलना ही चाहते थे, कि रामनाथ तिवारी ने उनका हाथ पकड़ कर उन्हें रोका, "इस बात से यहाँ कोई मतलब नहीं। सवाल यह है कि इस प्रायश्चित्त में कौन-कौन शरीक है?"

"हम तैयार!" बैजनाथ बाजपेयी ने कहा।

"हम तैयार!" अलगू दीक्षित ने कहा।

"हम तैयार! गजपति अग्निहोत्री ने कहा।

"लेकिन मैं नहीं तैयार!" उमानाथ जो मौन खड़ा यह काण्ड देख रहा था, बोल उठा, "यह सब स्वाँग आप ही को मुबारक रहे ददुआ। ये कुत्तों से भी गए बीते आदमी हमारे घर में आकर हमारा ही अपमान करें और आप सब कुछ चुपचाप देखते रहें, चुपचाप सुनते रहें! मुझे आप पर आश्चर्य हो रहा है!"

झगड़ू मिश्र ने गर्व से उमानाथ की ओर देखा, "शाबाश—मझले कुँवर—ठीक कहेव! चलौ तिवारी जी, प्रायश्चित्त की कौनो आवश्यकता नाहीं, आगे चल के दीख जाई!"

लेकिन कुत्ते से अपनी तुलना परमानन्द सुकुल और मन्नू दुबे को बहुत अखरी! मन्नू दुबे ने उठते हुए कहा, "लड़कऊ—यू याद राखेव! घर माँ अतिथि बुलाय के उनका अपमान करब सब से बड़ा पाप आय! तुम्हार कुल का कुल नष्ट हुइ जाई—आज ब्राह्मण के मुख से यू वाक्य निकसा है, और ई का फल मिली।

३

महालक्ष्मी ने प्रभानाथ के उतरे हुए चेहरे को देख कर पूछा, "क्यों, क्या बात है बाबू जी! कुशल तो है? वह कहाँ हैं?"

अपनी गम्भीरता और उदासी को छिपाने का विफल प्रयत्न करते हुए प्रभानाथ ने कहा, "यों ही, रास्ते की थकावट है भौजी जी! मझले भइया को ददुआ प्रायश्चित्त कराने ले गए हैं, अभी आते ही होंगे।"

प्रभानाथ के इस उत्तर से महालक्ष्मी को संतोष नहीं हुआ। वह अपने देवर के स्वभाव को अच्छी तरह जानती थी, इतनी थकावट से प्रभानाथ उदास होने वाला नहीं था। एक भावी आशंका उसके हृदय में समा गई,

उसका मन बैठ-सा गया। प्रभानाथ अपनी भौजी के पास ठहरा नहीं, सीधे वह अपने कमरे में चला गया।

थोड़ी देर तक महालक्ष्मी उदास खड़ी दरवाज़े की ओर देखती रही, इसके बाद उसे पैरों की आहट सुनाई दी। उसने देखा कि उसके ससुर के साथ उसके पति आ रहे हैं; उसने घूँघट काढ़ लिया और वह कमरे के अन्दर चली गई।

उमानाथ को उसके कमरे के द्वार पर छोड़ते हुए रामनाथ ने कहा, "अच्छा, तुम थके हुए होगे, जाओ आराम करो जाकर।" और रामनाथ तिवारी चले गए।

उमानाथ ने अपने कमरे में प्रवेश किया। एक बार उसने अपने चारों तरफ़ देखा; धुँधला अतीत उसकी दृष्टि के सामने स्पष्ट होने लगा। महालक्ष्मी एक कोने में मौन खड़ी प्रतीक्षा कर रही थी कि उसके स्वामी आगे बढ़कर आवें—उसको अपने भुजा-पाश में आबद्ध कर लें। वह करीब बीस सेकण्ड इसी तरह खड़ी रही, पर उमानाथ आगे नहीं बढ़ा। ये बीस सेकण्ड महालक्ष्मी को बीस मिनट, बीस घण्टे, बीस वर्ष—नहीं बीस युग से भी अधिक लगे।

८

अब उससे अधिक प्रतीक्षा न की गई; विकल, अस्त-व्यस्त वह बढ़ी और अपने स्वामी, अपने देवता के चरणों पर वह रोती हुई गिर पड़ी।

लेकिन उसका यह सुख भी अधिक देर तक न रह सका; उमानाथ ने हँसते हुए कहा, "यह क्या मज़ाक़ हो रहा है? उठो भी, आखिर यह सब जंगलीपन क्या तुम लोग नहीं छोड़ सकतीं?" और यह कहकर उमानाथ दो क़दम पीछे हट गया।

महालक्ष्मी के हृदय में धक्का-सा लगा। दो वर्ष तक वह जिसकी माला जपती रही, जिस देवता की प्रतिमा को अपने हृदय-मन्दिर में स्थापित करके आँसुओं से नहलाती रही, जिसे श्वासों का संगीत सुनाती रही, वही देवता उसकी पूजा का, उसकी भावना का निरादर कर रहा था, तिरस्कार कर रहा

था। मर्माहत नत-मस्तक उपेक्षिता सी वह उठ खड़ी हुई। उसने एक बार उमानाथ को ध्यान से देखा, उसने पहचानने की कोशिश की कि उसके सामने उसके स्वामी ही हैं या और कोई है! और उसने देखा कि उसको धोखा नहीं हुआ। वही उमानाथ—सुन्दर, स्वस्थ, लापरवाही की मस्ती से भरा हुआ—उसके सामने खड़ा था, वह उमानाथ जिसपर उसे गर्व था, जिसको पति-रूप में पाकर उसने अपना जीवन धन्य समझा था।

और एकाएक महालक्ष्मी की दृष्टि उमानाथ के शरीर को चीरती हुई उसकी आत्मा तक पहुँच गई। उसने उमानाथ की आत्मा में एक अजीब तरह का धुँधलापन देखा; उसने देखा कि उसके स्वामी के हृदय का स्पन्दन मन्द तथा शिथिल पड़ गया है—वह सिहर उठी।

उमानाथ एक कुरसी पर बैठ गया और कुतूहल के साथ महालक्ष्मी को देखने लगा। वह महालक्ष्मी की उस करुणा से भरी हुई तेज़ दृष्टि को न समझ सका, उसने मुसकराते हुए कहा, "कहो! तुम अच्छी तरह तो रहीं?"

"जी हाँ—आपके आशीर्वाद से!" महालक्ष्मी ने धीमे से कहा।

"लेकिन तुमने मुझसे कुछ नहीं पूछा! खैर मैं स्वयम् बतलाए देता हूँ कि मैं अच्छी तरह रहा। देवी, मैंने दुनिया देखी है; बड़ी मज़ेदार जगह है। मुझे अफ़सोस है कि तुम मेरे साथ नहीं चलीं!......"

उमानाथ और कुछ कहता, लेकिन महालक्ष्मी को अपनी तरफ़ एक विचित्र प्रकार से देखते देख कर वह रुक गया। उमानाथ महालक्ष्मी की उस दृष्टि को तो नहीं समझ सका, उस दृष्टि में तीव्र करुणा से भरी हुई ममता को तो वह नहीं पहचान सका, लेकिन इतना उसने अवश्य अनुभव किया कि उस दृष्टि में कुछ अनोखापन है, ऐसी कोई चीज़ है जिससे वह परिचित नहीं है, जो उसके लिए नई है, एक पहेली के रूप में है।

उमानाथ ने बात बदली, "अच्छा, जानती हो कि मैं थका हुआ हूँ। नहाने का इंतज़ाम करवा दो, कपड़े बदल डालूँ!"

४

शाम को चार बजे श्यामनाथ की कार रामनाथ की कोठी के सामने रुकी। रामनाथ तिवारी उस समय सो रहे थे। प्रभानाथ ने उनका स्वागत किया! "अरे प्रभा! तो तुम आ गए!—उमा भी साथ आया है न!" श्यामनाथ ने पूछा।

"जी हाँ!" प्रभानाथ ने उत्तर दिया।

"लेकिन तुम फ़तेहपुर क्यों नहीं ठहरे?" श्यामनाथ ने ज़रा कड़े स्वर में पूछा।

"मुझे यहाँ आने की जल्दी थी—और दद्दुआ ने सीधे यहाँ आने को कहा था।"

"दद्दुआ ने कहा था! तो दद्दुआ सब कुछ हैं और मैं कुछ नहीं; जो कुछ वह कहें वही हो! मैं कभी यह बर्दाश्त नहीं कर सकता!" श्यामनाथ ने मेज़ पर हाथ पटकते हुए कहा।

श्यामनाथ ने इतनी ज़ोर से हाथ पटका था कि उसकी आवाज़ से पण्डित रामनाथ तिवारी की, जो बग़ल वाले कमरे में ही लेटे हुए थे, नींद टूट गई। उन्होंने वहीं से आवाज़ दी, "अबे ओ लखना के बच्चे! देख तो यह शोर कौन कर रहा है?"

"सरकार छुटके राजा आए हैं!" लखना ने उत्तर दिया।

"श्यामू आया है? कब?" पलंग पर उठ कर बैठते हुए रामनाथ ने कहा, "उसे यहाँ भेज दो!"

श्यामनाथ ने जा कर अपने बड़े भाई के चरण छुए।

"आशीर्वाद!" रामनाथ ने कहा, "कहो, इतनी धूप में कैसे आए? कोई ख़ास बात है?"

"जी हाँ!" दबी ज़बान श्यामनाथ ने कहा।

थोड़ी देर तक रामनाथ श्यामनाथ के बात की प्रतीक्षा करते रहे; पर श्यामनाथ को साहस न हो रहा था कि वे अपनी बात कहें। कुछ झुँझला कर रामनाथ ने कहा, "कहो न! क्या कहना है?"

"कल दया गिरफ़्तार हो गया!"

"दया गिरफ़्तार हो गया?" रामनाथ चौंक उठे, पर उन्होंने वैसे ही अपने को सम्हाल लिया। कुछ देर वे सोचते रहे, इसके बाद उन्होंने कहा, "तो फिर क्या करूँ? जो जैसा करेगा वैसा भोगेगा भी! जानते हो श्यामू, कलक्टर ने मुझे पहले ही अगाह किया था, और उनके पत्र को पाकर मैंने दया से कांग्रेस छोड़ देने को भी कहा था। लेकिन उसने घर से अलग होना—हम लोगों से छूट जाना पसन्द किया, लेकिन कांग्रेस छोड़ना उसे मंजूर न था।

"वह तो जो कुछ होना था हो गया। अब सवाल हमारे सामने यह है कि उसकी पैरवी करके किस प्रकार उसे जेल जाने से बचाया जाय!" श्यामनाथ ने कहा।

"उसकी पैरवी करने की, उसे बचाने की सोचने की कोई आवश्यकता नहीं!" रूखे स्वर में रामनाथ ने कहा, "मैंने उसे घर से अलग कर दिया है, मेरे लिए वह मर चुका है—उसका कोई अस्तित्व नहीं!"

"उसका कोई अस्तित्व न सही, लेकिन उसके बीबी-बच्चे तो हैं। वे लोग हमारे ही कुल के हैं। दुनिया क्या कहेगी?"

"दुनिया की मुझे कोई परवाह नहीं; दुनिया को खुश रखने के लिए अपने विश्वास को तोड़ा जाय, अपने सिद्धान्त से गिरा जाय, कमज़ोरी दिखाई जाय! श्यामू, मैं इस पर विश्वास नहीं करता। मुझे ताज्जुब तो यह है कि मुझे अच्छी तरह जानते हुए तुमने यह बात मुझसे कैसे कही!"

श्यामनाथ निरुत्तर रह गए। घर से वे न जाने क्या-क्या सोच कर चले थे, लेकिन रामनाथ के सामने पहुँचते ही उनके सारे मंसूबे, सब विचार प्रखर सूर्य के सामने बरफ़ की तरह गल कर बह गए। कुछ देर तक वे मौन

और उदास बैठे रहे फिर उन्होंने एक ठंढी साँस लेकर कहा, "जैसी आपकी इच्छा ! लेकिन बड़ी बहू और राजेश-ब्रजेश का तो प्रबन्ध करना ही पड़ेगा।"

"हाँ !" कुछ सोच कर रामनाथ ने कहा, "उनका प्रबन्ध करना ही पड़ेगा। कल ही मैं उमा या प्रभा को कानपुर भेजूँगा उन्हें यहाँ ले आने के लिए।"

"कल क्यों, आज क्यों नहीं ? आप जानते ही हैं कि वे लोग वहाँ अकेले हैं।"

"ठीक कहते हो !" रामनाथ ने आवाज़ दी, "अबे ओ लखना—छुटके भइया को यहाँ भेज दे !"

प्रभानाथ अभी तक बग़ल के कमरे में ही बैठा था। लखना के कहने की बिना प्रतीक्षा किए हुए ही वह रामनाथ के कमरे में दाखिल हुआ।'

"तुम्हें मालूम है कि दया गिरफ़्तार हो गया !" रामनाथ ने पूछा।

"जी हाँ !" प्रभानाथ ने उत्तर दिया।

"तो फिर तुम्हें अभी कानपुर जा कर अपनी भावज तथा राजेश-ब्रजेश को साथ लाना पड़ेगा ! समझे !"

"मेरा वहाँ जाना बेकार है क्योंकि भौजीजी यहाँ आने को बिल्कुल तैयार नहीं हैं। मैंने आज सुबह ही उनसे चलने को कहा था।"

"क्या तुम दया के यहाँ गए थे ?"

"जी हाँ ! मझले भइया से वे मिलना चाहते थे। कल उनकी गिरफ़्तारी के समय हम लोग वहीं मौजूद थे।" प्रभानाथ ने साहस के साथ कहा, "और जब हम लोगों ने भौजीजी से यहाँ आने को कहा तो उन्होंने यह कह कर कि वे भीख माँग कर, गुलामी करके वहीं रहेंगी, लेकिन यहाँ पैर न रक्खेंगी, इनकार कर दिया।"

"बात यहाँ तक पहुँच गई है !" रामनाथ ने श्यामनाथ की ओर देखा।

"यह तो आप ही समझिये। जहाँ तक मेरी समझ है, मैं तो यही कहूँगा

कि बड़ी बहू ने जो कुछ कहा वह उचित ही कहा। स्त्री की महत्ता इसी में है कि वह अपने पति के अस्तित्व में अपना अस्तित्व मिला दे, सुख-दुख में वह पति का साथ दे।"

"लेकिन वह मेरे घर की बहू है—मेरे घर की!" दाँत पीसते हुए रामनाथ ने कहा, "मेरे घर की बहू इस तंगी की हालत में रहकर मेरे कुल को कलंकित नहीं कर सकती—कभी नहीं कर सकती!"

"तो फिर आप ही को कानपुर जाना पड़ेगा ददुआ!" प्रभानाथ ने कहा।

"हाँ, मैं कानपुर जाऊँगा—अभी चल रहा हूँ। प्रभा, मोटर तैयार करवाओ। और तुम्हें भी मेरे साथ अभी चलना पड़ेगा।"

"चलना तो मैं भी चाहता हूँ!" दबी ज़बान श्यामनाथ ने कहा, "और अगर आप अनुचित न समझें तो मैं एक बार दया से जेल में मिल कर कोशिश करूँ!"

"किस बात की कोशिश?" रामनाथ ने पूछा।

"कि वह कांग्रेस से अलग हो जाय!"

"लेकिन इससे फ़ायदा?"

"इससे फ़ायदा यह होगा कि उसके इस आश्वासन से मैं दया को जेल जाने से बचा सकता हूँ!" श्यामनाथ ने उत्तर दिया।

"तो इसके माने-ये हुए कि वह सरकार से एक प्रकार माफ़ी माँगे!" रामनाथ ने श्यामनाथ को देखा, "नहीं श्यामू!" एक रूखी मुसकराहट रामनाथ के चेहरे पर आ गई, "माफ़ी माँगे—इतना ऊपर चढ़कर अब वह अपने को एक दम गिरावे! दया इसके लिए कभी भी तैयार न होगा! और अगर एक बार वह माफ़ी माँगना स्वीकार भी कर ले तो मैं उसे कायर समझूँगा। नहीं—श्यामू, यह बेकार की बात है। हाँ, अगर तुम कानपुर चलना चाहते हो, तो चलो। लेकिन तुम अभी उमा से नहीं मिले हो—तुम यहीं रुको!

और उदास बैठे रहे फिर उन्होंने एक ठंढी साँस लेकर कहा, "जैसी आपकी इच्छा! लेकिन बड़ी बहू और राजेश-ब्रजेश का तो प्रबन्ध करना ही पड़ेगा।"

"हाँ!" कुछ सोच कर रामनाथ ने कहा, "उनका प्रबन्ध करना ही पड़ेगा। कल ही मैं उमा या प्रभा को कानपुर भेजूँगा उन्हें यहाँ ले आने के लिए।"

"कल क्यों, आज क्यों नहीं? आप जानते ही हैं कि वे लोग वहाँ अकेले हैं।"

"ठीक कहते हो!" रामनाथ ने आवाज़ दी, "अबे ओ लखना—छुटके भइया को यहाँ भेज दे!"

प्रभानाथ अभी तक बग़ल के कमरे में ही बैठा था। लखना के कहने की बिना प्रतीक्षा किए हुए ही वह रामनाथ के कमरे में दाखिल हुआ।

"तुम्हें मालूम है कि दया गिरफ़ार हो गया!" रामनाथ ने पूछा।

"जी हाँ!" प्रभानाथ ने उत्तर दिया।

"तो फिर तुम्हें अभी कानपुर जा कर अपनी भावज तथा राजेश-ब्रजेश को साथ लाना पड़ेगा! समझे!"

"मेरा वहाँ जाना बेकार है क्योंकि भौजीजी यहाँ आने को बिल्कुल तैयार नहीं हैं। मैंने आज सुबह ही उनसे चलने को कहा था।"

"क्या तुम दया के यहाँ गए थे?"

"जी हाँ! मझले भइया से वे मिलना चाहते थे। कल उनकी गिरफ़ारी के समय हम लोग वहाँ मौजूद थे।" प्रभानाथ ने साहस के साथ कहा, "और जब हम लोगों ने भौजीजी से यहाँ आने को कहा तो उन्होंने यह कह कर कि वे भीख माँग कर, गुलामी करके वहीं रहेंगी, लेकिन यहाँ पैर न रक्खेंगी, इनकार कर दिया।"

"बात यहाँ तक पहुँच गई है!" रामनाथ ने श्यामनाथ की ओर देखा।

"यह तो आप ही समझिये। जहाँ तक मेरी समझ है, मैं तो यही कहूँगा

कि बड़ी बहू ने जो कुछ कहा वह उचित ही कहा। स्त्री की महत्ता इसी में है कि वह अपने पति के अस्तित्व में अपना अस्तित्व मिला दे, सुख-दुख में वह पति का साथ दे।"

"लेकिन वह मेरे घर की बहू है—मेरे घर की!" दाँत पीसते हुए रामनाथ ने कहा, "मेरे घर की बहू इस तंगी की हालत में रहकर मेरे कुल को कलंकित नहीं कर सकती—कभी नहीं कर सकती!"

"तो फिर आप ही को कानपुर जाना पड़ेगा दद्दुआ!" प्रभानाथ ने कहा।

"हाँ, मैं कानपुर जाऊँगा—अभी चल रहा हूँ। प्रभा, मोटर तैयार करवाओ। और तुम्हें भी मेरे साथ अभी चलना पड़ेगा।"

"चलना तो मैं भी चाहता हूँ!" दबी ज़बान श्यामनाथ ने कहा, "और अगर आप अनुचित न समझें तो मैं एक बार दया से जेल में मिल कर कोशिश करूँ!"

"किस बात की कोशिश?" रामनाथ ने पूछा।

"कि वह कांग्रेस से अलग हो जाय!"

"लेकिन इससे फ़ायदा?"

"इससे फ़ायदा यह होगा कि उसके इस आश्वासन से मैं दया को जेल जाने से बचा सकता हूँ!" श्यामनाथ ने उत्तर दिया।

"तो इसके माने ये हुए कि वह सरकार से एक प्रकार माफ़ी माँगे!" रामनाथ ने श्यामनाथ को देखा, "नहीं श्यामू!" एक रूखी मुसकराहट रामनाथ के चेहरे पर आ गई, "माफ़ी माँगे—इतना ऊपर चढ़कर अब वह अपने को एक दम गिरावे! दया इसके लिए कभी भी तैयार न होगा! और अगर एक बार वह माफ़ी माँगना स्वीकार भी कर ले तो मैं उसे कायर समझूँगा। नहीं—श्यामू, यह बेकार की बात है। हाँ, अगर तुम कानपुर चलना चाहते हो, तो चलो। लेकिन तुम अभी उमा से नहीं मिले हो—तुम यहीं रुको!

प्राकृतिक है। याद रखना, निर्बल सबल का आहार रहा है। तुम अहिंसा की दुहाई देते हो, लेकिन यह अहिंसा है क्या? यह अहिंसा निर्बल की अपने को धोखा देने की प्रवृत्ति है! तुम हिंसा इसलिए नहीं करते कि तुम हिंसा करने के काबिल नहीं, तुम स्वयम् हिंसा के शिकार हो और कमज़ोर हो। पर तुम सबल को अहिंसा पर विश्वास नहीं दिला सकते! यह अहिंसा आत्म-छलना से भरा सिद्धान्त है जो तुम्हें ज़रा भी ऊँचे नहीं उठा सकता, जो तुम्हारी नपुंसकता का द्योतक है!"

मार्कण्डेय मुसकराया, "दद्दुआ, आपने जो कुछ कहा वह बहुत पुराना सिद्धान्त है। पर हम लोग बहुत आगे बढ़ चुके हैं। हम लोगों का कहना है कि हिंसा पशुता की प्रवृत्ति है, मानवता की नहीं; और मनुष्य पशुता को छोड़ कर मानवता का पूर्ण विकास कर रहा है। मैं मानता हूँ कि हम में अभी पशुता बाकी है, लेकिन क्या हम उस पशुता को अपनाए ही रहें या उसे छोड़ कर मानव बनें? पशु असमर्थ है और इसलिए वह हिंसा की शरण लेता है, पर मनुष्य समर्थ है। उसके पास बुद्धि नाम का अमोघ अस्त्र है, और इस बुद्धि के बल से वह सारी प्रकृति का स्वामी है। मनुष्य खेती करता है, अन्न उपजाता है। जहाँ पानी नहीं है वहाँ वह कुआँ खोद कर पानी निकालता है, जहाँ नदियाँ नहीं हैं वहाँ वह नहर काट कर सिंचाई करता है। उसने प्रकृति पर विजय पा ली है, और धीरे-धीरे वह प्रकृति के अनंत रहस्यों को सुलझाता चला जा रहा है। पर उसके विकास में एक बात बाकी है, वह अपनी पाशविक हिंसा को अभी तक नहीं छोड़ सका है। अपने हित को वह अपना सत्य तो मानता है, लेकिन दूसरों के हित को, जो मानवता का सत्य है, वह अभी तक उपेक्षा करता रहा है। हममें दया, प्रेम, त्याग ये सब प्रवृत्तियाँ मौजूद हैं, इन प्रवृत्तियों को विकसित करके अपने सत्य को और मानवता के सत्य को एक-रूप कर देना—यही अहिंसा है!")

रामनाथ तिवारी हँस पड़े; उनकी उस कटु हँसी में उपेक्षा थी, व्यंग था। उन्होंने कहा, "अपने हित को मानवता का हित बना देना, अपने सत्य को और मानवता के सत्य को एक-रूप कर देना! बातें बड़ी सुन्दर हैं और

मजेदार हैं। लेकिन सब से बड़ा सवाल यह है कि क्या तुम यह सब करते हो ! एक बात याद रखना, तुम बने हो अपनी प्रवृत्तियों से, तुम शासित हो अपनी भावनाओं से ! तुम्हारी ये प्रवृत्तियाँ और ये भावनाएँ तुम्हें कर्म करने को प्रेरित करती हैं, अन्यथा कर्म असम्भव है। प्रत्येक कर्म के पीछे एक प्रेरणा है, और वह प्रेरणा तुम्हारी भावना की है। मार्कण्डेय, भावना ही मनुष्य का जीवन है, भावना ही प्राकृतिक है, भावना ही सत्य है और नित्य है ! भावनाओं के मामले में मनुष्य विवश है। और यही विवशता, तथा इस विवशता के कारण प्राणि-मात्र में विषमता संसृति है। तुम सब एक-सा बनने की कोशिश करो, एक ही ढंग से सोचना चाहो; लेकिन यह कभी भी सम्भव नहीं। मैं कहता हूँ कि तुम लाख प्रयत्न करने पर भी ऐसा नहीं कर सकते......"

रामनाथ तिवारी ने अपनी बात समाप्त भी नहीं की कि प्रभानाथ आ पहुँचा। रामनाथ ने अपनी बात वहीं रोक दी, प्रभानाथ से उन्होंने पूछा, "कहो !"

धीमे स्वर में प्रभानाथ ने कहा, "भौजी जी यहाँ से जाने को राज़ी नहीं हैं !"

"तुमने उनसे यह बतलाया कि मैं स्वयम् आया हूँ, और यह मेरी आज्ञा है !"

"जी हाँ ! और उनका कहना है कि उनको आज्ञा देने वाला केवल एक व्यक्ति है--बड़के भइया !"

पण्डित रामनाथ तिवारी ने अपना होठ चबाते हुए मार्कण्डेय की ओर देखा, वह गम्भीर बैठा था। "ठीक है ! उसके पतिव्रत धर्म पर मैं बहुत प्रसन्न हूँ। चलो ज़रा मैं भी उस देवी की बातें सुन कर अपना जीवन सार्थक और सुफल कर लूँ !"

रामनाथ तिवारी प्रभानाथ के साथ अन्दर के आँगन में पहुँचे। उन्होंने ज़ोर से कहा, "प्रभा ! बहू से कहो कि उसे अभी-अभी कानपुर चलना है।

यहाँ अकेली कैसे रहेगी—यहाँ उसका कौन है ? वह किस पर अवलम्बित रहेगी ?"

और राजेश्वरी ने इतनी ज़ोर से कहा कि रामनाथ तिवारी सुन लें, "बाबू जी ! ददुआ से कह दीजिये कि बानापुर में भी तो मेरा कोई नहीं है !"

"और हम लोग क्या मर गए !" रामनाथ चिल्ला उठे !

"नहीं ! लेकिन आप लोगों ने उन्हें घर से तो अलग कर दिया है, उनको बानापुर जाने तक का अधिकार नहीं है। मैं उन्हीं की पत्नी तो हूँ ! मैं आप सब लोगों की जो कुछ होती हूँ, उन्हीं के कारण तो होती हूँ। जब वे आप द्वारा त्याज्य हैं तब भला मैं कैसे आपकी हो सकती हूँ या आपके साथ चल सकती हूँ। जिस घर में मेरे स्वामी का अपमान और निरादर हो वहाँ मैं आदर पाऊँ, वहाँ मैं सुख से रहूँ, यह मेरे लिए लज्जा की बात होगी !" राजेश्वरी ने दृढ़ता के साथ कहा।

राजेश्वरी का एक-एक शब्द रामनाथ के हृदय में शूल की भाँति चुभ रहा था। राजेश्वरी के कथन के सार की वे उपेक्षा नहीं कर सकते थे। फिर भी एक बार उन्होंने प्रयत्न किया, "अच्छी बात है। लेकिन राजेश और ब्रजेश मेरे साथ जाएँगे—समझीं !"

पर उनका यह वार भी खाली गया, "अगर आप चाहते हैं तो इन्हें ले जा सकते हैं। मैं जानती हूँ कि इन पर आपका पूरा अधिकार है। पर माता की ममता को इन बच्चों से छीन कर आप इनका उपकार करने के स्थान में अपकार ही करेंगे !" शान्त भाव से राजेश्वरी ने कहा।

रामनाथ तिवारी अपनी इस पराजय से तिलमिला उठे। उन्होंने कहा, "मैंने समझा था कि सद्गृहिणी और उच्चकुल की लड़की अपने पति को सुबुद्धि देने में सहायक होती है, अपना अपने पति का, अपने बच्चों का हिता-हित पहिचानती है !"

और मानो राजेश्वरी के पास उत्तर तैयार था, "मैं तो यह जानती हूँ कि

स्त्री मूक तथा निरीह होती है। उसके पास निजी इच्छा नाम की कोई वस्तु नहीं!" और इतना कहकर वह चुप हो गई।

६

घर से निकल कर रामनाथ तिवारी सीधे अपनी कार पर बैठ गए, उन्होंने मार्कण्डेय की ओर देखा तक नहीं। प्रभानाथ से उन्होंने कहा, "एकदम चलो! ये लोग भुगतने पर तुले हैं, तो फिर भुगतें! विनाशकाले विपरीत बुद्धिः!"

रामनाथ का हृदय कह रहा था कि वे पराजित हुए और बुरी तरह पराजित हुए! पर उनकी अहम्मन्यता उस पराजय को स्वीकार करने के लिए ज़रा भी तैयार न थी। उनकी इस अहम्मन्यता के क्रोध ने उनके हृदय की करुणा को दबा अवश्य दिया था, लेकिन उस करुणा को मिटा न सका था। रामनाथ का हृदय भारी था; उनके अन्दर एक अशान्ति की ज्वाला जल रही थी। उन्होंने दयानाथ को घर से निकाल दिया था, उन्होंने दयानाथ का अपमान किया था केवल अपनी अहम्मन्यता को तुष्ट करने के लिए—बिना भविष्य पर सोचे-समझे!

और आज उन्होंने अपने उस कार्य का परिणाम देखा जिसे क्षणिक आवेश में आकर उन्होंने कर दिया था। उन्हें अपने ही ऊपर क्रोध आ रहा था, लेकिन उनकी अहम्मन्यता उनके उस क्रोध को अपने ऊपर से हटाकर दूसरों को उसका लक्ष्य बना रही थी। उन्होंने मन ही मन कहा, "उस औरत की इतनी हिम्मत कि वह मुझसे ज़बान लड़ावे, मुझसे!—अपने पति के पिता से!"

कार चली जा रही थी। रामनाथ ने प्रभानाथ से कहा, "प्रभा! तुमने सब कुछ देखा है, सब कुछ सुना है! दया एक बार मेरा अपमान करके मुझसे क्षमा पा सकता है—वह मेरा लड़का है! लेकिन यह औरत! यह मेरा अपमान करके कभी-भी क्षमा नहीं पा सकती—यह याद रखना!"

"लेकिन भौजी जी ने तो आपका कोई अपमान नहीं किया ददुआ!" प्रभानाथ ने कहा, "उन्होंने जो कुछ किया वह अपना कर्तव्य समझ कर किया।" फिर उसने कुछ रुक कर कहा, "और ददुआ, एक बात मैं भी कह दूँ। अगर वे आपके साथ चली आतीं तो वे मेरी नज़र में गिर जातीं!"

"चुप रहो!—" रामनाथ चिल्ला उठे!—"तुम भी! तुम सब मेरी उपेक्षा करने पर, मेरा विरोध करने पर तुल गए हो!"

कुछ रुक कर उन्होंने फिर कहा, "मालूम होता है सब कुछ एकदम बदल गया!"

बानापुर पहुँचने पर उन्हें मालूम हुआ कि श्यामनाथ और उमानाथ शाम के समय शिकार के लिए चले गए थे और अभी तक वापस नहीं आए। तिवारी जी बैठकर सोचने लगे। उन्हें ऐसा मालूम हो रहा था कि वे एक नई दुनिया में आ पड़े हैं, ऐसी दुनिया में जिसकी उन्होंने कल्पना तक न की थी। "पुराना युग बदल रहा है, तेज़ी के साथ!" उन्होंने सुना था; पर उन्होंने यह कभी न सोचा था कि यह पुराना युग है क्या, और न उन्होंने कभी इस बात की कल्पना की थी उस पुराने युग के बदलने के बाद आने वाला नया युग कैसा होगा! उनके सामने उनकी रिआसत थी, उनकी बेज़ुबान, पशु से भी गई बीती रिआया थी और उनकी अहम्मन्यता से मुक्त उनका विशाल वैभव था। उनका मस्तक गर्व से ऊँचा था, स्वामीत्व की गुरुता से युक्त उनका अस्तित्व उनके लिए सत्य था और नित्य था। रामनाथ को इस बात का अभिमान था कि उनमें झूठ, बेईमानी आदि अवगुण न थे, और जब वे दुनिया की इन छोटी-छोटी कमज़ोरियों को देखते थे, उनकी छाती गर्व से फूल उठती थी। उन्हें धर्म पर विश्वास था, उन्हें ईश्वर पर विश्वास था। लोग तिवारी जी को मानते थे, उनका आदर करते थे। "तिवारी जी की बात में तथ्य है, तिवारी जी के निर्णय में न्याय है!" चारों तरफ़ इस बात की चर्चा थी।

तिवारीजी ज़ोर से कह उठे, "लोग कहते हैं कि मेरे निर्णय में न्याय है! क्या इस बार मेरा निर्णय ग़लत हुआ!"

और तिवारी जी अभी तक जो कुछ हुआ था उस पर बड़ी तेज़ी के साथ अवलोकन कर गए। उसके बाद उनकी अहम्मन्यता ने दृढ़ता के साथ कहा, "कभी नहीं, मेरा निर्णय ग़लत हो ही नहीं सकता!"

"फिर यह सब क्यों? मेरे निर्णय का विरोध मेरे घर में ही हो रहा है—मेरे लड़के ही मेरे निर्णय का विरोध करने पर तुल गये हैं। आखिर यह सब क्यों?" रामनाथ के अन्दर वाले बुद्धिवादी तार्किक ने उनकी अहम्मन्यता पर शंका की।

तिवारी जी ने फिर कहा, "यह क्यों? यह सब कुछ बदल कैसे गया? एकदम बदल गया, मैं पहचान नहीं पा रहा हूँ! दया कांग्रेस में शामिल हो गया, अपने पैरों पर ही कुल्हाड़ी मारने को वह तैयार है। और बड़ी बहू! मेरे सामने उसे बोलने की हिम्मत कैसे हो गई? बोलने ही की नहीं, ज़बान लड़ाने की! और प्रभा! वह भी मुझसे कहता है कि मैं ग़लती कर रहा हूँ!" क्या वास्तव में मैं ग़लती कर रहा हूँ?"

"शायद!" तिवारी जी ने ही उत्तर दिया। उन्हें सुबह की घटना याद हो आई जब एकत्रित कनौजिया मण्डल ने प्रायश्चित्त के विरुद्ध अपना निर्णय दिया था। "सुबह मैंने ही तो प्रायश्चित्त का विधान रचाया था! यह प्रायश्चित्त क्यों? क्योंकि हमारे समाज में प्रायश्चित्त की प्रथा प्रचलित है। समाज की रूढ़ियाँ बुरी तरह से हमारे ऊपर लदी हैं—मुझ पर भी! और अगर उन लोगों ने प्रायश्चित्त का विरोध किया तो उसमें भी उनका कोई दोष न था। वे सब के सब पुराने रूढ़ि-वादी युग के हैं। और उनके साथ उमानाथ ने भी उस प्रायश्चित्त का विरोध किया! क्यों? इसलिए कि वह नए युग का है! नए युग की विचारधारा को अपना कर वह आ रहा है!"

"और मैं?" तिवारी जी ने अपने से पूछा, "मैं भी नए युग का हूँ! जिसे लोग पढ़कर, सीख कर अपनाने की कोशिश कर रहे हैं उसे मैं स्वयम् अपने-आप, अपनी प्रेरणा द्वारा, अपने अनुभवों-द्वारा अपना चुका हूँ! मैं नए युग का हूँ, लोग चाहे मानें चाहे न मानें! फिर यह सब जो देख-सुन रहा

हूँ, यह सब क्या है ? क्या यही नया युग है ?" तिवारीजी को उस कांग्रेस के जलूस की याद हो आई जो उन्होंने करीब एक महीना पहले देखा था; दयानाथ और उसकी पत्नी ! प्रभानाथ, मार्कण्डेय, लाला रामकिशोर !

'ये लोग भी तो अपने को नए युग का प्रतिनिधि कहते हैं ! तो फिर यह नया युग है क्या ? आत्म-छलना, बेवकूफ़ी, हिताहित के प्रति घोर अज्ञानमयी उपेक्षा !'

और एकाएक तिवारी जी की विचार-धारा टूट गई उमानाथ की आवाज़ से। वह श्यामनाथ से कह रहा था, "और काका ! जिसे आप शिष्टता कहते हैं वह ढोंग है, जिसे आप सभ्यता या तहज़ीब कहते हैं वह मनुष्य की पराजय का खोखलापन है, जिसे आप धर्म और विश्वास कहते हैं वह आपके अन्दर वाली गुलामी की प्रवृत्ति है !"

"बात यहाँ तक पहुँच चुकी है ! युग की नवीनता, देख रहा हूँ, सीमाओं को एक बार तोड़ डालने पर तुल गई है !" रामनाथ तिवारी ने मुसकराते हुए मन ही मन कहा और वे उठ खड़े हुए।

उन्होंने देखा कि बरामदे में चचा-भतीजे आमने-सामने बैठे बातचीत कर रहे हैं और उनके सामने शर्बत के गिलास हैं।

७

पण्डित श्यामनाथ तिवारी अपने भतीजे के ज्ञान के भण्डार को देख कर अवाक् बैठे थे और उमानाथ कहता जा रहा था, "काका ! मैं तो यह मानता हूँ कि जितने धर्म हैं, जितने नियम हैं, जितने देवी-देवता हैं, जितने परमेश्वर हैं, उन सब का निर्माण हमने किया है, हमने, यानी मनुष्य ने ! और अब हम खुद अपनी बनाई हुई चीज़ों के गुलाम बन गए हैं, सब समझते हुए, सब जानते हुए हम इस बुरी तरह अपने बिछाए हुए जाल में क्यों फँस गए ! आप जानते हैं काका जी !"

मुँह बाए हुए पण्डित श्यामनाथ तिवारी यह सब सुन रहे थे और न

समझते हुए भी समझने की कोशिश कर रहे थे तथा बीच-बीच में सर हिला देते थे। उमानाथ का यह प्रश्न सुन कर चौंक उठे; फिर भी अपने को सम्हालते हुए उन्होंने कहा, "इसलिए कि कहीं कोई जाल ही नहीं था, और अगर था भी तो हमने उसे देखा ही नहीं और साथ ही हमने उस जाल को बिछाया भी नहीं था!"

उमानाथ हँस पड़ा, "मैं तो आपकी शक्ल देख कर ही जान गया था कि जो कुछ मैंने कहा है उसे आप ज़रा भी नहीं समझे! काका जी, एक बात मैं आपको बतला दूँ! हम सब आदमी हैं, सब में एक ही तरह का खून बह रहा है, सब को एक ही तरह की भूख लगती है, एक ही तरह की प्यास लगती है। सभी हँसते हैं, सभी रोते हैं। फिर मनुष्य-मनुष्य में यह भेद-भाव क्यों? आपने कभी इसे समझने की कोशिश की है?"

सर हिलाते हुए श्यामनाथ ने कहा, "इसे समझने की तो कोशिश कभी नहीं की; और सबसे बड़ी बात तो यह है कि यह सवाल ही मेरे सामने कभी नहीं उठा। पता नहीं क्यों! देखो उमा, मैं अपने काम-काज में इतना फँसा रहता हूँ कि मुझे सोचने-विचारने की फ़ुर्सत ही नहीं मिलती। हाँ, बड़के भइया शायद इस मामले में कुछ बता सकें!"

उमानाथ हँस पड़ा, "ददुआ की बात छोड़िये! देखिये काका जी, आपको मैं एक बात बतलाता हूँ लेकिन अपने तक ही रखियेगा, किसी से कहियेगा नहीं। वह यह कि आप ठीक तरह से सोच सकते हैं लेकिन आपको सोचने की फ़ुर्सत ही नहीं मिलती, या फिर आप इतने ज़्यादा आलसी हैं कि सोचना ही नहीं चाहते। और ददुआ के पास सोचने की फ़ुर्सत है, और वे सोचते भी हैं, लेकिन वे ठीक तौर से सोच नहीं सकते!

अपनी तारीफ़ सुन कर श्यामनाथ का मुख प्रसन्नता से खिल गया। मुसकराते हुए उन्होंने कहा, "क्या बताऊँ उमा...अब आगे......"

लेकिन श्यामनाथ कहते-कहते रुक गये और उनकी मुसकराहट ग़ायब हो गई। सामने पण्डित रामनाथ तिवारी खड़े हुए दोनों को ग़ौर से देख

रहे थे। श्यामनाथ हड़बड़ा कर उठ खड़े हुए और श्यामनाथ को उठते हुए देख कर उमानाथ भी खड़ा हो गया। रामनाथ ने दोनों को बैठने का इशारा करते हुए उमानाथ से कहा, "हाँ, तो तुम अभी कह रहे थे कि मैं ठीक तरह से सोच नहीं सकता ! है न ऐसी बात ?"

श्यामनाथ ने उमानाथ को बचाने की कोशिश की, "नहीं बड़के भइया ! बात यह थी..."

बीच में ही श्यामनाथ की बात को काटते हुए रामनाथ ने कहा, "चुप रहो श्यामू—झूठ बोलने की कोशिश मत करो ! जब तुमसे कुछ पूछूँ तब बात करना ! हां, तो उमा तुम कह रहे थे कि मैं ठीक तरह से सोच नहीं सकता। ताज्जुब की बात यह है कि अभी-अभी कुछ देर पहले मैं भी अपने से यही सवाल कर रहा था कि मैं ठीक तौर से सोच रहा हूँ ! जानते हो ! दया की दुलहिन ने यहाँ आने से इनकार कर दिया है !"

श्यामनाथ और उमानाथ दोनों ही मौन रहे। कुछ रुक कर रामनाथ ने फिर कहा, "उसने इनकार कर दिया यह कह कर कि उस पर मेरा कोई अधिकार नहीं। उसने मेरी उपेक्षा ही नहीं की, उसने मुझे अपना शत्रु समझ लिया है। और मैं सोच रहा हूँ कि क्या कभी उस औरत से मेरी शत्रुता की कोई बात तक उठ सकती है ! फिर भी देख रहा हूँ कि वह मुझे अपना दुश्मन समझ बैठी है। यही नहीं; उसने, उस औरत ने मेरे कुल से, मेरे घर से अपना सम्बन्ध तोड़ लिया है। देखते हो श्यामू ! दुनिया कितनी बदल गई है।"

"तो फिर अब क्या करना होगा ?" दबी ज़बान से श्यामनाथ ने पूछा।

"अब क्या करना होगा ! सवाल मेरे सामने है। लेकिन कुछ समझ में नहीं आता ! मैं जानता हूँ कि दया के पास अधिक समय नहीं थे। अगर वह जेल के बाहर होता और सत्याग्रह करना होता तो मुझे कोई चिन्ता नहीं थी, लेकिन वह जेल में है; उसे आठ ही महीने की सज़ा हो गई है। मुझे उसकी फाँसी की चिन्ता है, उसकी फाँसी से बढ़ कर खानदान-कलंक की चिन्ता है !

उनका लम्बा खर्च कैसे चलेगा ? जब दया यहाँ से गया था ! तब मैंने कहा था कि मैं पाँच सौ रुपया महीना बराबर उसके गुज़ारे के लिए भेजता रहूँगा। लेकिन अपनी अकड़ में उसने यह पाँच सौ रुपया महीना लेने से भी इनकार कर दिया।"

"तो अब आप यह पाँच सौ रुपया महीना उसके घर में भिजवा दें; दया की अनुपस्थिति में आप का कर्तव्य है कि आप उसके कुल का भरण-पोषण करें ! क्यों उमा, टीक है न !" श्यामनाथ तिवारी ने अपनी बातों के समर्थन के लिए उमानाथ की तरफ़ देखा।

पर उमानाथ से समर्थन पाने के स्थान पर उसके मुख पर एक हलकी सी व्यंगात्मक मुसकराट को देखकर श्यामनाथ तिवारी को क्रोध आ गया। इस क्रोध के आवेश में वे आगे कह गए, "और अगर आप नहीं भेजना चाहते तो मैं अपने पास से उसके घर में यह रुपया भेज दिया करूँगा।"

"तुम निरे बेवक़ूफ़ ही रहे !" रामनाथ ने गम्भीरता पूर्वक अपने छोटे भाई को देखते हुए कहा।

८

दूसरे दिन सुबह चार बजे पण्डित श्यामनाथ तिवारी ने बन्दूक उठाई। उमानाथ को जगा कर उन्होंने कहा, "अगर शिकार पाना चाहते हो तो अभी निकल चलो, आठ बजे तक लौट आवेंगे।"

श्यामनाथ के साथ उमानाथ शिकार के लिए चल दिया। मैदानों को पार करते हुए दोनों चले जा रहे थे और उमानाथ श्यामनाथ से कह रहा था, "काकाजी ! मैं आप से पूछता हूँ, आखिर मनुष्य मनुष्य पर अत्याचार क्यों करता है ? दुनिया में वस्त्र की कमी नहीं, अन्न की कमी नहीं; करोड़ों मन अनाज प्रति वर्ष सड़ जाता है, करोड़ों गज़ कपड़ा प्रतिवर्ष गल जाता है; और इतना सब होते हुए भी करोड़ों आदमी प्रति वर्ष भूख से या ठंड से मर जाते हैं। आखिर यह क्यों ?"

ज़रूर किया। उन्होंने कहा, "ठीक कहते हो उमा, मैं अवश्य पढ़ा करूँगा, पढ़ने के लिए फ़ुरसत निकालूँगा। लेकिन मेरे सामने एक मुसीबत है; मुझे यह नहीं मालूम कि पढ़ा क्या जाय! रामायण और गीता—ये तो अपने यहाँ की ख़ास-ख़ास किताबें हैं और इन्हें मैं पढ़ चुका हूँ। और अंगरेज़ी की किताबों में दो-एक उपन्यास पढ़े हैं। रोज़ लीडर पढ़ लेता हूँ और कभी-कभी इलस्ट्रेटेड वीकली भी देख लेता हूँ। इसके अलावा और क्या पढ़ा जाय, यह तुम्हें बताना होगा। और बतलाना ही नहीं तुम्हें वे किताबें भी मेरे लिए मँगवा देनी होंगी।"

"यह मंज़ूर!" उमानाथ ने उत्तर दिया।

आठ बजे दोनों शिकारी वापस लौटे, थके हुए। पण्डित रामनाथ तिवारी इन दोनों का इंतज़ार कर रहे थे। पण्डित रामनाथ तिवारी उदास थे, रात भर उन्हें नींद न आई थी। अपने अन्दर वाले द्वंद्व से पीड़ित और मर्माहत—ये रात भर करवटें बदलते रहे। सुबह जब उन्होंने उमानाथ को बुलवाया तब उन्हें मालूम हुआ कि उमानाथ श्यामनाथ के साथ शिकार खेलने निकल गया है। इसी बीच में पण्डित झगड़ू मिश्र श्यामनाथ के आने की खबर पाकर उनसे मिलने के लिए आ गए थे। तिवारी जी और झगड़ू मिश्र—दोनों एक दूसरे से दस क़दम की दूरी पर चुपचाप बैठे थे; दोनों में से कोई भी एक दूसरे से बात आरम्भ करने को तैयार न था।

श्यामनाथ को देखते ही झगड़ू ने आवाज़ लगाई, "कहाँ हो श्यामू! न जाने कब से हम तुम्हार इंतज़ार कर रहे हन! अच्छी तरह तो रहो!"

श्यामनाथ तिवारी और झगड़ू मिश्र लड़कपन के दोस्त थे। दोनों ही मस्त, दोनों ही स्वच्छन्द और लड़ाई-झगड़े में तत्पर! परिस्थितियों की अनुकूलता तथा प्रतिकूलता से श्यामनाथ तिवारी सुपरिंटेंडेंट पुलिस हो गये थे और झगड़ू को अपनी ज़मींदारी का भी कुछ हिस्सा बेचना पड़ा था।

श्यामनाथ तिवारी झगड़ू की आवाज़ सुनते ही प्रसन्नता से खिल गये। वे झगड़ू से मिलने के लिए बढ़े ही थे कि उनकी नज़र पण्डित रामनाथ पर

पड़ी और वैसे ही वह रुक गये। रामनाथ तिवारी ने श्यामनाथ को अपनी ओर आते देख कर मुसकराते हुए कहा, "श्यामू! झगड़ू तुम्हारा बहुत देर से इंतज़ार कर रहे हैं, उनसे मिल कर मेरे पास आना। मुझे आज शाम को ही उन्नाव जाना है ।"

९

"बात मझले कुँवर कड़ी कहि दीन्हिन, इतना तो मानैं का पड़ी," झगड़ू मिश्र ने तमाखू फाँकते हुए प्रायश्चित्त वाले दिन के प्रसंग पर कहा, "मुदा जो कुछ कहिन उहिमाँ फरक रत्ती भर नाहीं।"

ज़रा चिन्तित होकर पण्डित श्यामनाथ तिवारी ने कहा, "खैर वह तो ठीक है, लेकिन मैं जानता हूँ परमानन्द सुकुल और मन्नू दुबे को! हम लोगों से बदला लेने की वे पूरी कोशिश करेंगे। बहुत सम्भव है वे हमें जाति से बाहर करने में भी सफल हो जायँ!"

"अरे जो तुम लोगन का जात से बाहर करि सकै उहिका देखन का है। हम आज कहे देत हन कि अगर तुम लोग जात माँ न चलो तो हमार नाम झगड़ू मिसर नाहीं। का बताई श्यामू! हमरे पास तो रुपैया नाहीं, नहीं तो हमहूँ मारकण्डे का विलायत भेजित! हाँ सुन्यो! मारकण्डे भी सुराजी बन गए, गांधी बाबा के भगत!" झगड़ू ने मुसकराते हुए कहा।

"क्या कहा?" चौंक कर श्यामनाथ ने पूछा, "और तुमने मना नहीं किया?"

"का बताई श्यामू! वही बड़ा हुइगा, पढ़-लिख के वकालत कर रहा है, समझदार है। हम भला उहिका का मना करित!" कुछ रुक कर झगड़ू ने फिर कहा, "और श्यामू—एक बात और है। हमरी समझ माँ गांधी बाबा गलत भी नाहीं कहत हैं। कांग्रेस हम पंचन की भलाई के लिए तो बनी है।"

पण्डित श्यामनाथ तिवारी ने आश्चर्य से झगड़ू मिश्र की ओर देखा—

आठवाँ परिच्छेद

१

श्यामनाथ ने अपने बड़े भाई से कहा, "अगर आप कहें तो एक दफ़े मैं भी कानपुर जा कर दया की दुलहिन को समझाने की कोशिश करूँ! आख़िर इस हालत में उसका वहाँ रहना तो ठीक नहीं!"

रामनाथ ने अन्यमनस्क भाव से उत्तर दिया, "तो तुम समझ रहे हो कि तुम्हारे समझाने का उस पर कोई असर पड़ेगा?—ऐसी हालत में तुम ग़लती कर रहे हो!" कुछ रुक कर उन्होंने फिर कहा, "लेकिन मैं तुम्हें रोकूँगा नहीं, कुल की प्रतिष्ठा और मान के लिए कोई भी प्रयत्न अनुचित नहीं है। तुम जा सकते हो और अगर चाहो तो साथ में उमा को भी लेते जाओ, एक से दो अच्छे होते हैं।"

सब लोग दोपहर को ही कानपुर से उन्नाव पहुँच गए थे। यह बात-चीत उन्नाव में शाम के समय हुई थी। उस समय झगड़ू मिश्र भाँग पीस रहे थे और अपने सामने बैठे हुए उमानाथ से विजया भवानी का गुन-गान कर रहे थे। "सो मझले कुँवर! एक दिना बमभोलानाथ शंकर जी को विजया नाहीं मिलीं, सो हुइ गे उदास। कहूँ उनकेर जी न लाग, और समाधौ माँ उनकेर जी न लाग। सो माता पारबती जब देखिन बमभोलानाथ के ई हाल, तो उन्हें भई चिन्ता। चारो तरफ़ गन दौड़े, दूत दौड़े, कार्तिक दौड़े, गनेस दौड़े, ब्रह्माण्ड का कोना-कोना छान डाला गा। लेकिन विजया भवानी का तो सूझा मजाक, ऐसी गायब भई कि उनकेर पता जो न लाग सो न लाग। अब खुद रवाना भई माता पारबती विजया भवानी का ढूँढन। बिचारी बिना खाए-पिए मारी-मारी फिरीं, सात लोक, चौदह भुवन, आकाश-पाताल सब जगह गई लेकिन जो विजया भवानी न मिलीं सो न मिलीं।"

"अब सुनो शंकर जी का हाल ! हाल—बेहाल ! अवहीं तक तो शंकर जी दुखी, और अब चढ़ा उन्हें क्रोध ! तो मझले कुँवर ! महादेव जी के हाथ फड़के, पैर फड़के, त्रिशूल फड़का ! और ब्रह्माण्ड माँ मच गई त्राहि-त्राहि । सुर दौड़े, असुर दौड़े, ब्रह्मा दौड़े, विष्णु दौड़े; लेकिन विजया भवानी जो न पसीजीं सो न पसीजीं ।"

उमानाथ ने अपनी हँसी को दबाते हुए कहा, "तो झगड़ू काका प्रलय क्यों नहीं हुआ ?"

झुँझला कर झगड़ू बोले, "बात न काटो मझले कुँवर—पहिले पूरी कथा सुनि लेव ! तौन तब चला नादिया । बड़े-बड़े सींग, लम्बी पूछ, लाल-लाल आँखी । अपने स्वामी का दुखी देखि के चढ़ि आवा वह का क्रोध । तौन नादिया शुरू कर दीन्हिस चरब घास-पात । उजड़ गए वन-उपवन नन्दन-कानन । अब देखो तौन एक जगंल के एक घूरा माँ विजया भवानी छिपी मुसकाय रही रहैं । ई जितने गन, दूत, कार्तिक, गनेस, ब्रह्मा, विष्णु—भला ई बिचारे कब सोच सकत रहैं कि विजया भवानी घूरा माँ छिपी हुइहैं । तौन जो नादिया फुफकार भरिस सो विजया-भवानी के परान सूख गए । हाथ जोड़ सन्मुख उपस्थित भईं । बस नादिया विजया का पूँछ माँ लपेट के उठाय लीन्हिस सींग पै और लै आवा महादेव बाबा के पास !"

"तब तो महादेव जी नादिया से बड़े प्रसन्न हुए होंगे !" उमानाथ ने कहा ।

"अरे कुछ न पूँछौ मझले कुँवर ! शंकर जी वैसे ही वरदान दीन्हिन कि जो नर विजया का सेवन करी वह का नादिया की गति प्राप्त होई !"

"तो इसके माने हैं कि भाँग पीने वाले बैल होते हैं !" और उमानाथ ज़ोर से हँस पड़ा ।

लेकिन दुर्भाग्य वश यह मज़ाक़ झगड़ू की समझ में तब आया जब वे लोटे की भाँग का पहला आधा हिस्सा गले के नीचे उतार चुके थे, और शेष भाँग को गले के नीचे उतारने के क्रम में थे । यह निश्चय करके कि उमानाथ को इस बदतमीज़ी का जवाब पूरी तरह से विजया को गले के नीचे

उतार कर दिया जायगा, झगड़ू ने भाँग पीने की रफ़्तार में तेज़ी कर दी। और जब खाली लोटा उन्होंने अपनी आँखों के आगे से हटाया तब उन्हें अपने सामने पण्डित श्यामनाथ तिवारी दिखाई पड़े।

श्यामनाथ उमानाथ से कह रहे थे, "एक घण्टे के अन्दर ही कानपुर चलना है, और तुम्हें साथ लेकर। एक दफ़े मैं भी दया की दुलहिन को समझाना चाहता हूँ। और सुनो झगड़ू, तुम मार्कण्डेय के यहाँ चलना चाहते हो न! तो मेरे साथ मेरी मोटर पर चले चलो!"

दूसरे लोटे की ओर, जिसमें भाँग अभी रक्खी थी, इशारा करते हुए झगड़ू ने कहा, "यह ठीक कह्यो! अच्छा, तो विजया तैयार है, छान लेव न!"

श्यामनाथ तिवारी ने एक बार लोटे में रक्खी भाँग के गहरे रंग को देखा, फिर उन्होंने उमानाथ की तरफ़ नज़र डाली। उमानाथ ने बढ़ावा दिया, "हाँ काका छान लीजिये न! संकोच की क्या बात?"

"तो फिर लाओ, थोड़ी-सी पी ही लूँ!" और पौन लोटा भाँग आँख बन्द करके एक साँस में चढ़ा गए।

श्यामनाथ के जाने के बाद झगड़ू उमानाथ की ओर घूमे। उमानाथ ने जो उनका मज़ाक उड़ाया था, वह इस समय तक वे भूल गए थे; उन्होंने लोटे में बची हुई भाँग की ओर इशारा करते हुए कहा, "मझले कुँवर! तो फिर तुमहू शंकर जी का परसाद स्वीकार करौ!"

"नहीं झगड़ू काका! यह भाँग का नशा सब से खराब। नशा ही करना है तो नशों का राजा मौजूद है—शराब।"

"का कह्यो-शराब!" झगड़ू ने आश्चर्य से उमानाथ को देखा, "काहे हो मझले कुँवर! का तुम विलायत माँ जायके सरावौ पियन लागेव?"

"हाँ काका—लेकिन इसमें हर्ज ही क्या है? नशा है, चाहे वह भाँग हो चाहे अफ़ीम हो, चाहे शराब हो! अगर शराब का भोग देवी पर लग सकता है, तो मनुष्य भी शराब पी सकता है। इसमें आपको क्या आपत्ति?"

"अरे देवी-देवता की वात न चलाओ! ऊ समर्थ हैं। सव कुछ कर सकत हैं; और हम ठहरेन मनई। तौन वेद-शास्त्र माँ शराव निषिद्ध है। मझले कुँवर—हमरी एक वात मानो—तुम शराव छोड़ देव!"

उमानाथ झगड़ू की वात का उत्तर देने ही वाला था कि नौकर ने आकर कहा, "सरकार, मोटर तैयार है। छोटे राजा आप लोग का बुलाय रहे हैं।"

२

जिस समय श्यामनाथ की कार मार्कण्डेय के मकान के सामने रुकी, मार्कण्डेय श्रद्धानन्द पार्क में कांग्रेस की सार्वजनिक सभा का सभापतित्व कर रहा था। यह सूचना मार्कण्डेय के नौकर ने झगड़ू को दी। झगड़ू कार से उतरने लगे लेकिन उमानाथ ने उन्हें यह कह कर कार पर फिर से विठला लिया, "चलिये झगड़ू काका, हम आपको श्रद्धानन्द पार्क में उतार दें, है ही कितनी दूर! मैं भी चलता हूँ। काका! आप न चलियेगा लेकिन हम लोगों को फाटक पर उतार दीजियेगा!"

श्यामनाथ तिवारी ने हिचकिचाते हुए कहा, "वहाँ जाकर क्या करोगे?"

"देखिये काका! मैंने आज तक कांग्रेस की कोई भी मीटिंग नहीं देखी; और फिर इस मीटिंग के सभापति मार्कण्डेय भइया हैं। साथ ही झगड़ू काका भी देख लेंगें कि मार्कण्डेय भइया कितने बड़े आदमी हो गए हैं!"

श्यामनाथ निरुत्तर हो गए। श्रद्धानन्द पार्क के पास झगड़ू और उमानाथ कार से उतर गए। श्यामनाथ के जाने के वाद इन दोनों ने श्रद्धानन्द पार्क में प्रवेश किया।

श्रद्धानन्द पार्क ठसाठस भरा था, लोगों में अजीव उत्साह था! जिस समय ये लोग पार्क के अन्दर पहुँचे, मार्कण्डेय व्याख्यान दे रहे थे। मार्कण्डेय क्या कह रहा था, यह तो ये लोग नहीं सुन सकते थे क्योंकि ये लोग वहुत पीछे खड़े थे, पर जनता के उत्साह, वीच-वीच में उठने वाली तालियों

की गड़गड़ाहट पर सर्वत्र फैली हुई शान्ति से उमानाथ और झगड़ू दोनों ही समझ गए कि मार्कण्डेय की वक्तृता का असर जनता पर पूरी तरह से पड़ रहा है।

सभा समाप्त हो गई। झगड़ू के साथ उमानाथ मार्कण्डेय की ओर बढ़ा। कांग्रेस के स्वयम्सेवकों का समूह मार्कण्डेय को घेरे खड़ा था। उमानाथ कोट-पैण्ट और टाई पहने था, उसका हैट उसके हाथ में था। एक स्वयम्सेवक ने उमानाथ को देख कर कहा, "यह बन्दर कहाँ से छूट आया है?"

दूसरे स्वयम्सेवक ने उमानाथ से ही कहा, "आपको शर्म नहीं आती कि आप यह हैट-टाई पहने हुए हैं!"

तीसरे स्वयम्सेवक ने उमानाथ के हाथ से हैट छीन ली और चौथे ने अपने सर की गांधी टोपी उमानाथ के सर पर रख दी।

मार्कण्डेय मुसकराता हुआ यह सब देख रहा था। उमानाथ ने गांधी टोपी अपने सर से उतार कर ज़मीन पर फेंकते हुए कहा, "अगर तुम इस टोपी से ही स्वराज्य लेना चाहते हो तो तुम लोग बहुत बड़े वेवकूफ़ हो!" और यह कह उसने गांधी टोपी अपने पैरों के नीचे कुचल दी।

गाँधी टोपी का यह अपमान उन स्वयम्सेवकों को बहुत बुरा लगा। उन लोगों ने उमानाथ को चारों तरफ़ से घेर लिया, और हिंसा की भावना उनके मुखों पर आ गई। मार्कण्डेय ने देखा कि मामला अब बढ़ने वाला है; उस घेरे को चीर कर वह आगे बढ़ा, "कहो जी उमा! कब आए!" यह कह कर ज़मीन पर पड़ी हुई गाँधी टोपी उसने उठा ली।

यह देख कर कि उमानाथ मार्कण्डेय का परिचित है, स्वयम्सेवक गण वहाँ से हट गए। स्वयम्सेवकों के हटते ही मार्कण्डेय की नज़र झगड़ू पर पड़ी जो एक कोने में खड़े आश्चर्य के साथ यह तमाशा देख रहे थे। वैसे ही मार्कण्डेय ने कहा, "अरे बप्पा! आपौ?"

झगड़ू ने मार्कण्डेय की ओर घूमकर कहा, "हाँ, अब ही मझले कुँवर और श्यामू के साथ मोटर पर आय रहे हन! तुम्हार गुन सुन के चले आएन!"

३

मार्कण्डेय का मकान मेस्टन रोड पर श्रद्धानन्द पार्क से करीब सौ गज़ की दूरी पर था। मकान पर पहुँच कर झगड़ू ने मार्कण्डेय से कहा, "तुम कुल माँ कलंक लगावन पर तुले भए हो!"

"कुल में कैसा कलंक?" मार्कण्डेय ने आश्चर्य से अपने पिता की ओर देखा।

"हम सुन रहे हन कि तुम जेल जाँय वाले हो! तौन यह न हमरे कुल माँ कबहूँ भा है और न अब होई! इतना नीक करिके समझ राखेव!"

अपने पिता की बात पर मार्कण्डेय को हँसी आ गई। वह अपने पिता को बहुत अच्छी तरह जानता था। उसने कहा, "बप्पा! यह तो ठीक है कि यह हमारे कुल में कभी नहीं हुआ; लेकिन जो बात पहले कभी कुल में नहीं हुई, वह आगे क्यों न हो, यह मेरी समझ में नहीं आता!"

"तुम्हारी समझ में नाहीं आवत है तो न आवे, कुल की मर्जादा हम नीक करिके समझित है, ई पर हमें तुम्हार सलाह की जरूरत नाहीं है!" झगड़ू ने ज़रा कड़े होकर कहा।

मार्कण्डेय अपने पिता के थोड़ा निकट आ गया, "बप्पा! तो फिर आपने मुझे वकालत क्यों पढ़ाई? हमारे कुल में कभी किसी ने अंग्रेज़ी नहीं पढ़ी थी और वकालत नहीं पढ़ी थी! मुझे भी आप देहात में ही रखते, अज्ञान का जीवन व्यतीत करने देते, पशु की मौत मर जाने देते! अगर मैं जेल जाना चाहता हूँ तो चोरी करके नहीं, डाका डाल के नहीं, बल्कि अपनी आत्मा से प्रेरित होकर, देश और समाज के हित के लिए।"

मार्कण्डेय के इस तर्क ने झगड़ू पर असर किया, मार्कण्डेय यह बात झगड़ू की मुद्रा देखकर समझ गया था। वह कहता ही गया, "बप्पा! हम लोग ऋषियों की सन्तान हैं, उन ऋषियों की, जिनका काम था पाप को निर्मूल करने के लिए अथक परिश्रम करना, इस प्रयत्न में घोर यातनाएँ

मैं चौबीस घंटे के अन्दर शहर छोड़ दूँ, नहीं तो सरकार मुझे गिरफ़ार कर लेगी !"

"तो काहे नाहीं गाँव चले चलत हौ ?" झगड़ू ने कहा।

"और दुनिया यह कहे कि मैं कायर हूँ—सरकार यह कहे कि काँग्रेस में डरपोक आदमी भरे हैं !"

झगड़ू की समझ में यह सब न आ रहा था। उन्होंने कुछ झल्ला कर कहा, "तो फिर जो तुम्हरे जी माँ आवै वह करो; हम तुमका रोक थोड़ो रहे हन !"

"मैं जानता हूँ बप्पा ! आप मुझसे कभी भी ग़लत बात करने को न कहेंगे। अभी तक जो कुछ आपने किया है या मुझसे करने के लिए कहा है, वह मेरे हित के लिए !" मार्कण्डेय ने अपने बूढ़े पिता की ओर प्रेम पूर्वक देखते हुए कहा !

उमानाथ आश्चर्य के साथ इन पिता-पुत्र को देख रहा था; वह समझ नहीं पा रहा था कि यह सब क्या हो रहा है ! जो कुछ उसे झगड़ू के सम्बन्ध में ज्ञात था उससे वह उस दृश्य पर विश्वास नहीं कर पा रहा था। उसने अपने सामने बैठे हुए ठेठ गँवार को देखा, झुर्रियों से भरा हुआ कठोर मुख, और उस मुख पर जीवन के भयानक संघर्ष तथा चिन्ताओं का और पग-पग पर सामने वाली असफलताओं तथा विवशताओं का लम्बा इतिहास ! और इन सबों की तह में एक सहृदय मानव जिसका भलाई पर विश्वास, दूसरों के हित के प्रति जिसमें आन्तरिक इच्छा; जिसमें स्वार्थ-परार्थ, अच्छा-बुरा, सही-ग़लत इन सब का विवेचन ! और उस बूढ़े के सामने बैठा हुआ था उसका जवान पुत्र जिसके मुख पर दृढ़ता, होठों पर मुसकराहट, आँखों में तेज और वाणी में विश्वास ! और उसने देखा कि पुत्र पिता पर शासन कर रहा है, बुद्धि भावना को संचालित कर रही है, विद्या-अविद्या पर विजय पा रही है। थोड़ी देर तक उमानाथ चित्रलिखित-सा इन दोनों को देखता रहा ! उसने एक ठंडी साँस ली, "अच्छा झगड़ू काका, तो मैं चलता हूँ !"

उमानाथ जब दयानाथ के बँगले में पहुँचा, पण्डित श्यामनाथ तिवारी मुँह-हाथ धोकर ड्राइंग रूम में डटे हुए जलपान कर रहे थे। उनके सामने उस दिन का दैनिक पत्र लीडर खुला रक्खा था और वे उसे भी साथ-साथ पढ़ते जाते थे। श्यामनाथ के पास बैठते हुए उमानाथ ने कहा, "वाह काका, मेरा तो इंतज़ार कर लिया होता!" और उमानाथ श्यामनाथ के नाश्ते पर जुट गया।

नाश्ता कर लेने के बाद श्यामनाथ उमानाथ की ओर मुखातिब हुए, "उमा! अब अपनी भावज से बात करो जाकर! मेरी तरफ़ से उसे समझा देना कि वह दद्दुआ की बात भूल जाय और अपनी ज़िद पर न अड़ कर हमारे साथ घर चले!"

उमानाथ अपनी भावज के पास पहुँचा, "भौजी जी, काका आप को मनाने आए हैं और मध्यस्थ बनने के लिए मैं आया हूँ। इसीलिए मैं आपके सन्मुख उपस्थित हुआ हूँ!"

राजेश्वरी ने मुसकराते हुए कहा, "अच्छा, पहिले नहा-धोकर कपड़े बदलो, फिर चाय पियो और फिर जो कहना हो वह कहना।"

"आप इसकी चिन्ता न करें—नहा-धोकर और कपड़े बदल कर मैं उन्नाव से चला हूँ, नाश्ता मैं काका के साथ कर चुका हूँ; अब बात-चीत करना बाकी है!"

"अच्छी बात है बाबू जी! तो कह डालिये क्या कहना है!"

"काका का कहना है कि आपको ज़िद न करना चाहिए और घर चलना चाहिए!"

"इसमें ज़िद की क्या बात है बाबू जी, अगर मेरा घर होता तो मैं ज़रूर चलती! आप काका जी से कह दीजिये जाकर!" राजेश्वरी ने कहा।

उमानाथ ने दूसरी बात नहीं की, वह सीधे श्यामनाथ के पास पहुँचा, "भौजी जी कहती हैं कि उनका घर ही नहीं है और आप—याने हम लोग उनके कोई नहीं हैं।"

को बतला सकेंगे कि ये मिल मालिक कितने पानी में हैं—ये अव्वल-नम्बर के स्वार्थी हैं !"

उमानाथ ने ग़ौर से ब्रह्मदत्त को देखा, उसकी तेज़ नज़र के आगे ब्रह्मदत्त थोड़ा सा निष्प्रभ हो गया।

उमानाथ ने कहा, "मौक़ा तो अच्छा है, लेकिन हमारे सामने सवाल यह है कि इस समय हड़ताल का असर इस मूवमेण्ट पर कैसा पड़ेगा ?"

ब्रह्मदत्त ने कुछ हिचकिचाते हुए कहा, "जी...मेरा ख्याल तो यह है कि जो कुछ भी असर हो, हमारे लिए यानी मज़दूरों के लिए वह असर अच्छा ही होगा। और हमें तो देखना यह है कि हमारा—यानी मज़दूरों का और हमारी पार्टी का फ़ायदा किस बात में है।"

"आप ठीक कहते हैं !" उमानाथ ने बात को वहीं रोकते हुए कहा, "लेकिन इस बात पर अच्छी तरह से ग़ौर कर लेना पड़ेगा। हाँ, मुझे एक बात और पूछनी है, कानपुर में आपके अलावा और कितने लेबर-लीडर हैं ? मैं उन लोगों से मिलकर उन लोगों की भी राय ले लेना उचित समझूँगा।"

उमानाथ का यह रुख ब्रह्मदत्त को अच्छा नहीं लगा। कामरेड मारीसन को वह इस समय तक बहुत कुछ समझा चुका था और कामरेड मारीसन समझ भी चुके थे; इसलिए कामरेड तिवारी का बीच में फट पड़ना उसे अखर गया। उसने कहा, "जी...मेरे अलावा दो-चार आदमी और हैं लेकिन उनपर सब मज़दूरों का पूरा विश्वास नहीं और इसलिए उनकी राय का कोई मूल्य नहीं।"

"समझ गया। तो आपसे मैं फिर कभी फ़ुरसत में बात करूँगा; अभी इस समय मुझे कामरेड मारीसन से कुछ खास बातें करनी हैं। आप शाम को सात बजे यहीं मिलियेगा !" उमानाथ ने शुष्क भाव से ब्रह्मदत्त से कहा।

ब्रह्मदत्त के जाने के बाद उमानाथ ने कामरेड मारीसन से कहा, "तुम्हारा यह लेबर लीडर काफ़ी बड़ा बदमाश भी मालूम होता है। अगर ऐसे लोगों के हाथ में हमारा आरगेनाइज़ेशन है तो खैरियत नहीं !"

"क्यों ! इस आदमी में खराबी क्या है ? अच्छा काम करने वाला, दौड़-धूप के लिए हरदम तैयार और उस पर मज़दूरों पर इसका पूरी तौर से प्रभाव ! अगर आप यह भी मान लें कि यह अक्ल में आपके मुक़ाबिले का नहीं है तो इसमें उसका क्या क़सूर ?"

उमानाथ हँस पड़ा, "तुम ग़लती करते हो कामरेड मारीसन ! यह आदमी अक्ल में तुमसे या मुझसे कहीं ज्यादा है, लेकिन इसके साथ मुसीबत यह है कि इसकी बुद्धि रचनात्मक न बन कर विनाशात्मक ढंग पर विश्वास करती है और इस तरह से हमारे सिद्धान्त को और हमारे ध्येय को मिट्टी में मिला सकती है । मुझे अपने विरोधियों से डर नहीं है, मुझे डर है इस तरह के कार्यकर्ताओं से । खैर छोड़ो भी इन बातों को; इन लोगों के साथ मैं निपट लूँगा । हाँ, तुम्हारे साथ कैसी बीती ?"

"क्या बतलाऊँ कामरेड तिवारी ! तुम तो मुझे छोड़ कर चल दिये और मैं अकेला रह गया । अब कामरेड, एक तो मेरा गोरा चमड़ा और दूसरे यहाँ की भाषा हिन्दुस्तानी का बहुत थोड़ा-सा ज्ञान । फिर देश में अंग्रेज़ों के प्रति घृणा का भाव ! शहर में जो निकला तो लोग मेरे पीछे हो लिए । मेरा तमाशा बना डाला उन लोगों ने । जैसे-तैसे कांग्रेस कमेटी के दफ्तर में पहुँचा और मुझे यह ब्रह्मदत्त मिल गया । फिर क्या मौज से दिन-रात इसके साथ घूमा करता हूँ !"

"अर्दली तुम ने बेजा नहीं चुना, है भी इसी क़ाबिल कि गाइड का काम करे, इससे ज्यादा इसकी वक़त नहीं । खैर, वह तो टला, अब चलो मेरे यहाँ; अपने चचा से तुम्हें मिलाऊँ । लेकिन एक बात बतला दूँ, तुम उन पर कहीं यह न ज़ाहिर कर देना कि तुम कम्यूनिस्ट हो । वे सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस हैं ।"

"ऐसी बात है ! तुम्हारा खान्दान तो बड़ा दिलचस्प मालूम होता है," कामरेड मारीसन ने कहा; "तुम्हारे यहाँ ज़रा सम्हल कर रहना होगा !"

"इसमें क्या शक है ! अभी तुम मेरे पिता से नहीं मिले । अजीब तरह

के आदमी हैं। अगर उनका बस चले तो हर एक समाजवादी की खाल खिंचवा कर भुस भरवा दें।"

"तो मैं बड़े खतरनाक आदमियों के बीच में आ पड़ा हूँ!" कामरेड मारीसन ने गम्भीर मुद्रा बनाते हुए कहा।

उमानाथ हँस पड़ा, "डर गए! अरे एक बात और बतला दूँ! ये जितने आदमी हैं—हम लोग शुरू से लेकर आखीर तक—सब के सब बहुत बड़े कायर हैं। अगर कायर न होते तो भला ये लोग ग़ुलामी करते होते? और इतने बड़े कायर होते हुए भी यह लोग ज़रा-ज़रा सी बात पर लड़ पड़ते हैं, हत्या कर डालते हैं, फाँसी चढ़ जाते हैं।"

"यह तो बड़े ताज्जुब की बात है कामरेड तिवारी!"

"हाँ! और इसका कारण सुनकर तुम्हारा ताज्जुब दूर हो जायगा। हम हिन्दुस्तानियों में पशुता पूरी तरह भरी हुई है। इसी पशुता से प्रेरित होकर हम सब यह कर डालते हैं। लेकिन जब मनुष्यता प्रदर्शित करनी होती है, जब साहस की आवश्यकता होती है तभी हम हिन्दुस्तानी अपने को बहुत गिरा हुआ पाते हैं।"

कामरेड मारीसन उठ खड़े हुए, "अच्छा चलो, तुम्हारे ही यहाँ चलता हूँ। लेकिन कामरेड! लोगों को मैंने देखा है, उनके सम्पर्क में आया हूँ; और मैं ज़रा भी विश्वास करने को तैयार नहीं हूँ कि हिन्दुस्तानी इतने खूंख्वार हैं।"

"यह इसलिए कामरेड कि तुमने हिन्दुस्तान में शहर ही देखे हैं और शहरों में रहने वाले जानवर पालतू हो गए हैं; उनके दाँत और नाखून हमारी सभ्यता ने तोड़ दिये हैं!" उमानाथ ने कामरेड मारीसन के साथ चलते हुए कहा।

५

पण्डित श्यामनाथ तिवारी को दयानाथ से मुलाक़ात करने के लिए ज़रा भी तकलीफ़ नहीं उठानी पड़ी। जेल के अधिकारी दयानाथ को और उसके

कुल को जानते थे। दयानाथ को 'ए' क्लास मिला था; और जेलर ने दयानाथ को जेल का सबसे अच्छा कमरा और उसके साथ ही विशेष फ़र्नीचर तथा अन्य सुविधाएँ दे रक्खी थीं। श्यामनाथ तिवारी दयानाथ के कमरे में पहुँचा दिए गए।

श्यामनाथ को देखते ही दयानाथ ने उनके चरण छुए! "अरे काका आप!"

"हाँ—तुमसे मिलने चला आया!"

"आपको मेरे कारण यहाँ आने का कष्ट उठाना पड़ा, इसके लिए मैं क्षमा माँगता हूँ। वैसे आपको यहाँ आने की कोई आवश्यकता तो नहीं थी।"

श्यामनाथ ने दयानाथ को देखा, मुख पर मुसकराहट और नेत्रों में चमक। वह अपने घर के ही कपड़े पहने था। श्यामनाथ ने धीमे स्वर में कहा, "दया! मुझे तुमसे कुछ ज़रूरी बातें करनी थीं। इसलिए आया हूँ। मेरी तुमसे प्रार्थना है कि तुम......"

श्यामनाथ की बात बीच में ही काट कर दयानाथ ने कहा, "बेकार है काका! यहाँ आकर अब मैं माफ़ी माँगूगा, या सरकार से कांग्रेस से अलग हो जाने का वादा करूँगा, इसकी कल्पना करना ही मेरे साथ, मेरी आत्मा के साथ, मेरी मनुष्यता के साथ अन्याय करना है।"

"नहीं दया, मैं इसके लिए नहीं आया हूँ। मुझे तुम्हारे घर की बाबत कुछ बात करनी है!"

"कहिये!"

"देखो, बात यह है कि बड़ी बहू कानपुर में अकेली है।"

"अकेली तो नहीं काका, राजेश और ब्रजेश उनके साथ हैं।"

"अरे मेरा मतलब उससे है जो उसकी देख-भाल कर सके।"

"इसकी आप चिन्ता न करें काका; वह स्वयम् अपना देख-भाल करने क़ाबिल है। फिर उसके साथ भगवान हैं।"

"दया ! इस तरह की ऊट-पटाँग बातें करने से क्या फ़ायदा ? मेरे कहने का मतलब यह है कि बड़ी बहू कानपुर में बिल्कुल अकेली है। बड़के भइया उसे बानापुर ले चलने के लिए तुम्हारे यहाँ गए थे लेकिन बड़ी बहू ने बानापुर जाने से इनकार कर दिया !"

"ददुआ खुद आए थे—और उसने इनकार कर दिया !" आश्चर्य से दयानाथ ने कहा। कुछ देर तक वह चुपचाप सोचता रहा, फिर उसके होठों पर एक हलकी मुसकराहट आई, "मुझे इसकी उम्मीद न थी ! भगवान को धन्यवाद कि उसमें इतनी बुद्धि तो आ गई !" अब वह श्यामनाथ से बोला, "काका—देखिये, मैं कुल का त्याज्य हूँ; मुझे बानापुर जाने का अधिकार नहीं। अब मैं आपसे पूछ रहा हूँ कि आप लोगों को मेरे घर में, मेरे बीवी-बच्चों में इतनी दिलचस्पी क्यों ?"

श्यामनाथ सन्नाटे में आ गए। दयानाथ में, उस दयानाथ में जिसमें इतना संयम था, इतनी शिष्टता थी, जो इतना शान्त था, इतना गम्भीर था; उसमें इतनी कटुता कैसे आ गई ? उन्होंने कहा, "दया ! तुम कैसी बातें कर रहे हो ?"

"बिल्कुल ठीक कह रहा हूँ काका ! मैं गिरफ़ार हुआ, मुझे सज़ा हुई; लेकिन आप लोगों को मुझमें कोई दिलचस्पी नहीं थी। ददुआ चाहते हैं कि मैं उनका ग़ुलाम बनकर रहूँ ! आखिर यह क्यों ? वे हर एक आदमी को अपना ग़ुलाम बनाकर रखना चाहते हैं, और मैं ! मैं ग़ुलामी के खिलाफ़ लड़ रहा हूँ ! कहीं भी तो हम दोनों में समता नहीं है; न हम दोनों एक दृष्टिकोण से देख सकते हैं, न हम दोनों एक तरह से समझ सकते हैं। फिर मैं पूछ रहा हूँ कि उन्हें मेरी पत्नी में और बच्चों में इतनी दिलचस्पी क्यों ? आप लोग अमीर हैं, आप लोग दूसरों को उत्पीड़ित करके, दूसरों को मिटा करके खुद मौज करने में विश्वास करते हैं। और मैं !—मैं उन लोगों में हूँ जो स्वयम् मिटने में विश्वास करते हैं।"

श्यामनाथ को अनुभव हो रहा था कि दयानाथ का दिमाग़ कुछ खराब

हो गया है; घबराए हुए वे अपने भतीजे को देख रहे थे, "दया! मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ, तुम इस तरह की बातें मत करो।"

"तो आप क्या कहना चाहते हैं?"

"मैं बड़ी बहू के विषय में कहना चाहता हूँ कि वह कानपुर में कैसे रहेगी, बिल्कुल अकेली! राजेश और ब्रजेश का भी तो खयाल करना पड़ेगा।

"तो आप बतलाइये मैं क्या करूँ? दुनिया में मेरे भी तो कोई नहीं है, और इसका मुझे दुःख नहीं—ज़रा भी दुःख नहीं। पशुता के बन्धन से छूट-कर मुझे प्रसन्नता ही हुई।"

श्यामनाथ तिवारी तिलमिला उठे। उन्हें विश्वास नहीं हो रहा था कि उनका सगा भतीजा दयानाथ उनके मुँह पर ही उन्हें पशु बना रहा है। पर श्यामनाथ तिवारी जानते थे कि दयानाथ के साथ रामनाथ तिवारी ने बहुत बड़ा अन्याय किया है; और इसलिए वे अनुभव करते थे कि दयानाथ की कटुता स्वाभाविक है। श्यामनाथ की मनुष्यता ने उनके क्रोध पर विजय पाई, उन्होंने बहुत करुण स्वर में कहा, "दया! जितना भला-बुरा कहना चाहो कह लो, बड़ी से बड़ी गाली सुनने को मैं तैयार हूँ। इसलिए कि तुम मेरे भतीजे हो, मेरे खानदान के हो। तुम जानते हो मुझे और मेरे स्वभाव को, लेकिन क्या करूँ, मैं विवश हूँ। मैं जानता हूँ कि तुम्हारे साथ अन्याय हुआ है, और इसीलिए मैं तुम्हारे पास आया हूँ। मुझे उस अन्याय पर दुःख है और मैं तुमसे माफ़ी माँगता हूँ।"

अपने काका की बात से दयानाथ लज्जित हो गया, उसका क्रोध गल गया, "नहीं काका—ऐसी बात आप न कहें, इसमें आपका कोई दोष नहीं। लेकिन आप ही बतलाइये मैं क्या करूँ? आपकी क्या आज्ञा है?"

"बहू का कहना है कि वह बिना तुम्हारी आज्ञा के बानापुर नहीं जा सकती। मैं चाहता हूँ कि तुम उसे बानापुर जाने की इजाज़त दे दो।"

"काका! एक बात मैं आपसे कहूँगा। फिर इस विश्वास के साथ कि आप मुझे अनुचित बात करने को न कहेंगे, आप जो कुछ कहियेगा वही मैं

करूँगा। ददुआ ने मुझसे कहा है कि उनके जीवित रहते मैं बानापुर में पैर नहीं रख सकता। आप ददुआ को जानते हैं, उनके हठ को जानते हैं, उनके निर्णय को जानते हैं। अब सवाल यह है कि, जब मैं एकदम त्याज्य हूँ तो मेरी पत्नी किस प्रकार वहाँ स्वीकृत हो सकेगी ?"

श्यामनाथ निरुत्तर हो गए, "ठीक कहते हो! लेकिन हो, क्या ?"

"कुछ नहीं, जैसें चल रहा है, चलता रहेगा!"

श्यामनाथ निराश लौट आए।

जिस समय श्यामनाथ घर लौटे, बारह बज चुके थे। उनके मन की थकावट उनके शरीर में व्याप्त हो गई थी—वे बहुत अधिक चिन्तित थे। ड्राइंगरूम में वे बिजली का पंखा खोल कर बैठ गए—उन्हें कुछ अच्छा न लग रहा था। बात इतनी बढ़ सकती है—उन्होंने यह न सोचा था। आज जेल में दयानाथ से बात करके, उसकी कटुता को देख कर उनकी समझ में आया कि जो कुछ हुआ वह बहुत-असाधारण बात थी। राजेश और ब्रजेश उसी कमरे में खेल रहे थे। राजेश को उन्होंने अपनी गोद में बिठला कर पूछा, "राजेश! तुम्हारे पिताजी कहाँ हैं!"

"किशन-मन्दिल में!" गर्व के साथ ब्रजेश ने जो थोड़ी दूर पर बैठा एक किताब के पन्नों को फाड़ कर नाव बना रहा था, जवाब दिया!

"मेरे साथ चलोगे ?" श्यामनाथ ने फिर पूछा।

"हाँ बाबा! आप की मोटर पर चलेंगे!" राजेश ने कहा, "जब से बाबूजी किशन-मन्दिर में गए तब से माँ ने मोटर बन्द करवा दी। कहती हैं पैसा नहीं है—और मोटर चलती है पेट्रोल से, और पेट्रोल खरीदने के लिए पैसा चाहिए। बाबा! माँ झूठ-मूठ कहती हैं। उनके पास रुपया है लेकिन कहती हैं कि रुपया नहीं है। जब पिताजी थे तब रोज घुमाने ले जाते थे। और अब..." राजेश कहते-कहते रुक गया।

श्यामनाथ राजेश की बातें ध्यान से सुन रहे थे। राजेश की भोली बातों में कितनी करुणा थी, कितनी विवशता थी! राजेश को अपनी गोद से

उतारते हुए श्यामनाथ ने कहा, "अच्छा राजेश आज तुम मेरी मोटर पर घूमने चलना !"

"औल वावा मैं—मैं भी चलूँदा !—ऊ—ऊँ !" ब्रजेश ने वहीं से अवाज़ लगाई ।

श्यामनाथ ने वढ़कर ब्रजेश को गोद में उठा लिया, "हाँ, तुम भी ! तुम भी चलोगे !"

"औल माँ !—माँ भी चलेंदी न !" खुश होकर ब्रजेश ने पूछा ।

इसी समय उमानाथ ने कामरेड मारीसन के साथ कमरे में प्रवेश किया ।

६

कामरेड मारीसन की शक्ल देखते ही राजेश और ब्रजेश कमरे से रवाना हो गए । उमानाथ ने वढ़ कर श्यामनाथ से कहा, "काका ! ये मेरे दोस्त मिस्टर मारीसन हैं, बड़े विद्वान आदमी । हमारे महान ग्रंथ वेदों का अध्ययन करने के लिए ये हिन्दुस्तान आए हुए हैं—हिन्दू धर्म के बहुत बड़े भक्त हैं ।

श्यामनाथ ने उठ कर बहुत आदर-पूर्वक मारीसन से हाथ मिलाया, "मुझे आपसे मिलकर बड़ी खुशी हुई । कहिये हिन्दुस्तान में आपने क्या-क्या देखा ?"

कामरेड मारीसन ने एक वार बड़े आश्चर्य के साथ उमानाथ के मुख को [illegible] देखा—यह जानने के लिए कि उसके इस झूठ का मतलब क्या है, लेकिन उमानाथ शान्त था । कामरेड मारीसन ने ज़रा वचते हुए कहा, "हिन्दुस्तान में अच्छी तरह से घूमा हूँ; और देखा भी मैंने बहुत कुछ है । लेकिन एक खास बात मैंने जो देखी वह यह है कि यहाँ के आदमी नेक होते हुए भी वेवकूफ़ हैं ।"

"इसमें क्या शक है !" श्यामनाथ तिवारी ने मारीसन की बात की ताईद की "वेवकूफ़ तो ये लोग अव्वल नम्बर के हैं । तभी तो देखिये आप लोग वेदों के पीछे दीवाने घूम रहे हैं, इतनी दूर विलायत से वेदों का पता

लगाने यहाँ आए हैं, और हम लोग अपने ही महान ग्रंथ की परवाह नहीं करते ! तो वेदों को आपने खूब अच्छी तरह पढ़ा होगा !"

"जी...अभी पढ़ ही रहा हूँ ! बड़ी अच्छी किताब है ! आपकी क्या राय है ?"

श्यामनाथ तिवारी ज़रा संकट में पड़ गए। अपना अज्ञान वे प्रकट नहीं करना चाहते थे, पर वेद के धुरंधर विद्वान के सामने वे दून की भी नहीं हाँक सकते थे। उन्होंने कुछ सोचकर कहा, "मैं क्या बतलाऊँ ! वेद तो हमारा ही ग्रंथ है न ! लेकिन इतना मानना पड़ेगा कि वेद में पूर्ण ज्ञान भरा है। वह महान ग्रंथ है, और हम हिन्दुओं का यह विश्वास है कि स्वयम् ब्रह्मा ने उसे लिखा है।"

"जी हाँ ! चीज़ तो वह ऐसी ही है ! हिन्दुस्तानियों में किसी समय—इन हिन्दुस्तानियों में जो आज परले सिरे के बेवकूफ़ समझे जाते हैं, किसी समय इतना अथाह ज्ञान था—यह देख के मुझे दंग रह जाना पड़ता है !"

उमानाथ इन दोनों की बातचीत पर मन ही मन हँस रहा था। उसने कामरेड मारीसन से कहा, "मिस्टर मारीसन ! आज जिसे हम सोशलिज़्म कहते हैं, उस पर वेद में कितना अच्छा प्रकाश डाला गया है ! मनुष्य सम है, उसने स्वयम् विषमता उत्पन्न कर ली है। उस विषमता को दूर करना ही मनुष्य का परम कर्तव्य है !"

"बिल्कुल ठीक मिस्टर उमानाथ ! मुझे बड़ा ताज्जुब होता..."हिन्दुस्तानी उन दिनों आज की दुनिया की रफ़्तार से किस तरह वाक़िफ़ हो गए थे !"

"और वेद में ही तो कहा है कि राजाओं को मार डालो, अमीरों को लूट लो, अमीरी को मिटा दो। जो कुछ अन्न पैदा हो वह बराबर-बराबर बाँट लो !" उमानाथ ने फिर कहा।

पण्डित श्यामनाथ का माथा ठनका। यद्यपि उन्होंने वेद पढ़ा नहीं था, पढ़ना तो दूर रहा, देखा तक नहीं था पर उन्होंने वेद के विषय में सही-ग़लत

सुना बहुत कुछ था। आर्य समाजी और सनातन धर्मी सभी वेद की दुहाई देते हैं। पर किसी आदमी ने कभी यह नहीं कहा था कि वेदों में राजाओं और अमीरों को लूटने-पाटने के लिए लोगों को उकसाया गया है। वह आश्चर्य से उमानाथ को देख रहे थे। वे अच्छी तरह जानते थे कि उमानाथ ने भी कभी वेद नहीं पढ़ा है।

और वेद का प्रकाण्ड पण्डित बड़े जोश के साथ कह रहा था, "ठीक कहते हो मिस्टर उमानाथ, वेदों में ही कहा गया है कि मिल के मज़दूरों को मिल की आमदनी पर पूरा अधिकार होना चाहिए। पूँजीपतियों को यह कभी भी अधिकार नहीं है कि वह ग़रीब मज़दूर की खून की कमाई पर गुलछर्रे उड़ावें!"

श्यामनाथ तिवारी कह उठे, "क्या कहा?"

और श्यामनाथ के चेहरे के भाव को देख कर कामरेड मारीसन को पता लग गया कि कहीं ग़लती हो गई। उस समय उमानाथ ने उनकी बड़ी सहायता की। उमानाथ ने कहा, "मिस्टर मारीसन! पण्डित बद्रीनाथ शास्त्री से आप आज शाम को ही मिलियेगा न!"

"यह तो तुम जानो—जैसा तै किया हो!" मारीसन समझ गया कि वेदों का क़िस्सा अब खत्म होना चाहिए।

पण्डित बद्रीनाथ शास्त्री कानपुर नगर के बहुत प्रसिद्ध ज्योतिषी थे। लोगों का खयाल था, और स्वयम् पण्डित बद्रीनाथ शास्त्री का कहना था कि उनके पास भृगु-संहिता है, और इसी सिलसिले में एक-आध बार पण्डित श्यामनाथ तिवारी शास्त्री जी से मिले थे। पण्डित बद्रीनाथ शास्त्री ने जो बातें बतलाई थीं उनमें पचीस प्रतिशत उनके ज्ञान को साबित करती हुई ठीक निकलीं और पचहत्तर फ़ी सदी कलजुग तथा अधर्म के कारण ग्रहों के फलाफल में भेद पड़ जाने को साबित करती हुई झूठी निकलीं।

अपने काका को थोड़ा सा और आश्वासन दिलाने के लिए उमानाथ

ने कामरेड मारीसन से कहा, "मिस्टर मारीसन! हिन्दुस्तान में मज़ाक़ सिर्फ़ बराबरी वालों से और बराबरी वालों के सामने ही किया जाता है।"

मारीसन ने भी अपनी सफ़ाई देना उचित समझा, "मुझे माफ़ कीजियेगा। बात यह हुई कि कलकत्ता से आने के वक्त ट्रेन में एक करोड़पती मारवाड़ी से मुलाक़ात हो गई। बड़ा बना हुआ आदमी था—जब बात करता था तब गीता और वेद का हवाला देता था। मुझसे टूटी-फूटी अंग्रेज़ी में दून की हाँकने लगा। उसे क्या मालूम कि मैं संस्कृत का पण्डित! फिर उसने वेदों पर बात-चीत शुरू की। अब मैंने सोचा कि उसे बनाया जाय। तो मैंने जो इस तरह की बातें उसे सुनाईं तो लगा बगलें झाँकने, सारी सिट्टी-पिट्टी भूल गई।"

इस पर श्यामनाथ बहुत हँसे। जो कुछ शक उन्हें हुआ था वह पण्डित बद्रीनाथ शास्त्री का नाम तथा इस मज़ेदार क़िस्से को सुनकर दूर हो गया।

श्यामनाथ ने हिन्दी में उमानाथ से वे सब बातें बतला दीं जो उनमें और दयानाथ में हुई थीं। "अब क्या हो!" उमानाथ ने पूछा।

"क्या बतलाऊँ! कुछ समझ में नहीं आता!"

"मैं एक बात कहूँ! अगर आप ठीक समझें तो मैं यहाँ कानपुर में उस समय तक यहीं रहूँ जब तक बड़के भइया जेल में हैं। अगर भौजी जो हमारे यहाँ नहीं जातीं तो हम लोग तो यहाँ आ सकते हैं। इससे हमारा मतलब पूरा हो जायगा और बड़के भइया की ज़िद भी रह जायगी।"

श्यामनाथ कुर्सी से उछल पड़े। "ठीक उमा! यह बात तो हम लोगों को सूझी तक नहीं थी! मैं जान गया कि विलायत हो आने से आदमी की अक़्ल ज़रूर बढ़ जाती है। तो तुम यहाँ रहने को तैयार हो न! हैं, चलो, आज ही मैं बड़के भइया से सब कुछ तै कर लूँगा।"

"काका—मेरा बानापुर जाना बेकार है, आप खुद दद्दुआ से सब कुछ ठीक कर लीजियेगा। हाँ, आप वहाँ से मेरा असबाब भिजवा दीजियेगा। आप जानते ही हैं कि मेरे जाने से भौजी जी यहाँ अकेली रह जाएँगी!"

"हाँ उमा—यह तुमने ठीक कहा। अच्छा, तो मैं कल सुबह थानापुर जाऊँगा। अभी मैं फ़तहपुर जा रहा हूँ। रात के समय लौट आऊँगा।"

शाम के समय उमानाथ मार्कण्डेय के मकान पर पहुँचा। पण्डित झगड़ू मिश्र बरामदे में बैठे पुलिस की प्रतीक्षा कर रहे थे और भीतर कमरे में मार्कण्डेय कानपुर के काँग्रेसवालों के साथ बात-चीत कर रहा था। मार्कण्डेय की बात-चीत में बाधा डालना उमानाथ ने उचित नहीं समझा वह सीधे झगड़ू के पास पहुँचा। झगड़ू उमानाथ को देखते ही उठ खड़े हुए, "तुम अच्छे आय गये मझले कुँवर! पुलिस तो अबहीं तक नाहीं आई; बैठो. आवते होई।"

उमानाथ मुसकराया। सड़क पर एकत्रित भीड़ को, जो मार्कण्डेय की गिरफ़्तारी पर उसे विदा देने के लिए एकत्रित हो रही थी, देखते हुए उसने कहा; "झगड़ू काका! अगर पुलिस इस समय मार्कण्डेय भइया को गिरफ़्तार करने आती है तो मैं समझूँगा कि पुलिस वाले बहुत बड़े मूर्ख हैं। और इसलिए मैं तो चलूँगा क्योंकि मुझे ज़रूरी काम है। वापसी में अगर हो सका तो आऊँगा।"

ठीक सात बजे उमानाथ कामरेड मारीसन के होटल में पहुँचा। ब्रह्मदत्त और कामरेड मारीसन दोनों चुप बैठे उमानाथ का इंतज़ार कर रहे थे। कामरेड मारीसन ने उमानाथ के कान में कहा, "कामरेड उमानाथ, मैं तो उस आदमी के साथ बैठने में घबराता हूँ तुम्हीं इसे सम्हालो!"

उमानाथ हँस पड़ा, "मैं अभी निपटता हूँ।" और यह कह कर वह ब्रह्मदत्त की ओर घूमा।

उसने बातें आरम्भ की, "कहिये श्रीयुत ब्रह्मदत्त! आप यहाँ क्या कर रहे हैं?"

"मैं मज़दूर सभा का सेक्रेटरी हूँ। काँग्रेस की वार-काउंसिल का मेम्बर भी हूँ।"

"मुझे ताज्जुब हो रहा है कि मज़दूरों ने आप को अपना सेक्रेटरी क्यों

बना लिया और कांग्रेसवालों ने आप को बार-काउंसिल में क्यों शामिल कर लिया। खैर, जाने दीजिये इस बात को। अब आप बतलाइये कि अगर आप इस समय मज़दूरों से हड़ताल करने को कहेंगे तो क्या वे राज़ी हो जाएँगे ?"

"इसमें क्या शक है !" ब्रह्मदत्त ने तपाक के साथ कहा, "जहाँ उन्हें यह समझाया गया कि हड़ताल करने से उनकी तनख्वाहें बढ़ जाएँगी, वहीं वे राज़ी हो जाएँगे।"

"और मान लीजिये कि मज़दूरों ने हड़ताल कर दी, और मिल-मालिकों ने भी उनसे लड़ने की ठान ली तो ये मज़दूर कितने दिन तक बेकार बैठे रह सकेंगे ?"

इस पहलू पर ब्रह्मदत्त ने विचार न किया था क्योंकि विचार करने की उसने ज़रूरत न समझी थी। प्रत्येक हिन्दुस्तानी की भाँति वह भविष्य को भगवान के हाथ में छोड़ देने पर विश्वास करता था। इस प्रश्न को सुन कर वह सकपकाया, "इसका जवाब तो मैं अभी नहीं दे सकता। दो-एक दिन में सब बातें दरियाफ़्त करके और हिसाब लगाकर बतला सकूँगा।"

"खैर, जाने दीजिये इस बात को ! हाँ, अब दूसरा सवाल यह है कि क्या मज़दूर सभा का कोई फंड है और अगर है तो उसमें कितना रुपया है ?"

"जी...फंड तो है, लेकिन उसमें रुपया नहीं के बराबर है। देखिये, मज़-दूर बिचारे दे ही क्या सकते हैं, और जो कुछ भी हम इकट्ठा कर पाते हैं वह कार्यकर्ताओं के वेतन, मार्ग-व्यय तथा अन्य ऐसी ही चीज़ों पर खर्च हो जाया करता है।"

उमानाथ का स्वर कड़ा हो गया, "फिर आप हड़ताल किस बिरते पर चलाना चाहते हैं ?"

"जी...पब्लिक से चन्दा माँग कर हम मज़दूरों को महीना-पंद्रह दिन खिला सकते हैं।"

"और इस पब्लिक के चन्दे में आपको कितना हिस्सा मिलेगा ?" उमा-नाथ ने बड़ी गम्भीरता पूर्वक प्रश्न किया।

"मैं समझा नहीं! क्या आपका मतलब है कि मैं मज़दूरों के चन्दे में से रुपया हड़प कर जाया करता हूँ?" ब्रह्मदत्त ने तनिक उत्तेजित होकर कहा।

"आप बिल्कुल ठीक समझे! और इसमें मुझे तब तक कोई एतराज़ नहीं जब तक आप यह चन्दा अमीरों से वसूल करते हैं और अपना हिस्सा खर्च कर डालते हैं, यानी उस रुपए से ज़मीन-जायदाद ख़रीद कर खुद पूँजी-पति नहीं बनते। लेकिन ब्रह्मदत्त जी, इस समय जब कि कांग्रेस की लड़ाई ज़ोरों के साथ चल रही है, लोगों की आँखें इस लड़ाई की ओर लगी हैं। इस समय आपकी ओर कोई मुखातिब न होगा, आपको कोई रुपया न देगा—इतना आप यक़ीन रक्खें। ये चन्दा देने वाले इस समय कांग्रेस को चन्दा दे रहे हैं। आपने ग़लत मौक़ा चुना है।"

"क्या आपने मेरा अपमान कराने के लिए मुझे यहाँ बुलाया है?" ब्रह्मदत्त ने कामरेड मारीसन की ओर मुड़कर कहा।

कामरेड मारीसन शान्त-भाव से बैठे हुए इन दोनों को देख रहे थे और मज़ा ले रहे थे। उन्होंने कोई उत्तर देना उचित न समझा।

कामरेड मारीसन के उस मौन से उत्तेजित होकर ब्रह्मदत्त ने फिर कहा, "आप लोग परले सिरे के धूर्त हैं और स्वार्थी हैं। एक भले आदमी को अपने घर में बुलाकर आप उसका अपमान करते हैं।" और वह उठ खड़ा हुआ।

उमानाथ ने ब्रह्मदत्त का हाथ पकड़ कर उसे बिठलाते हुए कहा, "कामरेड ब्रह्मदत्त! इस तरह नाराज़ नहीं हुआ जाता; काम की बात-चीत में सभी कुछ सुनना पड़ता है। और जिन बातों के सच होते हुए भी आप उन पर बुरा मान रहे हैं, मैं उन्हें कोई ऐसी बुरी भी नहीं समझता। फ़र्क इतना है कि मैं कुछ चुराता-छिपाता नहीं क्योंकि मैं जो कुछ करता हूँ वह विश्वास के साथ, और साथ ही साफ़ और खरी कहता हूँ।"

ब्रह्मदत्त ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। थोड़ी देर तक कोई बात नहीं हुई। उमानाथ ने उठते हुए कामरेड मारीसन से कहा, "कामरेड, अब कल

मिलूँगा; अभी मैं मिस्टर ब्रह्मदत्त के साथ ज़रा शहर घूमने जा रहा हूँ। रास्ते में और भी बातें होंगी।"

आठ बज चुके थे। ब्रह्मदत्त के साथ उमानाथ एक अंग्रेज़ी होटल में पहुँचा। उमानाथ ने दो पेग ह्विस्की का आर्डर दिया। ब्रह्मदत्त ने कहा, "मैं तो नहीं पीता!"

"अकेले या सबके सामने?"

"जी...वैसे तो इसमें कोई बुराई नहीं, लेकिन महात्मा गांधी ने इसपर धरना बिठला दिया है और मैं उन लोगों में हूँ जो शराब पर धरने को चला रहे हैं।"

"छोड़ो भी—यहाँ तो आपको देखने वाला कोई नहीं है—हाँ अपनी गांधी टोपी उतार डालिये!" और उमानाथ ने स्वयम् अपने हाथ से ब्रह्मदत्त की टोपी उतार कर अपनी जेब में रख ली।

ब्वाय दो गिलासों में सोडा और ह्विस्की दे गया। पीते हुए उमानाथ ने पूछा, "अच्छा ब्रह्मदत्त जी, एक बात बतलाइये। अगर ये मज़दूर हड़ताल करने के साथ-साथ सत्याग्रह भी आरम्भ कर दें तो कैसी रहे?"

"किसके खिलाफ़? सरकार के खिलाफ़ या मिल-मालिकों के खिलाफ़?" ब्रह्मदत्त ने पूछा।

"आप किसके खिलाफ़ चाहते हैं? दोनों ही बदमाश हैं, किस बदमाश को आप पछाड़ना चाहेंगे?" उमानाथ ने कहा।

ब्रह्मदत्त थोड़ी देर तक चुपचाप उमानाथ की बात को समझने की कोशिश करता रहा, पर बात उसकी समझ में नहीं आई, "लेकिन हड़ताल तो मिल-मालिकों के खिलाफ़ होगी; ऐसी हालत में सत्याग्रह किस तरह सरकार के खिलाफ़ चल सकता है। अगर सत्याग्रह हो सकता है तो मिल-मालिकों के खिलाफ़!"

"हाँ, यह तो आपने ठीक कहा। लेकिन मान लीजिये कि इस वक्

मिल-मालिक सरकार के साथ मिल जायँ और कांग्रेस का साथ छोड़ दें तो क्या होगा ? बीच में मज़दूरों का सवाल उठा कर क्या हम इस स्वाधीनता की लड़ाई में बाधा नहीं डालेंगे ? इसके अलावा मज़दूर एक तरफ़ से सरकार की हमदर्दी खो देंगे, दूसरी तरफ़ से जनता की।"

ब्रह्मदत्त हँस पड़ा, "आप अभी-अभी बाहर से लौटे हैं और चीज़ों को ठीक तौर से नहीं समझ पा रहे हैं। आप ज़रा ग़ौर करें कि यह कांग्रेस का मूवमेएट है क्या ? आप कहेंगे कि यह कांग्रेस और सरकार के बीच एक लड़ाई है। फिर एक सवाल और उठेगा,—यह कांग्रेस क्या बला है ? आप कहेंगे कि कांग्रेस हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता के लिए लड़ने वाली एक संस्था है। मैं मान गया ! लेकिन मैं पूछता हूँ कि देश की स्वाधीनता के लिए लड़ कौन रहा है ? ये किसान—निरक्षर और मूर्ख ! भला ये क्या लड़ सकते हैं ? ये तो यह भी नहीं जानते कि स्वाधीनता है क्या चीज़। फिर जहाँ त . ज़मीन्दारों का सवाल है, यह लड़ाई उनके ख़िलाफ़ पड़ती है क्योंकि हिन्दुस्तान की आज़ादी के अर्थ होंगे ज़मीन्दारी प्रथा का अन्त हो जाना। तो बाकी रह गए हमारे देश के व्यापारी। यहाँ यह समझ लेना पड़ेगा कि इंगलैण्ड व्यापारिक देश है, और हिन्दुस्तान की ग़ुलामी बहुत बड़े अंश में मुख्यतः व्यापारिक तथा आर्थिक ग़ुलामी है। इंगलैण्ड की व्यापारिक नीति के कारण हिन्दुस्तान के व्यापार को तथा व्यापारियों को बहुत बड़ा धक्का लगता है। तो कामरेड, हमारे देश के व्यापारी ही अपने हित के लिए स्वतन्त्रता पाना चाहते हैं और इसलिए ब्रिटिश सरकार से लड़ रहे हैं। यह व्यापारी कभी भी सरकार का साथ न देंगे। यह याद रखियेगा कि कांग्रेस व्यापारियों की, पूँजीपतियों की संस्था है। इस समय ये पूँजीपति बड़ी आसानी से दबाए जा सकते हैं।"

उमानाथ ने दूसरा पेग मँगवाया, ब्रह्मदत्त ने दूसरा पेग लेने से इनकार कर दिया। थोड़ी देर तक उमानाथ आश्चर्य से ब्रह्मदत्त को देखता रहा, इसके बाद उसने ब्रह्मदत्त के कंधे पर हाथ रख कर कहा, "यार, आदमी तुम इतने गावदी नहीं हो जितना मैंने तुम्हें समझ रक्खा था। लेकिन तुम्हारे लाख

समझाने पर भी मेरी तबीयत नहीं होती कि मैं हड़ताल करवाऊँ। बुरा न मानना, मैं समझता हूँ कि जब दो बदमाशों में लड़ाई हो रही हो तब छोटे बदमाश के साथ मिलकर बड़े बदमाश को खत्म कर दिया जाना चाहिये। छोटे बदमाश को तो किसी भी समय आसानी के साथ समझा जा सकता है।"

"जी! मैंने तो एक सलाह भर दी, यह ज़रूरी नहीं है कि आप उसे मान ही लें।"

इस समय तक उमानाथ ने दूसरा पेग भी खत्म कर दिया। उठते हुए उसने कहा, "तो फिर अब घर चला जाय कामरेड! तुम अच्छे मिल गए। और अब मैं तुम्हें अपना परिचय भी दे दूँ! तुम दयानाथ तिवारी को तो अच्छी तरह जानते होगे?"

"अरे! तो आप उनके भाई तो नहीं हैं?" ब्रह्मदत्त ने आश्चर्य से उमानाथ को देखा।

"हाँ, मैं उनका भाई हूँ, और अभी दो-चार दिन हुए विलायत से वापस आया हूँ। उन्हीं के बँगले में ठहरा हूँ और रहूँगा भी यहीं। तो कल सुबह आना, जलपान मेरे ही यहाँ आकर करना।"

७

उमानाथ अपनी भावज के पास सुबह पहुँचा, "तो भौजीजी! मैंने यह तै किया है कि जब तक बड़के भइया जेल में हैं तब तक मैं यहाँ कानपुर में और इसी मकान में ही रहूँ। आपकी क्या राय है?"

राजेश्वरी ने उत्सुकता से उमानाथ को देखा, "इसकी क्या ज़रूरत थी मझले बाबू! खैर जैसी आपकी मर्ज़ी। लेकिन आप अभी-अभी विलायत से आए हैं; मझली दुलहिन को भी लेते आइये न!"

उमानाथ ने बात टालते हुए कहा, "खैर इसपर फिर सोचूँगा, अभी तो मैं सिर्फ आपसे यह बात कहने आया था।" और इस खयाल से कि कहीं बात अधिक न बढ़े, उमानाथ बाहर चला गया।

ठीक सात बजे पण्डित ब्रह्मदत्त दयानाथ के बँगले में दाखिल हुए। उमानाथ ने उठकर ब्रह्मदत्त का स्वागत किया, और फिर दोनों कामरेड चा और नाश्ते पर जुट गए। चा समाप्त करके ब्रह्मदत्त ने संतोष की गहरी डकार ली। उन्होंने कहा, "कामरेड! आज सुबह चार बजे कानपुर के पाँचवें डिक्टेटर श्रीयुत मार्कण्डेय मिश्र गिरफ़ार हो गए।—नगर में इस समय...
उमानाथ ने ब्रह्मदत्त की बात बीच में ही काटते हुए कहा, "क्या कहा, मार्कण्डेय भइया गिरफ़ार हो गए—चार बजे सुबह!"

"जी हाँ! आप शायद उन्हें जानते होंगे। दयानाथ जी के घनिष्ट मित्र थे; शायद एक ही गाँव के रहने वाले हैं। तो छठे डिक्टेटर की नियुक्ति का सवाल है!"

"हूँ!" उमानाथ ने केवल इतना कहा; वह उस समय झगड़ू के सम्बन्ध में सोच रहा था।

"कामरेड—सुन रहे हो, छठा डिक्टेटर बनने को मुझसे कहा जा रहा है!"

"तो तुमने क्या तै किया?" उमानाथ ब्रह्मदत्त की तरफ़ मुखातिब हुआ।

"जाना तो पड़ेगा ही; यह सम्भव नहीं कि मैं इनकार कर दूँ, यद्यपि जाने की इच्छा तो नहीं है क्योंकि मैं जानता हूँ कि मैं पूँजीपतियों की तरफ़ से लड़ रहा हूँ। देखिये, मैं समाजवादी सबसे पहले हूँ, कांग्रेसमैन बाद में हूँ। ऐसी हालत में मैं तुम्हारी सलाह ले लेना चाहता हूँ।"

उमानाथ कुछ थोड़ी देर तक सोचता रहा, फिर उसने कहा, "मेरा ऐसा खयाल है कामरेड कि तुम्हें जाना ही चाहिए। लेकिन इतना ज़रूर कहूँगा कि अपना नम्बर छठे से सातवाँ करा लो।"

"यह तो मुश्किल काम है। एक दिन के लिए भी टलने से लोग मुझे कायर समझने लगेंगे, और बेकार ही कायर समझा जाना मुझे अच्छा नहीं लगता। अगर एकदम कांग्रेस की नीति को ही छोड़ देना पड़े तो मैं इसे उचित समझूँगा, लेकिन ऐसी हालत में मुझे कोई जबरदस्त लेबर मूवमेण्ट

अपने हाथ में उठा लेना पड़ेगा। अगर मैं योंही टालता हूँ तो यह बेजा बा
होगी।"

"हाँ, यह तो ठीक है लेकिन, अभी कोई लेबर मूवमेण्ट उठाना मैं उचि
नहीं समझता, साथ ही मैं इस बात पर भी ज़ोर दूँगा कि इतना आगे बढ़क
पीछे हटने से तुम्हारी और हमारे दल की बदनामी होगी। लेकिन मैं चाह
हूँ कि अभी दो-चार दिन तुम जेल न जाओ। अच्छा एक काम करो!"

"वह क्या?"

"आज तुम्हें एक सौ पाँच डिग्री बुखार आना चाहिए क्योंकि डिक्टे
की नियुक्ति आज ही हो जायगी न! और कल सुबह अच्छे होकर तुम मु
मिल-एरिया में घुमाना शुरू कर दो। मेरा खयाल है कि तीन-चार दिन
यह काम हो जायगा, फिर तुम बड़े मजे में जेल जा सकते हो।"

"लेकिन अगर कांग्रेस वाले जान गए कि मैंने सिर्फ़ बहाना किया है
ब्रह्मदत्त ने पूछा।

"इसकी ज़िम्मेदारी मुझपर! मजाल है कि उन्हें शक होने पाए!"

"जैसा तुम ठीक समझो कामरेड, मैं तुम्हारे ही ऊपर सब कुछ छो
देता हूँ।"

उमानाथ ने उसी समय टेलीफ़ोन उठाया। उसने स्थानीय दैनिक
प्रताप और वर्तमान में सूचनाएँ भेज दीं। ब्रह्मदत्त जी को १०५ डिग्री बुख
आ गया।

दोनों पत्रों के प्रतिनिधि यह सूचना मिलते ही दयानाथ के बँगले में
गए। इस बीच में उमानाथ ने ब्रह्मदत्त को सोफ़ा पर लिटा दिया था। संवा
दाताओं के आने की सूचना मिलते ही उमानाथ ने ब्रह्मदत्त पर एक कम्ब
डाल दिया और बिजली का पंखा बन्द कर दिया। दोनों सम्वाददाता क
में आ गए और आते ही उन्होंने ब्रह्मदत्त की खैर-कुशल की पूछ-ताछ आ
कर दी।

प्रतिनिधि प्रताप—"बुखार कब चढ़ा ?"

प्रतिनिधि वर्तमान—"बुखार कैसे चढ़ा ?"

प्रतिनिधि प्रताप—"बुखार क्यों चढ़ा ?"

प्रतिनिधि वर्तमान—"बुखार कहाँ चढ़ा ?"

दोनों सम्वाददाता कागज-पेंसिल लिए तैयार बैठे थे, कम्बल के नीचे से पंडित ब्रह्मदत्त कराह रहे थे और उमानाथ चिंतित तथा मौन कमरे में टहल रहा था। उमानाथ ने ब्रह्मदत्त के पास जाकर उसे थोड़ा-सा पानी पिलाया, फिर वह इन सम्वाददाताओं की ओर मुखातिब हुआ, "बुखार आज अभी एक घंटा पहले चढ़ा, जाड़ा देकर चढ़ा, मलेरिया के जर्म इनके शरीर में प्रवेश कर गए थे इसलिए चढ़ा और मेरे इसी कमरे में चढ़ा।

दोनों रिपोर्टरों ने उमानाथ का बयान दर्ज कर लिया।

उमानाथ ने फिर कहा, "पण्डित मार्कण्डेय मिश्र की गिरफ़्तारी के बाद डिक्टेटर शिप के लिए ब्रह्मदत्त जी का नम्बर आना चाहिए। जब से इनको बुखार चढ़ा है तब से ये बहुत चिंतित और उद्विग्न हो गए हैं। बीच-बीच में ये चिल्ला उठते हैं कि मुझे कांग्रेस कमेटी के दफ़्तर में ले चलो, मुझे चार्ज लेना है !"

और उसी समय ब्रह्मदत्त चिल्लाया, "मुझे कांग्रेस कमेटी के दफ़्तर में ले चलो !"

"देखा आपने !" इस प्रत्यक्ष प्रमाण का उल्लेख करते हुए उमानाथ ने कहा, "और मैं इस बात पर ज़ोर दूँगा कि जब तक ये अच्छे न हो जाँय तब तक इन्हें ज़रा भी काम न करना चाहिए। मैंने यह तै कर लिया है कि तीन दिन तक मैं इन्हें इसी मकान में जबर्दस्ती रक्खूँगा और इन्हें किसी से न मिलने दूँगा। इनकी हालत इतनी खराब है कि ज़रा सी हलचल से भी इनका प्राणान्त हो सकता है ! एक सौ पाँच डिग्री बुखार कम नहीं होता, और जब आदमी बकने लगे जैसा ब्रह्मदत्त जी कर रहे हैं तब तो हालत और भी खराब समझिये !"

उमानाथ वक्तव्य दे रहा था, दोनों रिपोर्टर तेज़ी के साथ लिख रहे थे, और ब्रह्मदत्त पसीने से लतपथ था। सब कुछ लिखकर रिपोर्टरों ने कहा,

"अच्छा तो अब आप हमें आज्ञा दीजिये ! आपने कांग्रेस कमेटी में तो इत्तिला कर ही दी होगी।"

"अरे ! यह तो मैं भूल ही गया। अगर आप लोगों को कोई विशेष कष्ट न हो तो आप लोग स्वयम् इत्तिला कर दें। इनकी हालत तो आप लोगों ने देख ही ली है। हाँ ! आप लोगों ने जलपान तो न किया होगा !"

"ही ! ही !—आपकी कृपा बनी रहे, जलपान की ऐसी कोई बात नहीं। हम लोग इत्तिला कर देंगे !" दोनों रिपोर्टरों ने एक साथ उठते हुए कहा।

"अजी वाह ! अतिथि बिना जलपान किये चला जाय—भला यह कहीं हो सकता है !" हाथ पकड़कर उमानाथ ने दोनों रिपोर्टरों को बिठला लिया। नौकर कोई पास न था इसलिए वह स्वयम् जलपान का प्रबन्ध करवाने भीतर चला गया।

दोनों रिपोर्टरों ने आपस में बातचीत शुरू की।

प्रतिनिधि प्रताप—"यही दयानाथ जी के छोटे भाई उमानाथ जी हैं; जर्मनी से पढ़ के लौटे हैं।"

प्रतिनिधि वर्तमान—"बड़े सीधे आदमी मालूम होते हैं और साथ ही बड़े खातिरदार।"

प्रतिनिधि प्रताप—"दुनिया घूमे हैं, घाट-घाट का पानी पिये हैं। जानते हैं कि आदमी की किस तरह इज़्ज़त की जाय; कोई बनिया-बक्काल थोड़े ही हैं !"

प्रतिनिधि वर्तमान—"इसमें क्या शक है ! तालुक़दार के लड़के हैं, दिल है और हिम्मत है ! देखा पंडित ब्रह्मदत्त की कैसी सेवा-सुश्रूषा कर रहे हैं !"

उधर यह संवाददाता गण उमानाथ तिवारी का गुणगान कर रहे थे, उधर पण्डित ब्रह्मदत्त के बुरे हाल थे। "गरमी में कम्बल ओढ़कर लेटना आसान काम नहीं है !" इस विषय पर वे उमानाथ से विवाद करने को छट-पटा रहे थे। सारा शरीर पसीने से भीगा हुआ था।

उमानाथ के पीछे-पीछे नौकर दो तश्तरियों में मिठाई और नमकीन लिये हुए आया। दोनों सम्वाददाता जलपान पर जुट गए। उमानाथ अपनी सफलता पर मुसकरा रहा था।

जलपान करके दोनों संवाददाताओं ने संतोष की डकार ली। इसके बाद दोनों ने उमानाथ की ख़ुशामद करना आरम्भ कर दिया।

ब्रह्मदत्त अब निराश हो गया। अभी तक तो समझे था कि ये दोनों महानुभाव काम हो जाने पर चले जाएँगे और इसी आशा से वह करीब एक घण्टा उस सड़ी गरमी में कम्बल ओढ़े लेटा रहा, लेकिन अब उसका धैर्य जाता रहा। उसकी झुँझलाहट क्रोध में बदल गई और अपने ऊपर से कम्बल फेंक कर वह उठ बैठा। चिल्ला कर उसने कहा, "ये दोनों बदमाश अभी कितनी देर यहाँ बैठेंगे, "ये जाते हैं या मुझे उठ कर इन्हें निकालना पड़ेगा।

उमानाथ हड़बड़ा कर उठ खड़ा हुआ, दोनों रिपोर्टर उसके साथ हो लिए। ज़रा गम्भीर मुख बना कर और आँख मार कर ब्रह्मदत्त को मौन रहने का आदेश देते हुए उमानाथ ने ब्रह्मदत्त का हाथ पकड़ा और उन दोनों रिपोर्टरों ने भी उनका हाथ पकड़ा। हाथ एकदम ठंढा था। प्रताप के सम्वाद-दाता ने कहा, "बुखार अब ज़रा भी नहीं है—भगवान को धन्यवाद !" वर्तमान के सम्वाददाता ने कहा, "देखते नहीं कितना पसीना आया है—बुखार उतर गया। अब ब्रह्मदत्त जी डिक्टेटर बन सकेंगे।"

लेकिन उमानाथ ज़ोर से चिल्ला उठा, "अरे-बुखार एक बारगी उतर गया, पसीना छूट रहा है ! इस पर ये प्रलाप कर रहे हैं। सन्निपात की हालत मालूम होती है।"

सन्निपात का नाम सुनते ही दोनों रिपोर्टरों की सिट्टी-पिट्टी भूल गई। उन दोनों में कोई भी ब्रह्मदत्त की अर्थी के साथ जाने को तैयार होकर न आया था। प्रताप के संवाददाता ने कहा, "आप फ़ोन करके जल्दी ही किसी डाक्टर को बुलाइये। मैं अभी जाकर प्रताप में यह सूचना दिये देता हूँ !"

"और मैं काँग्रेस कमेटी में यह सूचना दे दूँगा, आप निश्चिन्त रहियेगा !" वर्तमान के सम्वाददाता ने कहा।

दोनों प्रतिनिधिगण ब्रह्मदत्त पर दूसरी नज़र डाले बिना ही वहाँ से रवाना हो गए।

नवाँ परिच्छेद

१

शाम के समय पण्डित श्यामनाथ तिवारी के साथ उमानाथ का सामान ही नहीं आया, बल्कि उसकी पत्नी महालक्ष्मी भी अपने तीन वर्ष के सुपुत्र सुरेश के साथ आ गईं। राजेश्वरी देवी ने अपनी देवरानी का स्वागत किया और राजेश-ब्रजेश ने सुरेश का। जिस समय महालक्ष्मी कानपुर आईं, उमानाथ कामरेड मारीसन के साथ शहर में चक्कर लगा रहा था।

सब लोगों को घर के अन्दर पहुँचा कर तथा असबाब को ठीक तरह से रखवा कर पण्डित श्यामनाथ तिवारी ने संतोष की एक गहरी साँस ली। बाहर ही लान पर कुरसी निकलवा कर वे बैठ गए और उमानाथ का इंतज़ार करने लगे। नौकर से उन्होंने कह दिया कि वे चा उमानाथ के साथ पियेंगे।

इधर दोपहर भर बिजली के पंखे की हवा के नीचे आराम से सोने के बाद शाम के समय ब्रह्मदत्त की आँख खुली। उसने अपने चारों ओर देखा; कमरे में अँधेरा हो गया था। वह बाहर निकला और उमानाथ की प्रतीक्षा में लान पर टहलने लगा।

पण्डित श्यामनाथ तिवारी ग़ौर से ब्रह्मदत्त को देख रहे थे। अब उनसे न रहा गया, ब्रह्मदत्त को बुला कर उन्होंने पूछा, "कहिए, किसकी तलाश में आप हैं!"

"जी! मैं पण्डित उमानाथ तिवारी का इंतज़ार कर रहा हूँ!"

"आप का नाम!" श्यामनाथ ने ब्रह्मदत्त के खद्दर के कपड़ों को देखते हुए फिर पूछा।

"मेरा नाम ब्रह्मदत्त है और मैं लेबर लीडर हूँ!"

"हूँ !" श्यामनाथ ने कहा, "तो आप की उमानाथ से दोस्ती है और आप उसका इंतज़ार कर रहे हैं ! कब से ?"

"मैं यहाँ सुबह से ही हूँ ! आप जानते ही हैं, गरमी के दिन हैं। मैं ज़रा लेटा तो आँख लग गई, और इस बीच में मुझे सोता छोड़ कर वे कहीं चल दिये।"

इतने में एक कार पोर्टिको के नीचे रुकी। उस कार से कामरेड मारीसन के साथ उमानाथ उतरा। श्यामनाथ के पास ब्रह्मदत्त को बैठा देख कर उमानाथ को कुछ घबराहट हुई; वह सीधे ब्रह्मदत्त के पास पहुँचा, कामरेड मारीसन उसके पीछे-पीछे थे। बात बनाते हुए उमानाथ ने ब्रह्मदत्त से कहा, "तो ब्रह्मदत्त जी, आपको बड़ी तकलीफ़ हुई। अब हम लोग आ गए हैं; बड़के भइया ने इस घर की देख-भाल करने का भार जो आप को सौंपा था उससे आप मुक्त हो गए। हाँ, आपने चा तो पी ली ?"

ब्रह्मदत्त की समझ में उमानाथ की बात आ गई थी; उसने भी तपाक के साथ कहा, "कोई बात नहीं उमानाथ जी—तकलीफ़ क्या, अपने मित्र की थोड़ी-सी सेवा तो मेरे लिए गौरव की बात थी। रही चा की बात, सो मैंने नहीं पी; मैं आप का इंतज़ार कर रहा था। लेकिन चा पीने की ऐसी कोई खास इच्छा नहीं है, आप मुझे आज्ञा दीजिये !"

"वाह, बिना चा पिये आप कैसे जा सकते हैं ! ये मेरे काका पण्डित श्यामनाथ तिवारी—फ़तहपुर के सुपरिण्टेण्डेण्ट हैं, और आप श्री ब्रह्मदत्त जी—कांग्रेस के बहुत बड़े नेता हैं, साथ ही बड़के भइया के खास दोस्त !"

चा का हुक्म देकर उमानाथ श्यामनाथ की ओर घूमा, "तो काका, आप बड़ी जल्दी लौट आए ! मेरा सामान तो आ गया होगा !"

"हाँ सब सामान आ गया !" मुसकराते हुए श्यामनाथ ने कहा; और इसी समय राजेश और ब्रजेश के साथ खेलता हुआ सुरेश भी घर के बाहर निकल आया। सुरेश को देखते ही उमानाथ चौंक उठा, "अरे ! सुरेश यहाँ कैसे ?" क्या आप इन लोगों को भी लेते आए हैं ?"

"क्या करता ? तुम्ही बतलाओ ! मझली बहू बुरी तरह मेरे पीछे पड़ गई । बड़के भइया तो भेजने को तैयार न थे, लेकिन उमा !" श्यामनाथ तिवारी ने आँख दबा कर और मुसकरा कर इस प्रकार कहा मानो उन्होंने कोई बहुत शाबाशी का काम किया हो, "मैं तो जानता हूँ कि तुम दो साल बाद विलायत से लौटे हो; तो मैं बड़के भइया से जरा भी नहीं दबा—बल्कि यों कहो कि मैं लड़ गया। ऐसी-ऐसी सुनाईं कि उन्हें भी याद होगा। ज़बरदस्ती मैं मझली बहू को लिवा लाया।"

लेकिन उमानाथ के मुख पर प्रसन्नता आने के स्थान पर विषाद की एक रेखा घिर आई।

"क्यों क्या बात है ? तुम एकाएक उदास क्यों हो गए ?" श्यामनाथ ने पूछा।

"यों ही, कोई खास बात नहीं है। काका असल में मेरा यहाँ पर मन नहीं लगता, लाख कोशिश करने पर भी ! विलायत की स्वच्छन्द और चहल-पहल से भरी जिन्दगी के बाद हिन्दुस्तान कुछ अजीब तरह से सूना लगने लग गया है !"

श्यामनाथ जोर से हँस पड़े, "ओह ! समझ गया ! लेकिन उमा, तुम यह क्यों भूल जाते हो कि तुम हिन्दुस्तानी हो, और साथ ही हिन्दुस्तान की एक सभ्यता है, एक संस्कृति है जो निजी विशेषता रखती है।"

उमानाथ ने श्यामनाथ की बात का कोई उत्तर नहीं दिया; उसका मन भारी था।

श्यामनाथ बातें करने के मूड में थे, वे कामरेड मार्गिन की ओर घूम पड़े, "कहिए, पंडित बद्रीनाथ शास्त्री से आप की बात-चीत हुई ?"

लेकिन कामरेड मार्गिन बद्रीनाथ शास्त्री को न जाने कब से भूल चुके थे। आश्चर्य से उन्होंने कहा "कौन बद्रीनाथ शास्त्री ? इस नाम के तो किसी भी आदमी को मैं नहीं जानता।

उस वक्त श्यामनाथ तिवारी को कामरेड मार्गिन को आश्चर्य से देखते

की बारी थी। उमानाथ ने अब हस्तक्षेप करना अपना कर्त्तव्य समझा, "मिस्टर मारीसन! इतनी जल्दी आप भूल गए! अरे वही पण्डित जिससे आपने वेदों पर बात-चीत की थी!"

"वेद!" कामरेड मारीसन अजीब उलझन में थे, लेकिन एकाएक उन्हें उस दिन की बात-चीत याद हो आई, "ओह! याद आ गया। जी हाँ, उन्होंने मुझे कई खास बातें बतलाईं और मैंने उन्हें दर्ज कर लीं!"

२

चाय पीकर पण्डित ब्रह्मदत्त दूसरे दिन सुबह का वादा करके चले गए! पण्डित श्यामनाथ तिवारी को फतहपुर जाना था; उनका काम पूरा हो गया था।

श्यामनाथ के जाने के बाद दोनों कामरेड रह गए। तब तक राजेश ने आकर उमानाथ से कहा, "काका! आप को अम्मा ने बुलाया है!"

उमानाथ उठ खड़ा हुआ। वह अनुमान कर सकता था कि उसे क्यों बुलाया गया है। उसने कामरेड मारीसन से कहा, "मैं अभी आता हूँ।" और वह अन्दर चला गया।

उमानाथ को देखते ही राजेश्वरी देवी ने व्यंग कसा, "क्यों बाबू जी! बिचारी दुलहिन कब से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है, और तुम्हें ज़रा भी चिन्ता नहीं। जाओ, उससे मिल तो लो!"

उमानाथ कमरे में गया; महालक्ष्मी सर झुकाए हुए बैठी थी। वह उस समय शायद रो रही थी। उमानाथ के पैरों की आहट पाते ही उसने अपने आँचल से आँखें पोंछ डालीं और उसने दरवाज़े की ओर देखा। वह उठ खड़ी हुई; पर वह आगे नहीं बढ़ी—वह प्रतीक्षा कर रही थी कि उसके स्वामी उसके पास आवें, उसे आलिंगन-पाश में कस लें, उसका चुम्बन करें; और वह अपने आराध्य देव के कंधे पर अपना सर रख कर रोवे—खूब जी भर कर रोवे!

लेकिन उमानाथ ने यह कुछ न किया, वह एक खाली कुर्सी पर बैठ गया। उसने कुछ मुलायम स्वर में कहा, "तुम्हारे यहाँ आने की कोई खास ज़रूरत तो नहीं थी; लेकिन आ गई तो अच्छा ही किया।"

महालक्ष्मी अपने स्वामी का स्वर पहचान नहीं सकी। जो बात उसने सुनी उससे वह काँप उठी; भरे हुए गले से उसने कहा, "नाथ, मुझसे कौन-सा अपराध हो गया?" और वह अपने को न रोक सकी। बेतहाशा, दौड़ कर वह गिर पड़ी और उमानाथ के पैरों से लिपट गई।

महालक्ष्मी के इस व्यवहार के लिए उमानाथ तैयार न था, वह सकपका गया। उसने बड़ी मुश्किल से महालक्ष्मी को अपने पैरों से छुड़ाया। उसने केवल इतना कहा, "बैठो और अपना यह वहशियाना ढंग छोड़ो। तुम मेरी बराबरी की हो, तुम ग़ुलाम नहीं हो, जो यह सब करो।"

महालक्ष्मी की समझ में न आ रहा था कि यह सब क्या हो रहा है। साथ ही उमानाथ का जी भी घबरा रहा था। उमानाथ उठ खड़ा हुआ, "मेरे एक दोस्त बाहर बैठे हैं—मुझे उनके पास जाना है। और हाँ—वे तुमसे परिचित होना चाहते हैं।"

"मुझसे," आश्चर्यचकित होकर महालक्ष्मी ने पूछा।

"हाँ, मेरे दोस्त अंग्रेज़ हैं और तुम जानती हो कि अंग्रेज़ों में पर्दा प्रथा नहीं है। यह पर्दा प्रथा जंगलीपन है। तो तुम चल सकती हो?" उमानाथ ने कहा।

महालक्ष्मी ने दबे हुए स्वर में उत्तर दिया, "आप की आज्ञा न मानना मेरे लिए सब से बड़ा पाप है। लेकिन बाहरी आदमी से मैं कभी मिली नहीं—और आप के दोस्त अंग्रेज़ हैं, उनके सामने जाने की मुझे हिम्मत नहीं पड़ती। मेरे होश-हवास सब जाते रहेंगे।"

"तुम कुछ बोलना नहीं, जल्दी ही चली आना।"

महालक्ष्मी उमानाथ के साथ चल दी। चन्द्रवती देवी उस समय स्नान

कर रही थीं। कामरेड मारीसन महालक्ष्मी को देखते ही उठ खड़े हुए। उमानाथ ने उनसे महालक्ष्मी का परिचय कराया।

कामरेड मारीसन ने हाथ बढ़ाते हुए अंग्रेज़ी में कहा; "आप से मिल कर बड़ी ख़ुशी हुई!"

महालक्ष्मी कामरेड मारीसन की बात को नहीं समझी, उसने नमस्कार करके उधर से आँखें फेर लीं।

कामरेड ने अंग्रेज़ी में, फिर टूटी-फूटी हिन्दी में लगातार चार-छै प्रश्न करके महालक्ष्मी को बुलवाना चाहा, लेकिन महालक्ष्मी मौन ही रही। महालक्ष्मी का संकट देख कर उमानाथ ने उससे हिन्दी में कहा, "अच्छा अब तुम जा सकती हो!"

महालक्ष्मी के प्राण में प्राण आए; तेज़ी के साथ वह अन्दर चली गई।

महालक्ष्मी के जाने के बाद कुछ देर तक दोनों दोस्त मौन रहे। उस मौन को कामरेड मारीसन ने तोड़ा, "ऐसी नेक, ख़ूबसूरत और भोली औरत को छोड़ कर तुमने हिल्डा से विवाह किया? मुझे ताज्जुब होता है कामरेड!"

उमानाथ मुसकराया, "हाँ कामरेड ख़ुद मुझे भी कभी-कभी ताज्जुब होने लगता है, लेकिन फिर भी यह सत्य है कि इसके रहते हुए भी मैंने हिल्डा से विवाह किया। तुम कारण जानना चाहोगे! तो सुनो! पहले हमें विवाह का मतलब समझ लेना पड़ेगा। मेरे मत के अनुसार विवाह केवल संतानोत्पत्ति के लिए नहीं है, विवाह स्त्री से ग़ुलामी करवाने के लिए तथा उसकी सेवा के बदले में उसका भरण-पोषण करने के लिए भी नहीं है; विवाह का मंशा दो प्राणियों में अर्थात् स्त्री-पुरुष में, एक दूसरे के प्रति पूर्ण सहानुभूति, पूर्ण सामंजस्य, पूर्ण सहयोग है। और ये चीज़ें तभी सम्भव है जब स्त्री और पुरुष दोनों ही पूर्ण-रूप से विवाहित और सुसंस्कृत हों।

"अब हमें महालक्ष्मी और हिल्डा की एक दूसरे से तुलना करनी पड़ेगी। महालक्ष्मी में सौन्दर्य है, पर वह सौन्दर्य एक मोम की मूर्ति वाला सौन्दर्य है—स्पन्दन रहित, निष्प्राण! मैं मानता हूँ कि इसमें महालक्ष्मी का कोई दोष

नहीं, हमारी सामाजिक परिपाटी उसके लिए उत्तरदायी है; पर यह मौजूद तो है, अपनी तमाम भयानकता के साथ। वह अभी तुम्हारे सामने आई, लेकिन वह एक शब्द भी नहीं बोली। उसके सौन्दर्य पर मुझे गर्व नहीं हो सकता, उस निष्प्राण सौन्दर्य से मुझे कुरुचि है। आज वाला मेरा जीवन मुझ तक या मेरे बीबी-बच्चों तक ही सीमित नहीं है—वह सामाजिक जीवन है।

"और वहीं हिल्डा, उसमें लोग शारीरिक-सौन्दर्य का कुछ अभाव पा सकते हैं, पर वह मेरे मित्रों को प्रसन्न कर सकती है, उनका स्वागत कर सकती है, उन्हें बातों में लुभा सकती है। वह अपने चारों ओर एक सजीव उल्लास का वातावरण बना सकती है, जो महालक्ष्मी नहीं कर सकती। महालक्ष्मी का अस्तित्व मेरे लिए—सिर्फ़ उस मेरे लिये है जो समाज से बहिष्कृत, अपनेपन में डूबा हुआ हो। आप इतना तो मानेंगे ही!"

मारीसन मुसकराया "कहे जाओ—मैं समझ रहा हूँ!"

"अब मैं महालक्ष्मी के मेरे प्रति प्रेम की विवेचना करता हूँ। मेरे प्रति उसका प्रेम ठीक वैसा है जैसा एक कुत्ते का प्रेम अपने स्वामी के प्रति हो सकता है। उस प्रेम में पूर्ण आत्म-समर्पण है और आत्म-समर्पण को मैं जीवन हीनता समझता हूँ। मुझे चाहिये अपनी पत्नी में एक व्यक्तित्व, उसके स्वतंत्र विचार; मेरे व्यक्तित्व का उसके व्यक्तित्व से तथा मेरे विचारों से उसके विचारों का अनवरत संघर्ष! संघर्ष ही जीवन है कामरेड!"

मारीसन ने बातें तो ग़ौर से सुनीं, लेकिन शायद समझी उन्होंने कुछ नहीं। उसने उठते हुए कहा, "कामरेड उमानाथ तुमने जो कुछ कहा उसमें कहीं जबर्दस्त ग़लती है—अपने तजुर्बे से मैं इतना कह सकता हूँ, यद्यपि वह ग़लती मैं नहीं पकड़ सकता। लेकिन अब करोगे क्या?"

"यही तो मेरी समझ में भी नहीं आता। हिन्दू ला में तलाक़ है नहीं, यह एक और मुसीबत की बात है। कामरेड—मैं सच कहता हूँ कि महालक्ष्मी के सामने जाने की मेरी हिम्मत नहीं पड़ती। इतनी नेक, इतनी निरीह—इतनी भोली! मुझे उस पर दुःख होता है। वह अभी तक कुछ नहीं जानती—यह

सब बात उससे कहूँ ! लेकिन उसे बतलाना तो पड़ेगा ही !" और उमानाथ ने एक ठंडी साँस भरी।

३

रात में जब उमानाथ महालक्ष्मी के पास गया उसका मन भारी था। आज उसे उस परिस्थिति का सामना करना था जिसकी उसने एक हलकी-सी कल्पना तो कभी-कभी की थी, लेकिन जिसके असली रूप के प्रति उसने जबर्दस्ती अपनी आँखें बन्द कर रक्खी थीं। बौद्धिक प्राणी का उसके भावना-वाले प्राणी के साथ संघर्ष चल रहा था।

उमानाथ और महालक्ष्मी के पलंग अगल-बगल पड़े थे। महालक्ष्मी के पलंग पर सुरेश सो रहा था। उमानाथ चुप अपने पलंग पर लेट रहा। और उस समय महालक्ष्मी ने कमरे में प्रवेश किया। वह उमानाथ के पलंग पर उसके पैताने बैठ गई—शायद उमानाथ के पैर दबाने के लिए। उमानाथ ने अपने पैर हटा लिए और वह उठ कर महालक्ष्मी के सामने बैठ गया। उसने आरम्भ किया, "मुझे तुमसे एक खास बात कहनी है !"

जिस स्वर में उमानाथ ने यह बात कही थी, वह काँप रहा था; उसमें एक प्रकार का खोखलापन था, और महालक्ष्मी अपने पति के उस स्वर से परिचित न थी। महालक्ष्मी के दिल को एक ठेस सी लगी। थोड़ी देर तक मौन अपने स्वामी की ओर देख कर उसने कहा, "कहिये !"

उमानाथ की समझ में न आ रहा था कि किस प्रकार वह बात आरम्भ करे, "लेकिन तुम मुझे वचन दो कि यह बात तुम अपने ही तक रक्खोगी—किसी से इसका ज़िक्र न करोगी।"

"आप मेरी तरफ़ से निश्चिन्त रहें ! जो कुछ कहना हो कहिए !"

थोड़ी देर और चुप रह कर उमानाथ ने कहा, "देखो, मैंने जर्मनी में दूसरा विवाह कर लिया है !" और वह जैसे महालक्ष्मी के मुख पर अंकित भावों को पढ़ने के लिए रुक गया।

बना सकते हैं, बड़ी आसानी के साथ। इसके अलावा असलियत तो यह है कि कांग्रेस-ऐसी जबर्दस्त और सुसंगठित संस्था से अलग होकर काम करना कांग्रेस का विरोध करना समझा जायगा, और इसमें हमारी शक्तियों का अपव्यय होगा, साथ ही सफलता मिलने में देर होगी!" ब्रह्मदत्त ने विश्वास के साथ कहा।

उमानाथ ने ग़ौर से ब्रह्मदत्त को देखा। उसके सामने बैठा हुआ अपढ़ और असंस्कृत ब्रह्मदत्त राजनीति को बड़ी खूबी के साथ अच्छी तरह समझ सकता है—उसने यह अनुभव किया।

ब्रह्मदत्त को न उमानाथ की नज़र का पता था और न उमानाथ की आन्तरिक भावनाओं का। वह कहता जा रहा था, "कांग्रेस के अन्दर रह कर हमें जितनी सुविधाएँ मिल सकती हैं बाहर रह कर उतनी सुविधाओं का मिलना असम्भव है। यही नहीं, असुविधाओं के मिलने की सम्भावना अधिक है। ब्रिटिश सरकार की दमन-नीति के खिलाफ़ सारा देश हमारा साथ देगा सिर्फ़ उसी समय जब हम कांग्रेसमैन हैं, वर्ना अगर हम सिर्फ़ कम्यूनिस्ट हैं तब हमारा साथ देने वाला कोई न मिलेगा। और अभी हम अपना पैर इस तरह नहीं जमा पाए हैं कि हम सामूहिक विरोध का सामना कर सकें।"

कामरेड मारीसन से अब न रह गया वे कांग्रेस का साथ देने से सहमत नहीं थे। उन्होंने कहा, "नहीं कामरेड ब्रह्मदत्त! मैं आपकी बात मानने को तैयार नहीं। आपने अभी जो बातें कही हैं सुविधा-धर्म की वकालत की बातें हैं। लेकिन यह सुविधा-धर्म बहुत खतरनाक है। हम कम्यूनिस्टों के कांग्रेस ज्वाइन करने में एक बहुत बड़ा खतरा है; हम लोग बड़ी आसानी से अपने लक्ष्य से गिर जाएँगे, अपने ध्येय को भूल जाएँगे। कांग्रेस राष्ट्रीय संस्था है और राष्ट्रीयता और अन्तराष्ट्रीयता में उतना ही विरोध है जितना फासीज़्म और कम्यूनिज़्म में है। राष्ट्रीयता के संकुचित दायरे में अन्तर्राष्ट्रीयता कभी नहीं पनप सकती—मैं इसका विश्वास दिलाता हूँ। विश्वास और सिद्धान्त—इन निर्माण और विकास में परिस्थितियों का बहुत बड़ा हाथ है। सुविधा के लि

अपनाए जाने वाला कोई भी रूपक धीरे-धीरे अपना अस्तित्व बन सकता है; और इस लिए हमें सुविधा-धर्म से बचना पड़ेगा। हमारा अस्तित्व सच्चाई, ईमानदारी और साहस पर निर्भर है। इनसे दूर हटना ही हमारा सर्वनाश है। एक समय का कम्यूनिस्ट मुसोलिनी इसी रूपक के कारण आज भयानक फ़ासिस्ट बन गया है।"

लेकिन इस वाद-विवाद में उमानाथ को दिलचस्पी न थी। वह यह सब सुन रहा था, लेकिन समझ कुछ न रहा था। एक अजीब सी परिस्थिति पैदा हो गई थी और वह यह न जानता था कि वह क्या करे। उसकी तबीअत हो रही थी कि वह कहीं एकान्त में बैठ कर सोचे। यह सब क्या हो गया? यह सब क्या हो रहा है? उसका अस्तित्व ही उसके लिए एक भयानक भार बन रहा था। वह उठ खड़ा हुआ। कामरेड मारीसन से उसने कहा, "कामरेड! इलाहाबाद चल कर ज़रा कांग्रेस वालों से मिलना चाहता हूँ। फिर साथ ही इलाहाबाद भारतवर्ष का सांस्कृतिक और साहित्यिक केन्द्र है—वहां प्रगतिशील लेखक संघ भी क़ायम हो सकता है।"

"हाँ कामरेड! मैं भी यह सोच रहा हूँ कि बिना साहित्यकों को अपने साथ लिए हुए हम अधिक काम नहीं कर सकते। पहले हमें अपने सिद्धान्तों और आदर्शों का प्रचार करना चाहिए, इस प्रचार के बिना सफलता कठिन है!"

"तो फिर कल ही चलें—देर करने से कोई फ़ायदा नहीं!" उमानाथ ने उठते हुए कहा।

५

उमानाथ काफ़ी रात गए घर लौटा—उसे घर जाने की हिम्मत न हो रही थी। किस प्रकार वह महालक्ष्मी का सामना करेगा—किस प्रकार वह इस विपत्ति को कुछ दिन के लिए टालेगा?

भोजन करके जब वह अपने पलंग पर सोने के लिए पहुँचा उस समय

बारह बज चुके थे। लेकिन महालक्ष्मी उस समय भी जाग रही थी, वह उमानाथ की प्रतीक्षा कर रही थी। उमानाथ चुपचाप, बिना महालक्ष्मी से कुछ बोले, अपने पलंग पर लेट गया। महालक्ष्मी अपने पलंग से उतरी, उमानाथ के पैताने बैठते हुए उसने कहा, "नाथ—क्या आप कल मुझसे नाराज़ हो गए?"

महालक्ष्मी के इस प्रश्न से उमानाथ चौंक उठा। वह उठकर बैठ गया, "क्या कह रही हो? मैं नाराज़ किस बात पर होता? नाराज़ तो एक तरह से तुम हो सकती थीं।"

"फिर आप मुझसे बोलते क्यों नहीं? दिन भर आप घर के बाहर रहे—यह क्यों?"

"देखो—मैंने तुमसे कह दिया है न कि मैंने दूसरा विवाह कर लिया है!

"तो इससे क्या? कर लिया तो अच्छा किया। लेकिन आप बहिन को साथ क्यों नहीं लेते आए? मैं बहिन का स्वागत करती—उसकी सेवा करती।"

"क्यों व्यंग कर रही हो?"

"मैं व्यंग करूँगी नाथ—आप पर! मुझपर यह पाप न लगाइये। हम हिन्दू-स्त्रियों के लिए सौत कोई नई चीज़ तो नहीं है, अपना दुर्भाग्य मुझे वहन करना होगा।"

उमानाथ कुछ थोड़ी देर तक महालक्ष्मी को देखता रहा। उसके सामने एक अजीब और दिलचस्प परिस्थिति पैदा हो गई थी। पाश्चात्य विचारों को वह इतनी पूर्णता के साथ अपना चुका था कि उसने इस सौत के मसले पर पहले कभी सोचा ही न था। आज उसे एक हल्का-सा प्रकाश दिखलाई दिया। लेकिन अपनी स्थिति उसके सामने स्वयम् ही साफ न थी; उसने कहा, "लेकिन महालक्ष्मी! मेरी दूसरी पत्नी हिन्दू नहीं है और उसे सौत पर विश्वास नहीं।"

महालक्ष्मी सुन्न रह गई, "तो क्या आप मुझे त्याग देंगे?" करुण स्वर में उसने पूछा।

उमानाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया, शायद वह कोई उत्तर दे भी नहीं सकता था। थोड़ी देर तक उत्तर की प्रतीक्षा करने के बाद महालक्ष्मी ने फिर कहा, "बोलिये! नहीं, आप सच नहीं कहना चाहते! आप मुझे दुखाना नहीं चाहते, लेकिन आप मुझसे घृणा करते हैं। आप मुझे त्याग चुके—बहुत पहले त्याग चुके! है न ऐसी बात! मैं आपकी पत्नी नहीं रही। ठीक है, लेकिन आप तो मेरे पति हैं, स्वामी हैं, सब कुछ हैं!" महालक्ष्मी पागल की तरह कह रही थी और उमानाथ सब कुछ समझते हुए साथ ही कुछ न समझते हुए सुन रहा था, "मुझे उसमें सुख है जिसमें आपको सुख है। आप सुखी रहें, आप अच्छे रहें, आप हँसे-बोलें। आप अपने घर में रहें—मैं तो आपकी दासी हूँ। आप उन्हें बुला लें। जब वह पूछें कि मैं कौन हूँ तब आप कह दें कि मैं नौकरानी हूँ। और मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि मैं उनकी सेवा करूँगी, उनकी पूजा करूँगी।" यह कहते-कहते महालक्ष्मी ने उमानाथ के पैर पकड़ लिए।

उमानाथ ने बड़ी मुश्किल से महालक्ष्मी से अपने पैर छुड़ाए। जो कुछ महालक्ष्मी ने कहा उससे उमानाथ की सारी मानवता हिल उठी। उसने कहा, "महालक्ष्मी—मुझे क्षमा करो—मैं पापी हूँ! लेकिन अभी सोओ—मुझे सोचने-विचारने का समय दो। मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि मैं क्या करूँ।"

दूसरे दिन सुबह उमानाथ कामरेड मारीसन के साथ इलाहाबाद के लिए रवाना हो गया।

दसवाँ परिच्छेद

१

अपनी भावज और भाई के कानपुर चले जाने के बाद प्रभानाथ अपने पिता के साथ अकेला रह गया। गिरफ़ारियाँ अब ज़ोरों के साथ हो रही थीं, और पण्डित रामनाथ तिवारी कांग्रेस वालों का मुकदमा करने के लिए स्पेशल मैजिस्ट्रेट बना दिये गए थे। वे लोगों को सजाएं दे रहे थे—काफ़ी कड़ी। उन्नाव के नागरिक पंडित रामनाथ तिवारी के मुँह पर ही उनका अपमान करने लगे थे, उन्हें विश्वासघाती और देशद्रोही पुकारते थे। अपने पिता के सम्बन्ध में अपमानजनक बातें प्रभानाथ को सुननी पड़ती थीं, और वह जानता था कि यह अपमान लोग उसके पिता का ही नहीं कर रहे हैं, उसका भी कर रहे हैं केवल इस कारण कि वह रामनाथ का पुत्र है।

और उस दिन एक ऐसी घटना हो गई जिससे प्रभानाथ का सारा अन्तर हिल उठा। कांग्रेस का जलूस निकल रहा था और सरकार ने नगर में १४४ धारा लगा दी थी। इसका परिणाम यह हुआ कि पुलिस ने जलूस को रोका, उसे तितर-बितर हो जाने का हुक्म दिया। कांग्रेस के वालंटियरों ने पुलिस का हुक्म मानने से इनकार कर दिया। वे ज़मीन पर बैठ गए—और अधिकारियों ने लाठी-चार्ज करवाया।

प्रभानाथ उस समय क्लब जा रहा था। लाठी चार्ज देखने के लिए उसने कुछ दूर पर अपनी कार रोक ली। उस जलूस में स्त्रियाँ थीं। लाठी चार्ज पुरुषों और स्त्रियों पर समान भाव से हुआ। जिस समय प्रभानाथ ने स्त्रियों को पिटते देखा उसका खून खौल उठा।

प्रभानाथ कार से उतर कर सुपरिंटेंडेंट पुलिस के पास गया, "आपके सामने स्त्रियाँ पिट रही हैं और आप खड़े देख रहे हैं, अपने आदमियों को रोकते तक नहीं।"

सुपरिंटेंडेंट पुलिस प्रभानाथ को अच्छी तरह जानता था। मुसकराते हुए उसने कहा, "ये स्त्री-पुरुष—ये सब के सब पशु हैं—और पशुओं में कोई भेद-भाव नहीं होता। अगर आपको विश्वास न हो तो आप अपने पिता से पूछ सकते हैं!" और वह हँस पड़ा।

इस उत्तर से प्रभानाथ तिलमिला उठा। पर वह कुछ बोला नहीं; तेज़ी से लौटकर वह कार पर बैठा और क्लब न जाकर वह अपने घर लौट आया।

रामनाथ तिवारी बरामदे में बैठे कागज़-पत्र उलट रहे थे। उन्होंने प्रभानाथ को देखते ही बुलाया, "क्यों तुम तो क्लब गए थे, इतनी जल्दी कैसे लौट आए?"

अन्यमनस्क भाव से प्रभानाथ ने कहा, "जी कुछ तबीयत ठीक नहीं!" और वह अपने पिता के सामने से हटने लगा।

"ज़रा ठहरो! सुना है तुमने—कौशल्या गर्ल्स्-स्कूल (कौशल्या प्रभानाथ की स्वर्गीय माता का नाम था) की हेड मिस्ट्रेस सावित्री गर्ग ने इस्तीफ़ा दे दिया है। जानते हो क्यों? उसे सूझा है कि वह नेता बने, कांग्रेस की लड़ाई लड़े। और अभी-अभी खबर मिली है कि आज वाले कांग्रेस के जलूस में वह सब से आगे है।"

"जी हाँ! और मैंने उसे जलूस के साथ लाठियों से पिटते भी देखा है!" प्रभानाथ ने रूखे स्वर में कहा।

"क्या कहा? स्त्रियों पर भी लाठियाँ पड़ रही हैं? यह तो बेजा बात है!" रामनाथ कहते-कहते रुक गए। कुछ सोचकर उन्होंने फिर कहा, "ठीक ही है। जो जैसा करेगा, भोगेगा! नियम और क़ानून में कोई भेदभाव नहीं होता।"

"पर स्त्रियों पर लाठी चलाना दद्दुआ! यह तो मानवता का उपहास है। हमारे लिए यह शर्म की बात है!" प्रभानाथ ने कहा।

"चुप रहो! जो कुछ हो रहा है वह ठीक हो रहा है। साँपिन स्त्री ही

होती है, पर केवल स्त्री होने के कारण तो उसे छोड़ न देना चाहिये। अप-राधी—चाहे वह स्त्री हो चाहे पुरुष—अपराधी ही है और उसे दण्ड-व्यवस्था स्वीकार करनी पड़ेगी।"

"पर यह तो दण्ड-व्यवस्था नहीं है, यह सरासर अत्याचार है। निहत्थे आदमियों पर लाठी चलाना, यह घोर बर्बरता है। अगर वे आज्ञा नहीं मानते तो उन्हें पकड़ो, सज़ा दो, जेल भेज दो। लेकिन लाठी से उनको मारना, उनके हाथ-पैर तोड़ देना, उन्हें अपाहिज बना देना—यह भयानक बर्बरता है!" प्रभानाथ यह कहते-कहते उत्तेजित हो उठा।

रामनाथ ने इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया, उन्होंने केवल प्रभानाथ को ग़ौर से देखा। कुछ देर तक एकटक वे उसी प्रकार प्रभानाथ को देखते रहे, फिर धीरे से उन्होंने कुछ गम्भीरता के साथ कहा, "हाँ प्रभा! यह बर्ब-रता है, मैं इस बात से इनकार नहीं करता। लेकिन यह भी याद रखना कि शक्ति बर्बर होती है। कोमलता स्त्री के हिस्से की चीज़ है, पुरुष के हिस्से की नहीं। बर्बरता के अभाव ने ही हिन्दुस्तान को ग़ुलाम बनाया है—बर्बरता पुरुष का जन्मसिद्ध अधिकार है!"

कुछ रुककर रामनाथ ने फिर कहा, "ये युद्ध—यह रक्तपात! यह सब बर्बरता की चीज़ें हैं, और यही प्राकृतिक हैं। अनादि काल से ये होते रहे हैं, अनन्त काल तक ये होते रहेंगे। और यह अहिंसा की लड़ाई—यह हमारी—हम हिन्दुस्तानियों की कायरता और नपुंसकता का ढोंग है—यह सब एक स्वाँग है। याद रखना लोहे को लोहा ही काट सकता है!"

रामनाथ मुसकराए, "ख़ैर छोड़ो इस बात को! सवाल मेरे सामने यह है कि स्कूल में नई हेड मिस्ट्रेस की ज़रूरत होगी।"

"तो फिर एक विज्ञापन निकलवा दूँ?" प्रभानाथ ने पूछा।

"हाँ, और एक हफ़्ते के अन्दर ही दूसरी हेड मिस्ट्रेस आ जानी चाहिए।"

२

प्रभानाथ जब अपने पिता के पास से अपने कमरे में गया, उसके मस्तिष्क में उसके पिता का केवल एक वाक्य था, "लोहे को लोहा ही काट सकता है!"

उसी दिन सुबह उसे वीणा का पत्र मिला था कि वह युक्त प्रान्त में आकर कुछ काम करना चाहती है। वीणा के मतानुसार क्रान्तिकारी मूवमेण्ट को देश के कोने-कोने में फैलना चाहिए। उसने भी अहिंसा के संग्राम के प्रति काँग्रेस से अपना मतभेद प्रकट किया था।

एकाएक प्रभानाथ के मन में प्रश्न उठा, "अगर स्कूल की हेड मिस्ट्रेस होकर वीणा यहाँ आ जाय तो कैसी रहे?"

उसी समय प्रभानाथ ने वीणा के पत्र का उत्तर लिखा। उसने उन्नाव के स्कूल की स्थिति समझाते हुए वीणा को अपनी अर्ज़ी भेजने का आदेश दिया। उसी दिन शाम के समय उसने हेड मिस्ट्रेस के लिए देश के विभिन्न पत्रों में विज्ञापन भेज दिया।

चौथे दिन वीणा की अर्जी आ गई और आठवें दिन वीणा कौशल्या गर्ल्स स्कूल की प्रधानाध्यपिका होकर उन्नाव पहुँच गई।

वीणा को रिसीव करने प्रभानाथ स्टेशन गया। ट्रेन से उतरते ही वीणा ने प्रभानाथ को आदर के साथ प्रणाम किया, और मुसकराते हुए उसने कहा, "मेरी साधना सफल हुई, मेरे आराध्य ने मुझे याद तो किया!"

रास्ते में प्रभानाथ ने वीणा से कहा, "तुम मेरे पिता के साथ ज़रा सतर्क रहना। वे कुछ थोड़े से सख्त आदमी हैं, अपना विरोध उन्हें सह्य नहीं। फिर भी आदमी वे नेक हैं और अच्छे हैं। उनके व्यवहार से तुम प्रसन्न ही होगी।"

"मैं भी उनको प्रसन्न रखने का प्रयत्न करूँगी क्योंकि वे आपके पिता हैं!" वीणा ने उत्तर दिया।

जिस समय वीणा घर पर पहुँची, रामनाथ तिवारी भोजन करके सोने वाले कमरे में लेट चुके थे। वीणा का आगमन सुन कर वे पलंग से उठ आए। उन्हें आशा थी कि वीणा एक फ़ैशनेबिल और सुन्दर स्त्री होगी, पर अपने सामने एक दुबली-पतली, अति साधारण लड़की को देख कर उन्हें आश्चर्य हुआ। लेकिन अपने मनोभावों को दबाते हुए उन्होंने कहा, "इन्हें रास्ते में कोई तकलीफ़ तो नहीं हुई। इन्हें मेहमान वाले घर में ठहरा दो और जब तक इन्हें कोई मकान न मिल जाय तब तक ये वहीं रहें। और देखो—इनके भोजन इत्यादि का भी प्रबन्ध करा देना।" यह कह कर रामनाथ वापस चले गए।

"यदि आप न भी बताते तो उन्हें देख कर ही मैं बता देती कि ये आपके पिता हैं," वीणा ने हँसते हुए कहा, "शिष्ट, गम्भीर और शान्त!"

शाम के समय वीणा रामनाथ तिवारी के सामने उपस्थित हुई, प्रभानाथ भी वहाँ मौजूद था। रामनाथ ने पूछा, "क्या तुम्हें राजनीति से कोई रुचि है?"

प्रभानाथ ने अपना सर हिलाया और वीणा समझ गई। उसने कहा, "जी नहीं!"

"यह तो बुरी बात है! समय की हलचल के प्रति अरुचि होना मनुष्य में विकास की कमी का द्योतक हुआ करता है। फिर भी तुम स्त्री हो और स्त्री का क्षेत्र राजनीति नहीं है—होना भी नहीं चाहिए।" कुछ रुक कर रामनाथ ने फिर कहा, "तुम्हारे पहले जो हेड मिस्ट्रेस थीं वह जेल मे हैं—कांग्रेस की लड़ाई में उन्होंने सहयोग किया था और मैंने स्वयम् उन्हें तीन महीने की सज़ा दी। मैं कहता हूँ कि उन्होंने बहुत बड़ी बेवकूफ़ी की। राजनीति और खास तौर से कांग्रेस की राजनीति शोहदों की चीज़ है। तुम सावधान रहना—भावना में बह जाना स्त्री के लिए बड़ा आसान होता है। तुम्हें कांग्रेस के प्रति कोई सहानुभूति तो नहीं है?"

"जी नहीं! मुझे कांग्रेस पर ही विश्वास नहीं है और न अहिंसा पर! अहिंसा अप्राकृतिक सिद्धान्त है।"

रामनाथ ने विजय की मुसकराहट के साथ प्रभानाथ को देखा, "सुना प्रभा ! यह भी कह रही हैं कि अहिंसा ग़लत सिद्धान्त है—पागलपन का सपना है !"

प्रभानाथ मन ही मन घबरा रहा था कि कहीं यह बात-चीत अधिक न बढ़े, लेकिन उसी समय मुख्तार आ गया और रामनाथ ने वीणा और प्रभानाथ को विदा किया। प्रभानाथ ने वहाँ से हट कर वीणा से कहा, "वीणा ! ददुआ से बातें करते-समय तुम यह न भूल जाना कि तुम एक बहुत ही बुद्धिमान और सूक्ष्म दृष्टि वाले आदमी से बातें कर रही हो। हमारे प्रान्त में अभी क्रान्तिकारी दल ज़ोर पर नहीं है, नहीं तो तुम इस बात से पकड़ जातीं।"

३

वीणा ने स्कूल का चार्ज ले लिया। चौथे दिन कानपुर से दो नवयुवक वीणा से मिलने आए। इन दोनों को कलकत्ता से वीणा के उन्नाव में आ जाने की सूचना मिल गई थी।

जिस समय ये दोनों नवयुवक आए, वीणा अपने कमरे में बैठी चा पी रही थी। उस दिन ज़ोर की वर्षा हो गई थी और रामनाथ तिवारी घर से बाहर नहीं निकले थे। बरामदे में आरामकुर्सी पर लेटे हुए वे गीता पढ़ रहे थे। इन दोनों युवकों को देख कर उन्होंने पूछा, "आप लोग किसे ढूँढ रहे हैं ?"

"हम लोग श्री वीणा मुकर्जी से मिलने आए हैं !" एक ने उत्तर दिया।

"कलकत्ता से आए अभी चार दिन भी नहीं हुए और लोगों ने चक्कर लगाना शुरू कर दिया," रामनाथ ने व्यंगात्मक मुसकराहट के साथ कहा। फिर वे ज़रा सम्हल कर बैठ गए। उन दोनों को ग़ौर से देख कर उन्होंने पूछा, "आप लोग वीणा के कौन हैं ?"

वे दोनों रामनाथ के इस प्रश्न के लिए तैयार न थे। उनमें से एक ने

झल्ला कर कहा, "हम लोग कोई भी हों—लेकिन आप को ऐसे प्रश्न करने का क्या अधिकार है ?"

रामनाथ इस बात को सुनते ही तन कर खड़े हो गए। "मेरा अधिकार जानना चाहते हो, बदन सिंह !"

"सरकार !" कहता हुआ एक लम्बा-तगड़ा आदमी वहाँ हाज़िर हो गया।

"इन दोनों को फाटक के बाहर निकाल कर यह बतला दो कि यह बँगला मेरा है, और मैं कौन हूँ !" और रामनाथ तिवारी ने उन दोनों युवकों की ओर मुख़ातिब हो कर कहा, "आप लोग इस आदमी से सब कुछ समझ लीजियेगा।"

वे दोनों नवयुवक इसके पहले कि बदन सिंह कोई कार्रवाई करे, वहाँ से खुद चल दिये। फाटक पर उनकी प्रभानाथ से मुलाक़ात हो गई, प्रभानाथ घूम कर लौट रहा था। उन नवयुवकों में से एक ने बढ़ कर प्रभानाथ से कहा, "आप भी शायद वीणा मुकर्जी से मिलने जा रहे हैं ?"

"जी हाँ !" प्रभानाथ ने कहा।

"ज़रा सावधान रहियेगा। एक खबीस बूढ़ा वहाँ बैठा है। हम लोगों को तो उसने निकाल बाहर किया, अब आपकी बारी है। तो हम लोग पहले ही से आपको होशियार किये देते हैं !" मुसकराते हुए दूसरे ने कहा।

"जी—वह मेरे पिता हैं !" हँसते हुए प्रभानाथ ने उत्तर दिया, "और उन्होंने जो आप का अपमान किया है उसके लिए मैं आप लोगों से माफ़ी माँगे लेता हूँ। तो वीणा देवी से आप लोगों क़ी मुलाक़ात हुई ?"

"नहीं ! आपके पिता अनाप-शनाप सवाल करने लगे, जिन्हें करने का उन्हें कोई अधिकार न था। और हमने जब उनको उनका अधिकार समझाने की कोशिश की तो वे बिगड़ खड़े हुए।"

"अच्छा, तो अगले रविवार को आप लोग कानपुर में दयानाथ जी के बंगले पर शाम को छै बजे वीणा मुकर्जी से मिल सकते हैं।" और यह कह कर प्रभानाथ फाटक के अन्दर चला गया।

जिस समय प्रभानाथ बँगले में पहुँचा, वीणा चा समाप्त करके रामनाथ तिवारी से बात कर रही थी। रामनाथ कह रहे थे, "आखिर ये लोग थे कौन? मैंने उनका नाम नहीं पूछा, और नाम पूछने की मैंने कोई ज़रूरत नहीं समझी। पर वे लोग तुम से परिचित ज़रूर थे। लेकिन उनमें से कोई भी बंगाली न था।"

वीणा ने बात बनाई, "जी, मेरे भाई के कुछ दोस्त कानपुर में रहते हैं। बहुत सम्भव है मेरे भाई ने उन्हें मुझसे मिल लेने को लिख दिया हो!"

"हो सकता है! तो वे मुझे बतला देते!" रामनाथ मुसकराए, "देखो मैं पुराने युग का आदमी हूँ—कम से कम लोग तो मुझे पुराने युग का ही समझते हैं। ऐसी हालत में यह स्वाभाविक ही था कि मैं उनसे पूछ-ताछ करता। पर वे लोग इतना अधिक अशिष्ट क्यों हो गए? उन्हें यह समझ लेना चाहिए था कि जिस आदमी से वे बात कर रहे हैं वह स्वामी है—कर्ता है। मेरे ही मकान में कोई आदमी आकर मेरा अपमान करे—इसको मैं किसी भी हालत में बर्दाश्त नहीं कर सकता।"

प्रभानाथ को देख कर रामनाथ ने बात का रुख बदला, "क्यों प्रभा! इनके मकान का कोई इतज़ाम हुआ?"

"अभी तो नहीं हुआ। कोई अच्छा मकान मिल ही नहीं रहा है।"

"तो फिर रहने दो। अभी ये यहाँ हैं—क्यों तुम्हें यहाँ कोई कष्ट तो नहीं है!" रामनाथ ने वीणा की ओर देख कर कहा।

"जी नहीं! केवल भोजन मैं बनाना चाहती हूँ; यहाँ का भोजन मुझे रुचता नहीं।"

"हाँ-हाँ—पहले ही कह दिया होता। इसका प्रबन्ध हो जायगा। देखो प्रभा! यह इतनी बड़ी कोठी पड़ी है, ये यहीं रह सकती हैं, मकान ढूंढ़ने की कोई आवश्यकता नहीं!" इस बार रामनाथ ने फिर वीणा से कहा, "लेकिन एक शर्त है! तुम मुझे रोज़ अखबार पढ़ कर सुनाया करोगी!

मेरी आँखें कमज़ोर हो गई हैं, पढ़ने में तकलीफ़ होती है! बूढ़ा हो गया हूँ न!" और रामनाथ मुसकराए!

"जी हाँ—आपकी सेवा करना मैं अपना सौभाग्य समझूँगी!" वीणा ने कहा।

रामनाथ उठ खड़े हुए, "तुम्हारे स्कूल का समय हो रहा है, चलूँ, मैं भी स्नान करूँ चल कर!"

रामनाथ के जाने के बाद थोड़ी देर तक प्रभानाथ और वीणा मौन बैठे रहे। इस मौन को प्रभानाथ ने तोड़ा "वीणा—इस मकान में तुम्हारा रहना ठीक न होगा—तुम्हारे मिलने वालों से ददुआ का साक्षातकार होना स्वाभाविक ही है!"

"लेकिन मेरा यहाँ मिलने वाला कोई नहीं है!"

"तुम ग़लत समझती हो—आज दो आदमी आए थे—और लोग भी आ सकते हैं!"

वीणा प्रभानाथ के मुख को एक टक देख रही थी, "मैं उन लोगों से नहीं मिलना चाहती—लेकिन—लेकिन—" उसने एक ठंढी साँस ली, "वे मेरे मिलने वाले ज़रूर हैं; और मेरे मिलने वालों की संख्या घटने की जगह बढ़ेगी ही। आप ही बतलाइये मैं क्या करूँ?"

प्रभानाथ ने कुछ सोचकर कहा, "यह तो वास्तव में बढ़ी टेढ़ी समस्या है। इसका एक ही उपाय समझ में आता है—वे आप से यहाँ न मिलने आवें बल्कि आप कानपुर में उनसे मिलें। फिर कार्यक्षेत्र कानपुर ही है।"

"और कानपुर यहाँ से दूर भी नहीं है!" वीणा ने कहा।

"हाँ। उन दोनों सज्जनों से मैंने कह दिया है कि रविवार के दिन वे आप से कानपुर में मिल सकते हैं। बड़के भइया वहीं रहते हैं; वे तो जेल में हैं, लेकिन बड़की भौजी, मझले भइया और मझली भौजी ये सब वहाँ हैं। उनसे मिलने के लिए रविवार के दिन आप मेरे साथ चलें। वहाँ तै किया जायगा कि किस तरह काम आगे बढ़े।"

४

प्रभानाथ ने बाक़ायदे दीक्षा ले ली। जिस समय उसने दीक्षा ली थी, वीणा वहीं मौजूद थी। दीक्षा लेने के बाद जब प्रभानाथ वीणा के साथ कानपुर से वापस लौट रहा था, वीणा ने कहा, "आप की हठ पूरी हुई, लेकिन न जाने क्यों मैं प्रसन्न नहीं हूँ! मैं जानती हूँ कि मेरे ही कारण आप ने यह काँटों वाला मार्ग अपनाया है?"

शाम को प्रभानाथ क्लब चला गया, वीणा रामनाथ तिवारी को उस दिन का लीडर अखबार सुनाने लगी। अखबार समाप्त हो जाने पर रामनाथ ने वीणा से पूछा, "तो तुम कलकत्ता से आ रही हो। वहाँ काँग्रेस का कैसा ज़ोर है?

"अधिक नहीं!" दबी ज़बान से वीणा ने कहा।

"क्यों? बड़े ताज्जुब की बात है। जिस प्रान्त ने राजनीति को जन्म दिया, जिस प्रान्त ने आन्दोलनों को देश में आरम्भ किया, उस प्रान्त में आज इतनी शिथिलता क्यों?"

"मैं नहीं जानती!" वीणा ने इस विषय को टालने की कोशिश की।

लेकिन पण्डित रामनाथ तिवारी ने यह बात आरम्भ की थी वीणा की बात सुनने के लिए नहीं, वरन अपनी बात कहने के लिए, "तो सुनो! भूख और बेकारी बंगाल में भी उतनी ही है, जितनी यहाँ पर, लेक़िन एक बात वहाँ पर नहीं है—वह है चरित्र! और चरित्र के अभाव के कारण वहाँ साहस का भी अभाव है। बंगाली रो सकते हैं, चिल्ला सकते हैं, कह सकते हैं—पर कर नहीं सकते। त्याग और आत्मबलिदान—शायद इन बातों का उनमें अभाव है।"

वीणा को बंगालियों पर यह प्रहार बहुत बुरा लगा। वह तिलमिला उठी? "वह कर सकते हैं—इतना कर सकते हैं जितना किसी भी प्रान्त का आदमी नहीं कर सकता। नवयुवकों के कारनामे देखकर आप दंग रह

जाएँगे। उनमें क्रान्ति की एक भावना भर गई है। गोलियाँ चलती हैं, कितने ही आदमी रोज़ मरते हैं। ब्रिटिश-सत्ता का अगर कोई मुकाबिला कर रहा है तो वह हैं बंगाल के क्रान्तिकारी। अखबारों में इसका ज़िक्र नहीं होता—इसलिए आप यह सब जान नहीं पाते।"

रामनाथ ने हँसते हुए कहा, "शाबाश! लेकिन इन क्रान्तिकारियों के प्रति तुम्हारी सहानुभूति देख कर मुझे डर लगता है।" फिर थोड़ा-सा गम्भीर होकर उन्होंने कहा, "हाँ मैंने बहुत कुछ पढ़ा है—उससे भी अधिक सुना है। पर इस तरह मरना आत्म-हत्या का दूसरा रूप ही है न! बेकार और निराश आदमी आत्महत्या करना चाहता है; रेल से न कट कर, गले में फाँसी न लगा कर, नदी में न डूब कर वह पुलिस की गोली का शिकार बनता है। यहाँ भी चरित्र का अभाव ही है! इसके अलावा, क्रान्तिकारी युद्ध नहीं करता—वह हत्या करता—है!"

वीणा ने ज़बर्दस्ती अपने को इस बात का उत्तर देने से रोका। रामनाथ ने कुछ रुक कर फिर कहा "और क्रान्तिकारियों की जितनी गिरफ़्तारियाँ बंगाल में होती हैं उतनी और कहीं नहीं होतीं। यहाँ भी चरित्र का ही अभाव है। गिरफ़्तारियाँ होने के माने हैं भेद का खुलना। अब सवाल यह है कि यह भेद कैसे और क्यों खुलते हैं? उत्तर स्पष्ट है; उन लोगों में चरित्रहीन और बेईमान लोग घुसे हुए हैं जो पैसे के लिए सब कुछ कर सकते हैं। पैसे के लिए वे अपने को बेंच सकते हैं, अपने मित्रों की हत्या करवा सकते हैं। नहीं, यह सब बड़ा ग़लत है, बड़ा दयनीय है!"

"फिर ठीक क्या है?" वीणा ने पूछा।

"मैं क्या बतलाऊँ? शायद ठीक वही है जो कुछ हो रहा है। मैं यह कह सकता हूँ कि ग़लती कहाँ है, पर ठीक क्या है, यह मैं नहीं बतला सकता। अगर यही बतला सकता तो कृष्ण, बुद्ध, ईसा—इन सबों से ऊपर न उठ जाता? आखिर ये कृष्ण, बुद्ध, ईसा—यही कब बतला सके कि ठीक क्या है? इन्होंने किया क्या? सिवा इसके कि दुनिया की उलझनों पर अपना

मत प्रकट करके, अपना एक नया रास्ता और बतला कर एक उलझन और बढ़ा दी। कार्ल-मार्क्स ने लिखा और लेनिन ने किया—परिणाम ? रूस में भयानक रक्तपात ! और यहाँ गाँधी ने एक मत बतलाया—और परिणाम ? जेल—गिरफ़ारियाँ ! पर वास्तव में क्या होना चाहिए जिससे सब सुखी हो सकें, जो सबों की उलझनों का हल हो ? कोई नहीं बतला सका ! आखिर होगा क्या ?"

वीणा ग़ौर से तिवारी जी की बातों को सुन रही थी। उसे यह खयाल न था कि देहात में रहने वाला आदमी इतना सोच सकता है, इतना समझ सकता है ! और तिवारी जी के तर्क ? उनमें गम्भीरता थी, उनमें ईमानदारी थी, उनमें सार था।

रामनाथ कहते ही गए, रुके नहीं; मानो वे एक अरसे से किसी सुनने वाले को ढूँढ़ रहे थे और उस दिन उन्हें अनायास ही एक सुनने वाला मिल गया, "होगा क्या ? और इसके पहले हमें यह तै कर लेना पड़ेगा कि होना क्या चाहिए ! हम असन्तुष्ट हैं ! क्यों ? क्योंकि हमें रोटी नहीं मिलती; हमें कपड़ा नहीं मिलता, हमारे पास रहने की जगह नहीं है। हममें से हरेक अभाव से पीड़ित है ! और यह अभाव क्यों ? दुनिया में इतना अन्न पैदा होता है कि दुनिया की जितनी आबादी है उससे चौगुनी आबादी भरपेट भोजन कर सकती है। इतना वस्त्र दुनिया में बनता है कि सब आदमी बड़े मज़े में अपना तन ढाक सकते हैं। और यह सारा धरातल हमारे रहने के लिए मौजूद है। फिर यह अभाव क्यों ?" तिवारी जी ने वीणा की ओर देखा।

पर वीणा ने कोई उत्तर नहीं दिया, और उत्तर न देकर वीणा ने ठीक ही किया क्योंकि तिवारी जी ने यह प्रश्न वीणा से नहीं पूछा था, यह प्रश्न अपने से पूछा था। तिवारी जी ने उत्तर भी दिया, "यह केवल इसलिए कि विषमता ही प्रकृति का नियम है। हम सब एक प्रकार की पाशविकता लिए हुए हैं, हम सबों में दूसरे को उत्पीड़ित करने की दबी हुई मनोवृत्ति है, जो समय-समय पर प्रकट होकर मानवता के विकास में भयानक बाधा बन कर

खड़ी हो जाती है। हममें हिंसा है, और इस हिंसा को हम अभी तक नहीं छोड़ सके। और क्या हम इस हिंसा को छोड़ भी सकते हैं? हमारी हिंसा वाली मनोवृत्ति हमें दूसरों की हिंसा से बचने को प्रेरित करती रहती है। और इसीलिए हम धन इकट्ठा करते हैं, सम्पत्ति बढ़ाते हैं और इस धन-सम्पत्ति के रूप में दुनिया की सारी वस्तुओं को बाँध कर हम दूसरों को उन वस्तुओं का उपभोग नहीं करने देते! है न ऐसा?"

"तो हो क्या?" वीणा ने पूछा।

तिवारीजी हँस पड़े, "तो हो क्या? यही प्रश्न मेरे सामने भी है। और सब कुछ सोच-समझकर मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि कुछ भी न हो। दुनिया जिस रफ़्तार से चलती है चले। लोग भूखों मरते हैं—मरें! तुम सोशलिज़्म-सोशलिज़्म चिल्लाते हो; पर वहाँ भी तो तुम लोगों की जान ही लेते हो! मनुष्य के प्राणों का मूल्य ही क्या है? एक महायुद्ध—एक महामारी! लाखों-करोड़ों आदमी मर जाते हैं। और उन मरने वालों में कुछ ऐसे भी हो सकते हैं जो अपने को दुनिया का कर्ता—विधाता समझते रहे हों। आखिर उनके प्राणों का मूल्य क्या है? तुम सुधार करने वालों से पूछो तो कि क्या वे इतने रक्तपात, इतनी हत्या, इतने परिश्रम के बाद भी इस विषमता को इस उत्पीड़न को नष्ट कर सकेंगे?"

"वे तो ऐसा ही समझते हैं!" वीणा ने कहा।

"हाँ, वे ऐसा ही समझते हैं, लेकिन वे ग़लत समझते हैं! यह उत्पीड़न तब तक क़ायम रहेगा जब तक लोग उत्पीड़ित होने के लिए तैयार रहेंगे, और जन-समुदाय उत्पीड़ित होने के लिए तैयार अवश्य रहेगा। भेड़-बकरियों की तरह पीछे-पीछे चलने वाले आदमी जब तक दुनिया में मौजूद हैं तब तक उत्पीड़न होता ही रहेगा, वह रुकेगा नहीं।"

५

वीणा के उन्नाव में आ जाने के बाद कानपुर क्रान्तिकारियों का प्रधान केन्द्र बन गया। साहसी नवयुवक एक दल में बँधकर देश की स्वाधीनता के

लिए युद्ध करने को तैयार होने लगे। इस दल का संचालन करने के लिए वाहर से भी लोग आ जाया करते थे।

और प्रभानाथ ने देखा कि उसके दल के सव सदस्य अजीव तरह के आदमी हैं—अपनी-अपनी विशेषता लिए हुए। उनमें से कुछ तो ऐसे थे जो अंधकार के गर्भ से निकलकर आते थे और फिर वहीं लोप हो जाते थे। न उनका पता था, न ठिकाना। प्रभानाथ ने उस दल में एक और खास वात देखी—उस दल का न कोई खास ध्येय था और न कोई खास कार्यक्रम।

उस दिन एक वैठक हुई। कार्यक्रम का अभाव वहाँ एकत्रित प्रत्येक व्यक्ति को अखर रहा था। प्रभानाथ ने कहा, "मेरी समझ में नहीं आता कि हम लोग क्या करने को इकट्ठा होते हैं। हमें व्रिटिश-साम्राज्य से लड़ना है, हमें देश को गुलामी से मुक्त करना है, हमें अंग्रेज़ों को हिन्दुस्तान से निकाल वाहर करना है—लेकिन किस तरह? हमारे सामने कोई कार्य-क्रम ही नहीं है। आखिर हमें करना क्या होगा?"

सामने वैठे हुए एक युवक ने जिसे वह केवल सरदार के नाम से जानता था, और जो उन लोगों में एक था जो अंधकार में रहते थे, लेकिन फिर भी जो कानपुर की पार्टी का मुखिया माना जाता था, कहा, "अभी जल्दी क्या है? हमें तो अभी वहुत वड़ी तैयारी करनी है। हमें चाहिए कि हम अपनी ताक़त वढ़ाते जाँय। फिर एक दिन ऐसा आ जायगा जव हम अंग्रेज़ों का हिन्दुस्तान में रहना असम्भव कर देंगे—जव अंग्रेज़ लोग विलायत से हिन्दुस्तान आने के नाम पर थर-थर काँपेंगे।"

"लेकिन यह अंगरेज़ी फौज! यह आपको यह सव करने देगी?" प्रभानाथ ने पूछा।

मुसकराते हुए उस युवक ने उत्तर दिया, "अंग्रेज़ी फौज का सवाल ही नहीं उठता। अकेले फ़ौज के वल पर तो व्रिटिश-साम्राज्य हिन्दुस्तान में क़ायम नहीं रह सकता। फौजी शासन दो-चार दिन तक हिन्दुस्तान के दो-चार स्थानों में भले ही क़ायम रह जाय, लेकिन अनन्तकाल के लिए समस्त

हिन्दुस्तान पर यह फौजी शासन असम्भव है। ब्रिटिश-साम्राज्य को हिन्दुस्तान के साथ समझौता करना पड़ेगा जैसा आयर्लैंड में हुआ है।"

"मैं यह मानता हूँ!" एक दूसरे युवक ने कहा, "लेकिन मेरा कहना है कि सब्र की एक हद होती है। वह जोश, वह भावना, वह बलिदान जिसे लेकर हम लोग इस मार्ग पर अग्रसर हुए हैं—वह सब अनन्त और अक्षय तो नहीं है। मैं समझता हूँ कि हमारे लिए यही उपयुक्त समय है जब हम अपना काम आरम्भ करें। इतना बड़ा मूवमेण्ट चल रहा है, जनता की सहानुभूति हमें मिल जायगी। लेकिन मैं देखता हूँ कि हमारी तैयारी नहीं के बराबर है—हम अपना काम ही नहीं आरम्भ कर सकते।"

"हाँ—हम अपना काम ही नहीं आरम्भ कर सकते!" सरदार ने उस युवक की बात दुहराई, "और यह इसलिए कि हम तैयार नहीं हैं। लेकिन तैयारी के लिए आवश्यकता है धन की!"

"यह धन आवे कहाँ से?" वीणा ने पूछा, "दूसरी संस्थाओं को लाखों रुपयों का चन्दा मिल जाया करता है लेकिन हम तो चन्दा भी नहीं माँग सकते! फिर इस दल के प्रायः सभी लोग मध्य-वर्ग के हैं—वे जितना रुपया दे सकते हैं, देते हैं। पर उतना रुपया तो हमारी ज़रूरतों का हज़ारवाँ हिस्सा भी नहीं पूरा कर सकता! सब कुछ करने और सोचने के बाद यही सवाल हमारे सामने रह जाता है—"यह धन आवे कहाँ से और कैसे!"

"डाका डाल कर!" गम्भीरतापूर्वक सरदार ने कहा, "हमारे दल की सारी बुनियाद हिंसा और बल पर है, उसी हिंसा और बल का हमें सहारा लेना होगा। हमें जर्मनी और जापान से शस्त्रास्त्र मँगाने हैं उनके दाम तो हमें देने ही होंगे। इसके अलावा हमारे दल के कितने ही लोग बम बनाने का काम जानते हैं। और हमें बम बनाने की सामग्री खरीदना है!"

"लेकिन यह डाका किस पर डाला जाय?" एक और युवक ने पूछा।

"कानपुर के धनी व्यापारियों पर!" और मैं तो इन्हें डाका भी नहीं

कहूँगा ! यह तो जबर्दस्ती चन्दा वसूल करना है । दिन दहाड़े अपनी पिस्तौलों के बल पर हमें यह चन्दा वसूल करना होगा । और इस काम के लिए हमें ज़रूरत होगी एक अच्छी कार की, एक अच्छे ड्राइवर की, चार आदमियों की जिनके चेहरों पर नक़ाबें होंगी, और चार पिस्तौलों की ।"

थोड़ी देर रुक कर सरदार ने फिर कहा "जहाँ तक कार का सवाल है वह हम रास्ते में किसी की अच्छी कार को हथिया सकते हैं; नक़ाबें मैं साथ लेता आया हूँ, पिस्तौलें हमारे पास हैं । अब चार आदमियों की और एक अच्छे ड्राइवर की आवश्यकता है ।"

"हम तीस आदमी हैं—आप चार को चुन सकते हैं" एक युवक ने कहा ।

"आप लोगों में से मुझे सिर्फ़ तीन आदमी चाहिए, चौथा मैं हूँ ।" सरदार ने उत्तर दिया ।

तीस आदमियों के नाम चिट्ठी डाली गई, तीन आदमियों के नाम निकल आने पर सरदार ने कहा, "और ड्राइवर—यह टेढ़ा सवाल है !"

"मैं हूँ !" प्रभानाथ ने उत्तर दिया ।

इस "मैं हूँ" को सुनकर वीणा चौंक उठी । उसने कहा, "मिस्टर प्रभानाथ यह बहुत खतरे का काम है । बीच शहर में, भरे हुए रास्तों पर अधिक से अधिक स्पीड से आपको कार चलानी पड़ेगी ! शायद यह आपसे न हो सकेगा !"

"ज़रूर हो सकेगा ! और इसका प्रमाण मैं सफलता पूर्वक इस काम को करके दूँगा !" प्रभानाथ ने मुसकराते हुए उत्तर दिया ।

६

कानपुर के एलफ़िन्स्टन सिनेमा के सामने जब प्रभानाथ पहुँचा उस समय सात बज चुके थे । सिनेमा हो रहा था और बाहर माल रोड पर इक्का-

दुक्का आदमी चल रहे थे। प्रभानाथ ने मोटरकारों के झुण्ड के पास जाकर इधर-उधर देखा, कहीं कोई न था। मोटरों के ड्राइवर या तो मोटरों में पड़े सो रहे थे या टिकट लेकर वे भी सिनेमा में बैठे थे।

उन मोटरों में प्रभानाथ ने एक चुनी, वह एक बड़ी सी स्टूडीबेकर कार थी। प्रभानाथ ने फिर एक बार अपने चारों ओर देखा, कहीं कोई न था। वह कार पर बैठ गया। सौभाग्यवश कार में चाभी नहीं लगी थी, उसने कार स्टार्ट की और चल दिया। नहर के पुल के पास उसके चारो साथी एक पेड़ के नीचे खड़े उसका इंतज़ार कर रहे थे। उन लोगों को उसने कार पर बिठलाया—और फिर वह जनरलगंज पहुँचा। कार के अन्दर ही उन लोगों ने अपनी नकाबें पहन लीं।

लाला नैनसुखदास का फ़र्म थोक कपड़े के व्यापार का प्रमुख फ़र्म था—और उनकी हैसियत लाखों की समझी जाती थी। उस दूकान के सामने कार रुकी। चारों आदमी कार से उतर कर दूकान में घुस गए—किसी ने इसपर ध्यान भी नहीं दिया।

दो आदमी दरवाज़े पर पिस्तौल निकाल कर खड़े हो गए और दो मुनीम के पास पहुँचे। सरदार ने पिस्तौल तान कर मुनीम से कहा, "पाँच हज़ार रुपए अभी चाहिए—एकदम !"

मुनीम उस समय रोकड़ लिख रहा था—रोकड़िया भी वहीं बैठा था। उसने सर उठाकर देखा—पिस्तौल देखकर वह सहम गया, उसकी घिग्घी बँध गई।

"जल्दी करो ! नहीं तो..." सरदार ने पिस्तौल की नली मुनीम के मत्थे से लगा दी।

मुनीम ने रोकड़िये की तरफ़ देखा, वह काँप रहा था। रोकड़िये ने चाभी निकालकर तिजौरी के पास रख दी। सरदार ने अपने साथी से कहा, "तिजौरी से पाँच हज़ार रुपए निकालो—मैं इन लोगों को सम्हाले हुए हूँ।" और उसी

समय उसने मुनीम तथा रोकड़िये की तरफ़ मुखातिब होकर कहा, "अगर एक आवाज़ भी निकाली, तो गोली मत्थे के अन्दर घुस जायगी।"

तिजौरी खोलकर सरदार के साथी ने पाँच हज़ार रुपए निकाल लिए। रुपया ले चुकने के बाद सरदार ने अपने साथी से कहा, "तुम कार पर चलो और इंजन स्टार्ट कर दो—मैं पीछे-पीछे आ रहा हूँ। कार स्टार्ट करके हार्न देना, तब तक मैं इन लोगों को सम्हाले हूँ कि शोर-गुल न करें।"

तीनों युवक कार पर बैठ गए और प्रभानाथ ने कार स्टार्ट कर दी। हार्न सुनते ही सरदार तेज़ी के साथ दूकान से निकल कर कार पर बैठ गया और उसके बैठते ही कार चल दी।

कार के चलते ही मुनीम और रोकड़िया "हाय लुट गए—डाका पड़ गया—पकड़ो!" चिल्लाते हुए दूकान के बाहर निकले। इस शोर-गुल से भीड़ इकट्ठा होने लगी। जब तक लोग सुनें कि क्या हुआ, पूरी बात समझें और सोचें कि क्या किया जाय तब तक कार मेस्टन रोड पार करके माल रोड पर घूम पड़ी थी।

क्रॉस पार्क के पीछे क़िले के तरफ़ कार रोक दी गई। पाँचों आदमी कार से उतर पड़े—मालरोड की एक गली से वे घुसकर तितर बितर हो गए। रुपया सरदार के पास रहा।

उसी दिन शाम को उन लोगों की फिर एक बैठक हुई। इस डाके से कानपुर नगर में बड़ी सनसनी फैल गई थी, लेकिन यह निश्चित हो गया था कि उन लोगों में एक भी आदमी नहीं पहिचाना गया है। इतनी आसानी से डाका डाला जा सकता है—प्रभानाथ ने यह पहले कभी न सोचा था।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

१

राजेन्द्रकुमार वर्मा इलाहाबाद यूनीवर्सिटी में हिस्ट्री के लेक्चरर थे। वे नवयुवक थे खेल-कूद तथा खेल-तमाशों के शौकीन थे। यूनीवर्सिटी का कोई भी उत्सव ऐसा न होता था जिसमें मिस्टर राजेन्द्रकुमार का सहयोग न हो। और इसीलिए वे लोकप्रिय भी थे।

राजेन्द्रकुमार वर्मा और उमानाथ तिवारी यूनीवर्सिटी में एक साथ ही पढ़े थे और एक ही होस्टेल में रहे थे। एक तरह से दोनों अभिन्न मित्र थे। उमानाथ का राजेन्द्रकुमार के साथ जर्मनी से पत्र व्यवहार भी होता रहा था। इलाहाबाद पहुँच कर उमानाथ ने ताँगा राजेन्द्रकुमार के बँगले की ओर मुड़वा दिया।

उमानाथ जब कामरेड मारीसन के साथ राजेन्द्रकुमार के बँगले में पहुँचा, राजेन्द्रकुमार यूनीवर्सिटी में था। राजेन्द्र अविवाहित था, इसलिए उसके नौकर बच्चई ने इन दोनों सज्जनों से फाटक पर यह कह कर "साहेब तो मरसिटी माँ अहैं—आप लोग फिर आवैं!" अपनी फ़र्ज़ अदाई की।

लेकिन जब उमानाथ ने उससे डाँट कर कहा, "असबाब उतारो जी—और कमरा खोलो!" तब बच्चई की समझ में यह बात आई कि ये दोनों मेहमान बाहर से आए हैं और उसके साहेब के साथ ही ठहरने पर तुले हुए हैं।

चार बजे शाम को जब राजेन्द्र यूनीवर्सिटी से वापस लौटा, उसे ड्राइंग रूम खुला हुआ मिला। ड्राइंग-रूम में उमानाथ बैठा हुआ एक किताब पढ़ रहा था। उमानाथ को देखते ही वह कह उठा, "अरे! तुम कब आए—मुझे पहले से इत्तिला क्यों नहीं दी?"

"करीब दो घण्टे हुए आया हूँ, और आना इस जल्दी में हुआ कि तुम्हें इत्तिला देने का वक्त ही न था!" उमानाथ ने हँसते हुए कहा।

"और चा-वा तो कुछ मिली न होगी! बचई!"

"चा की फ़िक्र करने की कोई ज़रूरत नही—बैठो। मेरे दोस्त चा तैयार कर रहे हैं!"

"तुम्हारे दोस्त! ये कौन हैं?" राजेन्द्रकुमार ने पूछा।

"अभी मिलाता हूँ उनसे! मिल कर खुश हो जाओगे—नायाब आदमी हैं। चलो, किचन में ही उनसे मुलाक़ात करवा दूँ!" उमानाथ ने उठते हुए कहा।

किचन में कामरेड मारीसन पावरोटी काट कर टोस्टर में लगा रहे थे। उस समय वे आधी आस्तीन की कमीज़ और हाफ़ पैण्ट पहने थे। चा तैयार करके वे टी-पाट में रख चुके थे।

उमानाथ ने कहा, "ये हैं मेरे दोस्त कामरेड मारीसन, और ये हमारे मेज़बान मिस्टर राजेन्द्रकुमार वर्मा।"

दोनों ने तपाक के साथ एक दूसरे से हाथ मिलाए और मिलने पर खुशी ज़ाहिर की।

"लेकिन बचई कहाँ है?" राजेन्द्रकुमार ने पूछा।

"कामरेड मारीसन के किचन में घुसते ही वह यहाँ से चल दिया—पता नहीं कहाँ!" उमानाथ ने बतलाया।

राजेन्द्र बचई को ढूँढने निकला। बँगले के पिछवाड़े बरगद के पेड़ के नीचे बचई टाँगे फैला कर तुलसीदास का पद गा रहा था। राजेन्द्रकुमार को देखते ही वह उठ खड़ा हुआ।

"तुम घर से क्यों चले आए?" राजेन्द्रकुमार ने डाँट कर पूछा।

"अब न होई सरकार! ई किरिस्तानी व्यौपार हमसे न चली। तौन अँगरेज रसोई-घर माँ घुस जाय—सरकार हमार हिसाब-किताब कर दें।"

"हिसाब-किताब तो पीछे होगा, पहले पुलिस में चलना पड़ेगा क्योंकि तुम अनजाने आदमियों को मकान में छोड़ कर घर से चल दिये!" राजेन्द्रकुमार ने गरम होते हुए कहा।

बचई को लेने के देने पड़े, "पुलिस माँ न देयँ सरकार—गलती भई।"

"तो चलो, काम करो चल कर!"

"लेकिन ऊ अंग्रेज जो रसोई माँ घुस गया—नाहीं सरकार हम अंग्रेज का जूठा न छूबब!"

"तो फिर पुलिस में जाना पड़ेगा!"

"हम हिसाब-किताब न लेब—लेकिन सरकार हमें जाँय देंय!"

"नहीं—घर में चल कर काम करने से ही पुलिस से बच सकते हो—वैसे गंगा नहा लेना!"

बचई को घर आना पड़ा। किचन में पहुँच कर राजेन्द्रकुमार ने बचई से कहा, "तुम चा तैयार करके ड्राइंग-रूम में लाओ!" और कामरेड मारीसन तथा उमानाथ के साथ वह ड्राइंग-रूम की तरफ़ रवाना हुआ।

"आदाब अर्ज़ प्रोफ़ेसर साहेब! मेरा खयाल है कि मैंने मदाखिलत बेजा नहीं की!" इन तीनों के ड्राइंग-रूम में पहुँचते ही वहाँ बैठे हुए एक सज्जन ने उठ कर कहा।

जिन सज्जन ने उठ कर अभिवादन किया था वे नाटे क़द के एक दुबले-पतले युवक थे। उनके बाल बड़े-बड़े और रूखे थे, दाढ़ी-मूछ छै सात दिन से न बनी थी, चूड़ीदार पैजामा-कुरता और चप्पल पहने थे। बात-चीत में एक अजीब तरह की नफ़ासत से भरी लापरवाही—और धजा पूरी मजनू की।

राजेन्द्रकुमार ने उनसे हाथ मिलाते हुए कहा, "आप बड़े मौक़े से आ गए, मिस्टर रामेश्वर प्रसाद! ये हैं मेरे दोस्त, मिस्टर उमानाथ तिवारी, और ये हैं कामरेड मारीसन! और आप हैं मिस्टर रामेश्वर प्रसाद—मुफ़स्सर अक्सर मेहरबानी कर दिया करते हैं!"

उमानाथ ने रामेश्वर प्रसाद को एक बार बड़ी ग़ौर से देखा, फ़िर वह मुसकराया। उसने कहा, "आप तो शायर मालूम होते हैं!"

यद्यपि उमानाथ ने बात हिन्दी में कही थी, रामेश्वरप्रसाद ने जवाब अंग्रेज़ी में दिया, "जी हाँ, ऐसे ही कभी-कभी कुछ तुकें जोड़ लिया करता हूँ वैसे तो मैं प्लेराइटर (नाटक कार) हूँ।"

"क्या आप अंग्रेज़ी में लिखते हैं?" कामरेड मारीसन ने पूछा।

"जी हाँ! अंग्रेज़ी में भी लिखता हूँ और मेरे एक प्ले की तो जार्ज बर्नर्डशा ने बड़ी तारीफ़ की। मैंने अभी हाल में ही लिखना आरम्भ किया है!" रामेश्वर प्रसाद ने बड़े शान्त भाव से कहा।

लेकिन रामेश्वर प्रसाद ने बर्नर्डशा का जो हवाला दिया उसका असर कामरेड मारीसन पर बिल्कुल नहीं पड़ा उन्होंने पूछा, "आप अपनी भाषा में क्यों नहीं लिखते?"

"बात यह है कि मेरे विचारों को समझने वाले लोग मेरी भाषा हिन्दी में हैं ही नहीं। फिर भी इधर मैंने दो-एक प्लेज़ हिन्दी में भी लिखे हैं। मेरे पहिले हिन्दी में किसी ने प्लेज़ नहीं लिखे!" एक मीठी मुसकान मुँह पर लाने का प्रयत्न करते हुए रामेश्वर प्रसाद ने कहा, "और आपको यह मालूम होना चाहिए कि हिन्दी-साहित्य का अभी निर्माण ही हो रहा है; हमी लोग तो साहित्य के निर्माता हैं। हिन्दी साहित्य पोस्टवार क्रियेशन (१९१४—१८ के युद्ध के बाद का निर्माण) है।"

'उमानाथ बड़े ध्यान से रामेश्वर प्रसाद की बात सुन रहा था और मन ही मन आश्चर्य कर रहा था। जर्मनी जाने के पहिले उमानाथ को हिन्दी साहित्य में कुछ दिलचस्पी थी, और उसे याद था कि उन दिनों जो कुछ लिखा जा रहा था वह बहुत ही पुराने ढंग का था। नई धारा आने ज़रूर लगी थी, लेकिन उसका पूर्ण विकास न हो पाया था।

इस बार उमानाथ के बोलने की बारी थी, "आप से मिल कर बड़ी

प्रसन्नता हुई मिस्टर रामेश्वर प्रसाद। मैं आप से पूछ सकता हूँ कि आपके लिखने में थीम (विषय) क्या होता है?"

"थीम!" रामेश्वर प्रसाद ने एक व्यंगात्मक शुष्क हँसी के साथ कहा, "थीम पर मुझे विश्वास नहीं। दुनिया में कोई एक थीम थोड़े ही है। हमारे समाज के सामने कितने ही प्राब्लेम्स (समस्याएँ) हैं, और प्रत्येक प्राब्लेम एक थीम है। मेरा काम है दुनिया के सामने उन प्राब्लेम्स को पेश करना, ताकि दुनिया सोचे और समझे!"

चा आ गई थी। रामेश्वर प्रसाद इस प्रकार चा तैयार कर रहा था मानो वह राजेन्द्रकुमार का कोई आत्मीय था और इस आत्मीयता के नाते वह मेज़बान का कर्तव्य अपने ऊपर ले रहा है। "कहिए मिस्टर उमानाथ —कितने चम्मच चीनी?...आप कामरेड मारीसन?...आप तो डेढ़ चम्मच लेते हैं मिस्टर राजेन्द्रकुमार! जी...तो मैं कह रहा था कि मेरे पास प्राब्लेम्स हैं, और आज का साहित्य प्राब्लेम्स का साहित्य है! शा इतना पापुलर (लोकप्रिय) क्यों है? क्योंकि दुनिया के सामने वह दुनिया की समस्याएँ पेश करता है; सोने वालों को वह हंटर मार कर उठाता है, वह कहता है, देखो तुम कहाँ हो! सोचो और समझो!" और इसीलिए शा दुनिया का सब से बड़ा कलाकार है!"

"लेकिन शा तो डिस्ट्रक्टिव (विनाशात्मक) है!" दबी ज़बान राजेन्द्र कुमार ने कहा।

"डिस्ट्रक्शन!" चा का एक घूट पीकर रामेश्वर प्रसाद ने उन तीनों को देखा। उसकी आँखें छोटी-छोटी और चमकीली थीं, उन आँखों में कुछ ऐसी बात थी जिसे वहाँ उपस्थित लोगों ने पसन्द नहीं किया। "लेकिन जब तक डिस्ट्रक्शन नहीं होता तब तक कांस्ट्रक्शन (निर्माण) नहीं हो सकता। डिस्ट्रक्शन में ही जिन्दगी का डाइनेमिकफोर्स है, डिस्ट्रक्शन ही सत्य है और नित्य है। मनुष्य परफ़ेक्ट (पूर्ण) बनना चाहता है, परफ़ेक्ट बनने के लिए इम्परफेक्शंस (अपूर्णताओं) को डिस्ट्राय ही करना होगा।

था वही कर रहा है। वह क्रिटिक है; हमारे कर्मों को वह देखता है। हमारी अपूर्णताओं पर वह हँसता है, उनकी मखौल उड़ाता है। और इस प्रकार वह हमें अपना रास्ता खुद निकालने को प्रेरित करता है।"

जिस समय रामेश्वर प्रसाद यह कह रहा था राजेन्द्रकुमार को जम्हुआई आ रही थी और कामरेड मारीसन बीच-बीच के अंग्रेज़ी शब्दों के समझ सकने के कारण रामेश्वर प्रसाद की खिचड़ी भाषा को समझने का विफल प्रयत्न कर रहे थे; लेकिन उमानाथ बड़े ग़ौर से सुन रहा था। उसने पूछा, "आपने गोर्की पढ़ा है?"

"हाँ, गोर्की मैंने पढ़ा है, और एप्रीशिएट भी किया है; लेकिन गोर्की के आर्ट में और मेरे आर्ट में विभिन्नता है, इसलिए गोर्की को मैं महत्व नहीं देता।"

राजेन्द्रकुमार शायद इस बातचीत से आजिज़ आ गया था, उसने बात बदलने की कोशिश की, "मिस्टर रामेश्वर प्रसाद आज प्रोफ़ेसर किशोर के यहाँ साहित्य गोष्ठी है—चलियेगा न! मुझे भी उन्होंने न जाने क्यों निमन्त्रण भेज दिया है।"

"अरे हाँ! मैं तो भूल ही गया था।" रामेश्वर उमानाथ की ओर घूमा, "और आप लोग भी चलियेगा—प्रोफ़ेसर किशोर अपने ही आदमी हैं। आप लोगों से मिल कर उन्हें बड़ी प्रसन्नता होगी।"

राजेन्द्रकुमार ने उमानाथ की ओर देखा, "प्रोफ़ेसर किशोर हिन्दी के सुविख्यात कवि हैं, यूनीवर्सिटी में लेक्चरर हैं। अगर अनइनवाइटेड चलने में अपना अपमान न समझो, तो चलो।

"क्या हम कम्यूनिस्टों के लिए दुनिया में मान-अपमान नाम की कोई भी चीज़ नहीं; हम तो वह कि 'सौ-सौ जूते खाँय, तमाशा घुस के देखें!' और हाँ, मेरे साथ कामरेड मारीसन भी हैं; 'गोकि हिन्दी यह नहीं समझते लेकिन लोगों से मिल तो सकते हैं!" उमानाथ ने उठते हुए कहा।

२

प्रोफ़ेसर किशोर—महज़ इसलिए कि लेक्चरर होते हुए भी वे अपने को प्रोफ़ेसर लिखते थे, और दूसरों से आशा करते थे कि वे उन्हें प्रोफ़ेसर ही कहेंगे, यहाँ भी वे प्रोफ़ेसर किशोर के नाम से ही परिचित कराए जाते हैं—बरामदे में खड़े हुए अतिथियों का स्वागत कर रहे थे। वे पीले रंग के पापलेन का सूट पहिने थे—और उनका खयाल था कि लोगों को उस सूट के सिल्क का सूट होने का धोखा हो सकता है; और वह सूट किसी साधारण दूकान में सिला था क्योंकि उनके शरीर पर अच्छी तरह फ़िट न हो रहा था। उस सूट पर वे लाल टाई बाँधे थे जो काफ़ी भड़कीली थी। बटन होल में गुलाब का फूल लगा था। उनकी मूछ आधी थी। सर के बाल किसी क़दर घुँघराले। गाल भरे हुए और होठों पर एक हलकी और सलोनी-सी मुसकराहट!

प्रोफ़ेसर किशोर के साथ दो सज्जन और थे जो उनके विशेष कृपा-पात्र थे। ये दोनों सज्जन अपनी-अपनी विशेषता रखते थे और काफ़ी दिलचस्प थे। इसलिए इनका परिचय दे देना आवश्यक है। एक सज्जन मझोले क़द के गोल-मटोल आदमी थे, काले और भद्दे। उनकी तुलना अकसर लोग तम्बाकू के पिण्डे से किया करते थे। शक्ल से बनिया दिखते थे और थे भी बनिया। उनके पिता की परचून की दूकान थी लेकिन कुछ पढ़-लिख जाने के कारण इन्हें अपने पुश्तैनी धंधों से अरुचि हो गई थी, साथ ही तबीअत भी किसी क़दर रंगीन पाई थी इस लिए वे कवि बन गए थे। और हिन्दी का प्रत्येक कवि हिन्दी का धुरधंर विद्वान समझा जाता है। इसीलिए इन्हें कुछ ट्यूशन भी मिल गए थे। ये ट्यूशन अधिकांश स्त्रियों के थे क्योंकि स्त्रियों के पिता-पतियों को उनकी शक्ल-सूरत पर पूरा भरोसा था। पर स्त्रियों का ट्यूशन तो वे करते थे, और शायद इसी कारण इन्होंने अपना उपनाम विलासी रख लिया था और समय-समय पर अपनी विलासिता की वे चर्चा भी कर दिया करते थे। लेकिन ट्यूशनों से तो काम चलता नहीं था इसलिए वे किशोर जी

की खुशामद किया करते थे कि वे कहीं इन्हें किसी स्कूल में मास्टरी की नौकरी दिलवा दें।

दूसरे सज्जन नाटे क़द के दुबले-पतले आदमी थे अगर उनको नर-कंकाल कहा जाय तो अनुचित न होगा। इनके गाल पिचके हुए थे, आँखों पर चश्मा चढ़ा था और बाल कंधों पर लहरा रहे थे। ये कवि थे और साथ ही आलोचक! इनका नाम था परमसुख चौबे। एक दैनिक-पत्र में ये प्रूफ़रीडर थे, लेकिन लोगों से वे कहते थे कि वे सम्पादक हैं। इन्होंने आलोचना की दो एक किताबें लिखी थीं जिसमें इन्होंने घोषित किया था कि प्रोफ़ेसर किशोर हिन्दी के युग निर्माताओं में एक हैं। प्रोफ़ेसर किशोर ने इस उपकार का बदला अपने प्रभाव से इनकी किताबें छपवा कर तथा उन्हें स्कूल-कालेजों में टेक्स्ट-बुक बनवा कर दिया था।

राजेन्द्रकुमार अपने दोस्तों के साथ जब प्रोफ़ेसर किशोर के यहाँ पहुँचे उस समय प्रोफ़ेसर किशोर एक महिला से, जो शायद उसी समय ताँगे से उतरी थीं, बात-चीत कर रहे थे, "आपने यहाँ आकर मुझ पर बड़ी कृपा की—यह मेरा परम सौभाग्य है।" प्रोफ़ेसर किशोर के होठों की मन्द मुस्कान कुछ अधिक प्रस्फुटित हो गई, "जिस सभा में स्त्रियाँ नहीं रहतीं वहाँ प्रकाश का अभाव रहता है, वहाँ एक प्रकार की जीवनहीनता का अनुभव किया जा सकता है!"

विलासी जी जो प्रोफ़ेसर किशोर की दाहिनी तरफ़ खड़े थे आगे बढ़कर बोले, "जी हाँ, मृणालिनी जी के आ जाने से साहित्य गोष्ठी की रौनक़ दूनी हो गई!"

और पण्डित परमसुख को भी अपना पार्ट अदा करना था, वे मृणालिनी जी के सामने आकर बोले, "अहाहा! सौन्दर्य! सौन्दर्य ही कला है—शारीरिक, मानसिक और आत्मिक! मृणालिनी जी में सौन्दर्य की पूर्णता है!"

मृणालिनी जी को ये बातें काफ़ी अच्छी लग रही थीं क्योंकि उनके मुख पर संतोष और प्रसन्नता की एक हलकी सी मुसकराहट आकर रुक गई थी.

और साथ ही वे स्वयम् भीतर जाने से रुक गई थीं। यहाँ मृणालिनी जी का थोड़ा-सा परिचय दे देना आवश्यक है। मृणालिनी जी की उम्र करीब चालीस वर्ष की थी यद्यपि अपने परिचितों से वे अपनी अवस्था पचीस वर्ष और पैंतीस वर्ष के बीच तक बतलाया करती थीं। नवयुवकों के समुदाय में वे पचीस वर्ष की थीं, वयस्कों के समुदाय में वे तीस वर्ष की थीं और उन लोगों के बीच में जिन्हें उनके पुराने इतिहास का थोड़ा-बहुत ज्ञान था, वे पैंतीस वर्ष की थीं। उनके बाल सफ़ेद होने लगे थे और वे अब खिजाब लगाती थीं। एकहरे बदन की तन्दुरुस्त स्त्री थीं, कुछ थोड़ा-सा साँवला रंग और दाँत बड़े-बड़े। वे अध्यापिका थीं और हिन्दी के साहित्य में उन्हें काफ़ी दिलचस्पी थी।

मृणालिनी जी ने कुछ मुसकराते हुए, कुछ शरमाते हुए, कुछ सिकुड़ते हुए कहा, "आप लोग क्यों इतनी अतिशयोक्ति से काम ले रहे हैं।"

इतने में राजेन्द्रकुमार और उनके साथी बरामदे में आ गए। आगे-आगे श्री रामेश्वर प्रसाद और कामरेड मारीसन थे और पीछे-पीछे राजेन्द्र-कुमार और उमानाथ। रामेश्वर प्रसाद ग़लत-सलत अंग्रेजी में तेज़ी के साथ कामरेड मारीसन को हिन्दी-साहित्य की प्रगति और उस प्रगति में अपनी प्रमुखता बतला रहे थे।

"नमस्कार प्रोफ़ेसर किशोर!" अपना हाथ बढ़ाते हुये रामेश्वर प्रसाद ने कहा। प्रोफ़ेसर किशोर को जबरदस्ती रामेश्वर प्रसाद से, जिसे उन्होंने साहित्य-गोष्ठी में सम्मिलित करने से बराबर इनकार किया था, और जो आज बिना बुलाए हुए चला आया था, हाथ मिलाना पड़ा। तब तक राजेन्द्र कुमार ने बढ़ कर कहा, "हलो किशोर! भाई मेरे दो मेहमान आ गए हैं, इन्हें भी लेता आया हूँ। यह हैं मिस्टर उमानाथ तिवारी—तुमने दो साल सीनियर थे—यूनीवर्सिटी में बड़े मशहूर आदमी थे—तुमने इन्हें देखा तो होगा।"

"भला इनको उन दिनों कौन नहीं जानता था!"

"हाँ, तो ये अभी हाल में ही जर्मनी से लौटे हैं। आज ही इलाहाबाद

आए। मैंने सोचा साथ लेता चलूँ। और ये हैं कामरेड मारीसन, मिस्टर उमानाथ के मित्र। और ये प्रोफ़ेसर किशोर हैं जिनका ज़िक्र मैं आप लोगों से कर चुका हूँ।"

"आप लोगों का मैं हृदय से स्वागत करता हूँ!" सर झुका कर और अपना हाथ अपनी छाती पर रख कर प्रोफ़ेसर किशोर ने कहा, "देखिये परमसुख जी, आप और विलासी जी यहीं रहें, मैं आप लोगों को भीतर लिवा चलता हूँ।"

इतना कह कर प्रोफ़ेसर किशोर वहाँ से चलने लगे, लेकिन एकाएक उनके क़दम रुक गए। किसी ने ज़रा तेज़ी से कहा, "मेरा स्वागत इन लौण्डों पर छोड़ कर आप बड़े आदमियों की खातिरदारी में चल दिये, ज़रा तमीज़ सीखिये।" और जब किशोर जी ने मुड़ कर देखा, तो उन्हें अपने सामने दीवाना जी की भव्य मूर्ति नज़र आई।

श्रीमान दीवाना जी कुरता पहने थे और तहमत बाँधे थे, नंगे सर और नंगे पैर। बाल बड़े-बड़े, दाढ़ी-मूछ साफ़। छै फुट का कसरती और सुडौल शरीर, मुख सुन्दर, चेहरे पर तेज और आँखों में चमक। स्वर में एक मीठी गम्भीरता।

"क्षमा कीजियेगा दीवाना जी! मैंने आप को देखा नहीं था। आइये, आप भी चलिये!" किशोर जी ने कहा।

"मुझे नहीं देखा! आपका दिमाग़ तो ठीक है? जो मुझे नहीं देख सका वह कुछ नहीं देख सका, वह अंधा है।" और दीवाना जी अपनी बात पर खुद खिलखिला कर हँस पड़े, "अच्छा मैंने आप को माफ़ किया; चलिये, लेकिन इस बदमाश को"—परमसुख की तरफ़ इशारा करते हुए उन्होंने कहा, "आप मेरे सामने न आने दीजियेगा, वरना मैं इसे मार बैठूँगा।"

३

प्रोफ़ेसर किशोर के ड्राइंग-रूम में साहित्यिकों की भीड़ एकत्रित थी, और साहित्यिक लोग दलों में विभाजित हो कर बातचीत कर रहे थे।

एक कोने में श्री विश्वम्भर कुछ सज्जनों से घिरे बैठे थे। श्री विश्वम्भर को देखने पर पहले लोगों को शक होता था कि वे स्त्री हैं, और आधे सज्जन तो इस बात पर शर्त बद कर बाज़ी तक हार चुके थे। श्री विश्वम्भर मुक्तकण्ठ से हिन्दी के युग-प्रवर्तक कवि स्वीकार किये जाते थे। गोरे-से खूबसूरत आदमी, बाल कंधे तक लहराते हुए, फ्राक-नुमा कोट और पतलून पहने हुए थे। व्यक्तित्व में एक प्रकार की मोहक कोमलता थी, वाणी में एक प्रकार का संगीत था। इनके साथ दो सज्जन थे, एक श्री रघुवंश लाल जो हिन्दी के प्रमुख आलोचक कहे जाते थे, यद्यपि स्वयम् उन्हें इस बात पर शक था कि वे क्या हैं, और दूसरे श्री रमेन्द्र जो हिन्दी के उदीयमान कवियों में अपना ऊँचा स्थान रखते थे और श्री विश्वम्भर के ख़ास शिष्य समझे जाते थे।

दूसरे कोने में श्रीमती करुणा देवी बैठी थीं और उन्हें घेरे हुए चार साहित्यिक बड़ी भक्ति के साथ उनके वचनों का सुधापान कर रहे थे। श्रीमती करुणा देवी हिन्दी की सुविख्यात कवियित्री थीं और लोग उनकी तुलना मीरा से करते थे। कुछ लोगों का ऐसा ख्याल था कि वे मीरा से कहीं अधिक बढ़ी हुई हैं और उन्हें घेरे हुए चारों सज्जन इसी मत के थे। श्रीमती करुणा देवी एकहरे बदन की और मझोले क़द की स्त्री थीं, रंग गोरा और मुख पर सदा खेलने वाली हँसी जो किसी हद तक निरर्थक कही जा सकती थी। चेहरा तनिक लम्बा और आभारहित पर आँखें बड़ी-बड़ी और उनमें आत्म-विश्वास की चमक।

तीसरे कोने में श्रीयुत प्राणनाथ श्री देवीप्रसाद से राजनीति पर बातें कर रहे थे। श्री प्राणनाथ कांग्रेस के बहुत बड़े नेता थे और कानपुर के रहने वाले थे। पर राजनीति की अपेक्षा वे साहित्य के अधिक थे, जिसे शायद उन्होंने स्वयम् कभी न महसूस किया था। वे सुविख्यात कवि थे।

श्री देवीप्रसाद नाटे से आदमी थे, एकहरे बदन के। इनकी गणना हिन्दी के सफल कवियों तथा उपन्यासकारों में होती थी। पर हिन्दी के आलोचक न इन्हें कवि मानने को तैयार थे और न उपन्यासकार।

प्रोफ़ेसर किशोर के अपने अतिथियों के साथ आते ही सब लोग उठ खड़े हुए। श्री दीवाना जी ने बीच कमरे में खड़े हो कर कहा, "मेरा स्वागत करने के लिए आप लोगों ने कष्ट उठाया मैं उससे बहुत खुश हूँ। मेरी आज्ञा है कि अब आप लोग बैठें।" और यह कह कर वे श्री विश्वम्भर की बगल में डट गए।

सब लोगों के बैठ जाने पर साहित्य-गोष्ठी की कार्रवाई शुरू हुई। प्रोफ़े-सर किशोर कुछ कहने को खड़े ही हुए थे कि दो सज्जनों ने और कमरे में प्रवेश किया। उनमें से एक ने, जिनका नाम ठाकुर मलकानसिंह था, कहा, "हम लोगों को, याने मुझे और ठाकुर दिग्विजयसिंह को, देर हो गई इस लिए हम लोग क्षमा माँगे लेते हैं।" यह कह कर वे खाली कुर्सी पर बैठ गए।

पर ठाकुर दिग्विजय सिंह ने कहा, "मेरे मित्र ने मेरी तरफ़ से माफ़ी माँग कर ग़लती की, उनकी माफ़ी सिर्फ़ उनके ही लिए समझी जाय! मैं माफी माँगने से क़तई इनकार करता हूँ क्योंकि देर करना हम हिन्दुस्तानियों का राष्ट्रीय अधिकार है।"

इन दोनों की बात समाप्त हो जाने पर प्रोफ़ेसर किशोर ने अपना व्या-ख्यान अंग्रेज़ी में आरम्भ किया। वे करीब दो ही वाक्य बोले होंगे कि एक तरफ़ से आवाज़ आई, "जब आप शुद्ध अंग्रेज़ी नहीं बोल सकते तब आप अंग्रेजी में व्याख्यान व्यर्थ देते हैं। यह हिन्दी-साहित्य गोष्ठी है और इसलिए आप हिन्दी में व्याख्यान दे सकते हैं।"

सभा में गहरा सन्नाटा छा गया। जब लोगों ने, जिस ओर से आवाज़ आई थी, उस ओर देखा तो मालूम हुआ कि ठाकुर मलकान सिह ने वह बात कही थी; महज़ यह साबित करने के लिए कि वे अपने मित्र ठाकुर दिग्विजय सिंह से कहीं अधिक बदतमीज और कटु हो सकते हैं। ठाकुर मल-कान सिंह वकील थे। यद्यपि शक्ल-सूरत से वे किसान मालूम होते थे। बात ठाकुरसाहेब ने ठीक कही थी क्योंकि प्रोफेसर किशोर ग़लत अंगरेज़ी का

प्रयोग कर गए थे, लेकिन बात अनुचित थी, सब लोगों ने यह अनुभव किया क्योंकि अंग्रेज़ी मातृभाषा न होने के कारण बहुत थोड़े से हिन्दुस्तानी ऐसे मिलेंगे जो पूर्णतः शुद्ध अंग्रेजी भाषा का प्रयोग कर सकें।

प्रोफ़ेसर किशोर को यह अपमान अखर गया। वैसे तो हिन्दी के साहित्यकारों में इस तरह की बदतमीज़ी की बातचीत हो जाना बड़ी साधारण सी बात थी लेकिन उस दिन भरी सभा में बाहर से आए हुए अतिथियों के सामने यह अपमान हुआ था। उनका चेहरा क्रोध से लाल हो गया, उन्होंने अंग्रेजी में ही कहा, "यदि ठाकुर मलकान सिंह अंग्रेज़ी नहीं समझ सकते तो यह उनका ही नहीं, मेरा भी दुर्भाग्य है!..."

पर ठाकुर मलकान सिंह बीच में ही बोल उठे, "मैं आपको अंगरेज़ी पढ़ा सकता हूँ, मैं ही क्यों, आठवें दर्जे का लड़का भी आपको अंगरेज़ी पढ़ा सकता है!"

ठाकुर मलकान सिंह के इस वाक्य ने अग्नि में घृत का काम किया। प्रोफ़ेसर किशोर ने कड़े स्वर में कहा, "मैं ठाकुर मलकान सिंह को यह ध्यान दिलाना चाहता हूँ कि मेरे घर में ही अकारण मेरा अपमान कर रहे हैं, और मैं आशा करता हूँ कि वे यहाँ से चले जाएँगे।"

लेकिन मालूम होता था कि ठाकुर मलकान सिंह लड़ने के लिए तुले हुए थे, उन्होंने जवाब दिया, "लेकिन यह साहित्य गोष्ठी है जो चन्दे के रुपयों से हो रही है। मैं साहित्य गोष्ठी के सदस्य होने की हैसियत से यहाँ से उठने से क़तई इनकार करता हूँ।"

असहायावस्था में प्रोफेसर किशोर ने अपने चारों ओर देखा, सब लोग शान्त बैठे थे। राजेन्द्रकुमार ने उठकर उस समय उनकी इज़्ज़त बचाई। उन्होंने ठाकुर मलकान सिंह से कहा, "ठाकुर साहेब, मेरा ख़याल है कि आपने पहले-पहल भरी सभा में कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जो अनुचित थे। एक शरीफ़ आदमी की हैसियत से आपको उन शब्दों को वापस ले लेना चाहिए!"

ठाकुर मलकान सिंह ने कुछ तनकर कहा, "शरीफ़ तो मैंने न कभी अपने को समझा और न होने का दावा किया, लेकिन चूँकि आप मुझे शरीफ़ कहते हैं लिहाज़ा मैं अपने शब्द वापस लेता हूँ !"

प्रोफेसर किशोर ने अपना स्वागत वाला व्याख्यान नहीं दिया और चा आरम्भ हुई। जिस मेज़ पर उमानाथ और कामरेड मारीसन बैठे थे उसी पर श्री विश्वम्भर जी, श्री दीवाना जी, श्रीमती करुणा देवी, श्री प्राणनाथ जी और श्री देवीप्रसाद जी थे। करुणा देवी ने स्वयम् अपने हाथों इन सज्जनों के लिए चा तैयार की और श्री प्राणनाथ ने कहा, "यदि नित्य ही इस प्रकार आपके हाथ की बनाई चा पी सकता तो कितना सुन्दर होता !" और श्री प्राणनाथ ने गहरी साँस ली।

उमानाथ ने श्री देवीप्रसाद से जो उसकी बग़ल में ही बैठे थे, पूछा, "ये सज्जन तो किसी क़दर रसिक मालूम होते हैं !"

"रसिक क्या हैं ख़ाक़ ! इतनी उम्र हो गई लेकिन शादी नहीं हुई—या यों कहिये कि शादी नहीं की। शायद कभी किसी से प्रेम किया था, उसे अभी तक निभाते चले जा रहे हैं। लेकिन बीच-बीच में जब कभी स्त्री को देख लेते हैं तब इस प्रकार के वाक्यों में तथा इस प्रकार की ठंढी साँसों में संयम द्वारा कुचला पुरुष फूट पड़ता है।

उमानाथ मुसकराया, इस बार वह दीवाना जी की ओर घूमा, "मैंने आपकी बड़ी तारीफ़ सुनी है। आपकी कविताएँ भी इधर-उधर पढ़ीं लेकिन आपकी कविताएँ मेरी समझ में नहीं आईं। कारण पूछ सकता हूँ ?"

"आपने पहली बार साहित्य को देखा है—बस यही कारण है !" दीवाना जी ने बहुत शान्त भाव से उत्तर दिया।

श्री विश्वम्भर जी ने दीवाना जी की तरफ़ घूमकर कहा, "दीवाना जी, आपकी 'लोढ़ा' शीर्षक कविता बड़ी सुन्दर है; मुझे बड़ी अच्छी लगी।"

"आप उस कविता के अर्थ भी समझे ?" देवीप्रसाद ने विश्वम्भर जी से पूछा।

दीवाना जी ने देवीप्रसाद को इस प्रकार देखा मानो वे उन्हें खा जाएँगे, फिर उन्होंने धीरे से कहा, "तुम लौण्डे हो, अभी कुछ दिन पढ़ो, तब समझोगे !"

बात बदलते हुए देवीप्रसाद ने प्राणनाथ से कहा, "प्राणनाथ जी, आपने जो करुणा देवी की कविता के जवाब में जो कविता लिखी है उसकी इन दिनों यहाँ बड़ी चर्चा हो रही है। करुणा देवी ने उसपर एक टिप्पणी भी लिखी है !"

प्राणनाथ चौंक उठे, "क्या कहा ? कौन सी कविता और कैसी टिप्पणी ?"

अब करुणा देवी के बोलने की बारी थी, "प्राणनाथ जी ! यह बड़ी बेजा बात है कि लोग स्त्रियों की कविता पर अपनी कविताएँ जोड़ते हैं। शायद आप यह नहीं जानते कि इससे स्त्रियाँ कविता लिखने में, और अगर लिखने में नहीं तो प्रकाशित कराने में अवश्य निरुत्साहित होती हैं। आप अगर ध्यान से सोचें तो आप स्वयम् इस निर्णय पर पहुँचेंगे कि यह प्रवृत्ति किसी अंश में दूषित है !"

"मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैंने आपकी किसी कविता पर अपनी कविता नहीं जोड़ी। अगर कहीं कोई भाव-सामंजस्य आ गया है तो यह अन-जाने में हुआ है, और इसके लिए मैं क्षमा-प्रार्थी हूँ।"

उमानाथ आश्चर्य-चकित इन साहित्यिकों को देख रहा था और इनकी बातें सुन रहा था। उसने करुणा देवी से कहा, "लेकिन मेरी समझ में यह बात नहीं आई कि यदि एक अच्छा कवि किसी कवियित्री से प्रभावित होकर कोई कविता लिखे तो इसमें वह कवियित्री गौरवान्वित न होकर कुण्ठित क्यों होती है ?"

और छूटते ही करुणा देवी ने उत्तर दिया, "इसका उत्तरदायित्व हमारे समाज पर है। गुलामी के बंधनों में जकड़ी हुई स्त्री—उसके लिए यही बहुत है कि वह साहित्य-क्षेत्र में आने का साहस करे ! इसी में उसे समाज की कटु आलोचना बर्दाश्त करनी पड़ती है। और इस हालत में कि जब पुरुष लोग

उसकी कविताओं पर ऊट-पटाँग पंक्तियाँ जोड़ें, जब वे जनता को यह समझने को उत्साहित करें कि वे कवियित्री के पीछे दीवाने हो रहे हैं, तब कवियित्री किस लांछना की भागी बन सकती है—इसको आप समझ सकते हैं !"

"लेकिन कविता प्रेम पर ही क्यों लिखी जाय ? क्या हमारा जीवन महज़ प्रेम और शृंगार है ?" उमानाथ ने मानो अपने से कहा, और वह श्री विश्वम्भर की ओर मुड़ा, "जहाँ तक मैं समझता हूँ; हिन्दी कविता में प्रगति नहीं है। क्या आपने कभी इस बात पर ध्यान दिया है ?"

"मैं आपका मतलब नहीं समझा !" श्री विश्वम्भर ने पूछा।

"मेरा मतलब है कि हिन्दी-कविता हमारे जीवन को छू नहीं रही है। जो कुछ लिखा जा रहा है वह हमारे जीवन से बहुत दूर की चीज़ है, उसमें खोखलापन है, अपने को और दूसरों को धोखा देने की प्रवृत्ति है !"

"मैं आपसे सहमत हूँ।" श्री विश्वम्भर ने कुछ सोचकर कहा, "हम लोगों ने अभी तक जो कुछ लिखा है, वह शब्दों का खेल है, वह बुर्जुआ मेन्टेलिटी की चीज़ है !"

कामरेड उमानाथ तिवारी के कान खड़े हुए; अपने काम को उन्होंने इतना आसान न समझा था जितना वह साबित हो रहा था। हिन्दी का एक महाकवि इस दिशा में विचार कर रहा है, यह जानकर उन्हें प्रसन्नता हुई।

श्री विश्वम्भर ने फिर कहा, "हममें वास्तव में प्रगति का अभाव है, और हम समय से बहुत पिछड़े हुए हैं। हममें परिवर्तन की आवश्यकता है, हमें जीवन पर अपने दृष्टिकोण को बदलना चाहिए और इसलिए मैं तो इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि हमारे साहित्यकारों को मार्क्स का अध्ययन करना चाहिये। हमें जीवन की समस्याओं पर प्रकाश डालना चाहिये। इसमें मार्क्स हमारी कितनी अधिक सहायता कर सकता है, यह मैंने मार्क्स का अध्ययन करके जाना है।"

"आपने इस प्रकार की कविताएँ लिखी हैं ?" उमानाथ ने पूछा।

"इधर जितनी कविताएँ मैंने लिखी हैं, वे सब ऐसी ही हैं !"

इसी समय प्रोफ़ेसर किशोर ने घोषित किया, "देवियो और सज्जनो! चा समाप्त हो गई! अब कविता-पाठ आरम्भ होगा!"

दूसरे दिन सुबह के समय ही रामेश्वर प्रसाद प्रोफ़ेसर राजेन्द्रकुमार के यहाँ हाज़िर हो गया। उस समय राजेन्द्रकुमार उमानाथ और कामरेड मारीसन के साथ बैठा चा पी रहा था।

"लो, रामेश्वर प्रसाद अच्छे आ गए! यह आप लोगों को यहाँ के साहित्यिकों से मिला देंगे।" रामेश्वर को देखते ही राजेन्द्र कुमार ने कहा, "देखो मिस्टर रामेश्वर, मिस्टर तिवारी का कुछ थोड़ा-सा काम कर दो!"

"मैं जी-जान से हाज़िर हूँ! कहिये, किन-किन साहित्यिकों से आप मिलना चाहते हैं?"

"यही श्री विश्वम्भर, श्री दीवाना, प्रोफ़ेसर किशोर वगैरह वगैरह!"

"ओह—इन लोगों से! आपने हिन्दी के चोटी वाले साहित्यिकों को चुना है!" रामेश्वर प्रसाद ने मुसकराते हुए कहा, "लेकिन यह ज़माना चोटी कटवा देने का है। मिस्टर तिवारी—ये सब बड़े माने जाने वाले कवि हैं, यद्यपि इन लोगों में बड़ा एक भी नहीं है। कहिये, इन लोगों से क्या काम है?"

"बात यह है मिस्टर रामेश्वर प्रसाद—मैं देख रहा हूँ कि हिन्दी साहित्य बहुत पिछड़ा हुआ है, वह समय के साथ नहीं है। हमें अपने साहित्य में प्रगति की आवश्यकता है; पर जो कुछ मैंने देखा-सुना, उससे मैं इस नतीज़े पर पहुँचा कि आज कल जो कुछ लिखा जा रहा है वह प्रतिक्रियात्मक है। मैं इन साहित्यिकों से इस सम्बन्ध में परामर्श करना चाहता हूँ!"

रामेश्वर हँस पड़ा, "इनमें से एक भी आदमी परामर्श के क़ाबिल नहीं—इन लोगों से बात करना बेकार होगा। ये सब के सब घमण्डी, बदतमीज़ और बेवक़ूफ़ हैं; ये लोग तथ्य की बात सुनने को तैयार नहीं। आपको चाहिये कि आप नवयुवकों से बात करें। उन्हें संगठित करने की कोशिश करें, वे युग की पुकार को सुन सकते हैं, युग की माँग दे सकते हैं।"

"बहरहाल अगर एक दफे इन लोगों के साथ कोशिश कर ली जाय तो बेजा न होगा !" उमानाथ ने कहा, "और मिस्टर रामेश्वर, हमें एक बात और ध्यान में रखनी पड़ेगी। हिन्दी-साहित्य का क्षेत्र अभी इन्हीं लोगों के हाथ में है, ऐसी हालत में इन्हीं लोगों पर हमें पहले असर डालना चाहिए !"

राजेन्द्रकुमार के यूनीवर्सिटी जाने के बाद उमानाथ रामेश्वर प्रसाद के साथ निकल पड़ा। कामरेड मारीसन घर पर ही रहे।

ताँगा श्री विश्वम्भर के घर के दरवाज़े रुका। ताँगे से उतर कर रामेश्वर-प्रसाद ने श्री विश्वम्भर को इत्तिला करवाई। नौकर ने ड्राइंग-रूम खोल कर अतिथियों को बिठलाया। उमानाथ ने एक बार ड्राइंग-रूम को ग़ौर से देखा; काफ़ी सुरुचि के साथ सजा था। दीवारों पर अनगिनती चित्र लगे थे, एक से एक कलात्मक।

थोड़ी देर में श्री विश्वम्भर ने कमरे में प्रवेश किया। उस समय वे एक रेशमी किमोनो पहने हुए थे। उनके लम्बे बाल उनके कंधे पर झूल रहे थे, मुख पर एक हलकी-मधुर मुसकान थी। उनके पीछे-पीछे उनके परम-भक्त और शिष्य श्री रमेन्द्र थे।

"नमस्कार मिस्टर तिवारी !" श्री विश्वम्भर ने मीठे स्वर में कहा, "हम लोग अभी अभी चा पी कर उठे हैं। कहिए तो आप लोगों के लिए चा बनवाऊँ !"

"नहीं—हम लोग चा पी कर आ रहे हैं।" उमानाथ ने कहा।

कुछ देर श्री विश्वम्भर उमानाथ से उसके जर्मनी के अनुभव सुनते रहे, फिर उन्होंने पूछा, "आज के हिन्दुस्तान के बारे में आपकी क्या राय है ?"

"हिन्दुस्तान संसार की गतिविधि से बहुत पिछड़ा हुआ है, और मैं समझता हूँ कि इस सब का उत्तरदायित्व आप लोगों पर—यानी हिन्दी के साहित्यकारों पर है !"

"आप शायद ठीक कहते हैं ! पर इस सब का उपाय क्या है ?" श्री विश्वम्भर ने पूछा।

"इसी सम्बन्ध में मैं आपसे बातें करने आया हूँ !" उमानाथ ने कहा,

"देखिये किसी भी देश का विकास उस देश के साहित्य पर निर्भर है; और ऐसी हालत में साहित्यिकों का एक संगठन होना चाहिए। आज दुनिया के हर देश में, समय और युग की माँग को ध्यान में रख कर, प्रगति की आवाज़ उठ रही है, और प्रगति-शील लेखकों के संघ क़ायम हो रहे हैं। मैं समझता हूँ कि हिन्दी में भी प्रगतिशील लेखक संघ क़ायम होना चाहिये!"

"मैं आपसे सहमत हूँ!" श्री विश्वम्भर ने कहा, "पर सवाल यह है कि प्रगतिशील संघ का उद्देश्य क्या होगा?"

"दुनिया के एक मात्र सत्य मार्क्स-वाद का प्रचार! यह निहायत ज़रूरी है कि मार्क्स और लेनिन का सन्देश हिन्दुस्तान के प्रत्येक घर में पहुँचाया जाय, और यह सन्देश हमारे देश के साहित्यिक ही पहुँचा सकते हैं। क्यों रमेन्द्र जी, आपका क्या ख़याल है?"

रमेन्द्र जी ने उसी साल एम० ए० पास किया था, लेकिन पालिटिक्स पढ़ने का उन्हें कभी मौक़ा न मिला था क्योंकि कवि होने के नाते उन्हें राजनीति में कोई रुचि न थी। और नवयुवक होने के कारण वे प्रेम के सौन्दर्य में पूर्ण-रूप से डूबे हुए थे। पर दस-पाँच रोज से उनमें और उनके गुरुदेव श्री विश्वम्भर जी में समाजवाद पर बातें ज़रूर चल रही थीं और इन बातों के सिलसिले में कार्ल मार्क्स का भी ज़िक्र हुआ था जिन्हें श्री विश्वम्भर ने कुछ दिन पहले ही अपने गुरु की तरह अपनाया था। लिहाज़ा अपने गुरु के सम्बन्ध में अपना अज्ञान या यों कहा जाय कि अपना अल्पज्ञान प्रकट करना उन्होंने उचित न समझा। बड़े तपाक के साथ उन्होंने कहा, "इसमें क्या शक है! मार्क्स ही हमारे देश और समाज का उद्धार कर सकता है!"

इसी समय दो सज्जनों ने कमरे में प्रवेश किया, एक थे पण्डित परमसुख चौबे और दूसरे श्रीयुत कृष्ण चन्द्र। श्री कृष्णचन्द्र हिन्दी के मशहूर आलोचक, उपन्यासकार तथा कवि थे, और उनमें आत्मविश्वास यथेष्ट मात्रा में मौजूद था। ये दोनों श्री विश्वम्भर को भक्ति के साथ नमस्कार करके एक ओर बैठ गए।

उमानाथ ने कहा, "और इसीलिए मैं चाहता हूँ कि हमें अपने साहित्यिकों में संगठन करना चाहिये। ये लोग बुरी तरह से ग़लत मार्ग पर भटक रहे हैं, ये हमारे देश और समाज के पथ प्रदर्शक बन कर देश और समाज को रसातल की ओर लिये जा रहे हैं!"

"क्या बात है?" परमसुख ने पूछा।

उमानाथ ने परमसुख की ओर ध्यान नहीं दिया, वह कहता ही गया, "हम जिस साहित्य का सृजन कर रहे हैं वह प्रतिक्रियावादी है उसमें गति नहीं, उसमें शक्ति नहीं। हम कुरूप, सड़े, बदबूदार मुर्दे बना पा रहे हैं जबकि हम स्रष्टा होने का दम भरते हैं। असीम और अनन्त! सुन्दर शब्दजाल के अन्दर अर्थरहित कल्पना! यह सोने के प्याले में घोली हुई उस अफ़ीम की तरह है जो हमें कल्पना के क्षणिक स्वर्ग में पहुंचा कर हमें वास्तविक कुरूपता के प्रति अंधा बना देती है। पर जीवन तो कल्पना नहीं है—वह वास्तविकता है!"

श्रीयुत कृष्णचन्द्र आँखें बन्द किये हुये ध्यान से उमानाथ की बातें सुन रहे थे। उन्होंने अपनी आँखें खोलीं और फिर उन्होंने कहा, "जीवन स्वयम् एक प्रकार की कल्पना है, मैं तो ऐसा समझता हूँ; हमारे सुख-दुख स्वयम् काल्पनिक हैं। सुख-दुख के हमारे समस्त अनुभव जीवन के प्रति हमारे एटीच्यूड (रुख) पर अवलम्बित रहते हैं। फटे चिथड़े पहने हुए और रूखा-सूखा खा कर जीवित रहने वाला भिखारी जो भगवत-भजन में लीन है, उस करोड़पती से अधिक सुखी है जिसके अन्दर रुपयों की हाय घुस गई है। और इसलिए मेरी समझ में यह कहना कि हम जो कुछ लिख रहे हैं वह प्रतिक्रियावादी है, सरासर ग़लत है।"

उमानाथ कृष्णचन्द्र की ओर घूमा, "तो क्या आप समझते हैं कि भूखे रह कर भगवत-भजन करने में मानवता का कल्याण है?"

कृष्णचन्द्र ने उत्तर दिया, "मेरा मतलब यह है कि भगवत-भजन में मानवता का कल्याण है, भूखे रहना अथवा भर पेट भोजन करना, मुझे इससे कोई प्रयोजन नहीं।"

"क्योंकि आपका पेट भरा हुआ है !" मुसकराते हुए श्री विश्वम्भर ने कहा।

"पेट तो हम लोगों में सबका भरा है; मैं तो यहाँ पर किसी आदमी को भूखा नहीं देखता—यहाँ जितने आदमी बैठे हैं सभी अच्छा खाने वाले हैं, अच्छा पहनने वाले हैं। फिर हम लोगों को भूख की दुहाई देना शोभा नहीं देता !"

परमसुख ने कृष्णचन्द्र की बात काटी, "मुझे छोड़कर ! मुझे तो कभी-कभी खाने तक को नहीं मिलता। कल रात रसगुल्ला खाने की इच्छा हुई थी लेकिन पास में पैसा नहीं था और दूकान वाले ने उधार देने से इनकार कर दिया।"

"लेकिन रसगुल्ला खाने में और पेट भरने में अन्तर है !" कृष्णचन्द्र ने कहा।

"बिलकुल नहीं !" परमसुख ने ज़रा गरम होकर कहा, "दुनिया मौज करती है और मैं दुनिया को मौज करते देखकर कुढ़ता हूँ। यह विषमता क्यों ? उन बेवकूफ़, उजड्ड, बदमाश लखपतियों को क्या अधिकार है कि वे मौज करें, गुलछर्रे उड़ावें, और मैं ज़रा-ज़रा सी चीज़ के लिए तरसूँ।"

और कृष्णचन्द्र ने हँसते हुए उत्तर दिया, "आप ज़रूर रसगुल्ला खाइये परमसुख जी; और अगर नहीं मिलता तो साम्यवाद की कविताएँ लिखिये, मज़दूरों का गाना बनाइये।"

"क्या कहा, साम्यवाद की कविता—मज़दूरों का गाना ! ना भाई—इतनी कुरूप चीज़ मैं न लिख सकूँगा। मैं तो सौन्दर्य का उपासक हूँ, सौन्दर्य ही सकल विश्व का एक-मात्र सत्य है।"

उमानाथ ने एक बार परमसुख को ग़ौर से देखा—एक भयानक कुरूपता उसके सामने बैठी हुई थी। परमसुख के पिचके गाल जिन पर झुर्रियाँ पड़नी आरम्भ हो गई थीं, उसका नाटा शरीर जिसमें हाड़-मांस ही नज़र आता था, उसकी गढ़े में धँसी हुई आँखें जिनसे कीचड़ निकल रहा था और जो

चश्मे से ढकी थीं, उसके लम्बे-लम्बे केश जो तेल से तर थे और चमक रहे थे तथा जो परमसुख की शारीरिक कुरूपता को दयनीय न बना कर हास्यास्पद बना रहे थे। और इस शारीरिक कुरूपता के नीचे उमानाथ ने एक और वीभत्स कुरूपता देखी जो परमसुख के प्रति घृणा और तिरस्कार का भाव जाग्रत कर रही थी—और यह थी परमसुख की आत्मिक कुरूपता जो उसके मुख को एक अजीब तरह से विकृत बनाए हुए थी।

उमानाथ ने कृष्णचन्द्र से कहा, "परमसुख ने जो कुछ कहा आप उसकी अवहेलना नहीं कर सकते। यह विषमता क्यों? अनादिकाल से आप लोग भगवतभजन करते आए हैं और भूखों मरते आए हैं; और यह भूखों मरना भी इस हालत में कि इतना अन्न इस दुनिया में पैदा होता है कि दुनिया के सब आदमियों का पेट भर जाय। नहीं कृष्णचन्द्र जी, हमें देखना पड़ेगा कि कला की कसौटी क्या है!"

"कला की कसौटी सौन्दर्य है; जो सुन्दर है वही कला है!"

"और सुन्दरता की कसौटी?" उमानाथ ने फिर पूछा।

"जो हमें प्रसन्न कर सके!" उत्तर रमेन्द्र ने दिया।

"ठीक! आप भी शायद इसको मानते होंगे मिस्टर कृष्णचन्द्र! अब आती है हमारी प्रसन्नता की बात! शराब का नशा हमें प्रसन्न करता है, लेकिन उसकी प्रतिक्रिया बहुत अधिक भयानक होती है। ऐसी हालत में शराब के नशे को तो सुन्दर न कहेंगे!"

"नहीं!" कृष्णचन्द्र ने कहा।

"इसके माने यह हैं कि जो अहित करने वाली चीज़ है वह थोड़ी देर के लिये सुखी बनाने पर भी वास्तव में असुन्दर है क्योंकि वह अकल्याणकारी है। सुन्दर वही हो सकता है जो कल्याणकारी है!"

श्री विश्वम्भर हँस पड़े, "आप बड़े अच्छे तार्किक हैं मिस्टर उमानाथ; मैं आपकी बात से पूरी तौर से सहमत हूँ, और मैं समझता हूँ कि प्रगतिशील लेखक संघ क़ायम होना चाहिये। क्यों रमेन्द्र!

"तुम साहित्यिकों की एक मीटिंग बुला लो !"

"अच्छी बात है !"

५

रानी शशिप्रभा साहित्याकाश में एक नवीन ग्रह की तरह एक दिन अचानक ही उदय हो गई थीं। वे विधवा थीं, और अपना वैधव्यकाल त्रिवेणी-तट पर व्यतीत करने के लिए आई थीं। उस त्रिवेणी-तट पर उन्होंने यह तै किया था कि सब साधनाओं से उच्च साधना साहित्य की है।

और उस दिन से शशिप्रभा-धाम हिन्दी के साहित्यकारों का एक प्रकार से तीर्थ बन गया था।

रानी शशिप्रभा की उम्र करीब चालीस वर्ष की थी, यद्यपि दिखती वे करीब तीस वर्ष की थीं। गोरी और ख़ूबसूरत-सी स्त्री, उनकी बात-चीत में एक प्रकार की मिठास थी, और उनकी आँखों में एक प्रकार की मोहिनी। रानी शशिप्रभा की कविताओं की उन दिनों साहित्य में धूम थी और उनके भक्त-गणों की संख्या तेज़ी के साथ बढ़ रही थी। रोज़ शाम को शशिप्रभा-धाम में रानी शशिप्रभा का दरबार लगता था और दरबारी होते थे ये साहित्यिक भक्त गण। इस दरबार की सफलता का एक और कारण था, दरबार में जलपान आदि का भी अच्छा-खासा प्रबन्ध रहता था।

रानी शशिप्रभा ने अपनी परिचारिका श्यामादेवी से कहा, "आज बारह-बारह तश्तरियाँ होनी चाहिएँ !"

उसी समय कमरे की घंटी बजी।

रानी शशिप्रभा ड्राइंग-रूम में आ गई। वहाँ परमसुख, कृष्णचन्द्र और यमुनाशंकर मौजूद थे। नमस्कार इत्यादि के बाद सब लोग बैठ गए। फिर यमुनाशंकर ने कहा, "रानी साहेब ! सौरभ कहाँ है ?"

यमुनाशंकर प्रयाग विश्वविद्यालय के विद्यार्थी थे और एम० ए० में पढ़ते

थे। उन्होंने अभी हाल में ही कविताएँ लिखनी आरम्भ की थीं और वे प्रकाश में आने का प्रयत्न कर रहे थे। वे किसी रईस के कृपा-पात्र थे और इसलिए उन्हें कार इत्यादि की सुविधाएँ प्राप्त थीं।

रानी शशिप्रभा ने कहा, "वह बड़ा तंग करता है, इसलिए उसे कमरे में बन्द करवा दिया है!"

"उसे यहाँ बुलवा दीजिये, मैं उसे खेलाऊँगा!" यमुनाशंकर ने गिड़गिड़ाते हुए कहा।

सौरभ रानी शशिप्रभा के कुत्ते का नाम था। रानी शशिप्रभा ने श्यामा देवी को हुक्म दिया कि सौरभ को कमरे में भेज दिया जाय।

इधर श्यामा देवी रानी साहेब का हुक्म पूरा करने अन्दर गईं और उधर श्री दीवानाजी तथा श्री देवीप्रसाद ड्राइंग-रूम में दाखिल हुए। आज दीवाना जी अधिक सभ्य दिख रहे थे क्योंकि तहमत के स्थान पर धुली हुई धोती पहने थे और रेशमी चादर कंधे पर थी। श्री देवीप्रसाद भी शायद अपना एकमात्र अच्छा सूट पहनकर आए थे। रानी शशिप्रभा ने उठकर इन दोनों साहित्यिक महारथियों का स्वागत किया।

दोनों सज्जन बैठ गए। इसी समय सौरभ दौड़ता हुआ आया और देवीप्रसादजी की गोद में चढ़ गया। सौरभ की इस हरकत से देवीप्रसाद का ज़र्क-वर्क रेशमी सूट जो उन्होंने उसी दिन बारह आने पैसे देकर धुलवाया था मैला हो गया। एक बार उनकी इच्छा हुई कि कुत्ते को उठाकर वे ज़मीन पर पटक दें, लेकिन यह खयाल करके कि वह रानी साहेब का लाड़ला कुत्ता है, खून का घूट पीकर रह गए।

लेकिन सौरभ को सूझा था खिलवाड़। अब वह कूदा दीवाना जी पर। उसी समय यमुनाशंकर ने आवाज़ लगाई "सौरभ—सौरभ!"

और इस आवाज़ पर सौरभ दीवाना जी की रेशमी चादर मुँह में दबाकर ज़ोर के साथ उछला। सौरभ की इस हरकत से चादर फट गई।

यह रेशमी चादर दीवाना जी की नहीं थी, अपने एक मित्र से उस दिन

के लिए माँगकर ओढ़ आए थे। चादर के फटने के साथ ही उन्होंने डाँटकर यमुनाशंकर से कहा, "तुम बड़े बदतमीज़ आदमी हो, मेरी चादर कुत्ते से फड़वा डाली। अगर तुम्हें कुत्ता खेलाना हो तो एक अपने घर में पाल लो, और अगर तुम्हें रानी साहेब का ही कुत्ता खेलाना हो तो तब खेलाया करो जब हम लोग यहाँ न हों!"

रानी शशिप्रभा एक अजीब संकट में पड़ गईं। श्यामादेवी को बुलाकर उन्होंने कहा, "सौरभ को यहाँ से ले जाओ, और भविष्य में जब सब लोग यहाँ हों, इसे कभी मत खोलना।"

श्री यमुनाशंकर दीवानाजी के रोब में आकर सुन्न से रह गए थे। लेकिन रानी शशिप्रभा का यह मर्माहत स्वर सुनकर उनकी चेतना जाग्रत हुई और उनका पौरुष कुछ उत्तेजित हुआ; उन्होंने कहा, "आप अपने चदरे के दाम मुझसे ले सकते हैं!"

दीवाना जी के लिए यह बहुत कड़ी बात कह दी गई थी। उन्होंने तड़पकर उत्तर दिया, "आप क्या इस चादरे के दाम देंगे। रईसों के कृपा-पात्र बन कर रहने में और भिक्षावृत्ति में कोई अन्तर नहीं। पैसे का गर्व वह करे जिसका निजी पैसा हो!"

रानी शशिप्रभा ने देखा कि मामला बहुत बढ़ रहा है। बड़े करुण स्वर में उन्होंने कहा, "आप लोग शान्त हों; क़सूर मेरा था, मैं माफ़ी माँगे लेती हूँ!"

ठीक उसी समय रामेश्वर के साथ उमानाथ तिवारी ने रानी शशिप्रभा के ड्राइंग-रूम में प्रवेश किया।

रानी शशिप्रभा की जान में जान आई, उठ कर उन्होंने अतिथियों का स्वागत किया।

रामेश्वर प्रसाद ने रानी शशिप्रभा से उमानाथ तिवारी का परिचय कराया, "कुँवर उमानाथ तिवारी—बानापुर के ताल्लुक़दार राजा रामनाथ तिवारी के सुपुत्र और रानी शशिप्रभा देवी!"

"आप का स्वागत है !" रानी शशिप्रभा ने मुसकराते हुए कहा, "आपके पिता के सम्बन्ध में मैंने बहुत कुछ सुना है—आज आपके भी दर्शन हो गए !"

उमानाथ ने बैठते हुए उत्तर दिया, "और मैंने भी इलाहाबाद आकर आपके सम्बन्ध में बहुत कुछ सुना और आज जब रामेश्वर ने मुझसे यहाँ आने का प्रस्ताव किया तो मैं अपना लोभ न संवरण कर सका।" इसके बाद उसने अन्य सज्जनों पर नजर डालते हुए कहा, "देखता हूँ इस प्रयाग नाम के तीर्थ के अन्तर्गत साहित्यिकों का एक और तीर्थ है ! यहाँ के सभी साहित्यिक आपके यहाँ जमा होते हैं।"

"यह मेरा सौभाग्य है कि यहाँ के साहित्यिक लोग मेरे ऊपर कृपा कर दिया करते हैं !" यह कह कर रानी शशिप्रभा ने श्यामा देवी को बुला कर चा और जलपान लाने का हुक्म दिया।

चा शुरू हुई। मिठाई, नमकीन, फलों की बारह-बारह तश्तरियाँ हर एक मेहमान के सामने आईं। उमानाथ ने आश्चर्य से रानी शशिप्रभा को देखा; उनके मुख पर एक गर्व भरा उल्लास था—उनकी आँखों में चमक थी, वे वास्तव में सुन्दर दिख रही थीं।

दीवानाजी ने कहा, "आप वास्तव में अन्नपूर्णा हैं, करुणामयी हैं।"

परमसुख ने दीवाना जी की बात पर अपनी बात जोड़ी, "आपकी बदौलत मुझे कभी-कभी अच्छा खाने को नसीब हो जाता है !"

देवीप्रसाद के क्रोध ने शान्त हो कर व्यंग का रूप धारण कर लिया था, "रानी साहेब ! आपकी इस चा और जलपान की खातिरदारी से लोग बुरी तरह से परच गए हैं।"

देवीप्रसाद के इस मज़ाक़ का कुछ लोगों ने बुरा माना लेकिन रानी शशिप्रभा ने बीच में ही कहा, "तो इसमें हर्ज ही क्या है ! मेरे पास जो कुछ है वह आप लोगों की सेवा में है। आप लोगों के खाने-पीने से मुझे कितना संतोष होता है, कितनी प्रसन्नता होती है, यह मैं कह नहीं सकती।"

उमानाथ गौर से यह बात-चीत सुन रहा था। उसने मौक़ा अच्छा देखा और वह बोल उठा, "मैं आपकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता, रानी साहेब! आप साक्षात वह बात कर रही हैं जो मानवता का चरम ध्येय है। हम लोग केवल साम्यवाद-साम्यवाद पुकारा करते हैं।"

पर मालूम होता है कि देवीप्रसाद जी पूरी तौर से अपने व्यंगात्मक मूड में आ गए थे, उन्होंने कहा, "मैं तो इसे साम्यवाद के अन्तर्गत ज़रा भी नहीं समझता क्योंकि मेरी राय में यहाँ रुपए का अपव्यय हो रहा है। हमारी श्रेणी वाले लोगों को, जिनमें अधिकांश की मृत्यु तर माल खाने और ज़्यादा खाने के कारण होती है, इतना खिला-खिला कर आप उनका हित नहीं बल्कि अहित कर रही हैं। और साथ ही इस रुपए का, जिसकी ज़रूरत बहुत से लोगों को रूखा-सूखा खा कर पेट भर कर मृत्यु से बचने के लिए है, अपव्यय करके आप उन भूखों मरने वालों का अहित कर रही हैं।"

"देवीप्रसाद जी—यहाँ सभी अमीर नहीं हैं!" परमसुख ने कहा।

"हाँ, मैं मानता हूँ, और यह उससे भी बड़ा दुर्भाग्य है। आप अपने को कहेंगे, और परमसुख जी, मैं देखता रहा हूँ कि आपने बारह तश्तरियों की जगह चौबीस तश्तरियाँ साफ़ की हैं। आप ऐसे छोटे से दुबले आदमी का इतना अधिक खा लेना मुझे आश्चर्य में डाल देता है, क्योंकि मेरा पेट तो एक हिस्से से ही भर गया। मैं समझता हूँ कि आप असक्त करते हैं, इसी वजह से आपकी तन्दुरुस्ती इतनी ख़राब है। और साथ में आपकी आदत भी बिगड़ती है क्योंकि मिठाई न मिलने पर आप अमीरों को गालियाँ बकने लगते हैं।"

कृष्णचन्द्र ने महज़ इसलिए कि परमसुख उनके साथ आए थे, कहा, "क्या यह नितान्त आवश्यक है कि आप इतनी कटु बात कहें ही?"

"जी हाँ। बिना तेज़ी से कहे हुए बात में असर ही नहीं पैदा होता। फिर सत्य तो कटु हुआ ही करता है!"

"लेकिन सत्य कहने का अवसर भी हुआ करता है!" दीवानजी ने कहा।

"इससे अच्छा अवसर कब मिलेगा ? यहाँ खाने वाले और खिलाने वाले सभी मौजूद हैं !"

उमानाथ ने देखा कि अजीब तरह के लोगों का वह जमाव है, सब के सब अपने-अपने ढंग के अजीब-ग़रीब प्राणी, सब अपनी-अपनी कहने को उत्सुक और दूसरे की सुनने को कोई तैयार नहीं। उसने इस बार बात बदलने की कोशिश की, "मिस्टर देवीप्रसाद ! आप तो साहित्यिक हैं। जो बात आपने कही वह आपने कहीं लिखी भी है ?"

देवीप्रसाद सिटपिटाए, "जी...लिखी तो नहीं; यह चीज़ लिखी भी जानी चाहिए इस पर कभी ध्यान नहीं दिया !"

"यह क्यों ?" उमानाथ ने फिर पूछा, "यदि आपने जो कुछ कहा, उसे वास्तव में आप महसूस करते हैं तो आपका उस पर न लिखना, अपने अन्दर —वाली बात को जनता के सामने न पहुँचाना, अपने प्रति और अपनी कला के प्रति अपराध करना है। और यदि आप उसे नहीं महसूस करते तो इस स्थान पर उस बात को उठाना संस्कृति का अभाव प्रदर्शित करता है !"

उमानाथ ने काफ़ी बड़ी बात कह दी थी, और इस बात को सुन कर देवी प्रसाद का मुँह तमतमा उठा। वे उस बात का कोई उचित उत्तर ढूँढ ही रहे थे कि रानी शशिप्रभा बोल उठीं, "कुँवर साहेब ! क्या यह आवश्यक है कि जो कुछ महसूस किया जाय वह लिखा भी जाय ? ऐसी हालत में तो साहित्य कुरूपता का भाण्डार बन जायगा क्योंकि दुनिया में कुरूपता बहुत अधिक है—वह हर समय हमारे सामने रहती है।"

"हाँ, मैं तो ऐसा ही समझता हूँ। हमें जीवन की, समाज की, मनुष्य की कुरूपता को प्रदर्शित करके लोगों का उस ओर ध्यान आकर्षित करना चाहिए ताकि लोग उस कुरूपता को दूर करने का प्रयत्न करें।" उमानाथ ने कहा।

"लेकिन मैं आपसे असहमत हूँ !" रानी शशिप्रभा बोल उठीं, "कला को मैं सृजन समझती हूँ और कलाकार को सौन्दर्य का सृजन करना चाहिये। दुनिया कुरूपता से पीड़ित है, उसकी दुरवस्था उसके सामने है—नग्न और

उमानाथ गौर से यह बात-चीत सुन रहा था। उसने मौक़ा अच्छा देखा और वह बोल उठा, "मैं आपकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता, रानी साहेब! आप साक्षात वह बात कर रही हैं जो मानवता का चरम ध्येय है। हम लोग केवल साम्यवाद-साम्यवाद पुकारा करते हैं।"

पर मालूम होता है कि देवीप्रसाद जी पूरी तौर से अपने व्यंगात्मक मूड में आ गए थे, उन्होंने कहा, "मैं तो इसे साम्यवाद के अन्तर्गत ज़रा भी नहीं समझता क्योंकि मेरी राय में यहाँ रुपए का अपव्यय हो रहा है। हमारी श्रेणी वाले लोगों को, जिनमें अधिकांश की मृत्यु तर माल खाने और ज्यादा खाने के कारण होती है, इतना खिला-खिला कर आप उनका हित नहीं बल्कि अहित कर रही हैं। और साथ ही इस रुपए का, जिसकी ज़रूरत बहुत से लोगों को रूखा-सूखा खा कर पेट भर कर मृत्यु से बचने के लिए है, अपव्यय करके आप उन भूखों मरने वालों का अहित कर रही हैं।"

"देवीप्रसाद जी—यहाँ सभी अमीर नहीं हैं!" परमसुख ने कहा।

"हाँ, मैं मानता हूँ, और यह उससे भी बड़ा दुर्भाग्य है। आप अपने को कहेंगे, और परमसुख जी, मैं देखता रहा हूँ कि आपने बारह तश्तरियों की जगह चौबीस तश्तरियाँ साफ़ की हैं। आप ऐसे छोटे से दुबले आदमी का इतना अधिक खा लेना मुझे आश्चर्य में डाल देता है, क्योंकि मेरा पेट तो एक हिस्से से ही भर गया। मैं समझता हूँ कि आप असत्त करते हैं, इसी वजह से आपकी तन्दुरुस्ती इतनी खराब है। और साथ में आपकी आदत भी बिगड़ती है क्योंकि मिठाई न मिलने पर आप अमीरों को गालियाँ बकने लगते हैं।"

कृष्णचन्द्र ने महज़ इसलिए कि परमसुख उनके साथ आए थे, कहा, "क्या यह नितान्त आवश्यक है कि आप इतनी कटु बात कहें ही?"

"जी हाँ। बिना तेज़ी से कहे हुए बात में असर ही नहीं पैदा होता। फिर सत्य तो कटु हुआ ही करता है!"

"लेकिन सत्य कहने का अवसर भी हुआ करता है!" दीवानाजी ने कहा।

पड़ा। रानी शशिप्रभा के दूसरे दिन के लिए सार्वजनिक निमन्त्रण के साथ ानका दरबार खत्म हुआ।

६

श्री विश्वम्भर ने अपने वचनों का पालन किया, हिन्दी के साहित्यिकों की एक बैठक उन्होंने अपने यहाँ बुलाई। पर उस बैठक में बहुत थोड़े से चुने हुए आदमी ही बुलाए गए थे। आने वालों में श्री दीवाना जी, श्रीमती करुणा देवी, श्रीमती मृणालिनी देवी, श्रीयुत प्राणनाथ, श्री देवीप्रसाद, श्री रघुवंश लाल, श्री श्याम सलोने जी और प्रोफ़ेसर किशोर थे। जिस समय उमानाथ ने लक्ष्मणनारायण के कमरे में प्रवेश किया, श्री श्याम सलोने और श्री रघुवंशलाल में रहस्यवाद पर बात हो रही थी और बाकी सब लोग बड़ी तन्मयता के साथ उस बात-चीत को सुन रहे थे। श्री रघुवंशलाल गोरे-से और खूबसूरत से आदमी थे, सभ्य और सुसंस्कृत। वे एक त्रैमासिक पत्रिका के संपादक थे और साहित्य से उन्हें अच्छी-खासी दिलचस्पी थी। साहित्य के अलावा उन्हें अन्य जितनी ललित-कलाएँ हैं उन सबों से प्रेम था, और इन कलाओं की समालोचना करने के कारण उन्हें प्राचीन हिन्दू-कलाओं की कुछ जानकारी हासिल हो गई थी। साथ ही प्राचीन हिन्दू कलाओं को आधुनिकता का रूपक देने वालों में कुछ न कुछ रहस्यवाद की जानकारी भी आवश्यक होती ही है। लिहाज़ा श्री रघुवंशलाल रहस्यवाद पर काफ़ी अधिक और काफ़ी देर तक बात कर सकते थे। रहस्यवाद के अलावा दुनिया के जितने भी वाद हैं उनमें भी उन्हें कुछ न कुछ दखल था।

श्री श्याम सलोने रहस्यवादी क्यों और कैसे बने, इस विषय पर लोगों में काफी अफ़वाहें फैली थीं, और चूँकि वे अफ़वाहें भर थीं इसलिए उनपर यहाँ लिखा जाना अनुचित होगा। लेकिन फिर भी उनके सम्बन्ध में वे सब बातें बतलाई जा सकती हैं जिनका सबूत लोगों के पास था। श्री श्याम सलोने हाईकोर्ट में वकील थे और उनके कथनानुसार उनका विवाह अभी तक न

वीभत्स ! दुनिया उसे स्वयम् देखती है; सुधारक का काम है कि वह लोगों को उकसावे, उन्हें नेक बनने को प्रेरित करे ! साहित्य का यह काम नहीं है कि वह कुरूपता के दलदल में अपने को फँसाकर दुनिया को उस दलदल में घसीटे। साहित्य का काम है मनुष्य को अपने ऊपर वाले असीम-सौन्दर्य की ओर अग्रसर करना; यह याद रखिये कि इस वास्तविक कुरूप दुनिया से परे कल्पना-मय सौन्दर्य की एक दूसरी दुनिया है जिसकी ओर पीड़ित मानव-समाज को ले जाना ही साहित्य का कर्तव्य है।"

श्री यमुनाशंकर से न रहा गया, वे बोल उठे, "धन्य हैं रानी साहेब! अपने जीवन के परम सत्य को कितनी सुन्दरता के साथ हम लोगों के सामने पेश किया!"

और परमसुख चौबे ने खींसें निपोरते हुए कहा, "सुन्दरता की देवी के मन्दिर में हम सुन्दरता के पुजारियों को इसी प्रकार की सुन्दरता मिलती रहे—मैं भगवान से प्रार्थना करता हूँ!"

इस बात पर दीवानाजी ज़ोर से हँस पड़े। अपने हाथ के मसल्स को फुलाकर उनकी ओर ग़ौर से देखते हुए उन्होंने कहा, "दुनिया का सारा सौन्दर्य एक स्वस्थ शरीर में है!"

उमानाथ ने पहले तो दोनों भक्तगणों को ग़ौर से देखा और फिर वह दीवाना जी की ओर देखकर मुसकराया। लेकिन उमानाथ का मुसकरान दीवाना जी को अखर गया, "आप मेरी ओर इस प्रकार देखकर मुसकरा क्यं रहे हैं? आप मेरी बात समझे ही नहीं। ये लोग जो सुन्दरता-सुन्दरता चिल्ला हैं, ये मरियल सौन्दर्य के रहस्य को ही नहीं समझ सके। जब तक मनुष्य व शरीर स्वस्थ नहीं है तब तक उसका मन भी स्वस्थ नहीं हो सकता; औं सौन्दर्य एक मानसिक-स्थिति भर है!"

यह कहकर दीवाना जी उठ पड़े और उनके साथ ही श्री देवीप्रसाद उ दीवाना जी ने कहा, "रात बहुत हो चुकी है, अब हम लोग विदा लेंगे!'

वास्तव में उस समय दस बज रहे थे। अन्य अतिथियों को भी उ

रानी शशिप्रभा के दूसरे दिन के लिए सार्वजनिक निमन्त्रण के साथ दरबार खत्म हुआ।

६

ी विश्वम्भर ने अपने वचनों का पालन किया, हिन्दी के साहित्यिकों की ठक उन्होंने अपने यहाँ बुलाई। पर उस बैठक में बहुत थोड़े से चुने ादमी ही बुलाए गए थे। आने वालों में श्री दीवाना जी, श्रीमती करुणा श्रीमती मृणालिनी देवी, श्रीयुत प्राणनाथ, श्री देवीप्रसाद, श्री रघुवंश श्री श्याम सलोने जी और प्रोफ़ेसर किशोर थे। जिस समय उमानाथ ़्मणनारायण के कमरे में प्रवेश किया, श्री श्याम सलोने और श्री ालाल में रहस्यवाद पर बात हो रही थी और बाकी सब लोग बड़ी तन्म-के साथ उस बात-चीत को सुन रहे थे। श्री रघुवंशलाल गोरे-से और खूब-से आदमी थे, सभ्य और सुसंस्कृत। वे एक त्रैमासिक पत्रिका के संपादक र साहित्य से उन्हें अच्छी-खासी दिलचस्पी थी। साहित्य के अलावा अन्य जितनी ललित-कलाएँ हैं उन सबों से प्रेम था, और इन कलाओं मालोचना करने के कारण उन्हें प्राचीन हिन्दू-कलाओं की कुछ जानकारी ा हो गई थी। साथ ही प्राचीन हिन्दू कलाओं को आधुनिकता का रूपक ालों में कुछ न कुछ रहस्यवाद की जानकारी भी आवश्यक होती ही है। ़ा श्री रघुवंशलाल रहस्यवाद पर काफ़ी अधिक और काफ़ी देर तक बात कते थे। रहस्यवाद के अलावा दुनिया के जितने भी वाद हैं उनमें भी कुछ न कुछ दखल था।

श्री श्याम सलोने रहस्यवादी क्यों और कैसे बने, इस विषय पर लोगों में अफ़वाहें फैली थीं, और चूँकि वे अफ़वाहें भर थीं इसलिए उनपर यहाँ ा जाना अनुचित होगा। लेकिन फिर भी उनके सम्बन्ध में वे सब बातें ाई जा सकती हैं जिनका सबूत लोगों के पास था। श्री श्याम सलोने ोर्ट में वकील थे और उनके कथनानुसार उनका विवाह अभी तक न

हुआ था। विवाह न करने का कारण वे अपना असफल प्रेम बतलाते थे उनके असफल प्रेम की कहानी इतनी करुण हुआ करती थी कि सुनने वाले का मन सहज ही पसीज उठता था और उसकी आँखों में आँसू भर आते थे। पर एक विचित्र बात यह थी कि अपने असफल प्रेम की कहानी वे केवल उसी समय सुनाते थे जब स्त्रियों का समूह उनके सामने हो और वे स्त्रियाँ युवतियाँ हों।

दुनिया में रहस्यवाद के विद्वानों की कमी नहीं क्योंकि रहस्यवाद की विद्वत्ता ऐसी विद्वत्ता है जिसकी अभी तक कोई कसौटी नहीं मिली है। इन रहस्यवादियों में हिन्दुस्तान ही नहीं बल्कि बड़े-बड़े अंग्रेज़ शामिल हैं; और रहस्यवादी बन जाने के नाते श्री श्याम सलोने ने विशेषकर विदेशी रहस्यवादियों का पत्र-व्यवहार द्वारा परिचय प्राप्त कर लिया था। उन्होंने उन अंग्रेजी रहस्यवादियों की लम्बी चौड़ी आलोचनाएँ लिखीं साथ ही उनके आधार पर अपनी भी एक-आध किताब लिख डाली। इस प्रकार साहित्यिक न होते हुए भी वे रहस्यवाद की कृपा से हिन्दी के प्रमुख साहित्यिक बन बैठे थे।

उमानाथ के आते ही इन दोनों सज्जनों की बात-चीत बन्द हो गई थी। उमानाथ ने बैठते हुए कहा, "आप लोग बात-चीत जारी रक्खें—किस विषय पर बात-चीत हो रही थी?"

श्री रघुवंशलाल ने उत्तर दिया, "प्रश्न यह है कि अनुभूति का रंगों से कहाँ तक सम्बन्ध है?"

"अनुभूति और रंग!" उमानाथ ने आश्चर्य से पूछा।

"जी हाँ! हमें यह मानना पड़ेगा कि रंगों का जीवन पर एक मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ा करता है। सफ़ेद शान्ति का द्योतक है, लाल क्रान्ति का। हरा सम्पन्नता का द्योतक है, पीला ह्रास का और काला मृत्यु का!" रघुवंशलाल ने कहा।

"हो सकता है, पर आप तो चित्रकला की बात कर रहे हैं, उसी प्रकार जैसे कविता में भिन्न प्रकार के छन्द और शब्द-विन्यास एक भावना-विशेष

उत्पन्न करते हैं, अथवा संगीत में विशेष-प्रकार के स्वरों का उतार चढ़ाव एक भावना विशेष को जागृत करता है !" उमानाथ ने कहा ।

श्री श्याम सलोने ने, जो अब तक आँखें बन्द किये बैठे थे, अपनी आँखें खोलीं, "रंगों का अस्तित्व है, कला-विशेष के कहीं ऊपर, हमारे साधारण जीवन में । अभी मैं आँखें बन्द किये बैठा था और मेरी आँखों के आगे तरह-तरह के रंग आते थे और चले जाते थे, असीम में विचरण कर रहे थे !" उमानाथ की ओर देख कर श्याम सलोने ने गहरी साँस ली, "रंग और रंगों के अन्दर निहित भावनाएँ ! हम उनका विश्लेषण नहीं कर सकते, हम केवल उन्हें अनुभव कर सकते हैं । हमारे ऊपर इन विविध प्रकार के रंगों से भरा हुआ एक भावनामय असीम है; बुद्धि के अन्तर्गत ये जितने वाद हैं, ये जितने मत हैं, ये जितनी कलाएँ हैं—यह सब मिथ्या हैं; सत्य है बुद्धि के ऊपर वाला—कहीं ऊपर वाला भावनामय सौन्दर्य से भरा हुआ असीम, जहाँ मैं विचरा करता हूँ । उठो, साधना करो ! ये सब रहस्य तुम्हारे सामने आवेंगे !"

अपनी मुसकराहट दबाते हुए श्री रघुवंशलाल ने कहा, "मैं समझता हूँ, और मेरी यह समझ बुद्धि अथवा तर्क से प्रेरित है, कि आप ढोंगी हैं ।"

श्याम सलोने जी का मुख वैसा ही शान्त रहा, उनकी मुद्रा वैसी ही गम्भीर रही; हाँ उनके होठों पर एक हलकी सी मुसकराहट अवश्य आ गई, "आप मुझे गाली दे सकते हैं ! ईसा ने कहा था—'इन्हें क्षमा करो, ये जानते नहीं कि यह क्या कर रहे हैं'—और ईसा और बुद्ध दोनों ही महान थे !"

बात बदलने के लिए रमेन्द्र ने प्राणनाथ से कहा, "प्राणनाथ जी, आप की 'विरहगान' शीर्षक कविता बड़ी सुन्दर थी, मैंने उसे पाँच बार पढ़ा है !"

देवी प्रसाद ने इस प्रशंसा में रमेन्द्र का साथ दिया, "इसमें क्या शक है । मुझे तो ऐसा लगा मानो उस कविता को आपने अपने आँसुओं से लिखा है ।"

प्राणनाथ जी को रमेन्द्र की तारीफ़ पर विश्वास था, लेकिन देवी प्रसाद

की बात पर उन्हें शक था कि वह वास्तव में तारीफ़ है या उन्हें बनाने की कोशिश है। लिहाज़ा उन्होंने भी उत्तर दिया, "उसे आँसुओं से नहीं, अपने दिल के ख़ून से लिखा है! समझे!"

करुणा देवी का खयाल था कि विरह इत्यादि विषय पर यदि किसी को सफलतापूर्वक लिखने का अधिकार है तो स्त्रियों को, और स्त्रियों में खास तौर से उनको, लिहाज़ा वे बोल उठीं, "तभी उसमें एक सिसकता हुआ रुदन है!"

"सिसकना आह्लाद है—रुदन सुख है!" श्याम सलोने ने अपने आप ही कहा, "अहा—प्रेम! वासना रहित निश्छल प्रेम! असीम का संगीत यहीं है—यहीं!" और श्री श्याम सलोने ने करुणा देवी की ओर एक ऐसी नज़र से देखा कि करुणा देवी के चेहरे पर एक हलकी सी लाली दौड़ गई!'

इस बात पर दीवाना जी ज़ोर से हँस पड़े, "क्यों, प्रेम-प्रेम चिल्लाते हो! तुमने वेदान्त पढ़ा है?"

"वेदान्त?" चौंक कर श्याम सलोने ने दीवाना जी की ओर देखा लेकिन दीवाना जी यह प्रश्न पूछ कर तमाखू बनाने में व्यस्त हो चुके थे।

श्री विश्वम्भर ने, जो अभी तक मौन सब कुछ सुन रहे थे, अब बोलना अपना कर्तव्य समझा। उन्होंने आरम्भ किया! "मैं समझता हूँ कि अब हम लोगों में आपसी बात-चीत और वाद-विवाद का अन्त होना चाहिए। हम लोग एक विशेष कार्य के लिए इकट्ठा हुए हैं, अब मेरा प्रस्ताव है कि उसकी कार्यवाही आरम्भ हो।"

"हाँ-हाँ! ज़रूर! हम लोग तो नए-नए कामों की तलाश में ही रहते हैं!" देवी प्रसाद ने कहा।

श्री विश्वम्भर ने आरम्भ किया, "श्री उमानाथ जी से तो आप लोग परिचित हैं ही। आप का यह कहना है कि हिन्दी-साहित्य में प्रगति नहीं है, हिन्दी साहित्य ग़लत धारा में बह रहा है। वे चाहते हैं कि हम साहित्यिक समाज और राष्ट्र के प्रति अपना कर्तव्य पालन करें। अब मैं श्री उमानाथ

से प्रार्थना करूँगा कि वे साहित्य पर अपने विचार प्रकट करें, और यदि उनके पास कोई रचनात्मक कार्यक्रम है तो पेश करें। श्री उमानाथ अभी हाल में ही योरोप से लौटे हैं और उन्होंने अपने जीवन का एक बहुत बड़ा भाग पाश्चात्य-साहित्य तथा संस्कृति के अध्ययन में व्यतीत किया है।"

सब लोग शान्त तथा सतर्क बैठ गए। उमानाथ ने अपने सामने बैठे हुए विचित्रताओं से भरे समुदाय को एक बार ग़ौर से देखा, फिर उसने अपनी बात कहनी आरम्भ की, "मैंने हिन्दी के साहित्यकों की बातें सुनीं, मैंने इन साहित्यिकों के विचारों पर—यदि उन्हें विचार कहा जा सकता है—ग़ौर किया, और मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि हिन्दी-साहित्यिकों का जमाव पागलों का जमाव है जिसमें हरेक आदमी अपनी कहता है, बेमतलब और असंगत कहता है, बिना सोचे समझे कहता है और ग़लत कहता है। कला की पुरानी रूढ़ियों को हम प्राणों के समान अपनाए हुए हैं, उन्हीं पर हम चल रहे हैं, वही हमारे लिए सत्य हैं और नित्य हैं। हमने बुद्धि रखते हुए भी उस बुद्धि से काम लेने से इनकार कर दिया; हमने न सोचा, न समझा! हम छलना के इन्द्रजाल में विचरण कर रहे हैं।" कुछ रुक कर उसने फिर कहा, "आज तक हमारे देश में सत-साहित्य का सृजन नहीं हुआ, हो भी नहीं सकता था। हमारे यहाँ साहित्य की आवश्यकताओं को किसी ने समझा तक नहीं, हम लोग ग़लत आदर्श लेकर आगे बढ़े। जीवन के प्रमुख संघर्ष की ओर हमारी एक प्रकार की भयानक उपेक्षा रही, अस्तित्व की सार्थकता पर हमने ध्यान नहीं दिया। और इसका नतीजा यह हुआ कि हिन्दुस्तान एक भी वास्तविक कलाकार को जन्म नहीं दे सका।"

दीवाना जी ने टोका, "कालिदास! पाश्चात्य देश के सर्वश्रेष्ट कलाकारों ने कालिदास को माना है, गेटे ने उस पर कविता तक लिखी है। आप बिलकुल अनाप शनाप बक रहे हैं।"

और प्रोफ़ेसर किशोर ने कहा, "कबीर—उससे बड़ा कवि न कभी हुआ है न कभी होगा।"

प्राणनाथ ने कहा, "जीवन का आदर्श प्रेम है, और प्रेम शृंगार की भावना है। हमारा प्राचीन साहित्य शृंगार रस से ओत-प्रोत है!"

और देवी प्रसाद ने उठते हुए ज़रा तेज़ आवाज़ में कहा, "क्या आप हम साहित्यिकों से रूस और उसके समाजवाद का प्रोपेगण्डा करवाना चाहते हैं? मिस्टर उमानाथ आप ग़लती करते हैं; हम साहित्यिक आपके चक्कर में ज़रा भी नहीं आने के!"

उमानाथ ने तिलमिला कर कहा, "कौन कहता है कि हम समाजवाद का प्रचार करना चाहते हैं, मेरा कहना केवल इतना है कि हम साहित्यिकों में प्रगति की आवश्यकता है और इसीलिए मैं चाहता था कि हिन्दी साहित्यिकों को एक प्रगतिशील लेखक संघ बना कर युग की समस्याओं पर विचार करना चाहिए—उनको सुलझाने की कोशिश करना चाहिए।"

प्राणनाथ जी की महात्मा गांधी के प्रति भक्ति उस समय उमड़ पड़ी; उन्होंने कहा, "युग की समस्याएँ ऐसी नहीं हैं मिस्टर उमानाथ, कि जिनको हम—आप ऐसे आदमी सुलझा सकें। महात्मा गांधी उसे सुलझा रहे हैं—हम केवल महात्मा जी के संदेश-वाहक ही बन सकते हैं।"

और दीवाना जी ने कहा, "लेकिन क्या हमने युग की समस्याओं को सुलझाने का ठीका ले रक्खा है; हम कलाकार हैं और हम युग के निर्माता हैं।" यह कह कर उन्होंने अपनी 'चमेली' शीर्षक कविता पढ़ना आरम्भ कर दिया।

७

उमानाथ वहां से निराश लौटा। उसने देखा कि हिन्दुस्तान की विचार-धारा और संस्कृति समय की रफ़्तार के मुक़ाबिले स्थगित-सी है, उसने महसूस किया कि हिन्दी के साहित्यिक अपनी खुदी और आत्म-छलना से जनित कल्पना में अपने को इतना अधिक खो चुके हैं कि वे कुरूप सत्य को देखने के लिए किसी हालत में तैयार नहीं। और उसे आश्चर्य हो रहा था कि एक

उगता हुआ राष्ट्र किस प्रकार जीवन की अवहेलना कर सकता है; किस प्रकार वह बिना साहित्य की सहायता के आगे बढ़ सकता है।

दूसरे दिन रामेश्वर प्रसाद ने उमानाथ से पूछा, "कहिये कामरेड तिवारी आपका कुछ काम बना?"

उमानाथ ने एक गहरी साँस ली, "नहीं! तुम ठीक कहते थे मिस्टर रामेश्वर! तुम्हारे हिन्दी के जितने साहित्यक हैं वे सब के सब मूर्ख और घमण्डी हैं। उन लोगों से मेरा काम नहीं चल सकता।"

कुछ देर तक उमानाथ सोचता रहा, उसने फिर कहा, "लेकिन क्या यह सम्भव नहीं है कि हिन्दुस्तान में कुछ थोड़े-से समझदार और ईमानदार लेखक मिल जाँय?"

"ज़रूर मिल सकते हैं, अगर आप उनसे मिलना चाहें। आप तो नाम और ख्याति के पीछे दौड़ते हैं। आप अगर कहें तो मैं उन्हें यहाँ लेता आऊँ। और मैं विश्वास दिलाता हूँ कि उन लोगों से मिल कर आप निराश न होंगे, बल्कि आपको प्रसन्नता ही होगी।"

"अच्छा! तो आप उन्हें कब यहाँ ला सकते हैं?"

"अगर आप चाहें तो आज शाम को ही।"

"हाँ, आज शामको ठीक रहेगा। मैं आपका इंतज़ार करूँगा।"

रामेश्वर के चले जाने के बाद उमानाथ कामरेड मारीसन के साथ इलाहाबाद के साम्यवादियों से मिलने चला। कामरेड मारीसन ने इस सभा की आयोजना कामरेड अहमद द्वारा करवा ली थी।

कामरेड अहमद नवयुवक थे और इलाहाबाद के प्रमुख कांग्रेस कार्यकर्ता थे। कामरेड अहमद गोरे और खूबसूरत आदमी थे, बहुत ही आला खान्दान के और कामरेड अहमद ने योरोप में शिक्षा पाई थी। लेकिन दुर्भाग्यवश वे योरोप में कोई भी परीक्षा न पास कर सके, और अन्त में वे समाजवादी बन कर हिन्दुस्तान लौट आए, या यों कहिए कि हिन्दुस्तान लौट कर समाजवादी बन गए।

डाक्टर अहमद के अभिन्न मित्र डाक्टर सिनहा काले से, बदशकल से और नाटे से आदमी थे। डाक्टर सिनहा समाजवाद के आचार्य माने जाते थे। जिस समय कामरेड मारीसन और कामरेड तिवारी कामरेड अहमद के यहाँ पहुँचे, डाक्टर सिन्हा और डाक्टर भास्कर में समाजवाद में स्त्रियों के स्थान पर बहस हो रही थी। डाक्टर भास्कर लम्बे से और दुबले से आदमी थे, और योरोप घूमे हुए थे। कांग्रेस कमेटी के वे एक अधिकारी थे।

उस बहस में डाक्टर सिनहा की तेज़ आवाज़ से यह पता चलता था कि डाक्टर भास्कर का पलड़ा भारी पड़ रहा है। डाक्टर सिनहा कह रहे थे, "कम्यूनिज़्म में सेक्स मोराल्टी का कोई स्थान नहीं। आप जिस समय सेक्स-मोराल्टी की दुहाई देते हैं उस समय आप कम्यूनिज़्म के बुनियादी सिद्धान्तों पर ही प्रहार करते हैं। आपको यह याद रखना चाहिये कि रूस ने विवाह का अन्त कर दिया है!"

डाक्टर भास्कर ने उत्तर दिया, "आप कैसी बे-सिर-पैर की बात कर रहे हैं डाक्टर सिनहा। रूस में विवाह का अन्त कहाँ हुआ है? केवल विवाह का रूप बदल गया है। विवाह का धार्मिक-रूप खत्म कर दिया गया है क्योंकि वहाँ धर्म का ही खात्मा हो चुका है; अब विवाह का केवल सामाजिक रूप रह गया है, मनुष्यों की सुविधाओं पर अवलम्बित; क्योंकि तलाक़ के नियम बहुत ढीले कर दिये गए हैं। और आप यह क्यों भूले जाते हैं कि कम्यूनिज़्म तो मोराल्टी का क़िला है, जहाँ स्वेच्छा नाम की किसी भी चीज़ का अस्तित्व नहीं है।"

विवाद को रोकने के लिए उमानाथ ने डाक्टर भास्कर का समर्थन किया, "हाँ, आप ठीक कहते हैं। सेक्स मोराल्टी भी सामाजिक मोराल्टी के अन्तर्गत ही आती है। परस्त्री गमन करने वाला व्यक्ति अपराधी है ठीक किसी चोर-डाकू की भाँति क्योंकि वह दूसरे की सम्पत्ति हरण करता है।"

"लेकिन स्त्री तो सम्पत्ति नहीं है!" डाक्टर सिनहा ने कहा।

"हाँ, सम्पत्ति नहीं है, लेकिन वह समाज की एक इकाई तो अवश्य है जिसका समाज में एक स्थान है, जिसके जिम्मे कुछ कर्तव्य हैं।"

कामरेड अहमद इस बहस से ऊब गए थे क्योंकि यह बहस करीब एक घण्टे से चल रही थी। उन्होंने झुँझला कर कहा, "छोड़िये भी इस बात को; काम की बातें करनी हैं, और मेरे पास अधिक समय नहीं है।"

सब लोग शान्त बैठ गए। कामरेड मारीसन ने बात आरम्भ की, "कामरेड! मैं आप लोगों से कामरेड तिवारी का परिचय कराता हूँ; ये अभी हाल में रूस से आए हैं। हिन्दुस्तान में जो हमारा काम-काज हो रहा है वह इनकी देख-भाल में होगा।"

कामरेड अहमद ने उत्तर दिया, "हम लोग कामरेड तिवारी का स्वागत करते हैं।"

अब उमानाथ के बोलने की बारी थी, उमानाथ ने आरम्भ किया, "कामरेड्स! मुझे आए हुए अभी अधिक समय नहीं हुआ है, और मैं अभी ज़्यादा घूम भी नहीं पाया हूँ। लेकिन इस बीच में मैंने दो स्थान देखे—कलकत्ता और कानपुर। ये दोनों स्थान हमारे प्रमुख केन्द्र हैं। और इन स्थानों की हालत देख कर मुझे एक प्रकार की निराशा हुई। मैंने देखा कि हमारा कोई संगठन नहीं, उनमें हमारा कोई प्रोपेगण्डा नहीं। उनमें समाजवाद के सिद्धान्तों में कोई दिलचस्पी नहीं है, और उनमें दिलचस्पी हो भी कैसे सकती है, जब उनमें समाजवाद के सिद्धान्तों का प्रचार ही नहीं हुआ है। मैंने देखा है कि हमारे देश के मज़दूर भेड़-बकरियों से भी गए-बीते हैं। ऐसी हालत में यह लोग क्रान्ति क्या कर सकते हैं? हिन्दुस्तान में हम लोगों का काम नहीं के बराबर हुआ है, मैं देखता हूँ कि हमारे संगठन में एक भयानक शिथिलता है। और मैं पूछता हूँ कि इस शिथिलता का उत्तरदायित्व किसपर है? उत्तर स्पष्ट है! इस शिथिलता का सारा उत्तरदायित्व हम समाजवादी नेताओं पर है, हमारे देश के कम्यूनिस्ट नेता अकर्मण्य बैठे हैं, उनमें लगन नहीं, उनमें उत्साह नहीं।"

डाक्टर सिनहा बोल उठे, "कामरेड तिवारी, जब तक आप हमारे काम को देखें और समझें न, तब तक आपका हम लोगों पर इस तरह के लांछन

लगाना उचित नहीं। अपने सम्बन्ध में मैं यह कह सकता हूँ कि मैंने समाजवाद पर एक दर्जन से अधिक महत्त्वपूर्ण लेख लिखे हैं और वे सब के सब भारतवर्ष के प्रमुख अंगरेज़ी पत्रों में प्रकाशित हो चुके हैं। उन लेखों ने देश में तहलका-सा मचा दिया है।"

"और मैं हर दूसरे-तीसरे महीने मज़दूरों की मीटिंग में तक़रीर किया करता हूँ। साथ ही मैं इलाहाबाद यूनीवर्सिटी के तुलबा में कम्यूनिज़्म का परचार कर रहा हूँ!" कामरेड अहमद ने अपनी सफ़ाई दी।

"लेकिन जहाँ तक मैं समझता हूँ, ये दोनों बातें ग़लत हैं।" उमानाथ ने कहा, "हमारे सामने सवाल यह है कि उन अंग्रेज़ी के लेखों को कितने मज़दूरों ने पढ़ा? जो लोग आपके अंग्रेज़ी अखबार पढ़ते हैं वही लोग समाजवाद पर लिखी हुई अच्छी से अच्छी किताबें पढ़ सकते हैं। इसके अलावा इन अंगरेज़ी पढ़े-लिखे लोगों में अधिकांश बुर्ज़ुआ मेन्टेलिटी के लोग हैं। हमें चाहिए कि हम जन-साधारण की भाषा में जन-साधारण के सामने अपना सन्देश ले जाँय, हमें चाहिए कि हम अपनी बातें देश के मज़दूरों से कहें, उन मज़दूरों को उनके अधिकार समझावें, उनको क्रान्ति के लिए तैयार करें। और आपका भी कार्यक्रम ग़लत है, कामरेड अहमद! ये यूनीवर्सिटी के विद्यार्थी जो ऊँची नौकरी पाने के लिए ऊँची शिक्षा पा रहे हैं, इनमें आपका समाजवाद तभी तक पनप सकता है जब तक ये विद्यार्थी हैं क्योंकि इनमें जवानी का जोश है, जीवन की कठिनाइयों से दूर होने के कारण इनमें अभी आदर्शवाद है, और इसी कारण इनके उत्साह को देखकर आप समझने लगते हैं कि आप बहुत बड़ा काम कर रहे हैं। लेकिन इतना याद रखियेगा कि इन विद्यार्थियों का प्रमुख लक्ष्य है ग़ुलामी और लम्बी तनख्वाह! जैसे ही ये जीवन के संघर्ष में पड़े, ये बड़ी आसानी से प्रलोभनों के शिकार बन जाएँगे। यही लोग जो आज समता-समता के नारे लगाते हैं, ये भयानक उत्पीड़क बन जाएँगे।"

"आप ठीक कहते हैं, कामरेड तिवारी!" डाक्टर भास्कर ने कहा, "हिन्दुस्तान में जो कुछ हो रहा है वह ग़लत हो रहा है। यहाँ तक कि यह मज़दूरों

का संगठन भी ग़लत है। हिन्दुस्तान में मज़दूरों की समस्या है कहाँ? हिन्दुस्तान इंडस्ट्रियल मुल्क है ही नहीं, यह तो कृषि प्रधान देश है। और हिन्दुस्तान के किसानों की हालत इतनी गिरी हुई है कि यहाँ का हरेक किसान मज़दूर बनने को तैयार है। जब कि मज़दूर की तनख्वाह दस रुपए महीने से लेकर तीस रुपए महीने तक है, वहीं किसान की आय तो कहीं-कहीं दो रुपए प्रति मास भी नहीं पड़ती। हमें मज़दूरों के संगठन की आवश्यकता नहीं है कामरेड तिवारी, हमें किसानों का संगठन चाहिए!"

"क्या आप सुधारक हैं, कामरेड भास्कर!" उमानाथ ने पूछा।

"मैं समझा नहीं!"

"आपने अभी जो बात कही उससे तो मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि आप कोरी भावुकता के फेर में पड़कर बुनियादी चीज़ों की उपेक्षा कर रहे हैं। आप भूखों मरने वाले किसानों की दशा देखकर उनकी हालत सम्हालने दौड़ पड़ते हैं और अपने आदर्श को, अपने कार्य-क्रम को भुला देते हैं। आप भूखों मरने वाले किसान को समाजवादी नहीं बना सकते क्योंकि उसके पास ज़मीन है और ज़मीन सम्पत्ति है। वह मूर्ख किसान अपनी उस दो बीघे ज़मीन से चिपका हुआ भूखों मरेगा लेकिन वह आपका साथ न देगा। कामरेड भास्कर! हम सुधारक बनकर हिन्दुस्तान में सर्व-कल्याणकारी क्रान्ति नहीं करा सकते, और इसलिए हमें इन किसानों को छोड़ देना पड़ेगा। हमें बिना सम्पत्ति वाले मज़दूर का ही सहारा लेना पड़ेगा, वही इस क्रान्ति को सफल बना सकता है।"

डाक्टर भास्कर हँस पड़े, "कामरेड उमानाथ! आप हिन्दुस्तान के बाहर रहकर अपने हिन्दुस्तान को एक तरह से भूल ही गए। आपसे किसने कह दिया कि ज़मीन किसानों की है? यहाँ आपके पिता ताल्लुक़दार हैं, आप उनसे तो पूछिये। ज़मीन ज़मीन्दार की है, किसान तो केवल उसे जोतता-बोता है। किसान मज़दूर से भी गया-बीता है। हिन्दुस्तान की हालत में और रूस की हालत में बड़ा अन्तर है कामरेड उमानाथ!"

डाक्टर भास्कर की हँसी से उमानाथ को बुरा लगा, उसने कहा, "कामरेड

भास्कर, मैं हिन्दुस्तान को नहीं भूला, भूले हैं आप! यह ज़मीन्दारी प्रथा पूरे हिन्दुस्तान में नहीं है, यह तो आप जानते ही हैं। और ज़मीन्दारी प्रथा के अन्तर्गत भी ज़मीन्दार को केवल इतना अधिकार है कि वह लगान न मिलने पर मज़दूर को वेदखल कर सकता है..."

"ठीक उसी तरह जैसे मकान का किराया न मिलने पर मकान मालिक किराएदार को मकान के बाहर निकाल सकता है—यही आप कहना चाहते हैं न!" कामरेड भास्कर ने बीच में ही उमानाथ की बात काटी। "और कामरेड उमानाथ, ज़मीन्दारी-प्रथा हिन्दुस्तान के अधिकांश भाग में है।"

डाक्टर सिनहा ने इस विवाद का अन्त करने का प्रयत्न किया, "साधन भिन्न हो सकते हैं, लेकिन आदर्श तो हमारा एक ही है। बिना सम्पत्ति वाले लोगों को इकट्ठा करके एक क्रान्ति को संचालित करना और पूँजीवाद को नष्ट करना। अब सवाल यह है कि हम लोग किस प्रकार यह सब कर सकते हैं!"

"क्या आपको यह सवाल उठाने का कोई अधिकार है? हमारा मार्ग निर्धारित हो चुका है, उसी मार्ग पर, बिना इधर-उधर देखे, बिना कुछ सोचे-समझे, हमें चलना है। इस प्रकार के सवाल उठाकर आप केवल विकास की गति-विधि में बाधक ही बन सकते हैं!" कामरेड मारीसन ने कहा।

"तो क्या आप लोग हमारी व्यक्तिगत स्वाधीनता का भी अपहरण करना चाहते हैं!" डाक्टर सिनहा ने पूछा।

"समाजवाद में व्यक्ति-गत स्वाधीनता नाम की कोई चीज़ नहीं। व्यक्तित्व की भावना समाज से पार्थक्य की द्योतक है, और इसलिए इस व्यक्तित्वमय अहम् को हमें नष्ट करना है!" कामरेड मारीसन ने उत्तर दिया।

"मैं मानता हूं। लेकिन यह नियम हमारे कर्मों पर लागू होना चाहिये, हमारे विचारों पर नहीं। इस नियम को विचारों पर लागू करने से तो मनुष्यता का विकास ही रुक जायगा!" डाक्टर भास्कर ने कहा।

"हां, आप ठीक कहते हैं, यह नियम कर्म पर ही लागू होना चाहिये। पर इस समय यह नियम अपने विचारों पर लागू करना पड़ेगा। यह संक्रान्ति

का काल है, यह असाधारण परिस्थिति का मुक़ाबिला है, यह हम लोगों के युद्ध का श्री गणेश है। और युद्ध के समय हमें युद्ध के नियम भी मानने पड़ेंगे। सैनिक सोचता-विचारता नहीं, वह केवल आज्ञापालन करता है। कामरेड्स! आज दुनिया में समाजवाद शिथिल पड़ रहा है, समाजवादी दबाए जा रहे हैं—यह क्यों? यह इसलिए कि समाजवाद के सैनिक युद्ध के नियमों का पालन नहीं कर रहे हैं, वे सब के सब कार्यकर्ता न होकर विचारक हैं। और इसका नतीजा यह है कि हमारे समाजवादी साथी आपस में ही विचारों के युद्ध में संलग्न हैं; उनमें एका नहीं है। और वर्गवाद अथवा पूँजी-वाद उन्हें नष्ट किये देता है।" उमानाथ ने फिर रुककर कहा, "आपस में इस तरह के बहस-मुबाहिसे हम लोगों को इस समय शोभा नहीं देते, हम केवल अपनी शक्तियों का अपव्यय ही कर रहे हैं। हमें काम करना है—काम!"

कामरेड अहमद ने कहा, "तो फिर आप ही बतलाइये कि काम करने का सही तरीक़ा क्या है?"

"हमारे नेताओं को मज़दूरों के साथ रहना चाहिए, मज़दूरों का जीवन व्यतीत करना चाहिए। हमें उनकी चेतना को जगाना होगा और उनपर यह स्पष्ट करना होगा कि वे पददलित हैं, पीड़ित हैं। उन्हें पशुता से ऊपर उठाकर ही आप उन्हें इतना शक्तिशाली बना सकते हैं कि वे हमारी क्रान्ति के स्तम्भ बन सकें। मैं देश के साम्यवादी और समाजवादी नेताओं से मिला, वे सब के सब विचारक हैं, बातूनी हैं; लेकिन उनमें काम कोई नहीं करता। और जो लोग मज़दूरों में काम कर रहे हैं वे इतने अधिक स्वार्थी हैं कि वे मज़दूरों का भला करने के स्थान में अपना भला कर रहे हैं। हमें मज़दूरों का विश्वासपात्र बनकर काम करना होगा।"

८

शाम के समय कुछ थोड़े से यूनीवर्सिटी के विद्यार्थी रामेश्वर प्रसाद के साथ राजेन्द्रकुमार के ड्राइंग रूम में एकत्रित हुए। इन लोगों में प्रमुख थे

जीवन कृष्ण, उदय शंकर, नमाज़ अहमद और सादिक़ अली। जीवन कृष्ण और नमाज़ अहमद एम० ए० फ़ाइनल के विद्यार्थी थे और अक्सर पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिख दिया करते थे। उदय शंकर एम० ए० प्रीवियस में थे और कवि थे तथा सादिक़ अली बी० ए० में थे और उर्दू के अच्छे विद्यार्थी थे।

ना समाप्त हो जाने के बाद उमानाथ ने अतिथियों से बात चीत आरम्भ की, "आप लोगों से मिस्टर रामेश्वर प्रसाद ने तो बतला ही दिया होगा कि हम लोग किसलिए इकट्ठा हुए हैं।"

"जी हाँ!" जीवन कृष्ण ने कहा, "और आज से नहीं, मैं तो चार साल से कहता आ रहा हूँ कि हिन्दुस्तानी लिखी जानी चाहिये और हिन्दुस्तानी की लिपि रोमन ही हो सकती है।"

जीवन कृष्ण की बात काटते हुए उदयशंकर ने कहा, "मैं इसका विरोध करता हूं। मैं यह मानता हूँ कि हिन्दुस्तानी अवश्य लिखी जानी चाहिए लेकिन हमारे सामने देवनागरी लिपि मौजूद है और वह परफ़ेक्ट लिपि है। हमें भारत में देवनागरी लिपि का ही प्रयोग होना चाहिए—रोमन लिपि की कोई आवश्यकता नहीं।"

नमाज़ अहमद ने उत्तर दिया, "उदय शंकर साहेब, हम लोगों के सामने क़ौमियत का झगड़ा नहीं है और मैं भाई सादिक़ के वजूहात से मुत्तफ़िक़ नहीं। मेरा कहना तो महज़ इतना है कि रोमन स्क्रिप्ट नागरी स्क्रिप्ट से ज़्यादा बेहतरीन है। वह जल्दी लिखी जाती है, आसानी से छप सकती है और चूँकि हम लोग दिनों दिन दुनिया की रफ्तार के साथ चलने की कोशिश कर रहे हैं, और दुनिया के ज़्यादहतर मुल्कों में रोमन स्क्रिप्ट का रिवाज़ है लिहाज़ा हमें भी रोमन स्क्रिप्ट अपना लेना चाहिए। क्यों मिस्टर जीवन किशन साहेब, ग़ालिबन आप भी यही कहना चाहते थे न!"

इसके पहले कि जीवन कृष्ण मे अपने वजूहात के अपने विचार प्रकट करें, उमानाथ ने कहा, "मेरा खयाल है कि आप लोगों ने मेरा मंशा किसी क़दर ग़लत समझा है। हम लोग स्क्रिप्ट का झगड़ा सुलझाने नहीं इकट्ठा हुए हैं।

अब रामेश्वर के बोलने की बारी थी, "नहीं मिस्टर उमानाथ, हम लोग आपका मंशा बिलकुल ठीक समझे हैं और यहाँ आने के पहले ही मैंने अपने दोस्तों को आपका इरादा बतला दिया था। मेरे सब दोस्त इस बात से सहमत हैं, और इस बात को यहाँ उठाना बेकार है। असल सवाल हमारे सामने अपने विचारों को प्रकट करने के माध्यम का है!"

"जी हाँ!" जीवन कृष्ण ने कहा, "माध्यम का सवाल सबसे पहले उठता है। हम जो चीज़ मासेज़ के लिए लिखें वह हम मासेज़ की ज़ुबान में भी लिखें, और मास न संस्कृताइज़्ड हिन्दी समझती है और न पर्शियनाइज़्ड उर्दू समझती है। लोग समझते हैं हिन्दुस्तानी। अब सवाल यह आता है कि हिन्दुस्तानी किस स्क्रिप्ट में लिखी जाय। और हम लोगों में अधिकांश का मत है कि इसके लिए रोमन लिपि ही सब से अच्छी लिपि रहेगी।"

"मैं रोमन लिपि और हिन्दुस्तानी—इन दोनों का विरोध करता हूँ।" उदयशंकर ने कहा। "आपकी यह हिन्दुस्तानी है क्या बला? ज़रा ग्रामों में ज़ाइये और देखिये कि वहाँ के लोग किस भाषा का प्रयोग करते हैं! उनकी भाषा हिन्दी है—विशुद्ध हिन्दी। यह उर्दू के शब्दों से लदी हुई हिन्दुस्तानी—

बड़े शहरों के अदालत-पेशा वाले कुछ थोड़े से इने-गिने आदमी ही बोलते हैं और समझते हैं !"

"वल्लाह, आप कितनी लग़ो बात कर रहे हैं उदयशंकर साहेब ! शहरों का हरेक इंसान उर्दू बोलता है— खालिस उर्दू ! चाहिये तो ज़बान उर्दू क्योंकि यह शुरफ़ा की ज़ुबान है, लेकिन मैं हिन्दुस्तानी पर समझौता करने को तैयार हूँ, इस शर्त पर कि वह रोमन स्क्रिप्ट में लिखी जाय। अगर यह नहीं होता तो मैं ही क्या, हम सब के सब मुल्क के मुसलमान आप का साथ नहीं देंगे।" शाकिर अली ने तैश में आ कर कहा।

इस वादविवाद से उमानाथ आजिज़ आ गया था, उसने उठते हुए कहा, "और मेरी समझ में यह आ गया कि आप लोगों से मेरा काम न चलेगा। आप लोगों के सामने ऐसे मसले हैं जिनकी मैंने कभी कल्पना न की थी।"

रामेश्वर प्रसाद सिटपिटाए, "मिस्टर तिवारी—इस बात पर आप ध्यान न दें—हम लोग प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएशन बनाने के लिए आए हैं और हम सीधे उसी सब्जेक्ट पर बात करेंगे।"

"बहुत अच्छा, तो आप लोग यह एसोसियेशन बनाइये, मेरे सर में दर्द हो रहा है तो मैं ज़रा घूमने जा रहा हूँ !"

दूसरे दिन सुबह कार्नेल मार्टिमन ने उठते ही उमानाथ से कहा, "कार्नेल उमानाथ ! अब मैं यहाँ से चलूँगा। आपने अपना काम-काज तो समझ ही लिया है, और जो कुछ नहीं समझा है उसको ज़्यादा आप मेरे बिना समझ लेंगे। इसलिए बेकार यहाँ रहना मुझे अखर रहा है। कल सुबह मेल से मैं बम्बई जा रहा हूँ। वहाँ से बोट लूँगा।"

"मगर कार्नेल—इतनी जल्दी !"

"हाँ कार्नेल ! और इतनी जल्दी जाने का एक कारण और है। मैंने हिन्दुस्तान के इस रूप को पहले कभी न देखा था जो तुम्हारे साथ देख रहा हूँ। मेरा जी यह सब देखते घबराता है !" और कार्नेल मार्टिमन जोर से हँसे।

दूसरा खण्ड

पहिला परिच्छेद

१

"कितनी तेज़ सरदी है—हाथ-पैर ठिठुरे जाते हैं! प्रभानाथ—कितना बजा है?"

"एक बज कर पन्द्रह मिनट!" टार्च के प्रकाश में हाथ वाली घड़ी को देखते हुए प्रभानाथ ने कहा, "सिर्फ़ एक बज कर पन्द्रह मिनट, और गाड़ी आती है तीन बजे! दानव-सी काली, डरावनी और लम्बी रात, और उस पर यह पाले की हवा!" प्रभानाथ हँस पड़ा, "लेकिन—लेकिन, शायद इस सब का भी ज़िन्दगी में एक विशेष स्थान है, एक विशेष महत्ता है!"

"हो सकता है, लेकिन मुझे अगर इस महत्ता की जगह इस वक्त एक प्याला गरम चा मिल सकती तो ज्यादा अच्छा होता। आखिर इन अकड़े हुए हाथ-पैरों को तो ठीक करना पड़ेगा!" सरदार ने मुसकराते हुए कहा।

"हाँ, और इस समय हम लोगों के हाथ-पैरों का काम है; विचारों का काम समाप्त हो चुका!" और इतना कह कर वीणा ने थरमस फ्लास्क वाली चा का आधा-आधा प्याला वहाँ एकत्रित पाँचों आदमियों को दिया।

ये पाँचों व्यक्ति रायबरेली से चौदह मील की दूरी पर रेलवे लाइन के किनारे एक पेड़ के नीचे बैठे हुए थे। इकीस दिसम्बर १६३० की काली रात—चारों ओर गहरा अन्धकार छाया हुआ था। इन पाँचों के पास पिस्तौलें थीं और ये अपने मुँह पर नक़ाबें डाले हुए थे। कुछ दूर पर एक कार खड़ी थी जिस पर ये लोग आए थे।

इन पाँच आदमियों में प्रभानाथ और वीणा के अलावा तीन आदमी और थे जिनका थोड़ा-सा परिचय इस जगह आवश्यक है। पहले थे सरदार। सरदार का नाम था विजय सिंह और वह इस दल का मुखिया था। विजय सिंह की अवस्था लगभग तीस वर्ष की थी और वह कानपुर में मोटर इंजीनियर था।

चौथे का नाम था मार्तण्ड और वह लखनऊ यूनीवर्सिटी में डिमांस्ट्रेटर था। उसकी अवस्था लगभग पचीस वर्ष की थी। पाँचवे का नाम था मनमोहन और मनमोहन के सम्बन्ध में सरदार को छोड़ कर और किसी को कोई ज्ञान न था। मनमोहन कौन है, कहाँ रहता है, क्या करता है—यह सब का सब उसके परिचितों के लिए एक रहस्य था।

मार्तण्ड चा पी रहा था और कहता जा रहा था, "नहीं वीणा जी, विचारों का काम न कभी खत्म हुआ है और न कभी खत्म होगा। हमारे—याने हरेक मनुष्य के हर काम की तह में एक विचार है?"

मनमोहन हँस पड़ा, "हाँ! हरेक मनुष्य के हर काम के तह में एक विचार है; लेकिन हरेक आदमी मनुष्य है कहाँ? फिर हम लोग जो कुछ कर रहे हैं, कभी-कभी उस पर ग़ौर से सोचने पर यह मालूम होता है कि वह चीज़ मनुष्यता से परे है!"

प्रभानाथ ने ध्यान से मनमोहन को देखा, मनमोहन सर झुकाए बैठा था। लेकिन उसे शायद प्रभानाथ की उस कौतूहल से भरी दृष्टि का पता था। उसने कहा, "आप इस तरह मुझे देख क्यों रहे हैं? मैंने यह तो नहीं कहा कि वह चीज़ मनुष्यता से गिरी हुई है, मैं शायद उसे मनुष्यता से ऊपर की चीज़ भी कहना चाहूँगा। आप ही सोचिये—हम जो कुछ कर रहे हैं क्या उसका श्रेय हमें कभी मिलेगा? इतनी भयानक रात; हाथ-पैर ठिठुर रहे हैं; और हम यहाँ, इस एकांत जंगल में बैठे हैं। हम लोग इस समय बड़े मज़े में लिहाफ़ के भीतर पैर फैलाए मीठी नींद सो सकते थे। और मैं पूछता हूँ कि आखिर यह सब किस लिए? ट्रेन को रोक कर खज़ाना लूटने के लिए न! उस

खज़ाने के साथ राइफ़िलें लिए हुए पुलिसमैन होंगे। खज़ाना बचाने के लिए, बहुत सम्भव है वे हमारा मुक़ाबिला करें और गोलियाँ चलावें। कौन जानता है कि हममें से किसको वह गोली लगे। और अब सवाल यह है कि हम यह खज़ाना क्यों लूट रहे हैं? इसलिए न कि हमें अस्त्र-शस्त्र मँगाने के लिए रुपया चाहिए। यह रुपया हमारे निजी उपभोग में नहीं आएगा, यह रुपया हम देश के काम के लिए लूट रहे हैं। और इस सब के बदले हमें मिलता क्या है? हम खुले आम चलने से डरते हैं, हम अपना नाम नहीं ज़ाहिर कर सकते, हम आपस में एक-दूसरे से खुल कर नहीं मिल सकते। हर समय हमें एक कृत्रित जीवन बनाए रखना है; हमें एक आवरण के नीचे रहना है, और उस आवरण को हटा कर साँस लेने का भी तो हमारे पास समय नहीं।"

मनमोहन कहते-कहते अचानक रुक गया, विजय सिंह एक गाना गुनगुना रहा था।

"उर की लाली से मुख की कालिख धो लो—
सर आज हथेली पर है बोली बोलो।"

मनमोहन ग़ौर से इस गाने को सुनने लगा। कितना मीठा स्वर था। विजय सिंह की आवाज़ थोड़ी-सी काँप रही थी। मनमोहन ही नहीं, सभी लोग मन्त्र-मुग्ध की भाँति उस गाने को सुन रहे थे। विजय सिंह रुक गया, उसने एक ठंढी साँस ली फिर उसने मनमोहन की ओर देखा, "क्यों, अपनी बात कहते-कहते रुक क्यों गए?"

मनमोहन ने झुँझला कर कहा, "बात किससे करूँ? तुम लोग सब के सब एक अजीब तरह की मस्ती में ग़र्क हो; भगवान जाने इस मस्ती का अन्त क्या होगा? लेकिन मैं कहता हूँ कि मैं इस कृत्रिम जीवन से ऊब गया हूँ। भेदों को छिपाते-छिपाते मैं आजिज़ आ गया हूँ। मैं किसी पर विश्वास नहीं कर सकता, किसी से खुल कर मिल नहीं सकता। और इस सब का असर यह हुआ कि मेरी आत्मा संकुचित हो गई है। और रही वीरता......वहाँ भी..." मनमोहन ने न जाने क्यों यह वाक्य अधूरा छोड़ दिया।

"वहाँ भी ?..." ज़रा कड़े स्वर में विजय सिंह ने पूछा।

"जाने भी दो, वह बात न कहूँगा। उसको सुन कर हममें से हरेक को धक्का सा लगेगा।"

"नहीं मनमोहन, बात उठी है तो उसे कही डालो!" मार्तण्ड ने कहा।

"अच्छी बात है। अगर कुरूप सत्य सुनना ही चाहते हो तो कहता हूँ। हम सब समझते हैं कि हम सब वीर हैं—है न? और मैं समझता हूँ कि हम सब कायर हैं। हम सब वीर थे, ऐसे वीर कि किसी भी देश को हमारी वीरता पर गर्व हो सकता था, और उसी वीरता के कारण हम सब प्राणों की बाज़ी लगा निकल पड़े हैं। लेकिन अब हम सब घोर कायर बन गए हैं। जिस तरह हम रहते हैं, जिस तरह हम काम करते हैं उससे हमारी वीरता तिल-तिल घुट कर मर गई। अब हमारे समान कोई कायर नहीं है!"

"मैं इसका सबूत चाहता हूँ!" खड़े होकर और छाती फुला कर विजय सिंह ने कहा।

"सबूत!...हा-हा-हा!" एक व्यंगात्मक हँसी हँसते हुए मनमोहन ने कहा, "हमारी हरएक हरकत में इसका सबूत है। आखिर हमारी यह कृत्रिम ज़िन्दगी क्यों? हम जो कुछ करते हैं वह चुरा-छिपा कर क्यों करते हैं? यह सब केवल इसलिए कि हम डरते हैं, हममें एक प्रकार का भय भर गया है; और यह भय ही कायरता है!"

विजय सिंह बैठ गया, "नहीं मनमोहन, यह भय नहीं है, यह बुद्धिमानी है। हम लोग जानते हैं कि जो कुछ हम करते हैं उसका दण्ड मृत्यु है, लेकिन फिर भी हम वही सब करते हैं। मृत्यु से हमें डर नहीं, लेकिन बेकार के लिए हम मृत्यु को अपनाना नहीं चाहते। आत्म-रक्षा को तुम भले ही कायरता कहो, मैं तो सिर्फ़ उसे बुद्धिमानी कहूँगा।"

मनमोहन ने विजय सिंह को देखा—उसकी भौंहें सिकुड़ी हुई थीं, उसके मत्थे पर बल पड़े थे—ऐसा मालूम होता था कि विजय सिंह ने उसके मन की बात कह दी हो, उसने एक ठंढी साँस ली "यही उत्तर, मैं भी अपने अन्दर

वाले तर्क को दे दिया करता हूँ, और इसी उत्तर में अपने कामों को ठीक साबित करने की कोशिश करता रहता हूँ। लेकिन विजय सिंह—संतोष नहीं होता, ज़रा भी संतोष नहीं होता। पीछे से हमला करना, अँधेरे में काम करना, अज्ञात में रहना! हमारी ज़िन्दगी सच्ची नहीं, सीधी नहीं। हमारा अस्तित्व एक भयानक झूठ है। माना कि एक बहुत बड़े काम के लिए हमें यह सब करना पड़ता है, लेकिन एक बड़े काम के लिए अपनी मनुष्यता को इतना गिरा लेना, जीवन के श्रेष्ठ आदर्शों से इतना अलग हो जाना—यह कहाँ तक उचित है?"

मनमोहन चुप हो गया। गहरा सन्नाटा छाया था और हर एक आदमी सोच रहा था। मनमोहन ने जो बात कह दी थी वह ऐसी नहीं थी कि उसकी उपेक्षा की जा सके; उसकी बात उस पाले की रात से भी अधिक टंढी थी—मनमोहन ने स्वयम् इसका अनुभव किया, फिर उसने धीरे से कहा मानो वह यह बात अपने से ही कह रहा हो, "बात कहाँ तक उचित है—यह प्रश्न ही क्यों? हमारे आदर्श ही क्या हैं? यही नहीं, हमारा जीवन ही क्या है? हममें हरएक वह काम करता है जिसमें उसे सुख मिलता है; और वह अपने काम के औचित्य को सिद्ध करने के लिए एक आदर्श गढ़ लेता है। हममें हिंसा है, और हमें उस हिंसा को तुष्ट करना है। हम मरते हैं इसलिए कि हमें मरना है। रोग और बेकारी से न मर कर हम दूसरों का हित करने के लिए मरते हैं। हम मारते हैं—और जिसे हम मारते हैं वह आज नहीं तो कल ज़रूर मरेगा। लेकिन उसके आज मरने से देश का कल्याण है, उसके हमारे हाथ से मरने से देश का कल्याण है, और इसीलिए हम मारते हैं..." मनमोहन कहते-कहते उठ खड़ा हुआ, "और हम ठीक करते हैं। हम बचने की कोशिश करते हैं, हम छिप कर काम करते हैं, हम पीछे से प्रहार करते हैं—यह सब अपने लिए नहीं, अपने आदर्श के लिए। हम में से हरएक के जीवित रहने ही से हमारा आदर्श पनप सकता है, हमारा काम बन सकता है।"

विजय सिंह ने कड़े और गम्भीर स्वर में कहा, "मनमोहन! चुप रहो! गाड़ी आने का वक्त हो रहा है!"

और दूर से ट्रेन की आवाज़ सुनाई पड़ी, रात के गहरे सन्नाटे को चीरती हुई। सब लोग उठ खड़े हुए। उस समय उन लोगों में एक अजीब तरह की स्फूर्ति आ गई थी। सब लोग रेलवे लाइन के आस-पास खड़े हो गए। इंजिन की सर्चलाइट उस अंधकार के कुछ थोड़े से भाग को प्रकाशमय बना कर अंधकार की भयानकता को और भी भयानक बना रही थी। ये पाँचों आदमी दरख्तों की आड़ में छिपे खड़े थे। गाड़ी आई और तेज़ी से निकल गई—रुकी नहीं।

विजयसिंह ने कहा, "अरे! यह क्या हुआ?"

"चुप रहो!" मनमोहन बोल उठा, "और मुझे सोचने दो। गाड़ी रुकी क्यों नहीं? क्या वे लोग जगह भूल गए? क्या वे लोग सो गए? क्या वे लोग उस गाड़ी में थे भी? मामला क्या है?" और वह प्रभानाथ की ओर घूमा, "प्रभानाथ हमें रायबरेली चलना होगा!"

"हाँ! हमें रायबरेली चलना होगा!" विजय सिंह ने समर्थन किया।

"लेकिन रायबरेली चलने से फ़ायदा?" मार्तण्ड ने पूछा, "इस रात के समय एक कार का स्टेशन पर रुकना और फिर वहाँ से चल देना! लोगों में शक हो सकता है। नहीं, हमें लखनऊ चलना चाहिए; वहीं पता लग सकता है।"

सब लोग कार पर बैठ गए; उमानाथ ड्राइव कर रहा था। विजय सिंह, मार्तण्ड, मनमोहन—ये तीनों पीछे थे, वीणा और प्रभानाथ आगे। कार चल रही थी और मनमोहन बोल रहा था—अपने से, "गाड़ी निकल गई—और अच्छा ही हुआ। लेकिन मुझे ताज्जुब हो रहा है कि मुझमें यह भावना क्यों उठ रही है! खतरे से यह झिझक, संघर्ष के प्रति यह उदासीनता—आखिर यह सब क्यों? क्या हम सब लोगों में यही भावना थी—क्या हम सब लोगों को गाड़ी निकल जाने से एक खुशी-सी हुई?"

"नहीं!" विजय सिंह ने कहा, "गाड़ी निकल जाने से मुझे अफ़सोस हुआ!"

"हूँ! देखता हूँ कि मेरी नर्व्ज़ (nerves) कुछ कमज़ोर हो रही हैं! जाने भी दो। अब लखनऊ चल कर उन लोगों से दरियाफ़्त करना है कि यह सब क्यों हुआ। प्रभानाथ—क्या हम लोग ट्रेन पहुँचने के पहले लखनऊ पहुँच जाएँगे?"

"करीब एक घण्टा पहिले!" प्रभानाथ ने उत्तर दिया।

"एक घण्टा तो बहुत समय होता है! यह एक घण्टा प्रगाढ़ निद्रा में डूबे हुए लखनऊ शहर में न बिता कर अगर हम यहीं, इस सड़क पर बितावें तो ज्यादा अच्छा होगा। वीणा जी! क्या कुछ थोड़ी-सी चा है?"

"हाँ! अभी थरमास की दूसरी बोतल भरी हुई है!" वीणा ने कहा।

"तो प्रभानाथ! कार रोक दो! हम लोग चा का एक-एक प्याला और पी लें!"

प्रभानाथ ने कार रोक दी। वीणा ने थरमास से निकाल कर सब को एक-एक प्याला चा दी।

इसी समय कार के पास आकर एक इक्का रुका। थानेदार रामप्रकाश अपने इलाक़े के सबसे बड़े ज़मीन्दार की दावत खा कर इक्के में बैठे घर लौट रहे थे। सड़क के बग़ल में एक मोटर कार को खड़ी देख कर थानेदार साहेब को शक हुआ। कांस्टेबिल भोला को उन्होंने यह पता लगाने को भेजा कि कार में बैठे हुए लोग कौन हैं और क्या कर रहे हैं।

भोला ने आकर प्रभानाथ से कहा, "क्या आप लोगों की मोटर खराब हो गई है? थानेदार साहेब का इक्का है—वहाँ! कहिए तो वह आप लोगों को रायबरेली तक पहुँचा दें।"

"नहीं, हमारी मोटर बिल्कुल ठीक है। हम लोग ज़रा चा वा पी रहे हैं।"

भोला ने लौट कर राम प्रकाश से कहा, "दारोग़ा जी, मोटर तो ठीक है। चार-पाँच आदमी हैं और साथ में एक औरत भी है। और वे लोग कुछ पी रहे हैं।"

"समझ गया ! साले बदमाश हैं। मालूम होता है किसी औरत को कहीं से भगाए लिए जा रहे हैं !" यह कह कर रामप्रकाश इक्के से ऊतर पड़े और कार की तरफ़ बढ़े।

प्रभानाथ ने ज़रा घबराहट के साथ कहा, "यह पुलिस-इंसपेक्टर तो बुरा हमारे पीछे पड़ा। अब क्या करना चाहिए ?"

"आने भी दो—देखो क्या होता है !" मनमोहन ने अपना पिस्तौल सम्हालते हुए उत्तर दिया।

रामप्रकाश कार के नज़दीक आ गए। उन्होंने प्रभानाथ से कहा, "क्या मैं जान सकता हूँ कि आप लोग कौन हैं, कहाँ से आ रहे हैं, कहाँ जा रहे हैं और यहाँ क्या कर रहे हैं ?"

उत्तर विजय सिंह ने दिया, "पहले हम यह जानना चाहते हैं कि आप कौन हैं और आपको क्या हक़ है कि आप हम लोगों से यह सवाल करें !"

"मैं सब इंसपेक्टर पुलिस हूँ, इस इलाक़े का इंचार्ज हूँ।"

"आप बहुरूपिये हैं !" मनमोहन ने कहा और हँस पड़ा, "जाइये थानेदार साहेब, अपना काम देखिये।"

"भोला !" रामप्रकाश ने आवाज़ दी, "ज़रा दियासलाई तो लाना, इन लोगों की शक्ल देखूँ।" और भोला ने जो वहीं खड़ा था दियासलाई जलाई। थानेदार रामप्रकाश सहमकर दो क़दम पीछे हटे, "अच्छा तो आप लोग नक़ाबपोश हैं यानी बदमाश हैं। आप लोगों को थाने पर चलना होगा !" अपना रिवाल्वर निकालते हुए उन्होंने कहा।

"बेवक़ूफ़ कहीं का। ख़्वामखाह जान देने आया है, तो ले !" और इसके पहले कि रामप्रकाश अपना सर्विस रिवाल्वर तानें, मनमोहन के पिस्तौल की गोली रामप्रकाश के मत्थे में घुस गई। "मार डाला सालों ने !" कहते हुए रामप्रकाश वहीं गिर पड़े।

भोला रामप्रकाश की चीख सुनकर भागा, लेकिन विजयसिंह ने कड़क कर

कहा, "खबरदार जो भागे—हम तुम्हें मारेंगे नहीं !" भोला रुक गया। सब लोगों ने उतर कर भोला को पेड़ से बाँध दिया। इसके बाद मनमोहन ने रामप्रकाश का रिवाल्वर अपने क़ब्ज़े में किया। इक्का वाला गुम-शुम बेहोश-सा बैठा था। उन लोगों ने उसके हाथ-पैर बाँधकर उसे इक्के में ही डाल दिया। फिर कार लखनऊ की तरफ़ रवाना हो गई।

जैसे ही कार स्टेशन के पास रुकी वैसे ही इलाहाबाद वाली गाड़ी आ गई। दो क्रान्तिकारी गाड़ी से उतरे, इन लोगों के हाथ यह काम सिपुर्द किया गया था कि ये गाड़ी की ज़ंजीर खींचकर निर्दिष्ट स्थान पर गाड़ी रोक दें।

मनमोहन ने एक से पूछा, "क्यों, क्या हुआ जो तुमने गाड़ी नहीं रोकी !"

अगले डब्बे की ओर इशारा करते हुए उसने उत्तर दिया, "देखते हो !"

मनमोहन ने देखा कि गोरी फ़ौज की एक कम्पनी उस डब्बे से उतर रही है।

"हाँ, समझ गया। अच्छा, अब एक महीने के लिए हमें ग़ायब होना है। हम लोगों को ज़रा सावधान रहना पड़ेगा।"

२

सब लोग चले गए; कार पर केवल तीन व्यक्ति रह गए, प्रभानाथ, वीणा और मनमोहन। मनमोहन आँखें बन्द किये हुए पिछली सीट पर बैठा था। प्रभानाथ ने मनमोहन से कहा, "कहिये, अब आप कहाँ जाइयेगा ?"

मनमोहन ने चौंककर आँखें खोल दीं। उसने अपने चारों ओर देखा, मानो वह उस जगह को पहचानने की कोशिश कर रहा हो जहाँ वह है। फिर उसने धीरे से कहा, "मैं खुद नहीं जानता कि मैं कहाँ जाऊँगा !" और उसने मुसकरा दिया। गाड़ी से उतरते हुए उसने कहा, "मैंने सोचा नहीं था कि कहाँ जाना होगा। मेरा घर-बार कुछ भी नहीं है। सोचा था लखनऊ में कुछ दिन रहूँगा, लेकिन देखता हूँ कि मुझे यहाँ से चल ही देना चाहिये।"

प्रभानाथ आश्चर्य चकित मनमोहन को देख रहा था। उसकी बातें अजीब तरह की थीं—उसे कौतूहल हुआ। उसने कहा, "अगर आप इतने ही फ़ालतू हैं जितना आपने अपने को इस समय प्रदर्शित किया है तब तो आपको मेरे यहाँ कुछ दिन रहने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये !"

"मुझे तो कोई आपत्ति नहीं—आप ही ने मुझसे कार से उतरने को कहा था !" मनमोहन हँस पड़ा और वह कार में फिर से बैठ गया।

जिस समय ये लोग उन्नाव पहुँचे, पण्डित रामनाथ तिवारी पूजा समाप्त करके उठे थे। वीणा अपने कमरे में चली गई, प्रभानाथ मनमोहन को साथ लेकर अपने पिता के पास गया। "यह मेरे मित्र मनमोहन हैं। मेरे क्लास-फ़ेलो थे, आज सुबह आए हैं।" प्रभानाथ ने अपने पिता से मनमोहन का परिचय कराया।

"मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई !" मनमोहन के नमस्कार का उत्तर देते हुए रामनाथ ने कहा, "इनका असबाब वग़ैरह रखवाओ !"

प्रभानाथ ने कहा, "सिर्फ़ दिन भर के लिए ये कानपुर से आए हैं।"

रामनाथ तिवारी से कुछ थोड़ी-सी बातें करके दोनों अन्दर गए। पीछे वाले बरामदे में वीणा चा और नाश्ता लिए बैठी इन दोनों का इन्तज़ार कर रही थी। तीनों ने बैठकर चा पी।

"अब क्या हो ?" नाश्ता समाप्त करके मनमोहन ने पूछा।

"अब सोया जाय !" प्रभानाथ ने उत्तर दिया।

"आप लोग सोइये, मुझे तो स्कूल जाना है। अगर सम्भव हुआ तो स्कूल में थोड़ा-सा सो लूँगी।"

प्रभानाथ मनमोहन को अपने कमरे में ले गया। मनमोहन को लिटाकर प्रभानाथ जब लौटा, वीणा बरामदे में मौन बैठी कुछ सोच रही थी। वह अपने विचारों में इतनी खोई हुई थी कि उसे प्रभानाथ के आने का पता तक न लगा।

प्रभानाथ वीणा की कुरसी के पीछे खड़ा हो गया। वीणा के कंधे पर हाथ रखते हुए उसने कहा, "कहो, क्या सोच रही हो ?"

वीणा वैसी ही बैठी रही, उसने केवल अपना सर उठा दिया। प्रभानाथ की आँखों से अपनी आँखें मिलाते हुए उसने कहा, "प्रभा! मैं सोच रही थी कि जो कुछ हो रहा है, वह ग़लत हो रहा है। और मनमोहन को यहाँ ठहरा कर तुमने अच्छा नहीं किया।"

"क्यों?"

"मेरा ऐसा खयाल है कि मनमोहन का नाम मनमोहन नहीं है—उसका नाम प्रभाकर है।"

प्रभानाथ चौंक उठा। 'प्रभाकर' नाम से वह परिचित था; वही नहीं, सारी दुनिया उस नाम से परिचित थी। प्रभाकर के नाम करीब पन्द्रह वारंट थे, और वह लापता था।

प्रभानाथ कुछ सोचता रहा, फिर उसने कहा, "लेकिन वह प्रभाकर नहीं हो सकता। जिस तरह की बातें वह करता रहा है, उस तरह की बातें प्रभाकर के मुख से सुनने की मैं कल्पना तक नहीं कर सकता।"

वीणा उठ खड़ी हुई। प्रभानाथ के पास, बहुत पास आकर उसने कहा, "नहीं प्रभा! जिस तरह की बातें मनमोहन ने कीं, उस तरह की बातें एक ऐसा ही आदमी कर सकता है जिसने सिद्धान्त और कर्म के साथ अपना जीवन तन्मय कर दिया हो। और तुमने देखा—उस सब इंसपेक्टर को गोली मारने वाला आदमी कोई अनाड़ी नहीं हो सकता।"

दोनों एक दूसरे को थोड़ी देर तक मौन देखते रहे। वीणा ने फिर कहा, "प्रभा! क्या तुम पीछे नहीं लौट सकते? यह सब ग़लत है—एकदम ग़लत है। न जाने क्यों मेरे अन्दर एक भय समा गया है; ऐसा भय जिसका मैंने पहले कभी अनुभव न किया था।"

प्रभानाथ एकाएक ज़ोर से हँस पड़ा, "नहीं, भय करने की कोई आवश्यकता नहीं। हमें मरना है—एक न एक दिन अवश्य, फिर चिन्ता क्यों?" और प्रभानाथ ने वीणा को आलिंगनपाश में कस लिया।

उस समय वीणा का सारा शरीर पुलक से ढीला पड़ गया था। दोनों के

अधर मिले—और एकाएक उन्हें एक अजीब तरह की कराह सुनाई दी। दोनों ने चौंककर एक-दूसरे को छोड़ दिया।

प्रभानाथ ने अपने चारों ओर देखा, कहीं कोई न था। मनमोहन के कमरे का दरवाज़ा बन्द था। प्रभानाथ ने कहा, "यह कराह किसकी थी?"

"मैं नहीं जानती—नहीं जानती!" वीणा ने प्रभानाथ के कंधे पर अपना सर रख दिया। और प्रभानाथ ने देखा कि वीणा काँप रही है, उसकी आँखों में आँसू भर आए हैं।

३

शाम के समय जब प्रभानाथ मनमोहन के कमरे में गया, उसने देखा कि मनमोहन पलँग पर आँखें बन्द किये हुए लेटा है। प्रभानाथ के पैरों की आहट पाते ही उसने आँखें खोल दीं, और मुसकराते हुए उसने कहा, "बड़ी अच्छी नींद आई। तबीअत एकदम हलकी हो गई। तुम भी सो लिए न!"

प्रभानाथ ने सामने का दर्वाज़ा खोल दिया, उस समय आसमान में बादल घिरे हुए थे। उत्तरी हवा का एक ठंठा झोका कमरे में आया, और मनमोहन उठ बैठा। प्रभानाथ ने कुरसी उठा कर पलँग के पास डाल ली और वह उस कुरसी पर बैठ गया। मनमोहन ने कहा, "तुम्हारा बँगला कितना अच्छा है, कितना शान्त है। क्यों प्रभानाथ इस सुख और इस वैभव को छोड़ कर तुम हम लोगों के कीचड़ में कैसे फँस गए?"

प्रभानाथ ने कुछ सोच कर जवाब दिया, "मैं नहीं जानता। शायद अपने भीतर से मुझे एक प्रेरणा मिली!"

"अपने भीतर से एक प्रेरणा मिली!" मनमोहन खिलखिला कर हँस पड़ा, "भीतर से प्रेरणा मिलती है—आज पहली बार ऐसी मज़ेदार बात सुन रहा हूँ। नहीं मिस्टर प्रभानाथ, इस तरह की बात से मुझे धोखा देने की कोशिश करना बेकार है!"

प्रभानाथ का चेहरा तमतमा उठा; उसने कहा, "आप मुझे झूठा कह कर मेरा अपमान कर रहे हैं, मिस्टर मनमोहन !"

"देखो, नाराज़ होने की कोई बात नहीं; मैंने तुम्हें झूठा तो नहीं कहा, बहुत सम्भव है कि तुम सच ही कह रहे हो। ऐसी हालत में तुम खुद अपने को धोखा दे रहे हो। खैर जाने भी दो इस बात को। अब एक सवाल और है—वीणा का और तुम्हारा कैसा सम्बन्ध है ? क्या यह बात ठीक है कि तुम्हें इस दल में लाने का श्रेय वीणा मुखर्जी को है ?"

प्रभानाथ खड़ा हो गया, तन कर। "आप मेरे अतिथि हैं, मिस्टर मन-मोहन, लेकिन इसके ये अर्थ नहीं कि आप इस तरह की अनाप-शनाप बातें करके मेरा और वीणा का अपमान करें। व्यक्तिगत मामलों में इस तरह दिल-चस्पी लेना मनुष्य में संस्कृति का अभाव प्रदर्शित करता है। अगर आप अब आगे इस तरह की बातें करेंगे तो मुझे भी अशिष्ट होना पड़ेगा।"

मनमोहन ने प्रभानाथ का हाथ पकड़ कर जबरदस्ती बिठलाते हुए कहा, "यह व्यक्तिगत मामला नहीं है, मिस्टर प्रभानाथ; क्रान्तिकारी के पास व्यक्ति-गत जीवन के नाम की कोई चीज़ नहीं होती, यह आप हमेशा याद रखियेगा; इस तलवार की धार वाले रास्ते पर आने के बहुत पहिले ही आपको यह समझ लेना चाहिये था कि आप व्यक्तिगत-रूप से मर चुके। आप एक संस्था के अंग-मात्र रह गए हैं जिस पर संस्था का पूर्ण अधिकार है। अगर आपको आज संस्था से यह आदेश मिले कि आप वीणा को गोली मार दें तो आपको वीणा के प्रति आपका प्रेम कभी भी उस आदेश के पालन करने से नहीं रोक सकता। और इसीलिए, इस संस्था के प्रमुख प्रतिनिधि होने के नाते मुझे आपसे यह सब पूछने का पूर्ण अधिकार है !"

प्रभानाथ निष्प्रभ हो गया और उसने अपना सर झुका लिया। इस हालत में वह कुछ देर बैठा रहा, फिर उसने धीरे से कहा, "शायद आप ठीक कहते हैं, मिस्टर मनमोहन, लेकिन इसके पहिले कि मैं आपको अपनी कैफ़ियत दूँ, मुझे यह भी जान लेना चाहिये कि आप कौन हैं।"

"मैं कौन हूँ ?" मनमोहन चौंक उठा, "क्यों, यह प्रश्न कैसे उठा ?"

"इस तरह कि आपका नाम मनमोहन नहीं है, और हम लोगों में से कोई भी, सरदार को छोड़ कर, आपको जानता भी नहीं है। जब तक मैं यह न जान लूँ कि मुझसे इस प्रकार के प्रश्न करने वाला कौन है तब तक..." प्रभानाथ कहते-कहते रुक गया। उसी समय वीणा ने कमरे में प्रवेश किया। वह स्कूल से पढ़ा कर लौटी थी।

वीणा ने आते ही कहा, "कहिये ! आप लोगों में क्या बातें हो रही थीं जो आप लोग इतना गम्भीर हैं ?"

उत्तर मनमोहन ने दिया, "जो बातें हो चुकी हैं उन्हें दुहराना बेकार है; मिस्टर प्रभानाथ से आपको वह बातें मालूम ही हो जाएँगी। और इसीलिए वे बातें जारी भी रहेंगी; क्योंकि मैं जो बातें प्रभानाथ से करूँगा वे आपसे छिपी न रहेंगी !"

इस बार मनमोहन प्रभानाथ की ओर मुड़ा, "हाँ ! तो आप जानना चाहते हैं कि मैं कौन हूँ ! और मैं आपको बतलाता हूँ, इसलिए कि मेरी वजह से आप लोग कुछ थोड़े-से खतरे में हैं !" मनमोहन मुसकराया, "इसीलिए बतलाता हूँ ताकि आप उस खतरे से आगाह हो जायँ और फिर आप निर्णय करें कि मैं आप लोगों का आतिथ्य स्वीकार करूँ या नहीं। आप लोगों ने प्रभाकर का नाम तो सुना ही होगा, उसी प्रभाकर का नाम जिसके पीछे पुलिस बुरी तरह पड़ी है। तो मैं वही प्रभाकर हूँ, मिस्टर प्रभानाथ ! और जहाँ तक तुम्हारी बात है, उसे पूछ कर मैंने गलती की, वह इतनी स्पष्ट है कि उसके सम्बन्ध में तुमसे पूछना मुझमें कल्पना का अभाव ही प्रदर्शित करेगा !"

कुछ थोड़ी देर तक तीनों मौन रहे; मनमोहन ने फिर कहा, "मैंने तुम्हें अपना पूरा परिचय दे दिया; अब इस बात का निर्णय तुम्हारे हाथ में है कि मैं यहाँ अधिक ठहरूँ या नहीं। इतना मैं जानता हूँ कि लोग 'प्रभाकर' नाम को ही जानते हैं, प्रभाकर को नहीं जानते। प्रभाकर एक छाया-सा आता है और धुँआ-सा गायब हो जाता है, उसे सहज ही पकड़ना कठिन काम है।

फिर भी एक सुरक्षित स्थान तो उस बेचारे के पास होना ही चाहिए। तुम्हारे पिता ताल्लुक़दार हैं, आनरेरी मैजिस्ट्रेट हैं, सरकार के भक्त हैं; यहाँ, इस बँगले में प्रभाकर हो सकता है, इसकी कोई कल्पना तक नहीं करेगा, और इसी से मैं तुम्हारे साथ चला आया हूँ। इरादा था कि चार-छै दिन यहाँ रुकूँगा, पर अब वह इरादा भी बदल रहा है। लम्बी दुनिया मेरे सामने पड़ी है, और उस दुनिया में स्थान की कमी नहीं है—निरापद और निर्विघ्न; सिर्फ़ इंसान के पास आँखें होनी चाहिएँ !"

प्रभानाथ ने कहा, "लेकिन आप से जाने को कौन कह रहा है, मैं तो यह कहता हूँ कि आप यहाँ ज़रूर ठहरें, दस दिन, पन्द्रह दिन—जब तक आप का जी चाहे।"

इसी समय बाहर से आवाज़ आई, "प्रभा !"

आवाज़ रामनाथ तिवारी की थी।

"जी, आया !" और प्रभानाथ चला गया। अब वीणा और मनमोहन रह गए !

थोड़ी देर तक दोनों मौन बैठे रहे, एक-दूसरे की ओर एकटक देखते हुए, अन्त में वीणा ने उस मौन को तोड़ा, "मिस्टर मनमोहन—आप कौन हैं इसका अनुमान मैंने पहले ही कर लिया था। अब एक सवाल मैं आपसे कर रही हूँ, ठीक-ठीक उत्तर दीजियेगा !"

मनमोहन हँस पड़ा, "मैं आप का सवाल जानता हूँ। आप यह पूछना चाहती हैं कि मैं यहाँ क्यों ठहर रहा हूँ; है न ऐसा ! और यहाँ पर मेरा रुकना आपको पसन्द नहीं।"

"आप शायद ठीक कहते हैं !" वीणा ने धीरे-से कहा।

"और मैं यह भी बतला दूँ कि मेरा यहाँ रुकना आप को पसन्द क्यों नहीं है। आप को प्रभानाथ के हिताहित का इतना खयाल नहीं है जितना आप को अपने सुख और अपनी तुष्टि का खयाल है। आप प्रभानाथ से प्रेम करती हैं,

और आप प्रभानाथ को अकेले ले कर अपने सपनों की दुनिया में रहना चाहती हैं। उस दुनिया में दूसरों का आना आप को पसन्द नहीं !"

वीणा ने ज़रा प्रखर स्वर में कहा, "आप चुप रहिये ! यह सब कहने का आप को कोई अधिकार नहीं !"

"मुझे पूरा अधिकार है, वीणा जी ! मुझे तो यहाँ तक अधिकार है कि मैं आप लोगों से प्रेम करने को मना कर दूँ। लेकिन नहीं—यह सब करने की मुझे कोई आवश्यकता नहीं !" एकाएक मनमोहन का स्वर जो शिशिर ऋतु की उत्तरीय हवा की भाँति रूखा और कठोर था, मलय-समीर की भाँति कोमल हो गया। उसकी पथराई आँखों में एक अजीब तरह की चमक आ गई, "नहीं, वीणा जी—यह सब करना एक भयानक पाप होगा। मैं जानता हूँ कि वह आदमी जिसका सुख छिन चुका है, जिसके प्रेम की भावना तिल-तिल घुट कर मर चुकी है—वह अपनी प्रतिहिंसा में इतना नीचे गिर सकता है वह दूसरों के सुख; दूसरों के प्रेम को नष्ट करने में ही सुख समझे; और कभी-कभी मुझ पर भी यह कुत्सित भावना अपना प्रभुत्व जमाने का प्रयत्न करती है। लेकिन नहीं—मैं अपने को रोक सकता हूँ। आप का प्रेम फले-फूले, मुझे आप के प्रेम से ईर्ष्या नहीं होनी चाहिए बल्कि एक तरह का संतोष होना चाहिए। पर आप भी एक बात याद रखिये। अपने प्रेम में आप अपने को खो न दीजियेगा। आप यह न भूल जाइयेगा कि दुनिया को सुखी बनाने के लिए आपने अपने को शैतान के हाथ बेंच दिया है। दुनिया को आसमान पर उठाने के लिए आप स्वयम् रसातल में पहुँच चुकी हैं, जहाँ मनुष्यता नाम की चीज़ का कोई अस्तित्व नहीं है। यह नारी भावनाएँ, यह ममता, यह प्रेम, यह सपने—ये सब के सब आप के साथ तभी तक हैं जब तक ये आप के एक मात्र सिद्धान्त के संघर्ष में नहीं आते। ये सब के सब जीवन में एक क्षण के लिए आकर निकल जाने वाले, झूठ हैं—सत्य है केवल एक सिद्धान्त, देश के हित के लिए अपने को मिटा देने वाला एक सिद्धान्त !"

मनमोहन कह रहा था और वीणा का मुख पीला पड़ता जा रहा था, उसका सारा शरीर अवसन्न-सा पड़ गया था, उसकी आत्मा में एक असह

भयानक अन्धकार भर गया था। मनमोहन को सम्भवतः वीणा की इस मानसिक स्थिति का पता था। कुछ देर तक वह वीणा की तरफ़ कौतूहल के साथ देखता रहा, फिर एकाएक वह उठ खड़ा हुआ; "अब भी समय है, वीणा जी! हमारा मार्ग निराशा का मार्ग है और निराशा का मार्ग है! हम सब अन्दर से यह जानते हैं, खुल कर कहने की इच्छा नहीं होती। और हमें उन लोगों से बहुत बड़ा खतरा है, जिनके अन्दर जीवन की सुनहली किरणें खेल रही हैं। हम सब संयत आत्महत्या के पथ पर हैं। जिन्हें जीवन के प्रति मोह है, उनके लिए हमारे दल में कोई स्थान नहीं!" और मनमोहन ज़ोर से हँस पड़ा।

मनमोहन की उस हँसी से वीणा सर से पैर तक सिहर उठी।

४

रात के समय रामनाथ तिवारी के पास प्रभानाथ वीणा और मनमोहन बैठे। रामनाथ तिवारी कुछ थके हुए थे, उस दिन उन्होंने अदालत में कुछ कांग्रेसवालों को सज़ा दी थी। रामनाथ ने प्रभानाथ से कहा, "समझ में नहीं आता; ये सब के सब खुद आते हैं। गवर्नमेण्ट का कहना है कि समझा-बुझाकर इनसे माँफ़ी मँगवा कर इन्हें छोड़ दूँ। लेकिन माफ़ी माँगना तो दूर रहा ये मुक़दमे की पैरवी तक नहीं करते और जेल चले जाते हैं। आखिर यह क्यों?"

मनमोहन हँस पड़ा, "ये युद्ध कर रहे हैं और इनके युद्ध करने का यही तरीक़ा है!"

रामनाथ ने कहा, "जानता हूँ, और हँसता हूँ इस तरीक़े पर। लेकिन न जाने क्यों, आज इस तरीक़े पर हँसने की तबीअत नहीं होती। इस युद्ध से ब्रिटिश सरकार हैरान है—इतना मैं जानता हूँ। और ये बदमाश ऐसी कोई हरकत भी तो नहीं करते जिससे इनकी अक़्ल दुरुस्त की जा सके। मैं जानता हूँ कि एक दफ़े मशीनगन लगा दी जाय, एक दफ़े ये गोली से भून दिये जायँ; और मामला एकदम खत्म हो जाय। लेकिन गोली चलाई किस पर जाय, मशीनगन से भूने कौन जाँय? ये अहिंसा पर चलने वाले आदमी हिंसा का अवसर भी तो नहीं देते!"

रामनाथ कुछ थोड़ी देर मौन रहे और फिर बोले, "मैं देखता हूँ कि इस लड़ाई से अंग्रेज़ परीशान हैं। उनकी समझ में नहीं आ रहा है कि क्या किया जाय! लोग हँसते हुए जेल जाते हैं, जेल की कठिनाइयाँ बर्दाश्त करते हैं। और अब तो इतने आदमी जेलों में भर गए हैं कि वहाँ भी जगह नहीं। यह अशान्ति जो खड़ी हो गई है—उसको किस तरह दूर किया जाय? मुख्य प्रश्न यह है!"

वीणा बोल उठी, "तो दद्दुआ, क्या आप समझते हैं कि यह अहिंसा की लड़ाई सफल हो सकती है!"

"लड़ाई—लड़ाई! कैसी लड़ाई? क्या इसी को लड़ाई कहते हैं? लोग जेल जाते हैं—जाएँ! इससे सरकार का क्या बिगड़ने का? लेकिन इस सबके पहले एक सवाल और उठता है—यह अहिंसा कब तक क़ायम रह सकती है? इतना ज़ब्त—इतना त्याग जो कुछ महात्मा गांधी सिखलाते हैं, यह देवताओं की चीज़ें हैं; मनुष्य के बस की बात नहीं है। मैं जानता हूँ कि महात्मा गांधी महान हैं, वे तपस्वी हैं। कभी-कभी तो मुझे यह शक होने लगता है कि कहीं

जाना है—सन् १८५७ का ग़दर ले लो। उन दिनों लोग अशस्त्र थे और अंग्रेज़ों की फ़ौज यहाँ नहीं के बराबर थी। फिर उन दिनों न हवाई जहाज़ बने थे न मशीनगनें बनी थीं। इतना सब होते हुए भी क्या हुआ? हिन्दुस्तानियों ने हिन्दुस्तानियों को मारा—उन्होंने अकेले युद्ध ही नहीं किया, उन्होंने हत्याएँ भी कीं। हज़ारों आदमियों को जो बिल्कुल निर्दोष थे उन्होंने फाँसी पर लटकाया और हँसते हुए तमाशा देखा।"

कुछ रुककर रामनाथ ने फिर कहा, "नहीं, हिंसा की बात ही नहीं उठती। असल में सवाल मेरे सामने यह है कि यह अहिंसा की लड़ाई है क्या बला? इतने दिन हो गए और यह लड़ाई बराबर चलती जा रही है। हम हिंसा का जवाब उससे भी भयानक हिंसा से देकर उसे हरदम के लिए कुचल सकते हैं पर इस अहिंसा का जवाब ही हमारे पास नहीं है!"

रामनाथ ने पान खाया, इसके बाद वह मुसकराए, "मैं सच कहता हूँ, प्रभा! लाख सैद्धान्तिक विरोध होते हुए भी मुझे इस गांधी के व्यक्तित्व के आगे झुकना पड़ता है। इन अपाहिजों में, इन नपुंसकों में, इन अकर्मण्य कायरों में कौन सी जान इसने फूँक दी है, कौन-सा जादू इसने भर दिया है! समझ में नहीं आता!"

प्रभानाथ ने कहा, "दद्दुआ! तो क्या आप समझते हैं कि यह अहिंसा का सिद्धान्त सही है?" और उसने अपने पिता पर एक अर्थ-भरी दृष्टि डाली।

रामनाथ ने प्रभानाथ की दृष्टि का मतलब समझ लिया। उन्होंने बहुत गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया, "प्रभा! दया को घर से अलग कर देने वाले में स्वराज्य, स्वतन्त्रता नाम की किसी भी चीज़ के प्रति कोई सहानुभूति नहीं है, इतना समझ लेना। न मैं कांग्रेस पर विश्वास करता हूँ, न अहिंसा पर। मैं जानता हूँ कि अहिंसा का सिद्धान्त ग़लत है क्योंकि वह असम्भव है, ठीक उसी तरह जैसे संसृति का एक मात्र नियम विषमता होने के कारण समता का सिद्धान्त असम्भव है। पर मैं इतना ज़रूर कह सकता हूँ कि सब-कुछ देखते हुए भी मैं कभी-कभी सोचने लगता हूँ कि अगर अहिंसा का सिद्धान्त सम्भव हो सकता तो वह मानवता के लिए अवश्य हितकर होता। 'तुम जो कुछ बोओगे

वही काटोगे, !' अंग्रेज़ी की यह कहावत हमारे जीवन पर पूरी तौर से लागू होती है। हिंसा का उत्तर हिंसा है, और अहिंसा का उत्तर अहिंसा ही हो सकता है। मनुष्य में बुराई-भलाई दोनों ही हैं। तुम बुराई करके मनुष्य की बुराई को ही भड़का सकते हो और भलाई करके दूसरों की भलाई को विकसित कर सकते हो।"

मनमोहन एकाएक उठ खड़ा हुआ। उस समय उसका मुख कुछ अजीब तरह से विकृत हो गया था। उसने कड़े स्वर में कहा, "यह एकदम ग़लत बात है—एकदम ग़लत। मैं इस पर ज़रा भी विश्वास नहीं करता।" और वह वहाँ से उठ कर चल दिया।

मनमोहन के इस बर्ताव से रामनाथ चौंक उठे। कुछ देर तक वह उस ओर जिधर मनमोहन गया था आश्चर्य से देखते रहे, फिर उन्होंने प्रभानाथ से कहा, "तुम्हारे साथी या तो बदतमीज़ हैं या पागल हैं। यह हैं कौन।?"

प्रभानाथ ने बात बनाई, "ददुआ यह फ़िलासफ़र हैं और इसलिए यह सनकी हैं। इनकी बात का आप बुरा न मानियेगा।"

५

मनमोहन जब घूम कर लौटा, रात हो गई थी। मनमोहन की चारपाई प्रभानाथ की चारपाई के बग़ल में ही पड़ी थी, और प्रभानाथ उस समय कुछ थका-सा बिस्तर पर लेटा था। मनमोहन को देखते ही वह उठ बैठा, "क्यों आप चले कहाँ गए थे? आप का खाना रक्खा है!"

अपनी चारपाई पर बैठते हुए मनमोहन ने कहा, "मैं आज खाना नहीं खाऊँगा, मुझे भूख नहीं!" कुछ रुक कर उसने फिर कहा, "प्रभा! तुम्हारे पिता की बातें सुनकर मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि वे इतने गिरे हुए नहीं हैं जितना लोगों ने उन्हें समझ रक्खा है!"

प्रभानाथ मुसकराया, "और न इतने बेवकूफ़ हैं जितना तुमने उन्हें समझ

रक्खा है। आज तुमने जो कुछ किया उसकी पुनरावृत्ति न होनी चाहिये। तुम उन्हें जानते नहीं ! आखिर तुम उस समय इस तरह चल क्यों दिये थे ?"

"चल क्यों दिया था ? प्रभा ! तुम विश्वास न करोगे, लेकिन मैं सच कहता हूँ मैं तुम्हारे पिता से डरने लगा हूँ ! उस आदमी ने यह सब कहाँ सीखा, कब सोचा, कैसे समझा ? एक-एक बात जो उसने कही, कितनी तीव्र थी, कितनी कटु थी और साथ-साथ..." मनमोहन के मत्थे पर बल पड़ गए, "और अगर ग़लत भी थी तो ऐसी कि ग़लती आसानी से पकड़ी नहीं जा सकती। उस आदमी के सामने जाने में, उससे बात करने में मुझे भय लगता है !"

"लेकिन मुझ पर तो उनकी बातों का असर नहीं पड़ता !" प्रभानाथ ने कहा।

"इसलिए कि तुम उनकी बात सुनते ही नहीं। तुम उनके इतने निकट हो कि तुम्हारे अन्दर वाले भय ने उपेक्षा का रूप धारण कर लिया है। प्रभा ! मैं कल सुबह यहाँ से चल दूँगा !"

"यह क्यों ?"

"मैं भाग रहा हूँ ! कायर की भाँति; पर भागने में ही मेरा कल्याण है। इस हालत में जबकि अपने सिद्धान्तों के प्रति मुझमें एक हलका-सा अविश्वास पैदा हो चुका है, मैं नहीं चाहता कि उन सिद्धान्तों पर कोई बाहरी गहरा धक्का लगे। अन्तर्द्वन्द्व की पीड़ा से बढ़ कर और कोई पीड़ा नहीं, और इसीलिए अन्तर्द्वन्द्व से मैं बचना चाहता हूँ !"

प्रभानाथ ने आश्चर्य से मनमोहन की ओर देखा और मनमोहन हँस पड़ा, "यह सब मेरी नर्व्स (nerves) की वजह से है। तुम सोचते होगे कि मैं इस तरह की बहकी-बहकी बातें क्यों करता हूँ !" और मनमोहन एकाएक बहुत अधिक गम्भीर हो गया, "सुनो प्रभानाथ ! मैं थक गया हूँ—बहुत अधिक थक गया हूँ। आखिर मैं मनुष्य हूँ; मेरी शक्तियाँ सीमित हैं। अपने को एक हद तक ही दबाया जा सकता है। मैं कहता हूँ कि मेरा अस्तित्व एक

भयानक झूठ है। मेरे सिद्धान्त में सत्य है, इसका निर्णय भी तो मैं नहीं कर सकता! मेरे सिद्धान्त पर लोग प्रहार करते हैं, मैं उस प्रहार का उत्तर भी तो नहीं दे सकता। और इस सब का परिणाम भयानक होता है। अपने सिद्धान्त पर वादविवाद करके, उसके पक्ष में बार-बार तर्क देकर मनुष्य को उस सिद्धान्त पर दृढ़ रहने को जो बल मिलता है, मुझे तो वह भी नसीब नहीं!"

प्रभानाथ ने दबी ज़बान कहा, "लेकिन मनमोहन! हमें दूसरों से तर्क करने की क्या आवश्यकता? हमारा कर्तव्य तो यह है कि हम अपने विश्वासों पर दृढ़ रह कर कर्म करें। तर्क विश्वास का विरोधी है, तर्क का अन्त है अविश्वास!"

मनमोहन मुसकराया, "यही तो मुसीबत है प्रभानाथ! मैं जानता हूँ कि तर्क का अन्त है अविश्वास, केवल उस समय जब वह तर्क अपने अन्दर उठ खड़ा हो। हम स्वयम् अपने से जो तर्क करते हैं वह सत्य को ढूँढने के लिए करते हैं, और सत्य है अविश्वास से भरा हुआ एक भयानक अन्धकार। विश्वास पर क़ायम रहने के लिए यह ज़रूरी है कि हम अपने से तर्क न करें बल्कि हम दूसरों से तर्क करें। दूसरे से हम तर्क करते हैं, सत्य को पाने के लिए नहीं, बल्कि दूसरे को अर्थात अपने विपक्षी को तर्क में पराजित करके उस पर अपना व्यक्तित्व हावी करने के लिए, उसे अपना अनुयायी बनाने के लिए। दूसरे से तर्क करने के समय हममें अपने विश्वास की मादकता रहती है, हम अपने सिद्धान्त के अन्धविश्वासी पुजारी की कट्टरता को लेकर मैदान में आते हैं। नहीं प्रभानाथ! मेरी मुसीबत यह है कि मुझे दूसरों से तर्क करने का मौक़ा न मिलने के कारण अपने से ही तर्क करना पड़ता है!"

मनमोहन बिस्तर पर लेट गया, उसने फिर कहा, "और प्रभानाथ, मैं एक बात तुमसे भी कहूँगा। तुमने इस मार्ग में आकर ग़लती की, इस जीवन को अपनाने में तुमने जल्दबाजी की। तुममें पुरुषत्व है—मैं मानता हूँ; तुम मृत्यु से खेल सकते हो। साथ ही यौवन की उमंग और विश्वास के पागलपन से तुम भरे हुए हो। लेकिन मैं पूछ रहा हूँ कि यह सब कब तक? खेल एक खेल ही है—थोड़े से समय के लिए। खेल का कौतूहल तभी तक क़ायम रह सकता

है जब तक उसे तुम केवल खेल समझो। पर जब वह खेल ज़िन्दगी ही बन जाय तब उसका सारा कौतूहल जाता रहता है, तब उसमें एक प्रकार की भयानक मनोटनी (Monotony) घुस आती है। मृत्यु जीवन का अन्त है—यह स्पष्ट है, लेकिन उस मृत्यु से समस्त जीवन को विषाक्त बना लेना जीवन का उपहास है। ज़रा इस पर विचार कर लो प्रभानाथ—अपने अन्दर इस पर अच्छी तरह तर्क कर लो और फिर आगे बढ़ो! अभी समय है!"

और मनमोहन ने देखा कि प्रभानाथ सो रहा है। उसने जो कुछ कहा वह एक ग़ाफ़िल आदमी से कहा। दाँत किटकिटाते हुए उसने कहा, "मूर्ख! मूर्ख! मूर्ख!" और उसने ज़बर्दस्ती अपनी आँखें मूँद लीं।

६

सुबह जब प्रभानाथ की आँख खुली, मनमोहन सो रहा था। प्रभानाथ उठ कर बाग़ में टहलने चला गया, वीणा वहाँ मौजूद थी। रोज़ सुबह रामनाथ की पूजा के लिए फूल तोड़ना उसका नियम-सा हो गया था। वीणा ने प्रभानाथ से पूछा, "मनमोहन कहाँ है?"

"वह अभी सो रहा है!" प्रभानाथ मुसकराया, "और वीणा—मेरी समझ में नहीं आता कि उसके अन्दर कौन सी उथल-पुथल, कौन-सी हलचल भरी हुई है। कभी-कभी तो वह अजीब तरह की बातें करने लगता है। मुझे तो उससे डर लगता है!"

"तुमसे ज़्यादा मुझे!" वीणा ने प्रभानाथ के निकट आते हुए कहा, "प्रभा! एक बात मैं तुमसे कहूँ? मनमोहन को यहाँ ठहरा कर तुमने अच्छा नहीं किया। जानते हो, उसने जो बातें मुझसे कहीं, और जिस ढंग से वे बातें कहीं, वह सब का सब मुझे अच्छा नहीं लगा। वह कब तक रुकेगा?"

"मैं क्या जानूँ? उस आदमी का क्या ठिकाना? और यह मुझसे होगा नहीं कि अपने अतिथि से मैं जाने को कहूँ। अभी जब मैं सो कर उठा तो मैंने देखा कि वह सो रहा है—शान्त और निश्चिन्त! भगवान जाने

कितने युग के बाद उसे ऐसी सुख की नींद नसीब हुई। और—वीणा—वह आदमी मुझे तबीअत का बहुत नेक लगा। किस तरह मैं उसे यहाँ से जाने को कहूँ!"

वीणा फूल तोड़ चुकी थी। उसने कहा, "मैंने यह कब कहा कि आप उन्हें यहाँ से चले जाने को कहें? अच्छा! ददुआ के पूजा-गृह में फूल रख कर आती हूँ तब चा वगैरह का इंतज़ाम करूँगी। तब तक तुम मनमोहन को जगा रक्खो!" और वह चली गई।

प्रभानाथ जब कमरे में वापस लौटा, मनमोहन लिहाफ़ के नीचे इधर-उधर करवटें बदल रहा था।

प्रभानाथ ने मनमोहन को हिलाया-डुलाया और फिर उसने मनमोहन के ऊपर से लिहाफ़ खींच लिया। एक जम्हुआई लेकर मनमोहन उठ बैठा, "कितनी अच्छी नींद आई! आज बरसों बाद इतनी निश्चिन्तता के साथ सोया हूँ! अरे! अभी तो सात भी नहीं बजे!" मनमोहन ने दीवार पर लगी हुई घड़ी को देखते हुए कहा। कुछ रुक कर वह फिर बोला, "तुम लोग बहुत जल्दी सोकर उठते हो! तुम तो, मालूम होता है, नहा भी चुके!"

"जी हाँ! तुमने मुझे और मेरे कुल को समझ क्या रक्खा है? हम लोग ब्राह्मण हैं, उस पर कनौजिया, फिर उसके ऊपर बीस बिस्वा! पूरे ऋषि-संतान!" और प्रभानाथ ज़ोर से हँस पड़ा, "ददुआ को तुमने देखा ही है, कितने बूढ़े हैं। और वे इस समय देव-गृह में नंगे-बदन पूजा कर रहे हैं।"

"लेकिन मुझे तो गरम पानी की ज़रूरत पड़ेगी—समझे!" मनमोहन ने मुसकराते हुए उत्तर दिया, "और अगर इसका प्रबन्ध न हो सके तो मैं स्नान करना टाल भी सकता हूँ!"

पूजा समाप्त करके रामनाथ तिवारी बरामदे में बैठ गए। उस समय आसमान में कुहरा छाया हुआ था और हवा काटती हुई चल रही थी। वीणा ने चा तैयार करके रामनाथ के सामने रक्खी। रामनाथ ने पूछा, "प्रभा और उनके दोस्त कहाँ हैं?"

"आ रहे हैं!" और वीणा ने चा का प्याला अपने होटों से लगाया। चा का एक प्याला समाप्त करके वीणा ने कहा, "ददुआ! यहाँ इतनी तेज़ सर्दी पड़ती होगी—मैंने इसकी कल्पना तक न की थी। और इतनी सर्दी में भी आप इतना सवेरे उठ कर ठंढे पानी से स्नान करते हैं!"

रामनाथ गर्व से तन गये, "हाँ बेटी, शुरू से ही हम लोगों में यह आदत डाली गई है। हम लोग ब्राह्मण हैं, व्रती हैं। अब तो हम ब्राह्मण अपने पथ से भ्रष्ट हो गए, नहीं तो पहले हम लोग अधिक वस्त्र भी नहीं पहनते थे। केवल एक धोती और कंधे पर एक दुपट्टा।"

रामनाथ ने थोड़ी देर तक अपने सामने वाले बाग़ को देखा, फिर वे बोले, "आज बड़ा दिन है! कई लोगों से मिलने जाना है!" और वे मुसकराए, "वीणा! एक बात मेरी समझ में नहीं आती! लोग बड़ा दिन का त्यौहार मना कर क्या ईसा का उपहास नही करते!"

"ईसा का उपहास! मैं समझी नहीं," वीणा ने कहा।

उसी समय मनमोहन के साथ प्रभानाथ आ गया। वीणा ने इन दोनों के लिए चा बनाई। उसके बाद रामनाथ तिवारी प्रभानाथ की ओर घूमे, "प्रभा! मैं इस समय सोच रहा था कि बड़े दिन का यह सारा हर्ष—सारा उत्सव क्या मानवता का उपहास नहीं है?"

मनमोहन ने उत्तर दिया, "उपहास क्यों? यह दुनिया की एक बहुत बड़ी आत्मा के जन्म-दिन का उत्सव है—इतनी बड़ी आत्मा, आज की सारी सभ्य दुनिया जिसकी अनुयायी है!"

रामनाथ मुसकराए, "यही तो सारी मुसीबत है! सवाल मेरे सामने यह है कि क्या ईसा एक भी अनुयायी बना सके? जहाँ तक इतिहास बतलाता है, ईसा बुरी तरह असफल रहे। ईसा प्रेम का संदेश लाए थे, दया और त्याग का उन्होंने उपदेश दिया। और आज वे लोग जो अपने को ईसा का अनुयायी कहते हैं घृणा के उपासक हैं, क्रूरता और उत्पीड़न की सभ्यता को विकसित कर रहे हैं—सब से बड़े हिंसावादी हैं।"

"तौन तिवारी जी, एक बात हम तुम से बहुत दिना से कहा चाहत रहेन, लेकिन औसर नाहीं मिला। सो हम सोच रहे हन कि आज कह देन! भल यह सब तुम काहे का कर रहे हो? ई जमीन्दारी और धन का मोह का तुम्हं अपनी संतान से बढ़ के है? अब बूढ़े हुइ गए हौ, दुनिया की तृष्णा छोड़िकै भगवत-भजन करौ, और छोड़ देव सब कुछ दया पर। ऊ चाहे राखै, चाहे बहावै!"

रामनाथ तिवारी एकाएक उठ पड़े, वे तन कर खड़े हो गए। उनकी आँखों में एक अजीब तरह की चमक आ गई थी, उनके मुख पर एक प्रकार की आभा खेल रही थी। छाती फुलाए हुए और अपना मस्तक ऊँचा किये हुए वे कुछ देर तक खड़े रहे—एक पाषाण मूर्ति की भाँति, फिर उन्होंने बहुत गम्भीर स्वर में कहा. "मिसिर जी! आप ग़लती करते हैं। मुझे केवल एक बात का मोह है, वह है अपना, अपनी आत्मा का, अपने सिद्धान्त का और अपने विश्वास का! जो कुछ मैं करता हूँ वही ठीक है; जो कुछ मैं सोचता हूँ वही सत्य है! जब तक मैं जीवित हूँ, मैं स्वामी हूँ उतना ही बड़ा जितना बड़ा वह जिसकी पूजा करने का आप मुझे आदेश दे रहे हैं। जो कुछ आपको कहना था वह नई बात नहीं। अधिकांश लोग मुझसे यही बात कहना चाहेंगे, लेकिन कहने की हिम्मत नहीं पड़ती। लेकिन उसका असर न मुझपर पड़ा है न कभी पड़ेगा। इसलिए आप स्नान आदि कीजिये, थके हुए आ रहे हैं!" और इतना कह कर रामनाथ वहाँ से चले गए।

थोड़ी देर तक वहाँ गहरा सन्नाटा छाया रहा। अपने पिता के उस रूप को प्रभानाथ ने पहले कभी नहीं देखा था। वीणा ने बहुत धीरे से कहा, "यह मनुष्य है या दानव!"

और मनमोहन बोल उठा, "काश कि हरेक आदमी ऐसा ही बन सकता!" और उसने एक ठंडी सांस ली।

७

चौके में खिचड़ी चढ़ा कर झगड़ू मिश्र फिर मनमोहन, प्रभानाथ और वीणा के पास आ बैठे। आते ही उन्होंने प्रभानाथ से कहा, "कहो हो, छोटे कुँवर! अबकी दफ़ा गाँव नाहीं गयेव! सिकार-विकार का कुछ इरादा नाहीं है?"

"क्या बताऊँ, झगड़ू काका! शिकार की तबीयत तो थी, लेकिन ददुआ यहीं है और गाँव में कोई भी नहीं है। वहाँ जाकर क्या करूँगा?"

"वाह हम तो चल रहे हन! तौन आज कल सवन गिर रहे हैं।"

मनमोहन से न रहा गया, उसने कहा, "तो, मिश्र जी, क्या आप मांस खाते हैं?"

"काहे नाहीं! हम आन कनौजिया; सो भला हम काहे न मास खाई; लेकिन अपने हाथ से पकाय के खाइत है।" झगड़ू हँस पड़े, "आप नहीं जानत हौ, हम पियाज-लहसुन कुछ नाहीं खात हन; तबहूँ हम जो मास पकाय देई कि आप खाय के उँगली चाटत रह जाव!"

मनमोहन ने प्रभानाथ की ओर देखा, "क्यों प्रभानाथ! अगर अपने गाँव चलो तो थोड़े दिन शिकार-विकार ही रहे, कुछ गाँव की हवा खालूँ!"

"हाँ-हाँ! यह तो अच्छी सलाह दी! क्यों, झगड़ू काका! अबकी गंगा में एकाध मगर दिखलाई दिया?"

"नाहीं! मगर तो नाहीं दिखाई दीन, लेकिन पता लगइबे! आस-पास कहूँ हुइहैं जरूर!"

प्रभानाथ ने इस बार वीणा की ओर देखा, "क्यों वीणा! तुम्हारी भी तो इन दिनों छुट्टी है! तुमने कभी हमारा गाँव नहीं देखा—हमारे देहात बेजा नहीं होते! चलो युक्त-प्रान्त के गाँवों की भी हवा खा लो!"

"लेकिन ददुआ! ददुआ क्या अकेले रहेंगे? मेरे बिना उन्हें तकलीफ़ न

होगी! न, प्रभा! मैं न जा सकूँगी!" वीणा ने थोड़ा रुक कर फिर दबी ज़बान कहा, "और प्रभा, कल तुम्हारे काका आने वाले हैं, तुम कैसे जा सकोगे?"

"अरे हाँ! मैं तो भूल ही गया था! ना, झगड़ू काका! मैं न जा सकूँगा!"

"लेकिन मैं चलूँगा, मिसिर जी! आप मुझे अपने घर में ठहरा सकेंगे न! मैं ज़रा कुछ दिनों के लिए गाँवों की सैर करना चाहता हूँ, शहरों से मेरी तबीयत ऊब गई है!"

प्रभानाथ बोल उठा, "मेरी कोठी तो है—वहीं ठहरना!"

लेकिन झगड़ू आतिथ्य-सत्कार के नियम जानते ही नहीं थे, उनका पालन करने में भी विश्वास करते थे, "वाह, ऐसनो कबहूँ हुई सकत है! आप हमरे साथ ठहरो—जो रूखा सूखा होय वह आपौ खाव—और हम आपका अपने साथ घुमाइब, सिकार कराइब!"

थोड़ी देर तक सब लोग चुप बैठे रहे, फिर मनमोहन ने कहा, "क्यों, मिसिर जी! आपके गाँव में सत्याग्रह का कैसा ज़ोर है?"

"आपै चलि के देख लीन्हेव। हाँ, एक बात हम बताय देई, हम दिहाती सिद्धान्त विद्धान्त तो कुछ जानित नाहीं और न हम यू जानत हन कि स्वराज कौन बलाय आय। लेकिन एक बात हम जानत हन कि हम सब जो तोड़ के मेहनत करत हन तबहूँ पेट भर के खाँय का नाहीं मिलत है। तौन गांधी बाबा हमरे खाँय-पियन का प्रबन्ध कराय सकिहैं ई बात पर बहुत लोगन का सहज माँ विश्वास नाहीं होत है। तौन ऐस जोश तो गांव माँ न मिली जैस आप सहरन माँ देख रहे हौ!"

थोड़ी देर तक सन्नाटा छाया रहा; झगड़ू ने फिर कहा, "लेकिन एक बात आप निश्चय करि के समझ राख्यौ! यू सहर का जोश देस की स्वाधीनता की लड़ाई माँ काम न देई। सहर वाले लोग देखत हैं तमाशा—देखती नाहीं हैं, तमाशा करत हैं। उनका खान-पियन की कमी तो आय नहीं, पेट भरा है,

मौज की जिन्दगी बितावत हैं। आज एक खेल से तबियत ऊबी, काल दूसर खेल रच दीन्हिन। तौन ई सब जोश जो आप सहर माँ देख रहे हौ, ईका हम लोग एक खेले समझत आन जो जादा दिन नाहीं चलन का। वास्तविक काम तबही होई जब ई गाँव वाले मनई अपने हाथ माँ ले हैं।"

मनमोहन ने झगड़ू को आश्चर्य से देखा। उसके सामने बैठा हुआ बूढ़ा और ठेठ दिहाती जिसे आधुनिक संस्कृति और विचार-धारा छू तक नहीं गई थीं, जिसे अंग्रेजी पढ़े-लिखे, अंग्रेज़ी सभ्यता में रंगे हुए और हर एक अंग्रेज़ी चीज़ की छाया में ही देश का कल्याण देखने वाले लोग गँवार और असभ्य तक कहेंगे, बात कुछ सुलझी हुई सी कह रहा था।

एकाएक झगड़ू को अपनी खिचड़ी की याद हो आई। मुसकराते हुए उन्होंने कहा, "हम आप लोगन की बातन माँ अपनी खिचड़ी तो भूलै गएन! तौन जो जीवन का प्रथम सिद्धान्त है—भोजन! ऊकी उपेक्षा नाहीं कीन जाय सकत है!" और झगड़ू चल दिये।

शाम के समय मनमोहन झगड़ू के साथ बानापुर के लिए रवाना हो गया।

दूसरा परिच्छेद

१

जिस समय दयानाथ जेल से छूटा, उसका वज़न करीब पन्द्रह पौण्ड कम हो गया था। जेल के फाटक पर उमानाथ, राजेश्वरी और दयानाथ के दोनों लड़के मौजूद थे। इसके साथ-साथ कांग्रेसमैनों की भी एक बड़ी भीड़ उसका स्वागत करने को इकट्ठा हो गई थी।

दयानाथ के मुख पर मुसकराहट थी, उसका मस्तक उन्नत था। जनता खड़ी हुई दयानाथ की जय-जयकार बोल रही थी। कानपुर के नागरिकों ने दयानाथ का जलूस निकालने का प्रबन्ध कर रक्खा था। दयानाथ की आरती उतारी गई, उसको फूलों की मालाएँ पहिनाई गईं।

दयानाथ उमानाथ और राजेश्वरी से बातें कर ही रहा था कि डाक्टर हीरालाल ने आकर कहा, "चलिये, दयानाथ साहेब! जलूस का समय हो गया है। जलूस से वापस आकर आप अपने घरवालों से अपने घर पर जितना चाहिये बातचीत कीजियेगा।

डाक्टर हीरालाल की यह बात उमानाथ को अच्छी नहीं लगी, वह कुछ कहना ही चाहता था कि दयानाथ ने उसके मुख पर अंकित भाव पढ़ लिये। मुसकराते हुए उसने उमानाथ का हाथ पकड़ते हुए कहा, "उमा! यह डाक्टर हीरालाल हैं, मेरे बहुत बड़े दोस्त! अच्छा तुम अपनी भौजी के साथ घर चलो, मैं करीब दो घंटे में घर पहुँच जाऊँगा।"

और डाक्टर हीरालाल ने खीसें निपोरते हुए कहा, "आप लोग इतमीनान रखिये। इनको घर पहुँचा देना—यह मेरी ज़िम्मेदारी है।"

डाक्टर हीरालाल की इस मुद्रा से उमानाथ भड़क उठा, उसने दयानाथ से कहा, "भइया! यह जलूस—यह स्वागत—यह सब ढोंग है। आपके घर-

वाले, आपकी पत्नी, आपके बच्चे—जिन्हें आपके जेल के जीवन का एक-एक दिन एक-एक वर्ष की भाँति बीता है, इन लोगों की ममता, इन लोगों की भावना से आपके लिए डाक्टर हीरालाल या इन कांग्रेस के नेताओं की भावना अधिक प्रिय हो गई—जो जलूस केवल इसलिए निकालते हैं कि एक प्रकार की सनसनी फैले और उन्हें इस सनसनी से एक प्रकार की तुष्टि मिले !"

उमानाथ की बात सुनते ही दयानाथ के मुख वाली मुसकराहट ग़ायब हो गई। उसने देखा कि उसके दोनों बच्चे उसके पैरों से लिपटे खड़े हैं, उसने देखा कि उसकी पत्नी की आँखें तरल हैं, उसने देखा कि उसके भाई के मुख पर एक उल्लास का भाव है। और उसने उसी समय अपने पास खड़े हुए कांग्रेस नेताओं पर दृष्टि डाली, और उसने वहाँ देखा—कुछ नहीं—बिल्कुल कुछ नहीं। एक कृत्रिम मुसकराहट के नीचे भावनारहित पथराए-से चेहरे ! दयानाथ सिहर उठा। और उसी समय डाक्टर हीरालाल ने फिर कहा, "चलिये, दयानाथ साहेब ! इतने लोग आपका स्वागत करने आए हैं—इन्हें निराश मत कीजिये !"

दयानाथ ने फिर उस तरफ़ देखा, एक बहुत बड़ी भीड़ खड़ी थी। दयानाथ के उधर देखते ही एक ज़ोर की आवाज़ उठी, "दयानाथ की जय !"

और साथ ही राजेश्वरी ने भी उस भीड़ को देखा। गर्व से उसकी छाती फूल उठी। इतने आदमी उसके पति का स्वागत करने आए हैं, उसके पति की जयजयकार कर रहे हैं। उसने कहा, "जाइये—आपको बिना साथ ले जाए ये लोग नहीं मानेंगे। हम लोग भी जलूस के साथ चलेंगे।

जलूस समाप्त हुआ दयानाथ के घर पर। लेकिन जलूस के समाप्त होने पर भी दयानाथ घर पर अकेला न रह सका, कांग्रेस के प्रमुख नेता आवश्यक परामर्श के लिए रुक गए। दयानाथ को घेर कर सब लोग ड्राइंग रूम में बैठ गए और मूवमेण्ट की बातें होने लगीं। जब एक घंटा भूमिका में ही समाप्त हो गया तब उमानाथ से न रहा गया। उसने झल्लाकर कहा, "अगर आप लोग भाई साहेब के वास्तव में मित्र हैं तो आप लोग इनपर थोड़ी-सी दया

करें। इन्हें इतना समय दें कि वे स्नान-भोजन करके कुछ थोड़ी देर आराम कर लें।"

"ओहो! मैं तो भूल ही गया था—भोजन मैंने भी नहीं किया है!" डाक्टर हीरालाल ने कहा, "क्या बतलाऊँ रास्ता ही हम लोगों ने ऐसा अपनाया है कि एक मिनट की भी फ़ुरसत नहीं मिलती। अच्छा हम लोग शाम के समय फिर इकट्ठा होंगे।" और कांग्रेस-नेता उठ खड़े हुए।

दयानाथ ने अघा कर साँस ली। उस समय बारह बज रहे थे। राजेश्वरी ने अपने हाथों आज रसोई तैयार की थी। वह बाहर आई—दयानाथ उस समय उमानाथ से बातें कर रहा था। राजेश्वरी के आते ही उमानाथ उठ खड़ा हुआ; मुसकराते हुए उसने कहा, "भौजी! मैं तो भइया को भीतर ला ही रहा था। बड़ी मुश्किल से मैंने उन कांग्रेस के नेताओं से भइया का पीछा छुड़ाया। क्या मज़ाक, कि आज ही जेल से बाहर आए और आज ही वे लोग इनकी जान खाने लगे, मानो सिवा इस स्वराज की लड़ाई के, भइया के लिए कोई दूसरा काम ही नहीं है।"

राजेश्वरी ने दयानाथ की कुरसी के हत्थे पर बैठते हुए कहा, "मझले बाबूजी, आप ही इन्हें समझाइये!"

दयानाथ हँस पड़ा, "यह उमा मुझे क्या समझायगा? देखो, मैंने जिस समय यह रास्ता अपनाया था, एक पवित्र सिद्धान्त पर, एक पवित्र कार्य के वास्ते मैंने अपना जीवन अर्पित कर दिया था। वही कार्य, वही सेवा, वही त्याग, वही सिद्धान्त मेरा एकमात्र अस्तित्व है। मैं जेल से छूटा हूँ, आराम करने नहीं, काम करने!"

"और हम लोग—मैं, तुम्हारे दोनों बच्चे—क्या हम लोगों का तुम पर कोई अधिकार नहीं? हमारे लिए क्या तुम्हारे पास ज़रा-सा भी समय नहीं है?" राजेश्वरी ने करुण स्वर में पूछा।

दयानाथ ने राजेश्वरी की पीठ पर हाथ रख दिया, "तुम! क्या कहती हो? मुझसे अलग तुम्हारा अस्तित्व ही कहाँ है? तुम मुझसे अलग कब हो?

जिस समय मैंने अपना जीवन अर्पित किया था उस समय मैंने तुम्हारा भी जीवन अर्पित कर दिया था ! अच्छा ! तुमने कितना सूत काता है, इन छे महीनों में !"

राजेश्वरी एकदम पिघल गई। उसने कहा, "बहुत-सा, बहुत-सा सूत काता है, मेरे देवता ! मैं जानती थी कि तुम मुझसे यह प्रश्न करोगे ! मैं जानती थी कि तुम अपना वह काम जो मैं कर सकती हूँ, मुझे सौंप गए हो। और मैंने उस काम को पूरा किया है।"

उमानाथ ने आश्चर्य से अपने भाई और अपनी भावज को देखा। उसके सामने एक अजीब मज़ाक़-सा हो रहा था। एकाएक वह ज़ोर से हँस पड़ा, "वाह भौजी ! तुम तो बड़ी जल्दी पिघल गईं। भइया ने तुम्हें दो ही बातों में क़ाबू में कर लिया !"

राजेश्वरी उठ खड़ी हुई—तन कर। उसने उमानाथ से कहा, "मझले बाबू—तुम्हारे भइया की एक नज़र काफ़ी है, दो बातें तो बहुत होती हैं !" और उसने दयानाथ को हाथ पकड़ कर उठाते हुए कहा, "अच्छा, चलिये, स्नान कर लीजिये चलकर; भोजन तैयार हो गया है।"

२

दयानाथ के पुराने साथी सब के सब जेल में थे, एक डाक्टर हीरालाल को छोड़ कर। इस बीच में नए काम करनेवालों का एक बहुत बड़ा दल तैयार हो गया था और काम तेज़ी के साथ चल रहा था। शाम के समय कांग्रेस के सब कार्यकर्ता दयानाथ के बँगले पर एकत्रित हुए। अनुभवहीन नवयुवकों का एक समूह अपने अनुभवी नेता से परामर्श करने को एकत्रित हुआ था। इन लोगों के आते ही उमानाथ शहर घूमने को निकल पड़ा।

मूवमेण्ट इस समय तेज़ी के साथ चल रहा था; देश की सभी राष्ट्रीय संस्थाएँ ग़ैरक़ानूनी क़रार दे दी गई थीं। उस समय कानपुर नगर कांग्रेस कमेटी का काम कौन चलाता है, कैसे चलाता है—किसी को इसका पता न

था। अभी बातचीत शुरू ही हुई थी कि नौकर ने इत्तिला दी कि लाला रामकिशोर की कार बाहर खड़ी है। दयानाथ उठ कर बाहर गया और लाला रामकिशोर के साथ वापस लौटा।

सब लोग बैठ गए। दयानाथ ने कानपुर के वर्तमान डिक्टेटर श्री रामभरोसे से पूछा, " स्थिति मैंने, जहाँ तक हो सका है, समझ ली। अब सवाल आता है कल के जलूस का। जहाँ तक मैं समझता हूँ, कल के जलूस में लाठी-चार्ज होगा, और हमें इस बात का खयाल रखना पड़ेगा कि लाठी-चार्ज के समय हमारे आदमी साहस से काम लें।"

कुछ रुक कर दयानाथ ने फिर पूछा, "और रामभरोसे जी, आप बतला सकते हैं कि इस समय गिरफ़्तार होने के लिए कितने आदमी आपके पास हैं?"

गर्व से छाती फुला कर रामभरोसे ने कहा, "गिरफ़्तार होने के लिए आदमियों की कमी नहीं है, हज़ार दो हज़ार जितने आदमी चाहें गिरफ़्तार होने के लिए तैयार हैं। लेकिन गिरफ़्तारियाँ आज कल बन्द हैं।"

"इतने स्वयम्सेवक आपको मिल गए—ताज्जुब की बात है!" आश्चर्य से दयानाथ ने कहा।

अब लाला रामकिशोर के बोलने की बारी थी, "इसमें ताज्जुब की क्या बात है? हिन्दुस्तान में ग़रीबों और बेकारों की कमी नहीं, उनको रुपए दो और स्वयम्सेवक बनाओ!"

"लेकिन रुपया?" दयानाथ ने फिर पूछा।

"रुपए की कमी नहीं! बाज़ार में आने वाले माल की प्रति गाड़ी पर एक पैसा बँधा हुआ है, और यह धर्म खाते—कांग्रेस का काम धर्म का काम है न!" और लाला रामकिशोर हँस पड़े।

थोड़ी देर तक मौन छाया रहा, इसके बाद रामभरोसे ने फिर कहा, "लाठी-चार्ज होगा अवश्य—हर जगह से लाठी-चार्ज होने की खबरें आ रही हैं। अब हमारे स्वयम्सेवकों को चाहिए कि लाठी खायँ और हटें नहीं।"

"हूँ ! यह समस्या मेरी नज़र में भी है !" दयानाथ ने कहा, "लेकिन नेताओं में कितने लोग लाठी खाने को सम्मिलित रहेंगे ?" , दयानाथ ने अपने इर्द-गिर्द बैठे नेताओं पर नज़र डाली।

और दयानाथ ने देखा कि सब लोग मौन हैं। थोड़ी देर तक उत्तर की प्रतीक्षा के बाद दयानाथ ने रामभरोसे से कहा, "क्यों रामभरोसे जी—स्वयम्-सेवक लोग यही कहेंगे न कि लाठी खाने के लिए स्वयम्सेवक और यश लूटने के लिए नेता ! और मेरा कहना है कि अगर स्वयम्सेवकों के साथ इस परीक्षा के समय उनके नेता नहीं रहते तो किस प्रकार उनमें साहस आवेगा ? किस प्रकार वे अहिंसा पर क़ायम रह सकेंगे ? बिना नायक के सेना किस प्रकार लड़ सकती है ? नहीं रामभरोसे जी, नेता का साथ में होना और साथ में ही नहीं बल्कि सब के आगे होना बहुत ज़रूरी है !"

"आप शायद ठीक कहते हैं !" दबी ज़बान रामभरोसे ने कहा।

"तो फिर आपको जलूस के आगे रहना चाहिये ! आप डिक्टेटर हैं !"

दूसरे दिन शहर में सनसनी फैली थी। श्रद्धानन्द पार्क में कानपुर की जनता एकत्रित हो रही थी, वहीं से जलूस निकलने वाला था। लोगों में उत्साह था और उमंग था।

दयानाथ भी जलूस में शामिल होने को तैयार हुआ। राजेश्वरी ने कहा, "मैं भी चलूँगी !"

उमानाथ दयानाथ के पास खड़ा था; उसने कहा, "अगर आप गिरफ़्तार हो गईं, भौजी जी, तो लड़कों को कौन सम्हालेगा ?" और वह मुसकराया।

राजेश्वरी ने भी मुसकराते हुए उत्तर दिया, "वह तो है, बाबू जी !"

उमानाथ हँस पड़ा, "अच्छा, भौजी जी, तो आपकी गिरफ्तारी देखने के लिए मैं भी चलूँगा !"

जिस समय वे तीनों श्रद्धानन्द पार्क में पहुँचे तीन बज रहे थे। जलूस साढ़े तीन बजे उठने वाला था, और उस समय पार्क खचाखच भर गया था।

ठीक साढ़े तीन बजे जलूस रवाना हुआ। सब से आगे कानपुर के डिक्टेटर श्री रामभरोसे थे और उनके पीछे करीब सौ स्वयम्सेवक। इन सब के हाथ में तिरंगा झण्डा था। इसके पीछे महिलाएँ थीं, इनकी संख्या भी करीब पचास थी। इसके पीछे सैकड़ों लड़के—और इसके पीछे कानपुर का जन समुदाय !

३

मालरोड के चौराहे पर सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस लट्ठबन्द पुलिस का दस्ता लिए खड़े थे। जिस समय जलूस मेस्टन रोड से मालरोड पर पहुँचा, पुलिस वालों ने जलूस को रोक दिया। सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस ने रामभरोसे से कहा, "मेरी आज्ञा है कि जलूस मालरोड पर नहीं जा सकता, उसे वापस ले जाइये नहीं तो मुझे इस जलूस को जबरदस्ती भंग करना पड़ेगा।"

रामभरोसे ने उत्तर दिया, "आपकी आज्ञा हम मानने को तैयार नहीं, आप जिस सरकार के प्रतिनिधि हैं हम उसे स्वीकार नहीं करते।"

सुपरिण्टेण्डेण्ट ने अबकी बार ज़ोर से कहा, "मैं इस जलूस को ग़ैर-क़ानूनी क़रार देता हूँ। मैं दो मिनट का समय देता हूँ कि जलूस तितर-बितर हो जाय नहीं तो वह लाठी-चार्ज से तितर-बितर किया जायगा।"

दोनों ओर एक गहरा सन्नाटा छाया था, दोनों दल मौन खड़े थे। और इसी समय रामभरोसे ने नारा लागाया, "बोलो महात्मा गांधी की जय! बोलो भारत माता की जय!" इन नारों को सारे जलूस ने एक साथ दुहराया।

दो मिनट बीत गए और जलूस वैसा का वैसा खड़ा रहा। पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट ने रामभरोसे को गिरफ्तार कर लिया, इसके बाद उसने जलूस पर लाठी चार्ज की आज्ञा दी।

पुलिस वालों ने स्वयम्सेवकों को लाठी से मारना शुरू कर दिया। पहले प्रहार के समय स्वयम्सेवकों में कुछ शिथिलता सी दिखाई दी, उनमें से दो-चार एक-आध क़दम पीछे हटे, लेकिन शीघ्र ही वह शिथिलता जाती रही

और स्वयम्सेवक ज़मीन पर बैठ गए। स्वयम्सेवकों पर लाठियाँ बरस रही थीं, और वे 'भारत माता की जय !' 'महात्मा गांधी की जय !' 'वन्देमातरम् !' के नारे लगा रहे थे। ज़्यादा मार खाने पर वे बेहोश भी हो जाते थे।

इस समय कुछ स्त्रियाँ भी पीछे से आगे बढ़ीं और पुलिस वाले उन स्त्रियों को देख कर झिझके। सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस ने उन स्त्रियों को तथा उन स्वयम्सेवकों को जो अभी तक होश में थे गिरफ़्तार करने का आर्डर दे दिया। ये लोग गिरफ़्तार करके पुलिस की लारियों में भर दिये गए।

दयानाथ, उमानाथ तथा दो-चार अन्य कांग्रेस कार्यकर्ताओं को छोड़ कर जो दर्शक-रूप में जलूस के साथ थे, बाक़ी सब लोग तितर-बितर हो गए थे। पुलिस के जाने के बाद इन लोगों ने घायल और बेहोश स्वयम्सेवकों को उठाया तथा इनकी सेवा-सुश्रूषा का प्रबन्ध किया। इस सब में इन लोगों को आठ बज गए।

जब दयानाथ और उमानाथ घर लौटे कि महालक्ष्मी, राजेश, ब्रजेश, सुरेश और घर के नौकरों से घिरी हुई राजेश्वरी देवी बरामदे में बैठी हैं और व्याख्यान दे रही हैं। दयानाथ ने आश्चर्य से कहा, "अरे! मैं तो समझा था कि तुम जेल में होगी, लेकिन तुम यहाँ मौजूद हो!"

मुसकराने का प्रयत्न करते हुए राजेश्वरी ने कहा, "हाँ, अभी जाजमऊ से पैदल आ रही हूँ!"

"जाजमऊ से और पैदल!" उमानाथ ने आश्चर्य से कहा। जाजमऊ दयानाथ के बँगले से करीब पाँच मील की दूरी पर था।

"क्या बतलाऊँ बाबू जी! लारी पर बिठला कर हम लोगों को पुलिस वालों ने जाजमऊ में छोड़ दिया। अरे बापरे—कितनी दूर है। यह तो कहो कि हम लोग बीस थीं नहीं तो डर के मारे हमारे प्राण निकल जाते। और फिर हम बीसों वहाँ से गाना गाते हुए वापस लौटीं। रास्ते में दो औरतें बेहोश हो गईं। यह कहो कि एक इक्का मिल गया, उसी में उन दोनों को

चढ़ाकर उनके घर पहुँचाया; नहीं तो भगवान जाने हम लोगों की क्या दुर्दशा होती !"

४

इसी समय तीन-चार आदमियों के साथ दो स्त्रियाँ रोती हुई, बँगले में आई । उनमें एक बुढ़िया थी और दूसरी यद्यपि जवान थी पर बुढ़िया-सी ही लगती थी । दोनों औरतें बुरी तरह रो रही थीं और चिल्ला रही थीं । बुढ़िया बीच-बीच में बकने लगती थी, "आग लगे ई कांग्रेस माँ, मर जाँय गाँधी ! हमरे बेटवा का खाय लीन्हिन ! हाय राम ! हाय दई !"

दयानाथ ने आगे बढ़ कर साथ वाले आदमियों से पूछा, "क्या बात है ?"

दयानाथ को देखते ही बुढ़िया उनके पैरों पर गिर पड़ी, "मालिक ! हम लोग लुट गईं; हमार लाल हमसे छिन गा ! हाय राम हम का करब ?" और बुढ़िया ने ज़मीन पर अपना सर पटक दिया ।

उमानाथ ने, जो अलग खड़ा हुआ सब कुछ देख रहा था, देखा कि दूसरी औरत एक निर्जीव-पेड़ की तरह गिरने वाली है; बढ़ कर उसने उस औरत को सम्हाला जो बेहोश हो गई थी ।

जिस आदमी से दयानाथ ने सवाल किया था उसने कहा, "जीवन का अस्पताल में प्राणान्त हो गया !"

दयानाथ थोड़ी देर तक चुप खड़ा सोचता रहा । दूसरा आदमी कह रहा था, "यह बुढ़िया इसकी माँ है और यह औरत जो अभी बेहोश हो गई उसकी मेहरारू है । इसकी दो लड़कियाँ हैं । घर में कोई मर्द नहीं, जीवन अकेला था । अब इन लोगों का क्या होगा—भगवान जानें !"

दयानाथ ने अपना सर उठाया, उसने उमानाथ से कहा, "उमा ! तुम लोग बैठो ! मुझे जाना पड़ेगा । उसकी अन्त्येष्टि-क्रिया का प्रबन्ध करना है न !"

"मैं भी आप के साथ चलूँगा !" उमानाथ ने कहा ।

इस समय तक जीवन की पत्नी जैदेई होश में आ गई थी। दयानाथ ने साथ के आदमियों से कहा, "एक आदमी मेरे साथ अस्पताल चले, बाक़ी लोग इन औरतों को लेकर घर चलें। मैं अस्पताल से लाश लेकर आता हूँ।"

उन सब को रवाना करके एक आदमी के साथ दयानाथ और उमानाथ अस्पताल पहुँचे। लाश बरामदे में रक्खी थी। डाक्टर ने दयानाथ से कहा, "मुझे बड़ा अफ़सोस है मिस्टर दयानाथ मैं इसे नहीं बचा सका। सर में फ्रैक्चर हो गया था। अच्छा ही हुआ कि यह मर गया; अगर बच जाता तो यह आदमी पागल हो जाता।"

लाश को गाड़ी में लाद कर सब लोग जीवन के घर पहुँचे।

एक तंग गली के अन्दर एक टूटे-फूटे मकान का नीचे का हिस्सा जिसमें दो कोठरियाँ थीं और एक अँधेरा आँगन—यह जीवन का मकान था। जीवन एक प्रेस में कम्पोज़ीटर था और बाईस रुपया महीना पाता था। पाँच रुपया महीना घर का किराया था, बाक़ी सत्रह रुपए में वह अपनी गृहस्थी चलाता था।

एक कोठरी में तेल की एक कुप्पी टिमटिमा रही थी, और उसके अन्दर चार प्राणी तड़प रहे थे। उनके पास पड़ोस से हमदर्दी के लिए आई हुई स्त्रियाँ भी थीं। पड़ोस के लोग मकान के बाहर खड़े एक दूसरे से कानाफूसी कर रहे थे।

जैसे जीवन की लाश मकान के सामने पहुँची लोगों की कानाफूसी बन्द हो गई। जीवन की बुढ़िया माँ और उसकी पत्नी दोनों ही मकान के अन्दर से दौड़ कर आईं और जीवन की लाश से चिपट गईं। उमानाथ ने उधर से अपना मुँह फेर लिया—यह दृश्य उसकी बर्दाश्त के बाहर था।

लोग एकत्रित हो रहे थे। "एक स्वयम्सेवक की लाठी-चार्ज से मृत्यु हो गई!" बिजली की तरह यह खबर शहर में फैल गई थी। दयानाथ ने कुछ स्वयम्सेवकों को रुपए देकर अन्त्येष्टि-क्रिया का सामान लाने भेज दिया और वह आकर उमानाथ के पास खड़ा हो गया।

उस मकान के आगे एक नाला था, और उस नाले के किनारे लोग बैठे थे। उस नाले से सड़ी बदबू आ रही थी, लेकिन फिर भी लोग वहाँ बैठे जीवन के घर वालों के भविष्य पर इस प्रकार टीका-टिप्पणी कर रहे थे मानो उनके लिए उस नाले का कोई अस्तित्व ही नहीं। उमानाथ ने यह सब देखा और वह सर से पैर तक सिहर उठा। "तो यह आदमी इस बदबू में ही रहने को विवश था! उसके घर वाले इस बदबू में ही पले हैं!" उसने अपने से कहा, उसने अपने से ही उत्तर दिया, "चलो! अच्छा ही हुआ! इस ज़िन्दगी से तो मौत अच्छी है!"

घण्टे भर के अन्दर ही स्वयम्सेवक सब सामान लेकर वापस आ गए। उस समय तक क़रीब एक हज़ार आदमियों को भीड़ गली में तथा सड़क पर एकत्रित हो गई थी।

जीवन की अर्थी कांग्रेस की जयजयकारों के साथ उठी—वह देश के एक शहीद की अर्थी थी। उन जयजयकारों से जीवन की बुढ़िया माँ तथा जवान पत्नी तक प्रभावित थे, दोनों अर्थी के साथ श्मशान-भूमि की ओर रवाना हुईं। उस समय वे रो न रही थीं, उनमें एकाएक न जाने क्यों अपने जीवन की इस गति पर एक प्रकार का गर्व भर गया था। क़रीब बारह बजे रात को लाश श्मशान में पहुँची।

चिता में आग लग जाने पर भीड़ तितर-बितर हो गई। दयानाथ, उमानाथ, बुढ़िया माँ और जीवन की पत्नी के अलावा दो-चार स्वयम्सेवक और रह गए थे। उमानाथ ने उस समय मरघट का दृश्य देखा; एक भयानक मृत्यु का सन्नाटा चारों ओर छाया था। और फिर उसने अपने भाई की तरफ़ एक दृष्टि डाली—दयानाथ जलती हुई चिता के पास खड़ा हुआ कुछ सोच रहा था—और अपने सामने वाले शून्य को चीर कर कुछ देखने का प्रयत्न कर रहा था। चिता की लपटों का प्रकाश दयानाथ के मुख पर पड़ रहा था और उमानाथ ने देखा कि दयानाथ के मुख पर कुछ अजीब सी-आभा से भरी गम्भीरता है—चिन्तन है। और फिर उसकी नज़र उन दो

औरतों पर पड़ी—जो पत्थर की मूर्ति की तरह अपने निजी को राख होता देख रही थीं।

एकाएक वह चौंक पड़ा, उसने देखा कि एक स्त्री उठी और वह जलती हुई चिता की ओर लपकी। वह चिल्ला उठा, "अरे!"

उसके चिल्लाते ही दयानाथ ने उधर देखा; उस समय तक जयदेवी (जीवन की पत्नी) चिता में फाँद पड़ी थी। दयानाथ ने दौड़ कर जयदेवी को चिता से खींचा, वे चारो स्वयम्सेवक भी वहाँ आ गए थे। जयदेवी के कपड़ों में आग लग गई थी, बड़ी मुश्किल से उन लोगों ने जयदेवी के कपड़ों की आग बुझाई। जयदेवी का शरीर कुछ झुलस गया था।

और बुढ़िया बड़बड़ा रही थी, "हाय राम! तू हू हमें छोड़ के जाय रही है! लड़कन का को सम्हाली? हाय दई—यह क्या हुइ रहा है?"

जयदेवी ज्यादा न जली थी। दयानाथ ने कहा, "बहिन इस तरह न करना चाहिये था! धीरज रक्खो!"

लेकिन जयदेवी ने उत्तर दिया, "धीरज? कैसा धीरज? अब हमारे वास्ते है क्या? कौन ममता और कौन मोह? भूखन मरन का है, और लड़कन का भूखन मारन का। यही लिए जिन्दा रही?"

दयानाथ ने इस बार ग़ौर से जयदेवी को देखा। उसने देखा कि जयदेवी एकदम बूढ़ी हो गई है। कोई भी यह न कह सकता था कि वह बाईस वर्ष की एक युवती है। उसके गाल गढ़े में धँस गए थे, उसकी आँखों की चमक मर चुकी थी, उसकी पीठ झुकने लगी थी। दरिद्रता और उत्पीड़न के अनवरत संघर्ष ने उसे बुरी तरह कुचल दिया था। और उसी समय जयदेवी ने फिर कहा, "जिन्दगी की एक आसा—एक सहारा! वही साथ छोड़िगा! हाय राम हमें मौत देव!" और उसने अपनी आँखें बन्द कर लीं।

"नहीं बहिन—हम लोग तुम्हारा प्रबन्ध कर देंगे, इतनी अधीर मत हो!" दयानाथ ने उसे ढाँढस बँधवाया।

जिस समय दोनों भाई घर लौटे सुबह हो रही थी। रास्ते भर दोनों मौन

रहे। घर पर सब लोग सो रहे थे। इन दोनों के आते ही राजेश्वरी और महालक्ष्मी दोनों जाग पड़ीं।

उमानाथ ने आते ही कहा, "भौजी! एक प्याला गरम चा चाहिये, हाथ पैर ठिठुर गए हैं।"

लेकिन दयानाथ मौन सोफ़ा पर बैठ गया; उसने राजेश्वरी पर एक करुण दृष्टि डाली और फिर उसने एक ठंढी साँस ली।

५

मार्कण्डेय जेल के फाटक के बाहर निकला; उस समय सुबह के नौ बजे थे। मार्कण्डेय को उसी समय बतलाया गया था कि उसकी सज़ा की अवधि पूरी हो गई है और वह मुक्त कर दिया गया है। जब वह बाहर आया, फाटक पर सन्नाटा छाया था। बाहर निकल कर मार्कण्डेय ने अघा कर एक साँस ली। उसने अपने चारों ओर देखा, इक्का-दुक्का लोग स्वच्छन्दता पूर्वक इधर-उधर जा रहे थे, लेकिन उसकी ओर किसी ने देखा तक नहीं। वह मुस-कराया। जब और लोग छूटते थे, जेल के फाटक पर लोगों की भीड़ लगी रहती थी। अपनी कोठरी से वह स्वागत करने वालों के जयजयकार के नारे सुना करता था। लेकिन उसका स्वागत करने कोई नहीं आया था—आता भी कैसे? उसके छूटने का तो किसी को पता तक न था।

वह पैदल ही अपने घर की तरफ़ चल पड़ा। कचहरी पार करके जब वह शहर की ओर चला तो उसे उमानाथ दिखलाई पड़ा। उमानाथ शहर से लौट रहा था। मार्कण्डेय को देखते ही उसने अपनी कार रोक दी, "अरे मार्कण्डेय भइया! आप कब छूटे?"

"अभी सीधा जेल से चला आ रहा हूँ! मुझ तक को पता न था कि मैं आज छूटूँगा।"

"चलिये—हमारे यहाँ! झगड़ू काका तो यहाँ हैं नहीं, गाँव चले गए।

बड़के भइया आपको देखते ही चौंक उठेंगे।" हाथ पकड़कर मार्कण्डेय को कार में बिठलाते हुए उमानाथ ने कहा।

जिस समय ये दोनों दयानाथ के यहाँ पहुँचे, दयानाथ के ड्राइंग-रूम में कांग्रेस के कार्यकर्ता एकत्रित थे और वे दयानाथ से मूवमेण्ट पर परामर्श कर रहे थे। मार्कण्डेय को देखते ही सब लोग चौंककर उठ खड़े हुए; दयानाथ ने उठकर मार्कण्डेय को गले लगाते हुए कहा, "अरे मार्कण्डेय! मालूम होता है सीधे छूटे हुए चले आ रहे हो!"

"हाँ, सीधा!" मार्कण्डेय ने गद्देदार कुर्सी पर बैठते हुए कहा, "उफ़! आखिर मैं छूट ही गया। मैं तो समझता था कि अभी एक महीना और सरकार की मेहमानदारी करनी पड़ेगी, लेकिन न जाने क्यों बिना पूछे-बतलाए उन लोगों ने मुझे आज सुबह ही जेल से निकाल बाहर किया।"

इसके बाद मार्कण्डेय ने वहाँ पर एकत्रित अन्य लोगों पर नज़र डाली, फिर उसने कहा, "अच्छा! तो आप लोग वही पुराना चर्खा लिये बैठे हैं। क्या किया जाय—कैसे किया जाय! ना बाबा! मैं अभी इस पचड़े में नहीं पड़ने का!" वह उमानाथ की ओर घूमा, "कहो जी उमा—कहाँ घसीट लाए! अपने घर पहुँच कर पैर फैलाकर आराम करता! यहाँ तो वही मूवमेंट, वही गिरफ्तारी, वही जेल का क़िस्सा चल रहा है!" और मार्कण्डेय उठ खड़ा हुआ।

उमानाथ हँस पड़ा, "मैंने तो समझा था कि घर में अकेले आपका मन ऊबेगा, इसके अलावा यहाँ इतने कांग्रेसमैनों से मिलकर आपको परिस्थितियों की जानकारी हासिल हो जाएगी! लेकिन देखता हूँ कि आप बड़के भइया के मुक़ाबिले किसी क़दर ज़्यादा सुलझे हुए हैं। अच्छा, दूसरे कमरे में चलिये; वहाँ स्नान करके सोइये!"

"अरे बैठो भी मार्कण्डेय!" दयानाथ ने कहा, "ज़रा काम की बातें हो रही हैं और हम लोग कुछ उलझन में पड़े हैं। मैंने तो सोचा कि तुम अच्छे आ गए, तुमसे इस उलझन को सुलझाने में कुछ मदद ही मिल जायगी।"

"वह उलझन क्या है ?" बैठते हुए मार्कण्डेय ने पूछा।

"बात यह है कि विलायती कपड़ों की दूकानों पर धरना दिया जा रहा है—इतना तो तुम जानते ही हो। और शहर की क़रीब-क़रीब सब दूकानों के माल पर सील लगा दी गई है; इनी-गिनी कुछ थोड़ी-सी बची हैं। इन्हीं दूकानों पर धरने का ज़ोर है। और धरना देने वालों में स्त्रियाँ भी हैं। तो परसों एक बड़ी कुरूप घटना घटित हो गई। एक स्त्री एक दूकान पर धरना दे रही थी। दूकानदार एक नौजवान लड़का है, लेकिन ज़रा बिगड़ा हुआ और शोहदे-क़िस्म का। इसके अलावा वह धरना देने वाली स्त्री सुन्दर थी। दूकानदार ने उस स्त्री के प्रति कुछ बड़े अपमानजनक और अश्लील शब्दों का प्रयोग किया। वह स्त्री उसी समय दूकान से चली आई, और उसने उस घटना का ज़िक्र अन्य स्वयमूसेवकों से किया। परिणाम यह हुआ कि स्वयमूसेवक उत्ते-जित हो उठे और स्वयमूसेवकों से यह चर्चा सुनकर जनता भी उत्तेजित हो गई। खैरियत यह हुई कि दूकानदार को कुछ आशंका हो गई और वह उसी समय दूकान बन्द करके घर चला गया, नहीं तो वह जन-समुदाय जो एक घंटे बाद उस दूकान पर पहुँचा न जाने क्या करता।"

"तो फिर इसमें उलझन क्या है ?" मार्कण्डेय ने पूछा।

"इसमें उलझन यह है कि कुछ लोग,—उन लोगों में कुछ काँग्रेसमैन हैं बाकी सब काँग्रेस से सहानुभूति रखने वाले हैं—लगातार उस दूकानदार के मकान के इर्द-गिर्द चक्कर लगा रहे हैं। उनका कहना है कि वे बिना दूकानदार की नाक काटे नहीं मानेंगे। वह बेचारा दूकानदार एक तरह से अपने घर में क़ैद है।"

"हाँ ! यह तो बेजा बात है !" मार्कण्डेय ने कहा, "मेरा ऐसा खयाल है कि उस दूकानदार ने जो कुछ किया वह करने का उसे पूरा अधिकार था क्योंकि वह हिंसा का उपासक है। लेकिन हमारे स्वयमूसेवक या काँग्रेस से सहानुभूति रखने वाले लोग जो कर रहे हैं या करना चाहते हैं, वह ग़लत है क्योंकि वह हिंसा है, और हम हिंसा के विरोधी हैं।"

उमानाथ बोल उठा, "आप हिंसा के विरोधी हैं! लेकिन यह आपका धरना! क्या यह हिंसा नहीं है? किसी को हानि पहुँचाना, यह कब से अहिंसा हुआ? आप दूकानदार को अपना माल नहीं बेंचने देते; यह किस तरह से अहिंसा है?

दयानाथ ने सर उठाया, "उमा! एक बात समझ लो! धरने का मतलब दूकानदार को माल न बेंचने देने का नहीं है, वह खरीदार से माल न खरीदने का आग्रह है। हम दूकानदार को समझाते हैं, जब दूकानदार नहीं समझता तब हम ग्राहक को समझाते हैं। विलायती माल खरीदने से देश की हानि है, विलायती माल की खपत से देश अपनी स्वतंत्रता को न पा सकेगा। और इसलिए हम धरना देते हैं। इसमें हिंसा कहाँ से आई? अगर हम मारने-पीटने पर आमादा हो जाँय तब तुम कह सकते हो कि हम हिंसा के पाप के भागी हैं।"

"भइया! तब आप हिंसा के केवल बहिर-रूप को देखते हैं। जिस समय आपका स्वयम्सेवक ज़मीन पर लेटकर ग्राहक से कहता है कि वह उसकी छाती पर पैर रखकर जाय तब आपका वह स्वयम्सेवक स्पष्ट रूप से दुराग्रह पर उतर आता है; आप उसे सत्याग्रह भले ही कहें।"

इस बार मार्कण्डेय की बारी थी, "उमा! तुम उसे दुराग्रह कैसे कहते हो? नैतिक बल किसमें है? छाती खोलकर ज़मीन पर लेट जाने वाले में या छाती पर पैर रखकर दूकान तक न पहुँचकर पीछे हट आने वाले ग्राहक में? और नैतिक बल सत्य में ही होता है, मिथ्या में नहीं। हमारा दुराग्रह तब होता जब ग्राहक से यह कहते कि अगर तुम विलायती कपड़ा खरीदोगे तो हम सर फोड़ देंगे!"

"मैं तो समझता हूँ कि किसी तरह का दबाव डालना, व्यक्तिगत स्वाधीनता में किसी तरह बाधक होना, किसी को किसी तरह विवश करना—यह हिंसा है!" उमानाथ ने कहा।

मार्कण्डेय मुसकराया, "पर हम दबाव कहाँ डालते हैं? हम तो मनुष्य

की आत्मा के सत्य तथा उसकी सुन्दरता को जाग्रत करके उनके द्वारा उसके भीतर वाले असत्य और कुरूपता को नष्ट कराते हैं। हम सत्याग्रह द्वारा मनुष्य की कल्याणकारी और मानवीय भावनाओं से अपील करते हैं; और मनुष्य की कल्याणकारी तथा मानवीय भावना उस समय हमारी आत्मा के सत्य के बल की सहायता पाकर अपने अन्दर वाली पशुता पर विजय पाती है।"

दयानाथ ने कहा, "अच्छा छोड़ो इस बात को! अब सवाल यह है कि क्या किया जाय!"

मार्कण्डेय ने कुछ सोचकर उत्तर दिया, "हम लोगों को उस दूकानदार के घर चलना चाहिये, उससे अपने आदमियों की हरकत पर क्षमा-प्रार्थना करनी चाहिये। अपनी संरक्षता में उसे लाकर उसको दूकान पर बिठलाना चाहिये और हमारे स्वयम्सेवकों को जो उसकी दूकान पर धरना दें, उसकी रक्षा का भार अपने ऊपर लेना चाहिये।"

"बिल्कुल ठीक!" दयानाथ कह उठा, "अच्छा, अब तुम स्नान करो और भोजन करो। इसके बाद अगर चाहो तो कुछ विश्राम भी कर लो। शाम के समय हमें उस दूकानदार के यहाँ चलना है!"

६

शाम के समय दयानाथ, मार्कण्डेय, उमानाथ तथा कांग्रेस के अन्य नेतागण उस दूकानदार के यहाँ पहुँचे। उस दूकानदार का नाम पुरुषोत्तम था, गोरा और खूबसूरत-सा आदमी, कुछ थोड़ा-सा लापरवाह। पुरुषोत्तम साधारण हैसियत का आदमी था और उसका मकान एक गली के अन्दर था। मकान भीतर से बन्द था। इन लोगों के आवाज़ देने पर उसने भीतर से झाँका, और जब उसे विश्वास हो गया कि उसके दरवाज़े आने वाले आदमी उसपर प्रहार नहीं करेंगे तब उसने उतर कर दरवाज़ा खोला। सब लोगों के अन्दर आ जाने पर जब वह फिर से दरवाज़ा बन्द करने लगा तो

दयानाथ ने कहा, "कोई ज़रूरत नहीं; हम लोग तुम्हारे साथ हैं—तुम्हें कोई कुछ भी नुक़सान नहीं पहुँचा सकता। अपने भय को दूर करो!"

ऊपर कमरे में एक साफ़-सुथरा फ़र्श बिछा था जिसपर सब लोग बैठ गए। बात दयानाथ ने आरम्भ की, "हम लोग, जो कुछ कष्ट तुम्हें मिला है, उसके लिए क्षमा माँगने आए हैं। तुम अपनी दूकान पर चलकर बैठो, हम अपने ऊपर यह ज़िम्मेदारी लेते हैं कि तुम्हारा कोई भी अनिष्ट न होने पाएगा। और अभी तक जो कुछ हुआ है उसे भूल जाओ!"

पुरुषोत्तम सर झुकाए बैठा था। बिना अपना सर उठाए उसने उत्तर दिया, "हाँ, मुझसे ग़लती ज़रूर हो गई; लेकिन उस ग़लती के कारणों को मैं आप लोगों के सामने एक बार ज़ाहिर कर दूँ, फिर आप लोग जो उचित समझें वह दंड मुझे दें और मैं उसे स्वीकार करूँगा। देखिये, मेरी एक छोटी-सी दूकान है; मेरे घर में चार प्राणी हैं, उनका पेट मुझे भरना है। फिर मेरी सब की सब पूँजी उस दूकान में लगी है। और उस दूकान में सब का सब विलायती कपड़ा है। अब जब आप लोग मेरी दूकान पर धरना देते हैं तब आप हमारी आजीविका हरण करते हैं। मैं सब कष्ट बर्दाश्त करने को तैयार हूँ, लेकिन लड़के-बच्चों का कष्ट मुझसे नहीं देखा जाता! मेरे पास ज़्यादा पूँजी नहीं जो मैं देसी कपड़ा खरीदकर दूकान में बेंच सकूँ। ऐसी हालत में अगर मेरा दिमाग़ बिगड़ गया और मैं कुछ अनुचित बात कह बैठा तो उसमें मेरा क्या दोष?"

थोड़ी देर तक सब चुप रहे, फिर दयानाथ ने उत्तर दिया, "हाँ, हम लोग तुम्हारी मुसीबत समझते हैं, लेकिन ज़रा तुम भी तो हमारी मुसीबत समझो! देश के इतने आदमी भूखों मर रहे हैं—करोड़ों आदमियों को एक समय भोजन तक नहीं मिलता। हमारी यह स्वतंत्रता की लड़ाई उन भूखे और पद-दलित लोगों के उद्धार करने की लड़ाई है। और तुम! तुम भी तो उत्पीड़ित हो! आज तुम्हारी यह हालत विदेशी सरकार के कारण ही तो है। पुरुषोत्तम! यह युद्ध है; और इस युद्ध में प्रत्येक भारतवासी को अपना हिस्सा

लेना है। थोड़ा-सा कष्ट तुम्हें भी बर्दाश्त करना होगा। हम तुमसे जेल जाने को नहीं कहते, लाठी खाने को नहीं कहते। तुम जानते ही हो कि अधिकांश जेल जाने वालों के घर की हालत कितनी खराब है! एकमात्र उपार्जन करने वाले के जेल चले जाने से उन लोगों को भूखे रहना पड़ता है। लेकिन वे तो उफ़ तक नहीं करते। मैंने देखा है लाठी खाकर मर जाने वाले के घर में न जाने कितने बच्चे अनाथ हो जाते हैं—निराश्रित विधवा और अन्य कुटुम्बी हाहाकार करते हैं। इतने बड़े महायज्ञ में अगर हमारा देश आहुति नहीं दे सकता तो हमारा त्राण नहीं। तुम समर्थ हो! तुम कोई दूसरा काम करो! बाज़ार में तुम्हारी साख है, देसी कपड़ा तुम उधार लेकर बेंच सकते हो। खैर छोड़ो इस बात को! अब तुम अपनी दूकान पर चलकर बैठो। और तुम्हारे लोगों के सामने आ जाने के बाद फिर लोग तुम्हें कोई भी क्षति न पहुँचा-एँगे। इसकी ज़िम्मेदारी मुझपर!"

पुरुषोत्तम ने दयानाथ की ओर विनय से देखते हुए उत्तर दिया, "अच्छी बात है! मैं कल दूकान खोलूँगा! आप मुझे अपने साथ ले चलियेगा।"

सब लोग वहाँ से चले। वे लोग जनरलगंज से जा रहे थे कि एक आदमी ने खबर दी, "अनवरगंज की शराब की दूकान पर कुछ गुंडों ने कांग्रेस के स्वयमूसेवकों को मारा-पीटा है। भीड़ उत्तेजित हो रही है!"

उसी समय सब लोग अनवरगंज की तरफ़ चल दिये।

शराब की दूकान के सामने जनता उत्तेजित खड़ी थी, और कुछ स्वयम-सेवक जनता को शान्त करा रहे थे। बारह स्वयमूसेवक दूकान के सामने ज़मीन पर बैठे थे, और दूकान के सामने एक आदमी जो नशे में धुत था, खड़ा हुआ चिल्ला रहा था, "ह-ट-जा-ओ! आज-ख़ू-न-होगा—ला-शें गिरेंगी—एक-एक—बल्लम—सब को...हम...समझ—लेंगे!"

इतने में क़रीब चार आदमी हाथों में लट्ठ और जेबों में शराब की बोतलें लिए हुए दूकान के बाहर निकले। स्वयमूसेवक छाती खोल कर ज़मीन पर

लेट गए; एक स्वयम्सेवक ने कहा, "हमारी छाती पर पैर रख कर ही तुम यहाँ से शराब की बोतलें ले जा सकते हो, ऐसे नहीं।"

आगे वाला आदमी ठिठक कर खड़ा हो गया। उसके खड़े होते ही उसके अन्य साथी भी रुक गए। इतने में दूकान का मालिक भीतर से निकला, उसने सब से आगे वाले स्वयम्सेवक का हाथ पकड़ कर उठाना चाहा, लेकिन वह असफल रहा। झल्ला कर उसने अपने हाथ वाली शराब की बोतल उस स्वयम्सेवक के सर पर पटक दी। बोतल फूटी और लाल शराब बह चली; स्वम्सेवक का सर फूटा और लाल ख़ून बह चला। स्वयम्-सेवक ने ज़ोर से कहा, "भारत माता की जय!" और वह उसी समय बेहोश हो गया।

ख़ून देख कर दूकान के मालिक को होश आया, वह एक क़दम पीछे हटा। पर उन चार आदमियों में सब से आगे वाले आदमी ने उसे रोक लिया, "काहे हो! चले कहाँ?" और इस वाक्य के साथ उसका लठ दूकान के मालिक के सर पर पड़ा।

दयानाथ भीड़ को चीर कर आगे पहुँचा। दूकान का मालिक लठ के प्रहार से गिर पड़ा था और इस दफ़े चारों आदमियों ने अपने अपने लठ तान लिये थे कि दयानाथ ने आगे वाले आदमी का हाथ पकड़ लिया, "यह क्या? तुम अपने ही आदमी को मार रहे हो।"

उस आदमी ने कहा, "यह हमारा आदमी नहीं है, यह हमारा दुश्मन है। यह हमसे पाप कराने को हमें बहका लाया था! हमें छोड़िये, हम इसे यहीं ख़त्म कर दें! हत्यारा कहीं का!"

उसी समय पुलिस आ गई; दयानाथ ने कहा, "पुलिस आ गई है। तुमने जो कुछ किया वह बुरा किया, अब उसे यहीं ख़त्म करो! भगवान तुमको सुबुद्धि दे!"

उसने शान्तिपूर्वक दयानाथ को प्रणाम करके कहा, "मुझे आप लोग माफ़ करें। जो पाप मैंने किया था उसकी सजा मुझे मिल गई!" और फिर

उसने ज़ोर से आवाज़ लगाई, "भारत माता की जय !" इसके बाद उसने पुलिस को आत्म-समर्पण कर दिया।

पुलिस ने घायल स्वयम्सेवक को और मालिक-दूकान को अस्पताल भिजवाया। नौकरों ने यह सब देख कर दूकान बन्द कर दी। दूकान के बन्द होते ही भीड़ तितर-बितर हो गई।

जिस समय दयानाथ, उमानाथ और मार्कण्डेय घर पहुँचे, रात हो गई थी। खाना खा कर तीनों ड्राइंग-रूम में बैठे। बात-चीत के सिलसिले में मार्कण्डेय ने उमानाथ से पूछा, "उमा ! तुम्हारे वह दोस्त कामरेड मारीसन कहाँ हैं ?"

"वह तो इंगलैण्ड चले गए। क्या बतलाऊँ अब अकेला ही रह गया हूँ; मन नहीं लगता ! हाँ मार्कण्डेय भइया, कामरेड ब्रह्मदत्त के क्या हाल हैं ? उनकी मुझे बड़ी ज़रूरत है !"

मार्कण्डेय हँस पड़ा, "कामरेड ब्रह्मदत्त आज-कल सालीटेरी-सेल में निवास कर रहे हैं ! भाई आदमी जीवट का है—मैं मान गया !"

"क्यों क्या हुआ ?" उमानाथ ने उत्सुकतापूर्वक पूछा।

"बात यों हुई कि ब्रह्मदत्त को 'बी'-क्लास मिला और मुझे 'ए'-क्लास मिला था। जब कानपुर के डिक्टेटर की हैसियत से मैं भी गया था और ब्रह्मदत्त भी गए थे। ऐसी हालत में यह भेद-भाव उन्हें अखर गया। सुपरिण्टेण्डेण्ट जेल से उन्होंने लिखा पढ़ी की। इसका नतीजा यह हुआ कि इनक्वाइरी हुई और यह समझा जाता था कि उन्हें भी 'ए'-क्लास मिल जायगा। लेकिन इस बीच में एक दिन वे सुपरिण्टेण्डेण्ट जेल से अनायास ही उलझ पड़े।"

"सो कैसे ?"

"वह ऐसे कि ब्रह्मदत्त उलझने पर ही तुले बैठे थे। सुपरिण्टेण्डेण्ट उस दिन राउण्ड लगा रहा था; ब्रह्मदत्त उसके सामने पहुँचे; तेज़ी के साथ उन्होंने कहा, इतने दिन हो गए और आप लोगों ने अभी तक कुछ नहीं किया। याद

रखना अगर मुझे 'ए'-क्लास नहीं मिला तो कांग्रेस गवर्नमेन्ट होने पर मैं तुम्हें बर्खास्त कर दूँगा ! ब्रह्मदत्त की बात सुन कर सुपरिण्टेण्डेण्ट ज़ोर से हँस पड़ा, और अगर मैं तुम्हें 'सी'-क्लास दे दूँ तो तुम मुझे फाँसी चढ़वा दोगे ! और बर्खास्त होने से मैं मर जाना ज़्यादा पसन्द करूँगा। इसलिए मैं तुम्हें 'सी'-क्लास देता हूँ !"

उमानाथ खिलखिला कर हँस पड़ा, "मज़ेदार बात कह गया—तारीफ़ करता हूँ उसकी ! फिर क्या हुआ ?"

"अब हमारे ब्रह्मदत्त साहेब को मिला 'सी'-क्लास। उसी दिन उन्होंने जनेऊ हाथ में लेकर क़सम खाई कि वे सुपरिण्टेण्डेण्ट को नाकों चने चबवा देंगे। फिर क्या था, उन्होंने 'सी'-क्लास के क़ैदियों का एक यूनियन स्टार्ट किया। दो-चार दिन में ही वे जेल के एक-छत्र शासक बन बैठे। अब किसी भी क़ैदी को कोई हुक्म मिले, मजाल है कि बिना पण्डित ब्रह्मदत्त की मंजूरी के वह हुक्म पूरा हो जाय। नतीजा यह हुआ कि कामरेड ब्रह्मदत्त को डण्डा-बेड़ी मिली, उन पर मार पड़ी, तोबड़ा चढ़ाया गया। लेकिन हालत सुधरने की जगह दिनोंदिन बिगड़ती ही गई। जिस दिन मैं छूटा उसके दो दिन पहले वे सालीटरी सेल में भेज दिये गए थे। लेकिन 'सी'-क्लास के क़ैदियों ने बाक़ायदा सत्याग्रह आरम्भ कर दिया था और यह सत्याग्रह था कि काम न करेंगे चाहे उनकी बोटी-बोटी काट डाली जाय।"

"तब तो शायद उनकी सज़ा बढ़ा दी जाय !" उमानाथ ने चिन्तित भाव से कहा।

मार्कण्डेय ने मुसकराते हुए उत्तर दिया, "मेरा ख़याल है कि जितने तरह के रिमीशंस हो सकते हैं, वे सब के सब उनके हक़ में बरते जाएँगे और अगर दो-चार दिन के अन्दर ही पण्डित ब्रह्मदत्त तुम्हें आकर सलाम करें तो इसमें मुझे ज़रा भी आश्चर्य न होगा।" इसके बाद मार्कण्डेय दयानाथ की ओर घूमा, "दया ! कल मैं गाँव जाने की सोच रहा हूँ। दो चार दिन गाँव में रह कर आराम कर लूँ तब फिर यहाँ का काम-काज देखूँ-भालूँगा !"

"मैं भी आपके साथ चलूँगा, मार्कण्डेय भइया !" उमानाथ ने कहा।

दयानाथ ने दोनों को देखा, फिर उसने मार्कण्डेय से कहा, "अच्छी बात है ! लेकिन कल सुबह उस दूकानदार के मसले को हल करके जाना !"

सुबह दस बजे सब लोग पुरुषोत्तम के मकान पर पहुँचे। उसे साथ लेकर वे लोग उसकी दूकान पर आए—जनता की एक बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गई थी, लेकिन सब लोग शान्त थे। पुरुषोत्तम ने अपनी दूकान खोली और बैठ गया; उसके पास ही अन्य लोग भी बैठ गए।

उसी समय वह स्वयम्सेविका, जिसका उस दिन पुरुषोत्तम ने अपमान किया था, झण्डा लेकर दूकान के सामने खड़ी हो गई। स्वयम्सेविका के दूकान के सामने खड़े होते ही पुरुषोत्तम ने दूकान से उतर कर उस स्वयम्सेविका के चरण छुए। जनता ने उस समय नारा लगाया, "भारत माता की जय !"

पुरुषोत्तम ने फिर दूकान पर खड़े होकर कहा, "भाइयो और बहनो ! मैंने जो पाप किया था आज मैं उसका प्रायश्चित्त कर रहा हूँ ! आज ही मैं अपने माल पर काँग्रेस की सील लगाए देता हूँ। और आगे के लिए मैं अपने को काँग्रेस का एक तुच्छ कार्यकर्ता घोषित करता हूँ।"

चारों ओर एक हर्ष-ध्वनि गूँज उठी।

जब सब लोग वापस हुए, उमानाथ ने मार्कण्डेय से कहा, "मार्कण्डेय भइया ! आप लोग खूब तमाशा करते हैं—मैं मान गया ! लेकिन यह सब क्यों ? एक ग़लत सिद्धान्त पर लोगों को चला कर आप उनका कितना अधिक अहित कर रहे हैं—यह आप नहीं जानते !"

मार्कण्डेय ने उमानाथ की ओर आश्चर्य से देखा, "क्या कहा ग़लत सिद्धान्त ? तुम्हारे पास क्या सबूत है कि यह ग़लत सिद्धान्त है ?"

"इसका सबूत यह है कि आप का सिद्धान्त प्रकृति के विरुद्ध है !'

"और मैं कहता हूँ कि यह प्राकृतिक है !" मार्कण्डेय ने कहा, "तुमने

कल शराबखाने का दृश्य देखा और आज यह दृश्य देखा! इस पर भी तुम कहते हो कि हमारा सिद्धान्त प्रकृति की अवहेलना करता है!"

एक व्यंगात्मक मुस्कराहट के साथ उमानाथ ने कहा, "मार्कण्डेय भइया! उस स्थिति में जहाँ भावना थोड़ी देर के लिए क्षणिक उन्माद का रूप धारण कर लेती है अगर एक बात हो जाय तो उसे हम प्राकृतिक नहीं कह सकते! आप का यह मास-मूवमेण्ट (Mass movement)' और 'मास-अपील' सत्य और नित्य नहीं है। आज और कल जो कुछ हुआ उसे हम भावना का पागलपन ही कह सकते हैं, स्वाभाविक और प्राकृतिक घटनाएँ नहीं कह सकते!"

उस समय तक दोनों मार्कण्डेय के मकान तक पहुँच चुके थे। मार्कण्डेय ने कहा "उसका उत्तर मैं तुम्हें गाँव चल कर दूँगा, अभी मुझे चलने का प्रबन्ध करना है!"

तीसरा परिच्छेद

१

रात के समय जब मनमोहन शाम को शिकार में मारे हुए दो सवनों को पका रहा था तो झगड़ू ने पूछा, "काहे हो मनमोहन! तुम कौन जात हो?"

मनमोहन चौंक पड़ा, फिर ज़रा-सा सम्हल कर उसने उत्तर दिया, "शायद ब्राह्मण!"

इस बार झगड़ू के चौंकने की बारी थी, "यू 'सायद' काहे?"

मनमोहन ने बड़ी गम्भीरता पूर्वक कहा, " 'शायद' इसलिए कि मुझे किसी भी चीज़ पर विश्वास नहीं रह गया। ब्राह्मण के कुल में मैंने जन्म अवश्य पाया है, पर न मेरे कर्म ब्राह्मण के हैं, न मेरे संस्कार! मुझे ईश्वर पर विश्वास, मुझे अपने ऊपर तक विश्वास नहीं। ऐसी हालत में मैं अपने को निश्चयपूर्वक ब्राह्मण कैसे कह सकता हूँ।" कुछ रुककर मनमोहन ने फिर कहा, "लेकिन, मिसिर जी! आपने इस समय मेरी जाति क्यों पूछी थी?"

"बात यू आय कि मांस तुम पकाय रहे हौ और खाँय की इच्छा हमरी हूँ हुइ आई! तौन हम यू निश्चै कर लीन चाहा कि तुम ब्राह्मण आव कि नाहीं!"

"और अगर मैं ब्राह्मण न होता?" मनमोहन ने पूछा।

"तो फिर आज हम निरामिष भोजन करित!"

एकाएक मनमोहन उठ खड़ा हुआ, उसका स्वर तनिक कर्कश हो उठा, "तो मिसिर जी! आप वह नहीं हैं जो मैंने आपको समझ रक्खा था; आप भी समाज की रूढ़ियों से बँधे हुए उतने ही कायर आदमी हैं जितना आज का हर एक हिन्दुस्तानी है!"

"का कह्यो ! हम कायर आन ?" कड़े स्वर में झगड़ू ने पूछा।

"हाँ, आप कायर हैं !" मनमोहन का स्वर और भी उत्तेजित हो उठा। मनुष्यों में छुआछूत का इतना विचार रखने वाले आप पशु पक्षियों को छू ही नहीं सकते हैं वरन् उनका भक्षण कर सकते हैं ! आपने कभी इसपर सोचा है ? और सोचने की आवश्यकता ही क्या है—यह बात इतनी स्पष्ट है ! नतीजा साफ़ है—आपके अन्दर वाली कायरता आपको मजबूर करती है कि आप इन रूढ़ियों में बँधे रहें।"

झगड़ू कुछ देर मौन बैठे हुए मनमोहन की बात पर सोचते रहे, फिर उन्होंने सर उठाया, "सायद तुम ठीकै कह्यो, मनमोहन ! हम अवस्य कायर आन ! लेकिन ई तो मानैं का पड़ी कि कायरता कबौं-कबौं हितकरौ होत है। हम सब छुटकवा मनई कायर आन !"

"सो कैसे ?" इस बार मनमोहन के प्रश्न करने की बारी थी !

"सो ई तरा कि दुनिया माँ सफल मनई वहै आय जो वीर आय। और वीरता का एक रूप आय अपराध, अपनपन के पीछे लोकमत की उपेक्षा। सो प्रत्येक लोकमत की उपेक्षा करै वाला मनई अपराधी आय ! है न !"

"लोक-दृष्टि में—अपनी दृष्टि में नहीं।" मनमोहन ने कहा।

"माना, किन्तु लोक से पृथक हमारा अस्तित्व कब आय ? अब जब हम अपनपन का लोकमत के ऊपर उठाय लेइत हन तब हम वीर बन जात हन काहे सेनी कि हम ऊ समय अपने अन्दर वाली पुकार से प्रेरित हुइ के लोकमत का चुनौती देन पर तैयार हुइ जात हन !"

मनमोहन हँस पड़ा, "मिसिरजी ! यह लोकमत बनता कैसे है ? हम सब लोक के एक भाग हैं कि नहीं ? जो बात ठीक है उसे करने में हिचक क्यों ? आज का लोकमत यदि ग़लत है तो उसे सुधारने वाला कौन है ? हमी लोग न ? हमी लोगों के जिम्मे यह काम है कि हम लोकमत को बदलें ! बिना इस बलिदान के हमारा जीवन निरर्थक है, हमारा अस्तित्व शून्य है !"

झगड़ू उठ खड़े हुए। कुछ देर तक एकटक वे रात के गहरे अन्धकार को देखते रहे, फिर एक ठंडी साँस ले कर उन्होंने कहा, "तुम ठीक कहि रहे हौ, मुला ई पै सोचन का पड़ी। तौन इतना तो हमहू कबौं-कबौं अनुभव करन लागत आन कि हमार जिन्दगी निरर्थक बीत रही है। अब सार्थक कैसे बने—यू हमका कबहूँ नाहीं सूझा!"

कुछ रुक कर झगड़ू ने फिर कहा, "और सूझतौ कैसे? हम पंचे अपढ़ मनई, बैल की तरा काम-काज माँ जुते रहेन, कबौं दम मारन की फुरसत नाहीं मिली!"

उस रात झगड़ू और मनमोहन में फिर कोई बात नहीं हुई। दूसरे दिन सुबह छै बजे ही दोनों शिकार पर निकल पड़े।

गंगा के किनारे-किनारे दोनों चले जा रहे थे, सूर्योदय हो रहा था। एकाएक झगड़ू रुक गए, उनके सामने करीब दो सौ गज़ की दूरी पर हिरनों का एक झुण्ड बैठा था। मनमोहन के कंधे पर हाथ रख कर उन्होंने कहा, "देखत हौ! बीच माँ वह काला बइठ है! कैसे बड़े-बड़े सींग हैं!"

"तो उसी को लेता हूँ!" यह कह कर मनमोहन ने बन्दूक का निशाना लिया। मनमोहन बन्दूक का घोड़ा दबाने ही वाला था कि झगड़ू ने उसे रोक दिया, "नहीं मनमोहन, छोड़ो! चलो आगे बढ़ो!"

"क्यों?" मनमोहन ने पूछा।

झगड़ू मुसकराए, "देखने! मजे माँ किलोलें करत हैं—कैस सुखी हैं! तौन उनकेर सुख हर लेन की तबीअत नाहीं होत है!"

उस समय तक सारा ग्राम प्रान्त मधुर कलरव से भर गया था। मनमोहन ने झगड़ू की बात का कोई उत्तर नहीं दिया, वह गंगा के किनारे खड़ा हुआ गंगा के प्रवाह को देख रहा था। उसके सामने गंगा की अथाह जल-राशि थी जिसके साथ सूर्य की सुनहली किरणें अठखेलियाँ कर रही थीं। वह प्राकृतिक सौन्दर्य उसने युगों के बाद देखा था, और वह सोच रहा था। उसने एक ठंढी साँस भर कर झगड़ू से कहा, "मिसिरजी! मैं इस सब से कितनी

दूर हट गया हूँ ! दुनिया में इतना अधिक सौन्दर्य है, इतना अधिक उल्लास है, इतना अधिक सुख है—पर इन सबों से मैं कितना दूर हो गया हूँ !"

पर झगड़ू की आँखों के आगे न सौन्दर्य था और न सुख था, उनकी आँखों के आगे एक भयानक सूनापन था, उनकी सारी ज़िन्दगी उनकी आँखों में अपना खोखलापन भर चुकी थी। एक निरर्थक सी करुण मुसकराहट के साथ झगड़ू ने कहा, "हुइ सकत है ! तुम अबहीं अबहीं सहर से आय रहे हौ !"

मनमोहन ने एक ठंढी साँस भरी। बन्दूक उसने अपने कंधे पर लटका ली और दोनों चल पड़े।

दोनों चल रहे थे और दोनों सोच रहे थे। कुछ थोड़ी देर तक चलते रहने के बाद मनमोहन ने झगड़ू से पूछा, "मिसिरजी ! आपने अभी मुझे हिरन पर गोली चलाने से रोका था, यह कह कर कि वे सुखी हैं—उनके सुख को न छीनना चाहिए ! अब आप बतलाइये कि फिर हम लोग शिकार खेलना बन्द क्यों नहीं कर देते !"

झगड़ू ने कुछ सोचकर कहा, "लेकिन, मनमोहन ! ई हिरन खेती का कितना नुकसान करत हैं ! ई जितने सिकार आँय उनकी तह माँ एक सिद्धान्त है। हम उनही जानवरन का मारत हन या सिकार करत हन जौन हमार नुकसान करत हैं !"

"हूँ !" मनमोहन ने सर हिलाया, "शायद आप ठीक कहते हैं !"

अब वे दोनों एक ऐसे ऊँचे टीले पर आ गए थे जहाँ से इर्द-गिर्द बहुत दूर का दृश्य दिखलाई देता था। दोनों उस टीले पर खड़े हो गए, और मनमोहन ने अपने चारों ओर देखा। उसकी दृष्टि दूर पर बानापुर के राजा साहेब के महल पर रुक गई; कुछ देर तक वह उस ओर देखता रहा। फिर उसने बहुत गम्भीरता पूर्वक झगड़ू से कहा, "मिसिरजी ! क्या आपने कभी मनुष्य का शिकार किया है ?"

इस प्रश्न से झगड़ू चौंक पड़े, उन्होंने मनमोहन को बड़े ध्यान से देखा, "मनई का सिकार ? काहे हो मनमोहन—तुम कबहूँ कीन्हे हौ का ?"

मनमोहन के मुख पर हलकी-सी मुसकराहट आई, "नहीं, मिसिरजी ! बात यह थी कि आपने अभी कहा था कि हम लोग उन्हीं जानवरों का शिकार करते हैं जो हमारा नुक़सान करते हैं। शिकार को इस कसौटी पर कसने के बाद मुझे तो ऐसा लगता है कि यदि हम लोग मनुष्य का शिकार करने लगें तो मानव-समाज का बड़ा कल्याण हो। है न ऐसा !"

झगड़ू अजीब चक्कर में पड़ गए। उन्होंने अनेक प्रकार के विचित्र मनुष्य देखे थे, पर आज उनके सामने उन सब से अधिक विचित्र मनुष्य खड़ा था। उसने बात ऐसी कही थी जो भयानक होते हुए भी सारहीन न थी। उन्होंने उत्तर दिया, "हाँ, मनई तो सब से ज्यादा नुकसान करत है, और ऊके कर्मन का दण्ड भी मिल जात है। यह राज-काज, न्यायालय—सब यही तो कर रहे हैं—हमार काम यू थोड़ो आय !"

मनमोहन ने उसी तरह शान्त भाव से कहा, "लेकिन ये न्यायालय न्याय कब करते हैं ? न्याय का रूप समर्थ के वास्ते कुछ है और असमर्थ के वास्ते कुछ। धनी आदमी हत्या करके मज़ा कर सकता है और उसके बदले में एक निर्धन निरपराध को दण्ड मिल सकता है !"

"ई तो ठीक है ! लेकिन ई सब का देखन वाला भगवानौ तो है। न्याय-अन्याय का लेखा-ज्योखा जन्म-जन्मान्तर माँ बराबर हुइ जात है !"

२

क़रीब ग्यारह बजे दोनों वापस लौटे, उस दिन उन्हें कोई शिकार नहीं मिला, या यों कहें कि उस दिन उन्होंने शिकार नहीं किया। जब वे लोग गाँव पहुँचे तो उन्होंने देखा कि झगड़ू के दरवाज़े एक भीड़ खड़ी थी। झगड़ू ने आते ही पूछा, "कहो—क्या मामला है !"

एक नवयुवक ने बढ़कर कहा, "झगड़ू काका ! अब तो बड़ी ज़्यादती हो रही है। आज मैनेजर साहब ने रामाधीन को बुरी तरह पिटवाया—बिचारे को अधमरा करके छोड़ा।"

"यू काहे ?" झगड़ू ने पूछा !

"बकाया-लगान की चुकौती में ज़िलेदार साहेब रामाधीन के बैल छीने लिये जा रहे थे। सो रामाधीन से न रहा गया, उसने बढ़ के रोका। बस इसी पर बात बढ़ गई। इसपर मैनेजर साहब खुद आए और उन्होंने यह सब काण्ड किया।"

"और तुम लोग सब के सब मरि गे रह्यो जौन खड़े-खड़े देखत रह्यो ?" झगड़ू ने गरज कर कहा, "ठाकुर रामसिंह रामाधीन का अधमरा करके जिंदा चले गए ! डूब मरौ चिल्लू भर पानी माँ !"

उस नवयुवक ने जिसका नाम मोहनलाल था, कहा, "झगड़ू काका, आप ही तो हम लोगों को अहिंसा पर चलने का उपदेश देते रहते हैं, और आज आप हम लोगों पर नाराज़ हो रहे हैं !"

पर झगड़ू का पारा चढ़ चुका था, इस समय वे हिंसा-अहिंसा के मसले पर वाद-विवाद करने को या सोचने-समझने को ज़रा भी तैयार न थे; उन्होंने कहा, "हम ई कुछ नहीं जानित ! तौन ठाकुर रामसिंह से यू सँदेशा कहाय देव कि अब उइ गाँव माँ पैर न रक्खैं नहीं तो उनकी वहै गति होई जो उइ रामाधीन की कीन्हिन हैं। अच्छा रामाधीन कहाँ हैं ?"

"घर में पड़े हैं, मरहम-पट्टी हो रही है !"

"हम चल के देखित हन !" झगड़ू मनमोहन की ओर घूमे, "तौन जरा तुम बैठो, हम रामाधीन का देख आई !"

रामाधीन की मरहम-पट्टी करके झगड़ू करीब दो बजे लौटे। मनमोहन तब तक पढ़ता रहा। झगड़ू के वापस आने पर दोनों ने भोजन किया। भोजन करके दोनों लेट गए।

शाम के समय अलाव के सामने झगड़ू के पड़ोसी इकट्ठा हो गए। झगड़ू और मनमोहन—दोनों वहाँ आकर बैठ गए, और बातचीत रामाधीन पर उठ पड़ी। एक आदमी ने कहा, "मिसिर जी! रामाधीन की जो हालत हुई है उससे गाँव भर में आतंक फैल गया है। ज़िलेदार कह रहे हैं कि जो आदमी मैनेजर साहब के हुक्म की उपेक्षा करेगा उसकी वही गति होगी।"

झगड़ू ने मनमोहन की ओर देखा, "सुनेव, मनमोहन! यू अत्याचार दिनोंदिन बढ़त जात है। अब हमरे सामने सवाल यू है कि ई सबका उत्तर कौनी तरह दीन जाय। तौन महात्मा गांधी 'अहिंसा-अहिंसा' चिल्लाय रहे हैं, और हम कहित है कि अहिंसा कायरता आय!"

मनमोहन ने कुछ सोचकर उत्तर दिया, "लेकिन, मिसिर जी! आप कर ही क्या सकते हैं? इस अत्याचार को दो तरह से ही दबाया जा सकता है, या तो अत्याचारी को मिटाकर या स्वयम् मिटकर! अभी तक आप मिटे हुए थे, आप गुलाम थे इसलिए आप पर अत्याचार कम होते थे, लेकिन जब आपने करवट ली तब आप पर अत्याचार बढ़े। अब अगर इस अत्याचार को मिटाना चाहते हैं तो आपके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि आप अत्याचारी को मिटावें। और इसलिए यह सवाल महत्व का है कि क्या हिंसा द्वारा आप उस अत्याचारी को मिटा सकते हैं?"

"काहे नाहीं!" झगड़ू ने तनकर कहा, "ई मनीजर, सरबराकार, ज़िलादार, सियादा—इनकेर हस्ती का है? हम कहित है कि ठाकुर रामसिंह जरा गांव मां पैर रखि के तो देख लेंय!" और इस बार वे अपने आस-पास बैठे लोगों की ओर मुड़े, "काहे हो भइया! हम ठीक कहित है न!"

विश्वम्भर नाम के एक अधेड़ आदमी ने कहा, "नहीं मिसिर जी! अभी दो-चार दिन तो वह नहीं आ सकते, लेकिन इसके बाद जब सब लोगों का जोश ठंडा पड़ जायगा, तब की बात मैं नहीं कह सकता।"

अलाव ज़ोरों के साथ सुलग रहा था और चारों ओर गहरा अन्धकार फैला था। लकड़ी के एक बड़े-से कुन्दे की आग का लाल प्रकाश मनमोहन

के चेहरे पर पड़ रहा था और झगड़ू ने मनमोहन के लम्बे-से सुन्दर मुख पर एक हलकी-सी मुसकराहट देखी। और उन्होंने देखा कि उस मुसकराहट से मनमोहन का चेहरा एकाएक बहुत भयानक रूप से विकृत हो गया है; मनमोहन की उस महाकुरूप मुसकराहट से झगड़ू सिहर-से उठे। घबराकर उन्होंने उधर से अपनी आँखें फेर लीं। विश्वम्भर से उन्होंने कहा, "तो तुम्हार खयाल है कि ई गाँव के मनई दुइयै-चार दिना माँ दबि जइहँ?"

विश्वम्भर ने कुछ सकपकाते हुए कहा, "मिसिर जी, आप यह तो जानते ही हैं कि हम लोगों के बीच में एका नहीं है। आज जब आप रामाधीन के यहाँ गए थे उस समय दो आदमी मैनेजर के यहाँ पहुँचे और मेरा ऐसा खयाल है उन्होंने एक-एक की पाँच-पाँच जड़ी होगी। जब तक हम लोगों में ऐसे विश्वासघाती मौजूद हैं तब तक कोई बात निश्चय रूप से कैसे कही जा सकती है!"

"उइ दुइ मनई कौन आँय—जरा हमहू तो जानी!" झगड़ू ने पूछा।

"नाम आप मुझसे न पूछें, मिसिर जी! मैंने आपको केवल आगाह भर किया था!"

झगड़ू चुप-चाप सोचने लगे—आगे-पीछे पर; फिर उन्होंने कहा, "विसम्भर! काल सुबा गाँव के सब मनई इहाँ इकट्ठा कीन जइहँ! अब तो या झगड़ू मिसिर हैं या फिर ठाकुर रामसिंह हैं।" और झगड़ू उठ खड़े हुए, वे कुछ तन गए, "रामसिंह का अबहीं बम्हनन-ठाकुरन से पाला नाहीं पड़ा, अहिर-गड़रियन पर रोब दिखावत रहे हैं। यू याद राखैं कि अगर जिन्दा अपनी मरजी से उइ ई गाँव से नाहीं गए तो फिर हमरी मरजी से उनका मुरदा हुइ के जाँय का पड़ी।"

मनमोहन ने हाथ पकड़ कर झगड़ू को बिठला लिया, "मिसिर जी! आप होश में नहीं हैं। बैठिये!"

झगड़ू बैठ गए—लेकिन वे आवेश से काँप रहे थे।

थोड़ी देर तक झगड़ू के शान्त हो जाने की प्रतीक्षा करने के बाद मनमोहन ने पूछा, "मिसिर जी ! आप अकेले मैनेजर से मोरचा लेंगे या आपके साथ और भी आदमी होंगे ?"

"सारा गाँव हमार साथ देई !" सब लोगों की ओर देखते हुए झगड़ू ने कहा, "और अगर ई लोग साथ न देंय तबहूँ हमें ई की चिन्ता नाहीं। हम अकेले काफी आन !"

"नहीं ! आप अकेले तो काफ़ी नहीं हैं ! और गाँव वाले आपका साथ देंगे—इसपर मुझे शक है। लेकिन अगर मैं यह मान भी लूँ कि वे लोग आपका साथ देंगे तो मेरे खयाल से वे ग़लती करेंगे !"

इसी समय एक आदमी ने कहा, "मालूम होता है बहुत से आदमी आ रहे हैं मिसिर जी !" और बात बन्द हो गई। सामने कुछ आदमी आ रहे थे। आगे-आगे एक आदमी लालटेन लिए हुए था और उसके पीछे दस-बारह आदमी लट लिये हुए थे। यह गिरोह झगड़ू के दरवाज़े आकर रुका। उस गिरोह में से एक आदमी ने बढ़कर कहा, "मिसिरजी ! पाँव लागी !"

जिस आदमी ने यह कहा था उसके हाथ में लाठी के स्थान पर एक बन्दूक थी। वह ओवरकोट पहिने था और उसके चेहरे से रोब टपकता था। झगड़ू ने बैठे ही बैठे उत्तर दिया, "आसीर्वाद ठाकुर रामसिंह ! कहो कैसे कष्ट कीन्हेव ?"

मुसकराते हुए रामसिंह ने कहा, "मिसिरजी ! हमने आज सुना कि आप हम पर नाराज़ हो गए हैं ! इसीलिए हम आपकी सेवा में उपस्थित हुए हैं ! हमने आपका ऐसा कौन-सा अपराध किया ?"

झगड़ू इस परिस्थिति के लिए तैयार न थे; उन्हें यह न सूझ पड़ रहा था कि किस तरह बात-चीत की जाय; फिर भी उन्होंने कहा, "मनीजर साहेब ! गंगाधीन के हाथ-पैर आपै की आज्ञा से तोड़े गए हैं न !"

रामसिंह ने उत्तर दिया, "हाँ मिसिरजी ! यह सब हमारे ही हुक्म से हुआ है। लेकिन इतना हम आपको बतला दें कि हम तो केवल एक माध्यम

हैं जिसके द्वारा राजा साहेब का हुक्म चलता है। उनका हुक्म है कि राज्याज्ञा का विरोध करने वाले को कड़ा से कड़ा दण्ड दिया जाय!"

"ऐस बात है!" झगड़ू ने केवल इतना ही कहा।

थोड़ी देर तक मौन छाया रहा, इसके बाद रामसिंह ने कहा, "और मिसिरजी आपने हमें जो संदेसा भिजवाया कि हम गाँव में क़दम न रक्खें, वह संदेसा हमें मिल गया। उसी संदेसे के उत्तर में हम यहाँ आए हैं—आप हमें देख रहे हैं न!"

रामसिंह के पहले उत्तर से झगड़ू कुछ शान्त हो गए थे, लेकिन उनकी दूसरी बात ने बुझती हुई आग पर घृत का काम किया, वे उठ कर खड़े हो गए, "तो फिर ठाकुर रामसिंह हम यू समझी कि तुम हमें चुनौती देन आए हो!"

एक व्यंग की हँसी हँसते हुए रामसिंह ने कहा, "चुनौती तो हमें आपने दी थी, हम उसे राजा साहब की तरफ़ से मंजूर करते हैं। आपने कहलाया था कि हमारी वही गति होगी जो हमने रामाधीन की की थी। हम यहाँ खड़े हैं, अब जिसकी हिम्मत हो वह हमारी वह गति बनावे!"

"तो फिर लेव!" झगड़ू ने अपने बग़ल में रक्खी हुई लाठी को तानते हुए कहा। पर झगड़ू के लाठी तानते ही मनमोहन ने उन्हें पकड़ लिया, "नहीं मिसिरजी! इस तरह आवेश में आकर काम नहीं किया जाता!" और उस समय झगड़ू ने देखा कि रामसिंह के छै आदमी लट्ठ ताने हुए उन्हें घेरे खड़े हैं। मनमोहन इस बार रामसिंह की ओर घूमा, "जाइये मैनेजर साहेब! आप समर्थ हैं। लेकिन यदि मिसिरजी के प्रति आप आदर दिखलाते तो अधिक अच्छा होता!"

मैनेजर साहेब हँस पड़े, "आदर! मिसिरजी का हम आदर करते हैं! राजा साहेब की बराबरी वाले हैं। हमने तो न उनका अपमान किया न उन्हें बुरा भला कहा। हम सिर्फ़ इतना कहने आए थे कि हम राजा साहेब के प्रति-

निधि है—राजा साहेब के मैनेजर को चुनौती असल में राजा साहेब को चुनौती है !" और यह कह कर ठाकुर रामसिंह अपने साथियों के साथ चले गए।

३

रात भर झगड़ू को नींद नहीं आई। उनके घर के सामने थानापुर क मैनेजर उनका अपमान करके चला गया—आज तक झगड़ू को इस स्थिा का सामना न करना पड़ा था। घटनास्थल से मैनेजर के जाते ही वे वहाँ से उठ आए थे; चलते समय उन्होंने न किसी से एक शब्द कहा और न किस ने उनसे कोई बात की। झगड़ू जानते थे कि वे पराजित हुए, गाँव वाले य जानते थे कि झगड़ू पराजित हुए। रात भर वे करवटें बदलते रहे, सुब चार बजे के क़रीब उनकी आँख लगी, और जब वे सोकर उठे तब धूप काफ़ चढ़ आई थी।

मनमोहन सुबह तड़के ही घूमने चला गया था। झगड़ू जब घर के बाह निकले, गाँव के आदमी वहाँ इकट्ठा थे। एक आदमी ने कहा, "मिसिरजी रात में मुरली के मकान में आग लग गई। ऐसा खयाल किया जाता है वि यह करतूत रियासत वालों की है।"

झगड़ू ने चुपचाप यह खबर सुनी, वे कुछ बोले नहीं। उस समय वे तेज़ के साथ सोच रहे थे। चीज़ें बहुत बड़ी रफ़्तार से बढ़ रही थीं और झगड़ू क ऐसा लग रहा था कि जल्दी ही उन्हें कुछ न कुछ करना पड़ेगा। वे चुपचा बैठ गए; गाँव वाले अब भी इकट्ठा हो रहे थे। आज सारा वातावरण गम्भी और आतंक से भरा हुआ था। लोग निर्णय करने आए थे और उन्हें अपन निर्णय देना था अपने जीवन-मरण के प्रश्न पर। लेकिन शायद झगड़ू वे सामने उस समय गाँव वालों का प्रश्न उतना न था जितना उनका व्यक्तिगत प्रश्न था। रात में कई आदमियों के सामने ठाकुर रामसिंह उनका अपमान कर गए थे—किस प्रकार उस अपमान का बदला लिया जाय—वे उस समय यही सोच रहे थे।

विश्वम्भर ने कहा, "मिसिरजी, हम लोगों ने कल रात की घटना की बाबत सुना। राम! राम! ठाकुर रामसिंह की अब यह हिम्मत हो गई है! अब आपका क्या विचार है?" और विश्वम्भर ने वहाँ उपस्थित अन्य लोगों की ओर देखा, "सो मैं तो यह जानता हूँ कि मिसिरजी हमारे पूज्य हैं, उनका अपमान हम सब लोगों का अपमान है! अब यह मिसिर जी के ऊपर है कि वे किस प्रकार उस अपमान का बदला लेना चाहते हैं!"

झगड़ू अभी तक चुप थे, अब उन्होंने अपनी नज़र उठाई। उन्होंने वहाँ उपस्थित लोगों को एक बार ग़ौर से देखा, फिर उन्होंने शान्त और गम्भीर स्वर में कहा "आप लोग इतना अधिक उद्विग्न न होंय! यदि हमार अपमान भा है तो हम अपने अपमान का बदला लै सकत हन। सवाल आप लोगन के सामने यू आय कि यह अत्याचार कौनी तरह रोका जाय। हम अबही सोचत रहेन कि तिवारीजी से मिल के उन्हें सब कुछ बताय देन और अगर तिवारीजी हूँ कुछ न सुनैं तो फिर हम सब काम करी। आप लोगन केर का विचार है?"

"क्या आपका अनुमान है कि इस मामले में तिवारीजी हम लोगों का पक्ष लेंगे?" एक नवयुवक ने कहा, "और मिसिरजी, आप तिवारीजी को इतना अधिक जानते हुए भी यह अनुमान कर लेते हैं—इस पर मुझे आश्चर्य होता है। फिर अपने अधिकारों की हम दूसरों से भिक्षा क्यों माँगें? स्वयम् अपने अधिकारों को अपने हाथ में लेकर हमें काम करना चाहिये। राज्य के नौकर-चाकर लोकमत की उपेक्षा नहीं कर सकते, समय पड़ने पर वे सब हमारा साथ देंगे—इतना मैं जानता हूँ। अब अगर हम लोग काम करने से डरते हैं तो यह हमारी कायरता है।"

झगड़ू ने उस नवयुवक से पूछा, "तो तुम काम करा चाहत हौ! अच्छा अब हमें यह बताओ कि का काम करा चाहत हो?"

नवयुवक निरुत्तर-सा हो गया। उसने केवल इतना कहा, "आप लोग सब इकट्ठा हुए हैं—इसका निर्णय तो आपही लोग करेंगे!"

झगड़ू मुसकराए, "बात कहि देब आसान आय लेकिन काम करब ब कठिन आय! जोश मां आय के कहि डालै मां और उचित ढंग से क करै मां बड़ा अन्तर आय। अच्छा परमेसुर! निर्णय तौ हम सब ले करबे—तुम उपाय तौ बताओ!"

उस नवयुवक ने जिसका नाम परमेश्वर था ज़रा हिचकिचाते हुए कहा "बता तो सकता हूं, लेकिन आप सब लोग उसे मानेंगे नहीं।"

"नहीं कह डालो—मानें या न मानें—इसमें हर्ज क्या है।" विश्वम्भर ने कहा।

"तो कल रात मुरली की झोपड़ी में आग लगी है, चोरी-छिपे; आग रात मैनेजर साहब के घर में आग लगे ऐलान कर के!" परमेश्वर ने त कर कहा।

सभा में एक गहरा सन्नाटा छा गया। जो कुछ परमेश्वर ने कहा वह उ सभा में बैठे कई आदमियों के मन में था, लेकिन कहने की हिम्मत किसी क न हो रही थी। थोड़ी देर तक सब चुप बैठे रहे फिर उस मौन को झगड़ू तोड़ा, "आग लगावब अपराध आय, दण्डनीय आय। मुरली की झुपड़िया म आग लगावन वाले का पता नहीं है सो ऊका दण्ड नाहीं मिल सकत। किन् मनीजर के मकान माँ आग लगावन वाले हम सब दण्ड के भागी बनब ऐस कृत्य से हम आपन हित की अपेक्षा अहित कर लेब।"

इस समय मनमोहन घूम कर लौट आया और वह चुपके से एक कोने मे बैठ गया। झगड़ू मनमोहन की ओर घूमे, "तो और सुन्यो मनमोहन! कल रात कौनो मुरली की झुपड़िया माँ आग लगाय दीन्हिस! मुरली और जि दार माँ इधर कुछ दिनन से तनातनी हुइ गई रहै, और जिलेदार मुरली क यू धमकी हू दीन्हिन रहैं कि उइ मुरली का तबाह कर देहैं। अब हम लोगन के सामने प्रश्न यू आय कि ई अत्याचार का मुकाबिला कैसे कीन जाय।"

मनमोहन मुसकराया और झगड़ू को एकाएक मनमोहन की पिछली रा

वाली मुसकराहट याद हो आई। ठीक वैसी ही कुरूप मुसकराहट थी, रात में अलाव के लाल प्रकाश में वह बहुत भयानक दिखी थी, इस समय उसकी भयानकता किसी हद तक दबी हुई थी। मनमोहन ने कहा, "मिसिरजी! मैंने कल रात आपसे कहा था न कि इस अत्याचार को स्वयम् मिटाकर या अत्याचारी को मिटाकर ही दबाया जा सकता है। पर मुसीबत यह है कि आपके सामने वाला अत्याचारी असली अत्याचारी नहीं है, वह तो अत्याचार की एक बहुत बड़ी मशीन का एक साधारण-सा पुरज़ा है। इस अत्याचारी को मिटाने की कोशिश करके आप पूरी अत्याचार की मशीन को अपने खिलाफ़ चालू कर लेंगे। इस मैनेजर के ऊपर हैं ताल्लुक़दार, ताल्लुकेदार के ऊपर है ब्रिटिश सरकार जिसकी पुलिस हमेशा ताल्लुक़दार की रक्षा करती रहती है, और पुलिस की रक्षा करने के लिए है एक बहुत बड़ी फ़ौज। तो मिसिर जी इस लम्बे चक्कर में पड़कर आप बहुत बुरी तरह पिस जाइयेगा। इसपर आप पहले सोच लीजिये!"

मनमोहन की बात का उस सभा में एकत्रित सब व्यक्तियों पर गहरा असर पड़ा, उसने ऐसी बात कही थी जिससे कोई इनकार न कर सकता था। परमेश्वर ने कुछ सोचकर दबी ज़बान कहा, "तो फिर इसके माने ये हैं कि हम मिटते रहें?"

"ज़रूर!" मनमोहन कह उठा, "इसलिए कि तुम निर्बल हो और वे लोग सबल हैं। सबल और निर्बल की लड़ाई एक हास्यास्पद चीज़ है; सबल से निर्बल कभी भी पार न पा सकेगा। सबल और निर्बल की लड़ाई केवल एक तरह सम्भव है—निर्बल सबल पर जब वार करे तब पीछे से, छिपकर। जब तक सबल निर्बल को देख नहीं सकता तब तक उसे नष्ट नहीं कर सकता। केवल इसी तरह यह लड़ाई सम्भव है!"

झगड़ू ने ज़रा सम्हल कर कहा, "लेकिन मनमोहन, पीछे से चोरी-छिपे वार करब कायरता आय!"

मनमोहन हँस पड़ा, "जहाँ वीरता अवश्यम्भावी मृत्यु है वहाँ वह आत्म-

मार्कण्डेय को आते हुए देख कर वह उठ बैठा, "क्यों मिसिर जी। आप गए नहीं ?" और मनमोहन उठ खड़ा हुआ।

"हाँ! जाँय की पूरी तैयारी करि लीन रहै, मुला ई बीच माँ मारकण्डे आय गए—काले जेल से छूट के आए हैं।"

मनमोहन और मार्कण्डेय—दोनों ने एक दूसरे को देखा, दोनों एक दूसरे के सामने खड़े थे। मार्कण्डेय ने मनमोहन से कहा, "आपका परिचय, बप्पा ?"

"का तुम इन्हें नाहीं जानत हो ? इनका नाम आय मनमोहन, प्रभा के मित्र आँय। तौन सिकार खेलैं के लिए गाँव माँ आए हैं। और मारकण्डे, हम इनसे बात चीत करि के ई निर्णय पर पहुचेन कि ई बहुत विद्वान मनई आयँ!" झगड़ू ने सहज भाव से कहा, फिर उसने मनमोहन से कहा, "और ई मारकण्डे कानपुर माँ वकालत करत रहैं तौन ई कांग्रेस के पीछे आपन वकालत-अकालत छोड़ि-छाड़ि के जेल चले गए। तौन अब छूट के अपने बप्पा के दरसन करन चले आए हैं!" और झगड़ू खिलखिला कर हँस पड़े।

मनमोहन ने मार्कण्डेय को नमस्कार किया और मार्कण्डेय ने नमस्कार का उत्तर दिया।

एक घण्टे बाद उमानाथ मार्कण्डेय से मिलने आया। उमानाथ की आवाज़ सुनते ही झगड़ू घर के बाहर निकल आए, "गुड ईवनिंग, झगड़ू काका!" उमानाथ ने हँसते हुए कहा, "कहिये कुछ शिकार विकार हो रहा है ?"

"हाँ मझले कुँवर सिकार-विकार तो अबहीं तक होत रहा मुला इधर दुइ-एक दिना से बन्द है!"

"यह क्यों ?" उमानाथ ने पूछा।

"पसु-पच्छी का सिकार करि के जी ऊबिगा—अब मनई के सिकार की तैयारी हुई रही है!" कुछ रुककर झगड़ू ने फिर कहा, "तुम आय गयो तौन बड़ा नीक भा! बहुत सम्भव है ई व्यर्थ का खून-खराबा बच जाय!"

हत्या की मूर्खता है। कायरता उत्पीड़न को सहन करना है, उत्पीड़न का सही-सही उत्तर देते हुए, सबल के वार को बचाते रहना कायरता नहीं है, बुद्धिमानी है!"

"नाहीं—हमार जी तो नाहीं भरत है!" झगड़ू ने कहा और वे अन्य लोगों की ओर घूमे, "अच्छा हम जरा तिवारी जी से ई सम्बन्ध माँ बात-चीत कर लेई तब ऊके बाद 'का कीन जाय' ई पै निर्णय कीन जाई। आज सन्ध्या के समय हम उन्नाव जाब!"

४

उस दिन शाम के समय झगड़ू का उन्नाव जाना न हो सका। जैसे ही कपड़े पहनकर वे उन्नाव चलने के लिए घर के बाहर निकले वैसे ही मार्कण्डेय ने उनके चरण छुए। मार्कण्डेय को अपने सामने देख कर झगड़ू को आश्चर्य हुआ, "अरे! तुम छूटि आएव! हम तो समझा रहे कि अबहीं तुम्हरे छुटै माँ कुछ विलम्ब है!"

"जी हाँ उन्होंने मुझे कल बिना कुछ कहे-सुने छोड़ दिया। सोचा, दो चार दिन के लिए गाँव हो आऊँ, उसके बाद फिर से काम-काज शुरू करूँ!" मार्कण्डेय ने कहा, "और बप्पा, क्या आप कहीं जा रहे हैं?"

"हाँ, तिवारी जी से बातैं करैं का है। तौन गाँव माँ बड़ा अन्धेर मचा भवा है, मनीजर और जिलेदार बुरी तरा से लोगन का सताय रहे हैं। अब उनकी ऐस हिम्मत बढ़ गई है कि सब मनइन के सामने मनीजर काल रात हमार अपमान कर गए।"

"तो फिर इसमें जल्दी क्या है आज न जा कर कल चले जाइयेगा। मेरे साथ उमानाथ भी आए हैं, मैं ज़रा इस सम्बन्ध में उनसे भी बात कर लूँ।" मार्कण्डेय ने झगड़ू को मकान के अन्दर ले चलते हुए कहा।

बाहर वाले कमरे में मनमोहन लेटा हुआ गीता पढ़ रहा था, झगड़ू और

मार्कण्डेय को आते हुए देख कर वह उठ बैठा, "क्यों मिसिर जी। आप गए नहीं ?" और मनमोहन उठ खड़ा हुआ।

"हाँ ! जाँय की पूरी तैयारी करि लीन रहै, मुला ई बीच माँ मारकण्डे आय गए—कालै जेल से छूट के आए हैं।"

मनमोहन और मार्कण्डेय—दोनों ने एक दूसरे को देखा, दोनों एक दूसरे के सामने खड़े थे। मार्कण्डेय ने मनमोहन से कहा, "आपका परिचय, बप्पा ?"

"का तुम इन्हें नाहीं जानत हौ ? इनका नाम आय मनमोहन, प्रभा के मित्र आँय। तौन सिकार खेलैं के लिए गाँव माँ आए हैं। और मारकण्डे, हम इनसे बात चीत करि के ई निर्णय पर पहुचेन कि ई बहुत विद्वान मनई आयँ!" झगड़ू ने सहज भाव से कहा, फिर उसने मनमोहन से कहा, "और ई मारकण्डे कानपुर माँ वकालत करत रहैं तौन ई कांग्रेस के पीछे आपन वकालत-अकालत छोड़ि-छाड़ि के जेल चले गए। तौन अब छूट के अपने बप्पा के दरसन करन चले आए हैं !" और झगड़ू खिलखिला कर हँस पड़े।

मनमोहन ने मार्कण्डेय को नमस्कार किया और मार्कण्डेय ने नमस्कार का उत्तर दिया।

एक घण्टे बाद उमानाथ मार्कण्डेय से मिलने आया। उमानाथ की आवाज़ सुनते ही झगड़ू घर के बाहर निकल आए, "गुड ईवनिंग, झगड़ू काका !" उमानाथ ने हँसते हुए कहा, "कहिये कुछ शिकार विकार हो रहा है ?"

"हाँ मझले कुँवर सिकार-विकार तो अबहीं तक होत रहा मुला इधर दुइ-एक दिना से बन्द है !"

"यह क्यों ?" उमानाथ ने पूछा।

"पसु-पच्छी का सिकार करि के जी ऊबिगा—अब मनई के सिकार की तैयारी हुई रही है !" कुछ रुककर झगड़ू ने फिर कहा, "तुम आय गयो तौन बड़ा नीक भा ! बहुत सम्भव है ई व्यर्थ का खून-खराबा बच जाय !"

"क्या बात है, झगड़ू काका ! साफ़-साफ़ कहिये !" उमानाथ ने पूछा।

"तौन मारकण्डे से सुन लीन्हेव !" झगड़ू ने उत्तर दिया, "यही तुम्हें अच्छी तरा से समझाय सकत हैं। और ई मनमोहन—इहौ तुम्हारो हमजोली के आँय, सब बातें देखिन-सुनिन हैं और साथ माँ छुटके कुँवर के मित्र आँय, तौन इनसे तुम्हें सब बातें ठीक-ठीक मालूम हुइ जइहैं !"

मार्कण्डेय कपड़े पहन कर बाहर आ गया था। उसने मनमोहन से कहा, "चलिये, आप असल में तो उमानाथ के मेहमान हैं, इसलिए उन्हीं के यहाँ इस वक़्त का नाश्ता हो और गप-शप जमे ! क्यों उमा !"

और मार्कण्डेय ने उमानाथ से मनमोहन का परिचय कराया।

जिस समय ये तीनों आदमी बानापुर के राजा साहेब के महल में पहुँचे, बानापुर राज्य के करीब-करीब सब कर्मचारी मझले कुँवर को सलाम करने के लिए एकत्रित हो गए थे। इन तीनों के आते ही सब लोग उठ खड़े हुए, और इनके बैठने के बाद सब लोग फ़र्श पर बैठ गए। उमानाथ ने रामसिंह से पूछा, "कहिये मैनेजर साहेब ! सब कुछ कुशलपूर्वक तो चल रहा है !"

रामसिंह ने ज़रा मुँह बनाते हुए कहा, "कहाँ, मझले सरकार ! इस ज़माने में कुशल कैसी ? एक ओर राजा साहेब का हुक्म कि सख्ती करो, और दूसरी तरफ़ कांग्रेस की बग़ावत। मैं तो अजीब परीशानी में हूँ। उधर अगर राजा साहेब की आज्ञा न मानूँ तो हुक्म-उदूली और नमकहरामी होती है और इधर अगर सख्ती करता हूँ तो गाँव वालों से दुश्मनी बढ़ती है। अब तो मेरी जान भी खतरे में है !"

मार्कण्डेय चौंक उठा, "जान का खतरा ? कांग्रेस तो अहिंसा का सिद्धान्त लेकर चल रही है, मैनेजर साहेब ! यह जान का खतरा कैसा ?"

एक रूखी मुसकराहट के साथ रामसिंह ने उत्तर दिया, "सरकार ! हिंसा-अहिंसा—ये सब बड़े आदमियों की बातें हैं; यहाँ तो हमसे यह कहलाया गया है कि अगर मैं गाँव में पैर रक्खूँगा तो मेरी जान की खैर नहीं। और कह-

लाने वाले लोग केवल बातूनी नहीं हैं, वे, जो कुछ कहते हैं उसे कर गुज़रने वाले लोग हैं।"

"ज़रा उनका नाम तो सुनूँ!" मार्कण्डेय ने कहा।

इस बार सरबराकार जैनारायण के बोलने की बारी थी, "सँदेसा कहलाया है आपके पिताजी ने, और दुनिया इस बात को जानती है कि आपके पिताजी अपने हठ के पक्के हैं। मैनेजर साहेब बिना दस पाँच आदमी साथ लिए घर के बाहर क़दम नहीं रख सकते!"

"लेकिन कल रात आप मेरे पिताजी के यहां गए थे न!" मार्कण्डेय ने पूछा।

मैनेजर रामसिंह ने गम्भीरतापूर्वक कहा, "जी हाँ, मिसिर जी को सारी स्थिति स्पष्ट करने के लिए मुझे वहाँ जाने को मजबूर होना पड़ा था; लेकिन बात बनने की जगह बिगड़ ही गई। उनका क्रोध भयानक होता है—उसे मैं तो शान्त नहीं कर सकता!"

"और आप स्थिति स्पष्ट करने के लिए दल-बल के साथ गए थे, इस तरह तो समझौते की बातें नहीं होतीं।" मार्कण्डेय ने उत्तर दिया।

"अगर मैं अपने शरीर-रक्षकों के साथ न गया होता तो मैं न वापस आता, मेरी लाश वापस आती! इतने आदमियों के होते हुए भी उन्होंने लाठी तान ली थी।"

"और मैंने उनको रोका था, मैनेजर साहेब, इसलिए नहीं कि आपकी जान का खतरा था, बल्कि इसलिए कि उनकी जान का खतरा था। चारों तरफ़ अपने लठबन्दों से उन्हें घिरवा कर आपने उनका अपमान किया था, उनके क्रोध को जानते हुए। उसका परिणाम प्राकृतिक रूप से यही होता कि वे आप पर प्रहार करते, और उनके प्रहार करने के पहले आपके आदमी उनपर प्रहार करते! है न ऐसी बात?" मनमोहन ने कहा।

"अच्छा! तो आप ही ने उन्हें रोका था!" ग़ौर से मनमोहन को देखते

हुए रामसिंह ने कहा, "तो फिर आप सच्ची घटना के साक्षी-रूप यहाँ पर मौजूद ही हैं। आप ही बतलाइये कि मैंने उनका क्या अपमान किया था? मैंने तो केवल इतना कहा था कि मैं राजा साहेब का प्रतिनिधि हूँ। राज्य के मैनेजर को जो चुनौती दी जाती है वह रामसिंह को नहीं दी जाती बल्कि राज्य के स्वामी राजा साहेब को दी जाती है! है न?"

"कहा तो आपने यही था," मनमोहन को स्वीकार करना पड़ा, "लेकिन कहने का ढंग ग़लत था!"

"हम लोग तो साहेब दिहाती आदमी हैं और हमें यही ढंग आता है!" रूखे स्वर में रामसिंह ने उत्तर दिया।

मैनेजर का रूखा जवाब मार्कण्डेय को अखर गया, उसने ग़ौर से मैनेजर को देखा, फिर धीरे-से कहा, "और शायद आप दूसरा ढंग समझने की ज़रूरत भी नहीं समझते! यही सारी मुसीबत है, मैनेजर साहेब! फिर भी मैं बप्पा से बातें करके सब-कुछ ठीक करा देने की कोशिश करूँगा; चीज़ों को बहुत आगे नहीं बढ़ने देना चाहिये। इस समय जब हमें विदेशी सरकार से लड़ना है, आपस में इस तरह का कलह-विद्वेष हमें शोभा नहीं देता। और इसी समय क्यों? मैं तो कहता हूँ कि हर समय, हर काल सदिच्छा और सद्भावना से हमें काम लेना चाहिये!"

"यही तो मैं भी चाहता हूँ, मिसिर जी!" रामसिंह ने कहा, "मुझे कब यह पसन्द है कि मुझे अशान्ति की शरण लेनी पड़े, आत्म-रक्षा के रूप में भी! अपने लिए तो मैं यह कह सकता हूँ कि मुझे जो कुछ करना पड़ता है वह मैं अपनी इच्छा से नहीं करता, वह मैं राजा साहेब की आज्ञा से करता हूँ। फिर अगर ऐसा न किया जाय तो काम भी तो न चले!"

५

मार्कण्डेय और मनमोहन के साथ उमानाथ लाइब्रेरी के कमरे में चला गया, हाल में राज्य के कर्मचारी रह गए। वहाँ का वातावरण एक अनि-

श्चित-सा, आशंका से भरा हुआ था। ठाकुर रामसिंह ने ज़िलेदार विन्देश्वरी प्रसाद से कहा, "तो ज़िलेदार साहेब! इस वक़्त गाँव वालों के क्या हाल हैं?"

"सरकार! लक्षण तो अच्छे नहीं दिख रहे, पूरी फ़ौजदारी ठनी हुई है। आज सुबह यह भी सुझाव पेश किया गया था कि रात में सरकार के मकान में आग लगा दी जाय, लेकिन पण्डित झगड़ू मिश्र ने इसे रोक दिया!"

"इतनी हिम्मत!" रामसिंह ने कुछ सोचा, फिर वे सरवराकार जय-नारायण की ओर घूमे, "सुना सरवराकार साहेब! अच्छा, अपने पास कुल कितने आदमी हैं?"

"करीब बीस लठैत हैं और छै बन्दूकें हैं—आप कोई चिन्ता न करें!" सरवराकार जय नारायण ने उत्तर दिया। फिर उन्होंने धीरे से कहा, "लेकिन मैनेजर साहेब अगर आप इतनी सख़्ती न करें तो कुछ हर्ज है? ज़माना बड़ा नाज़ुक है, और मुझे कभी-कभी अपने आदमियों पर ही शक होने लगता है!"

"मैं आपका मतलब नहीं समझा," रामसिंह ने कहा।

"मेरा मतलब यह है कि रिआया के बाग़ी होने से हमें फ़ायदा नहीं होगा, नुक़सान ही होगा। मान लीजिये कि हम लोग मज़बूत हैं और हर तरह से रिआया को कुचल सकते हैं; लेकिन अगर लड़ाई हुई तो हम लोगों पर बिना आँच आए रहेगी नहीं। और अगर यह वैर जड़ पकड़ गया तो फिर हम लोगों का यहाँ रहना असम्भव हो जायगा।"

रामसिंह हँस पड़े, "आप आज कैसी बहकी-बहकी बातें कर रहे हैं, पण्डित जय नारायण जी! यह आप क्यों भूले जाते हैं कि हम रिआया पर हुकूमत तभी कर सकते हैं जब रिआया के दिल में हमारा खौफ़ समा जाय।"

"लेकिन मैं तो यह देख रहा हूँ कि रिआया पर इस वक़्त हुकूमत कर रहे हैं, झगड़ू मिश्र; और झगड़ू मिश्र की हुकूमत प्यार की हुकूमत है, जबरदस्ती की नहीं!"

कुछ चुप रह कर रामसिंह ने कहा, "हाँ, इस वक्त रिआया पर हुकूमत

कर रहे हैं पण्डित झगड़ू मिश्र, लेकिन जिस तरह की हुकूमत वे कर रहे हैं उस तरह की हुकूमत हरेक आदमी कर सकता है। पण्डित झगड़ू मिश्र से रिआया का कोई रुपये-पैसे का ताल्लुक़ नहीं है, वे लोगों को बड़ी आसानी से बरगला सकते हैं। लेकिन यह गाँव वाले पण्डित झगड़ू मिश्र की तो रिआया नहीं हैं—ये हमारी रिआया हैं। ऐसी हालत में पण्डित झगड़ू मिश्र का ज़िक्र चलाना बेकार है।"

"जैसी आप की इच्छा!" सरबराकार जयनारायण ने कहा, "मेरी अर्ज़ तो केवल इतनी थी कि मनुष्य को सिर्फ़ वहाँ तक दबाना चाहिये जहाँ तक वह दब सके। छोटी सी ज़िन्दगी है—उसके बाद भगवान के सामने अपने कर्मों का लेखा-ड्योढ़ा देना है; इस छोटी-सी ज़िन्दगी में नेकी और बदी में होड़ लगी है; नेकी व बदी अपना बदला नेकी व बदी में ही देते हैं।"

रामसिंह के मत्थे पर बल पड़ गए, "तो, पण्डित जयनारायण, मैं यह समझूँ कि आपके अन्दर वाला देवता हमारी दानवता से घृणा करता है! अच्छी बात है, मैं राजा साहेब से इसका ज़िक्र कर दूँगा! आप ऐसे मुलाज़िमों के रहते हुए राज में राजा साहेब की हुकूमत की जड़ नहीं पनप सकती!" और रामसिंह उठ खड़े हुए।

पण्डित जयनारायण भी उठ खड़े हुए, "जैसी आपकी इच्छा, मैनेजर साहेब, लेकिन यहाँ देवत्व और दानवता का तो सवाल मैंने नहीं उठाया, मैंने सिर्फ़ एक सलाह भर दी थी!"

पण्डित जयनारायण चले गए। रामसिंह ने ज़िलेदार बिन्देश्वरीसिंह से कहा, "ज़िलेदार साहेब! कुछ ऐसा दिखता है कि आगे चल कर बहुत बड़ी मुसीबतों का सामना करना पड़ेगा। इलाक़े से कुछ और लठैत बुला लेने चाहिये। आप कल सुबह मेरे यहाँ आ जाइयेगा, मैं दीगर ज़िलों को हुक्म-नामा लिख दूँगा। और इस बीच आप ज़रा मझले कुँवर की कार्रवाइयों को ग़ौर से देखते रहियेगा।"

उमानाथ उस समय लाइब्रेरी में बैठा हुआ मार्कण्डेय और मनमोहन से

गाँव की वर्तमान परिस्थिति पर बात कर रहा था। बिन्देश्वरी सिंह लाइब्रेरी के सामने वाले बरामदे में दरवाज़े से कान लगा कर खड़ा हो गया। उसने सुना—"मार्कण्डेय भइया, सारी मुसीबत तो इस अहिंसात्मक विरोध से उठ खड़ी होती है। अगर विपक्षी यह जान जाय कि इसकी लात का जवाब हमारे जूते से मिलेगा तो वह लात मारने के पहले एक बार अच्छी तरह सोचे-समझेगा। इतने अधिक गाँव वाले और इतने थोड़े से राज के कर्मचारी! मेरी समझ में नहीं आता कि अगर गाँव वाले मरने-मारने पर तुल जाँय तो किस तरह राज्य के कर्मचारी उन्हें उत्पीड़ित कर सकते हैं!" और उमानाथ हँस पड़ा।

इसका उत्तर मनमोहन ने दिया, "मिस्टर उमानाथ! आपने यह तो कह दिया कि राज्य के कर्मचारी थोड़े-से हैं, लेकिन यह कहने के समय आप राज्य को भूल गए। बानापुर ताल्लुक़ा एक बहुत बड़े राज्य का एक छोटा-सा हिस्सा है। अगर आप ग़ौर से देखें तो आपको स्पष्ट हो जायगा कि बानापुर ताल्लुक़ा की रक्षा करने के लिए, उसके उत्पीड़न को सार्थक और सफल बनाने के लिए एक बहुत बड़े साम्राज्य की बहुत बड़ी सेना मौजूद है।"

"तो आपका मतलब है कि जब तक यह साम्राज्य क़ायम रहेगा तब तक यह विषमता मौजूद रहेगी और इस विषमता को मिटाने के पहले साम्राज्य को मिटाना ज़रूरी है!" उमानाथ ने कहा।

"जी हाँ, आप मेरा मतलब ठीक समझे!"

"और मैं आपसे असहमत हूँ!" उमानाथ ने उत्तर दिया, "आप एक बात भूल जाते हैं मिस्टर मनमोहन, साम्राज्य विषमता का परिणाम है, कारण नहीं है। यह साम्राज्य तभी बन सका है जब दुनिया में विषमता मौजूद थी। आज मान लीजिये कि आप इस साम्राज्य को मिटा भी दें, लेकिन इन श्रेणियों को क़ायम रक्खें तो कल यही श्रेणियाँ साम्राज्य के मुक़ाबिले की या इस साम्राज्य से भी कहीं अधिक भयानक और शक्तिशाली किसी दूसरी चीज़ को जन्म दे देंगी। मिस्टर मनमोहन, परिणाम को मिटाने के पहले हमें उस परिणाम के मूल कारणों को ढूँढ कर मिटाना पड़ेगा, इसी में हमारा कल्याण

है। और मैं कहता हूँ कि मूल कारण हम में श्रेणी-भेद है। ये थोड़े से अंग्रेज इस विशाल देश हिन्दुस्तान पर इसलिए शासन करते हैं कि उत्पीड़न करने वाली श्रेणियाँ इस उत्पीड़न में अंग्रेजों की मदद करती हैं। इसलिए अगर देश का बुर्ज़ुआ क्लास मिट जाय तो फिर क्या मजाल कि अंग्रेज यहाँ ज़रा-सा भी टिक सकें।"

"लेकिन उसके बाद?" मार्कण्डेय ने पूछा।

"उसके बाद क्या?" उमानाथ मार्कण्डेय की ओर घूमा।

"इन बुर्ज़ुआ लोगों को मिटाने के बाद मिटाने वाले लोग शोषक बन जाएँगे और मिटने वाले उत्पीड़ित बन जाएँगे, मनोविज्ञान तो यह कहता है। आखिर उत्पीड़न है क्या? सबल का निर्बल से बेजा फ़ायदा उठाने की कोशिश करना! मारने वाला सबल है, मारा जाने वाला निर्बल है!"

उमानाथ हँस पड़ा, "आप कैसी भद्दी दलील दे रहे हैं मार्कण्डेय भइया! वास्तव में सबल बहुमत है—वह समुदाय है जो भूखों मरता है। केवल यह बहुमत अपनी शक्ति को जानता नहीं, उसका उपयोग नहीं कर सकता। और यहाँ एक और मनोवैज्ञानिक सत्य लागू होता है, शक्तिमय बहुमत का नियम है विकसित होना—असीमता की ओर, शक्तिमय अल्पमत का नियम है संकुचित होना—इकाई की ओर। इसी से राजा का जन्म होता है।"

इस बार मार्कण्डेय के हँसने की बारी थी, "तुम्हारी दलील मैं स्वीकार करता हूँ, उमा, और तुम्हारी दलील ही तुम्हारी बात का खंडन करती है। तुम अपने बहुमत का रूप ठीक-ठीक नहीं देख पा रहे हो, तुम्हारा दृष्टिकोण विकृत है। तुम्हारा यह बहुमत वास्तव में अल्पमत है क्योंकि यह बहुमत केवल साधन है, कर्ता नहीं है। कर्ता कुछ थोड़े-से इने गिने लोग हैं जिन्हें 'नेता' कहा जाता है, बहुमत इन्हीं थोड़े-से नेताओं के इशारों पर भेड़-बकरियों की तरह चलता है। और तुम्हारा यह कहना कि शक्तिमय अल्पमत का नियम है संकुचित होना—इकाई की तरफ!—यह भी ठीक है। आज रूस का डिक्टेटर स्टालिन राजा का रूपान्तर भर है।"

उमानाथ ने बड़े ध्यान से मार्कण्डेय की बातें सुनी थीं। उसने कहा, "आप बड़ा ग़लत समझ रहे हैं, मार्कण्डेय भइया! आप यह कहते हैं कि रूस में अल्पमत का आधिपत्य है, यह मैं माने लेता हूँ, लेकिन उस अल्पमत का सिद्धान्त बहुमत के कल्याण का सिद्धान्त है, वह अल्पमत बहुमत का प्रतिनिधि भर है—वह कोई विशेष श्रेणी नहीं है। और इसलिए उस अल्पमत की आवाज़ सारी दुनिया की आवाज़ है। आज जो कुछ आप रूस में देख-सुन रहे हैं वही सत्य और नित्य नहीं है, वह विकास के क्रम का एक आवश्यक अंग भर है। समाजवाद एक सम्पूर्ण सुगठित समाज में विश्वास करता है, और प्रत्येक व्यक्ति उस सुगठित समाज का एक पुरजा है जिसे अपना काम ठीक तरह से करना है। आरम्भ में जब एक तरह की अस्थिरता, एक तरह का अज्ञान लोगों में रहता है, तब उस समाज को ठीक तौर से संचालित करने के लिए समाज को इकाई की शरण लेनी पड़ती है, पर वह इकाई ऐसी होनी चाहिये जिसपर सब लोगों का पूर्ण विश्वास हो, जो समाज को संचालित करने के योग्य हो। और ऐसा आदमी डिक्टेटर कहलाता है। पर मार्कण्डेय भइया उस डिक्टेटर का हित उसका निजी हित नहीं होता, वह सकल समाज का हित होता है। आपने स्टालिन की बात उठाई है तो मैं उसी को लेता हूँ। आप कह सकते हैं कि स्टालिन अपने ऊपर कितना खर्च करता है? जब दुनिया के बड़े-बड़े नरेश अपने ऐश-आराम पर करोड़ों रुपया खर्च कर देते हैं तब स्टालिन केवल कुछ सौ रुपयों पर अपना जीवन निर्वाह करता है।"

"हाँ! यह मैं मानता हूँ कि स्टालिन बहुत कम रुपया लेता है!" मार्कण्डेय ने कहा, "लेकिन यह तो कोई नई बात नहीं है। हिन्दुस्तान में औरंगज़ेब भी तो अपने ऊपर कम से कम खर्च करता था, अनेक राजाओं के ज़िक्र इतिहास में आते हैं जिन्होंने अपने ऊपर कम से कम खर्च किया है। ऐसी हालत में अगर स्टालिन अपने ऊपर बहुत कम खर्च करता है तो यह कोई बड़ी बात नहीं। यह याद रखना कि स्टालिन के पास भयानक शक्ति का भयानक नशा है, बनाना और मिटाना उसके हाथ में है। उसे रुपयों की ज़रूरत

ही क्या ? उमा ! हमारे देश में एक ऐसा ज़माना था जब ब्राह्मण त्यागी होते थे, जंगलों में रहते थे, उनके पास कोई सम्पत्ति नहीं होती थी। और उन्होंने खुद यह सब परित्याग किया था, जानते हो क्यों ? इसलिए कि वे शासक थे, वे समर्थ थे। राजा उठकर उनका स्वागत करता था, उन्हें उच्च आसन देता था, उनके खाने-ठहरने का उत्तम से उत्तम प्रबन्ध करता था। सारे संसार का धन उनकी सेवा में था। यही नहीं, मन्दिरों में देवदासियाँ उनकी काम-वासना तुष्ट करने के लिए रहती थीं, जनता उन्हें कन्यादान करती थी। शक्ति भयानक चीज़ है, उमा, और अगर बिना पैसे के शक्ति द्वारा सब कुछ मिल सके तो पैसे की क्या ज़रूरत है ?"

"और गांधी के पास भी तो वही शक्ति है।" मनमोहन ने कहा, "आपके कहने के मुताबिक मैं फिर गांधी में और स्टालिन में कोई अन्तर नहीं देखता। गांधी भी तो डिक्टेटर हैं !"

"वेल सेड ! वेल सेड !" उमानाथ ने ताली पीटते हुए मार्कण्डेय को देखा।

पर मानो मार्कण्डेय इस प्रश्न के लिए तैयार बैठा था, उसने कहा, "हाँ, गांधी भी डिक्टेटर हैं—मैं यह मानता हूँ पर वह प्रेम और विश्वास से डिक्टेटर हैं। स्टालिन के पीछे एक बहुत बड़ी सेना की ताक़त है, वह लोगों पर शासन करता है अस्त्र-शस्त्र के ज़ोर से ! और गांधी ! गांधी के पीछे सारी ताक़त है भावना की, प्रेम की, विश्वास की। आप जब चाहें गांधी को डिक्टेटरशिप से हटा सकते हैं, लेकिन स्टालिन को नहीं। एक विदेशी सरकार की बड़ी से बड़ी शक्तियाँ भी अपने सम्पूर्ण विरोध द्वारा गांधी पर जनता के प्रेम और विश्वास को नहीं कम कर सकीं। वह डिक्टेटर है, केवल इसलिए कि देश को उसकी ज़रूरत है, उसने अपने को जनता के मस्तक पर जबर्दस्ती नहीं लादा, बल्कि जनता ने आग्रहपूर्वक उसे अपने मस्तक पर बिठलाया !"

"जैसा जनता ने गांधी को अपने मस्तक पर बिठलाया, वह हम खूब

जानते हैं!" उमानाथ ने मुँह बनाते हुए कहा, "गांधी का हथियार है फ़रेब और छल—गुलामों के पास यही हथियार हुआ भी करता है। झूठे वादे, झूठी कल्पना, झूठा प्रोग्राम! चारों ओर एक भयानक झूठ; और उसी झूठ से प्रभावित होकर हिन्दुस्तान की मूर्ख जनता जो सदियों से झूठे भगवान को, झूठे धर्म को, झूठे महात्माओं और महन्तों की गुलामी करती आ रही है, इस महात्मा को भी सर पर बिठलाए हुए है। लेकिन मार्कण्डेय भइया, यह ज्ञान और तर्क का युग है, यह महात्मापन का परदा ज़्यादा दिन तक नहीं चल सकता। और फिर या तो इस महात्मा को अपना तख्त खाली करना पड़ेगा, या फिर अपने तख्त को क़ायम रखने के लिए बल का प्रयोग करना पड़ेगा।"

गांधी के व्यक्तित्व तथा ईमानदारी पर यह हमला मार्कण्डेय को अच्छा नहीं लगा; लेकिन वह उत्तेजित नहीं हुआ। उसने शान्त भाव से कहा, "उमा! क्या यह आवश्यक है कि तुम इतने बड़े महापुरुष को इतनी खराब गालियाँ दो! मैं तुमसे प्रार्थना करूँगा कि तुम गांधी को समझने की कोशिश करो! व्यक्ति को समझने के लिए उसके सिद्धान्तों को समझना बहुत ज़रूरी होता है। यह हमारे देश का ही नहीं वरन समस्त मानवता का दुर्भाग्य है कि वह बिना सिद्धान्त समझे हुए बाहरी बातों से प्रभावित हो जाता है। उमा! तुम दुनिया को बदलना चाहते हो, बिना खुद बदले हुए, और यहीं तुम्हारी असफलता का बीज है। गांधी दुनिया को बदलना चाहते हैं, स्वयम् अपने को बदल कर। और अपने को बदलने के प्रयत्न को तुम झूठ और आडम्बर कहते हो! तुम हिंसा के उपासक हो, और अपने अन्दर वाली हिंसा से प्रभावित होकर तुम अहिंसा को केवल झूठा ढोंग ही समझ सकते हो! इस बात पर मुझे दुःख होता है। जब तक तुम अपने अन्दर वाली हिंसा से भरी पशुता को दूर करने का प्रयत्न न करोगे तब तक गांधी को समझ सकना तुम्हारे लिए असम्भव ही है।" और मार्कण्डेय उठ खड़ा हुआ।

६

दूसरे दिन सुबह उमानाथ ने झगड़ू को बुलवाया। मैनेजर रामसिंह वहीं मौजूद थे। उस समय झगड़ू का पारा काफ़ी चढ़ा हुआ था; तड़के ही उन्हें यह सूचना मिली थी कि रात के वक्त परमेश्वर नाम के एक नवयुवक को ज़िले के आदमियों ने घेर कर मारा और परमेश्वर ने उस समय तक अन्न न ग्रहण करने का प्रण किया है, जब तक मैनेजर से बदला न ले लिया जाय।

झगड़ू ने आते ही रामसिंह से कहा, "काहे हो मनीजर साहब, अब तो आपके आदमी बहुत अधिक अत्याचार करन लग गए हैं।"

"क्यों, क्या बात है, मिसिर जी? कौन-सा अपराध हो गया है उनसे?" बड़ी नम्रता के साथ रामसिंह ने पूछा।

मैनेजर की इस विनम्रता से झगड़ू का क्रोध और भी भड़क उठा, "जैसे तुम कुछ जनते नहीं हौ! अरे भगवान से तो डरौ! परमेसुर तुम लोगन का का बिगाड़ै रहे जो ऊका अकेले पाय के तुम्हारे इलाके के आदमी बुरी तरह पीटिन!"

"कौन परमेश्वर?—वह छोकरा?" रामसिंह ने कुछ सोचने की मुद्रा बनाकर कहा, "वही न जो बड़ा तेज है। तो मिसिर जी, मुझे उसके सम्बन्ध में कुछ नहीं मालूम! लेकिन इतना ज़रूर कह सकता हूँ कि वह लौंडा इतना बदज़बान और अक्खड़ है कि उसका हमारे आदमियों से हक़-नाहक़ उलझ पड़ना स्वाभाविक है। और ऐसी हालत में परिणाम तो आप समझ ही सकते हैं।"

इस बार उमानाथ ने अपना सर उठाया। वह चीज़ों के वास्तविक रूप को समझ सकता था—और वह यह भी जानता था कि घटनाओं का क्रम निश्चय रूप से अकल्याणकारी है। लेकिन उसे राज्य के मामले में बोलने का कोई अधिकार नहीं है—अपनी इस सीमा का भी उसे ज्ञान था। उसने

धीरे से कहा, "मैनेजर साहेब! मैं जानता हूँ कि राज्य-काज में दस्तन्दाज़ी करने का मुझे कोई अधिकार नहीं। लेकिन एक बार मैं भी अपनी बात कह देना चाहता हूँ। आप जो कुछ कर रहे हैं, आप उसे राज्य की भलाई के लिए भले ही कहें, लेकिन मैं समझता हूँ कि वह सब आप अपनेपन से, अपनी अहम्मन्यता से प्रेरित होकर कर रहे हैं; उसमें राज्य का फ़ायदा नहीं, नुक़सान है; और इसलिए मेरी सलाह तो यह है कि आप अपने आदमियों से शान्त हो जाने को कह दें।"

हाथ जोड़कर रामसिंह ने कहा, "मझले सरकार! आप मेरे साथ अन्याय कर रहे हैं। मैं आपको किस तरह विश्वास दिलाऊँ कि जो कुछ मैं कर रहा हूँ वह अपनी तरफ़ से नहीं कर रहा हूँ बल्कि राजा साहेब के हुक्म की तामील कर रहा हूँ। इसके अलावा मैंने अपने आदमियों से हमेशा शान्त रहने को कहा है, लेकिन यह गाँव वाले हमारे आदमियों को शान्त होकर बैठने कब देते हैं!"

रामसिंह के इस कथन से उमानाथ निरुत्तर हो गया। कुछ देर तक सब लोग मौन बैठे रहे, फिर उमानाथ ने कहा, "यह तो सुना, लेकिन सवाल मेरे सामने यह है कि आखिर हो क्या? जो कुछ अभी हो रहा है उसमें किसी का कल्याण नहीं।"

मालूम होता है कि इतनी देर में ठाकुर रामसिंह ने उत्तर सोच रक्खा था, उन्होंने कहा, "अब एक ही तरीका है, मझले सरकार! वह यह कि मैं इस्तीफ़ा दे दूँ। मिसिर जी के कहने के मुताबिक़ बिनाए-मुख़ासिमत मैं हूँ, और शायद मेरे हटने से झगड़ा शान्त हो जाय।"

झगड़ू ने कड़ी निगाह से रामसिंह को देखते हुए कहा, "और तुम्हार ऐस खयाल है कि तुम्हरे रहत भए सान्ती नाहीं हुइ सकत!"

"मैंने तो यह नहीं कहा। मेरा कहना सिर्फ़ इतना है कि मेरे यहाँ रहते हुए गाँव वाले नहीं चुप होने को। उस दिन आप ही ने तो सँदेसा भिजवाया था कि अगर मैंने गाँव में पैर रक्खा तो मेरे हाथ-पैर तोड़ दिये जाएँगे!"

उमानाथ ने झगड़ू की ओर देखा और झगड़ू ने उत्तर दिया, "हाँ, मनीजर साहेब ठीक कहि रहे हैं। तौन मनीजर साहेब रामाधीन का ऐस पिटवाइन कि वह अधमरा हुइगा। तौन आज तक वह चारपाई सेंक रहा है।"

"खैर छोड़िये इस बात को! अब अगर मामला यहीं रोक दिया जाय तो कैसा रहे?" उमानाथ ने कहा।

"लेकिन परमेश्वर अन्न-जल छोड़े पड़ा है। ऊ अन्न-जल तबै ग्रहण करी जब मनीजर से बदला लीन जाई! अब ई का उपाय क्या है?"

उमानाथ ने कुछ सोचा, "अच्छा! मैं मैनेजर को यहाँ से ददुआ को बुलाने भेज रहा हूँ—जब ददुआ आएँगे तब सब कुछ तै हो जायगा। तब तक मैनेजर साहब के यहाँ से दूर रहने से परमेश्वर के अन्न-जल ग्रहण करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये!

"हमें मंजूर!" झगड़ू ने उत्तर दिया।

"सरकार का हुक्म मेरे सिर-आँखों!" रामसिंह ने कहा।

७

जिस समय झगड़ू घर लौटे, उनका मन भारी था। वह समझौता कर आए थे, पर वह समझौता था कैसा? उसका रूप क्या था? यही न कि उन्होंने इस बात का वादा कर लिया था कि गाँव वाले रामसिंह ने जो ज़्यादतियाँ की थीं उनके खिलाफ़ कोई कार्रवाई न करेंगे! और रामसिंह का क्या होगा, यह अनिश्चित था। झगड़ू के अन्दर से कोई बार-बार कहता था कि उस समझौते में झगड़ू की पराजय हुई।

गाँव वाले झगड़ू के दरवाज़े इकट्ठा थे, वे झगड़ू की राह देख रहे थे। झगड़ू के आते ही सब लोग उठ खड़े हुए। झगड़ू बिना कुछ बोले थके हुए से बैठ गए।

किसी ने झगड़ू से कुछ न कहा, सब यह प्रतीक्षा कर रहे थे कि झगड़ू बात आरम्भ करें। जब बहुत देर तक झगड़ू ने कुछ नहीं कहा, तब एक ने पूछा, "काहे हो मिसिर जी, कुशल है न!"

शुष्क भाव से झगड़ू ने उत्तर दिया, "हाँ, कुसलै समझौ। तौन मझले कुँवर हमसे कहिन कि अब ई लड़ाई-झगड़ा बन्द कर दीन जाय!"

"और मैनेजर यहीं रहेंगे?" दूसरे ने पूछा।

लड़खड़ाते हुए स्वर में झगड़ू ने कहा, "मनीजर आज उन्नाव चले जइहैं, और राजा साहेब के साथ वापस अइहैं। तौन मनीजर की बर्खास्तगी की बात तो राजा साहेब के सामने उठ सकत है। और हमहू सोचा कि राजा साहेब के आवैं तक हम लोग शान्त रही, ई लड़ाई-झगड़ा से नुकसानै तो आय! साथै परमेसुरौ अब अन्न-जल ग्रहण कर सकत हैं!"

इस पर एक नवयुवक हँस पड़ा, "तो झगड़ू काका, इस लड़ाई के आरम्भ करने के पहले ही आपने यह क्यों नहीं सोच लिया था! अब इस अवसर पर शान्त हो जाना अपनी पराजय है—मैं तो यह जानता हूँ!"

उस नवयुवक ने जो बात कही थी उससे झगड़ू नाराज़ नहीं हुए, उन्होंने केवल अपना सर झुका लिया। चारों ओर एक गहरा सन्नाटा छाया हुआ था। इस पर एक वृद्ध आदमी ने कहा, "जाने भी दो, लड़ाई बन्द करने में हमारा हित ही है। विजय-पराजय के चक्कर में पड़कर दो-चार आदमियों के मरने से क्या तुम लोगों को संतोष हो जायगा? मिसिर जी ने समझौता करके ठीक ही किया!"

सब लोग चले गए, पर संतुष्ट कोई न था। झगड़ू चुप बैठ गए; न उन्होंने स्नान किया और न भोजन। वे उस समय घर में अकेले थे, मनमोहन को साथ लेकर मार्कण्डेय एक नज़दीक वाले गाँव में कांग्रेस का काम-काज देखने चला गया था। दोपहर में जब वे दोनों लौटे, झगड़ू उसी तरह उदास बैठे कुछ सोच रहे थे।

मार्कण्डेय ने झगड़ू से कहा, "अरे बप्पा! आपने तो स्नान-भोजन कुछ

भी नहीं किया ? हम लोगों को देर हो गई, लेकिन आपको तो कर लेना चाहिये था।"

"ऐसने अलसाय गएन।" झगड़ू ने उत्तर दिया।

"अच्छा तो अब उठिये !"

अपने पुत्र के आग्रह को झगड़ू ने नहीं टाला। स्नान-भोजन के बाद जब तीनों बैठे तब झगड़ू ने बात आरम्भ की, "सुनेव हो मारकण्डे, आज सुबह मझले कुँवर हमें बुलाइन रहैं।"

"क्यों ?"

"बात यू भई कि रात माँ मनीजर के आदमी परमेसुर का मारिन ! तौन परमेसुर यू सपथ लै लीन्हिस कि जब तक मनीजर से बदला न लीन जाई तब तक वह अन्न-जल न ग्रहण करी। तौन जब हम मझले कुँवर के यहाँ गएन तो मझले कुँवर कहिन कि उइ मनीजर का उन्नाव भेजि रहे हैं, और इहाँ लड़ाई-झगड़ा बन्द कर दीन जाय। उन्नाव से तिवारी जी का साथ लै के मनीजर वापस अइहैं तब निपटारा हुइ जाई। और मनीजर के इहाँ से चले जाँय के बाद परमेसुर अन्न-जल ग्रहन करै।"

मार्कण्डेय ने कहा, "यह तो ठीक बात है। समझौता हर हालत में अच्छा है।"

लेकिन मनमोहन ने सिर हिलाया, "हो सकता है। मैं तो यह जानता हूँ कि अच्छा तब होगा जब परमेश्वर को संतोष हो जाय।"

"हाँ ! यू ठीक कहेव !" झगड़ू चौंक से उठे, "तौन परमेसुर के यहाँ जाब तो हम भूलै गएन !" यह कह कर झगड़ू उठ खड़े हुए। मार्कण्डेय और मनमोहन भी उनके साथ हो लिये।

८

परमेश्वर लेटा था और उसकी बूढ़ी माँ उसके सिरहाने बैठी थी। परमेश्वर के हाथों और पैरों में पट्टियाँ चढ़ी थीं। झगड़ू के आते ही परमेश्वर की

माँ ने घूँघट निकाल लिया और मेहमानों के बैठने के लिए ज़मीन पर एक फट्टा डाल दिया। उस फट्टे पर मार्कण्डेय और मनमोहन बैठ गए, झगड़ू खड़े ही रहे। उन्होंने मनमोहन से कहा, "अच्छा परमेसुर, अब अन्न-जल ग्रहण करो। मनीजर का मझले कुँवर आज उन्नाव भेज दीन्हिन!"

परमेश्वर ने झगड़ू की ओर देखा और कुछ देर तक देखता रहा, इसके बाद उसने आँखें बन्द कर लीं और पीड़ा से कराह उठा।

झगड़ू को अपनी बात दुहराने की हिम्मत नहीं हुई; उनके दिल का भारीपन और भी बढ़ गया।

परमेश्वर ने फिर आँखें खोलीं, क्षीण स्वर में उसने कहा, "काका! बैठ जाओ!"

"नाहीं परमेसुर—हम खड़े हन, यहै ठीक आय। अब हम तुमसे प्रार्थना करन आए हन कि तुम अन्न-जल ग्रहन करो।"

"लेकिन बदला तो नहीं लिया गया!"

"बदले समझो! मनीजर अबहीं तो बानापुर से हटाय दीन गए हैं, राजा साहेब के आवै पर बर्खास्त कर दीन जइहैं।"

"और अगर राजा साहेब ने उन्हें न बर्खास्त किया?" परमेश्वर ने पूछा, "और मैं जानता हूँ कि राजा साहेब उन्हें न बर्खास्त करेंगे। तब फिर बदला कैसा?"

"काहे न बर्खास्त करिहैं—करैं का पड़ी।" झगड़ू ने तैश में आकर कहा।

परमेश्वर मुसकराया, "झगड़ू काका! इसकी ज़िम्मेदारी आप ले रहे हैं!"

"हाँ, ईकी जिम्मेदारी हमरे ऊपर!" झगड़ू ने आवेश में कह दिया।

"तो झगड़ू काका, मैं जल ग्रहण किये लेता हूँ—अन्न तो तभी ग्रहण करूँगा जब काम पूरा हो जायगा!" परमेश्वर ने कह कर आँखें बन्द कर लीं।

सब लोग चले आए। लेकिन आवेश के दूर होते ही झगड़ू को यह अनुभव हुआ कि उन्होंने जो कुछ किया वह ग़लत किया। वे रामनाथ को अच्छी तरह जानते थे और इसलिए उनके मन में भी रह-रह कर यही प्रश्न उठता था कि अगर पण्डित रामनाथ तिवारी ने मैनेजर को न बर्खास्त किया तो?

अपने मन के प्रश्न को वे लाख प्रयत्न करने पर भी न दबा सके। घर पर भोजन करने के बाद जब झगड़ू, मार्कण्डेय और मनमोहन बैठे तब झगड़ू ने कही डाला, "काहे हो मारकण्डे! तिवारी जी से तो हमें आसा नहीं कि उइ मनीजर का बर्खास्त करिहैं। तौन मझले कुँवर से नाहीं कुछ करवाय सकत हौ?"

मार्कण्डेय कुछ देर तक मौन सोचता रहा, फिर उसने कहा, "बप्पा! मुझे यह आशा कम ही है कि उमा की बात का तिवारी जी पर कुछ असर पड़ेगा। फिर भी मैं कोशिश ज़रूर करूँगा!"

"और अगर हम सब असफल भएन तब?" झगड़ू ने फिर पूछा।

मार्कण्डेय मानो इस प्रश्न के लिए तैयार ही बैठा था, "तब सत्याग्रह करना चाहिये!"

इस बात से झगड़ू चौंक उठे, "सत्याग्रह! सत्याग्रह तो सरकार के साथ कीन जात है, मनई के साथ कैसा सत्याग्रह?"

"क्यों नहीं? गाँव वाले लगान देना बन्द कर दें!"

"और जो जबर्दस्ती होई, बेदखली होई, कुरकी होई—ऊका कौन उपाय है?" झगड़ू ने पूछा।

"ज़बर्दस्ती बर्दाश्त की जाय, क़ुर्क़ी में कोई माल न खरीदे, बेदखली के बाद उस ज़मीन को कोई न ले!"

इस बार मनमोहन बोला, "आप क्या कह रहे हैं, मार्कण्डेय जी? लोग मार खाँय और सब कुछ खो दें। कुर्की में खरीदने वाले मिल जाएँगे और अगर न भी मिले तो कुर्क हुई चीज़ें हल, बैल, ज़मीन, मकान—कम से कम

दाम में खुद तिवारी जी खरीद लेंगे। और बेदखली के माने होंगे तिवारी जी के लिए कुछ सौ रुपयों का नुक़सान, जिसे वे आसानी से बर्दाश्त कर लेंगे, लेकिन किसानों के लिए बेदखली के अर्थ होंगे भूखों मरना जिसे वे लोग बर्दाश्त न कर सकेंगे।"

"सुनेव मारकण्डे—मनमोहन का कहिन! सोला आना ठीक बात आय। नाहीं, सत्याग्रह ई मामला माँ सम्भव नाहीं।" झगड़ू ने कहा।

"सब सम्भव है, लेकिन आत्म-बल चाहिये, बप्पा! ये किसान वैसे ही क्या भूखों नहीं मरते? एक बार उनकी समझ में यह बात आ जाय कि इस पशुता की ज़िन्दगी से मृत्यु अच्छी है तो सब कुछ सम्भव हो जायगा। और साथ ही मैं तो यह कहता हूँ कि सत्य और अहिंसा में इतना बल है कि वह बड़े से बड़े अत्याचार को दबा सकता है, केवल मनुष्य में इस सत्य और अहिंसा पर पूर्ण विश्वास होना चाहिये। तिवारी जी मनुष्य ही तो हैं, उनके पास भी हृदय है, दया है, करुणा है। ऐसी हालत में आप यह कैसे समझते हैं कि इस सत्य और अहिंसा का असर उनपर न पड़ेगा!"

इस बात को सुनकर मनमोहन ज़ोर से हँस पड़ा। मनमोहन की इस हँसी से पिता-पुत्र दोनों ही चौंक उठे। उस हँसी में सरसता न थी, माधुर्य न था। उस हँसी में रूखापन से भरा एक भयानक व्यंग था, उपेक्षा थी। वह हँसी एक धर्मांध की हँसी थी जिसके अन्दर भयानक प्रतिहिंसा भरी हो। मार्कण्डेय ने आश्चर्य से मनमोहन को देखा लेकिन मनमोहन हँसता ही रहा। अन्त में मार्कण्डेय को पूछना पड़ा, "क्यों, क्या बात है, मनमोहन?"

"कुछ नहीं; आप अपना प्रयोग करें। समय बतला देगा कि कौन ग़लती कर रहा है!" मनमोहन ने सिर्फ़ इतना ही कहा।

६

दूसरे ही दिन शाम के समय तिवारी जी को साथ लेकर मैनेजर रामसिंह बानापुर में उपस्थित हो गए। जिस समय उनकी कार महल के सामने रुकी

मार्कण्डेय, उमानाथ और मनमोहन चा पीकर टहलने जाने वाले थे। उमानाथ ने बढ़कर अपने पिता के चरण छुए, मार्कण्डेय और मनमोहन तिवारी जी को प्रणाम करके एक ओर खड़े हो गए। कार से उतरते हुए रामनाथ ने मुसकरा कर उमानाथ से कहा, "देखता हूँ वह मुसीबत जिससे मैं बचना चाहता था मेरे ऊपर आ ही पड़ी!"

रामनाथ तिवारी की व्यंगात्मक मुस्कराहट से ही उमानाथ ने समझ लिया कि उसके पिता निर्णय करके घर से चले हैं और उन्होंने अपना मार्ग निर्धारित कर लिया है। उस निर्णय से उन्हें डिगाने के लिए उमानाथ को भी मुसकरा कर कहना पड़ा, "मुसीबत स्वयम् नहीं आती, वह तो लोगों द्वारा आमन्त्रित की जाती है। दोष इसमें मैनेजर साहब का है, यह मैं कह सकता हूँ।"

उमानाथ ने साफ़ देख लिया कि उसका यह वार खाली गया, उसकी बात का रामनाथ पर कोई असर नहीं पड़ा क्योंकि उसकी बात का रामनाथ ने ज़रा भी बुरा नहीं माना। "हाँ, हो सकता है। लेकिन मैं तो इतना जानता हूँ कि रामसिंह मेरे इलाक़े में एक अरसे से मैनेजर हैं, और आज के पहले रामसिंह के कारण हमें इस परिस्थिति का कभी सामना नहीं करना पड़ा था।" कमरे की ओर बढ़ते हुए रामनाथ ने कहा।

वे चलते जाते थे और कहते जाते थे, "मैंने सारी परिस्थिति समझ ली है बिना रामसिंह की पूरी बात सुने हुए; परिस्थिति समझ लेना ऐसा कोई मुश्किल काम भी तो न था। रामसिंह कभी भी स्वीकार नहीं करेंगे कि उन्होंने कोई ज़्यादती की; मैं भी उसे अपना अधिकार और फल-स्वरूप रामसिंह का अधिकार मानकर कहूँगा कि उन्होंने कोई ज़्यादती नहीं की। साथ ही मैं यह स्वीकार करने से नहीं हिचकता कि आज वही बात लोगों द्वारा ज़्यादती समझी जा रही है। उसे मार्कण्डेय ज़्यादती कहेंगे, उसे दया ज़्यादती कहेगा, उसे तुम भी ज़्यादती कहोगे। और चूँकि तुम लोग उसे ज़्यादती कहते हो, लिहाज़ा मेरी रिआया भी उसे ज़्यादती समझने लगी है। लोगों ने मेरी

रिश्राया को समझाया है कि वह ज़्यादती है, मैं अपनी रिश्राया को समझाने आया हूँ कि वह मेरा अधिकार है !"

"तो क्या आप अपनी रिश्राया को समझा सकेंगे ।" मार्कण्डेय ने पूछा ।

"ज़रूर! बड़ी अच्छी तरह समझा सकूँगा, लेकिन समझाने का तरीक़ा कुछ और होगा और मेरे हिसाब से सही होगा ।" रामनाथ इस बार हँस पड़े, "अधिकारी वही हो सकता है जो समर्थ होता है, और समर्थ वह है जो बली है, शक्तिशाली है । लिहाज़ा अपने अधिकार को अपनी शक्ति द्वारा ही सफलता पूर्वक समझाया जा सकता है !"

मार्कण्डेय ने कहा, "और मनुष्यता ?—क्या जीवन में मनुष्यता का कोई स्थान नहीं ?"

रामनाथ ने रूखा-सा उत्तर दिया, "मार्कण्डेय ! मैं तुम्हें समझाने नहीं आया हूँ और इस लिए मैं तुमसे तर्क न करूँगा । मैं अपने साथ एक दूसरी तरह का तर्क लेकर आया हूँ, ऐसा तर्क जो मुझे अपनी प्रजा के साथ करना चाहिये । और इसलिए तुम्हारे साथ तर्क करके मैं इस समय वाले अपने तर्क को भूलना नहीं चाहता ।"

इस समय तक सब लोग बड़े कमरे में पहुँच गए थे । तख़्त पर रामनाथ बैठ गए और खिदमतगार उनके जूते खोलने लगा । उमानाथ वग़ैरह फ़र्श पर बैठ गए । रामसिंह एक तरफ़ खड़े थे । तिवारी जी ने रामसिंह को देखा, "और तुम उमा के कहने से उन्नाव गए थे न !"

"सरकार, सभी लोगों की ऐसी राय थी तो मझले कुँवर ने भी कह दिया । और इस बढ़ते हुए उपद्रव को देख कर मैंने भी यह मुनासिब समझा कि उसकी इत्तिला सरकार को कर दी जाय ।"

इतने में झगड़ू मिसिर भी वहाँ पहुँच गए । पण्डित रामनाथ तिवारी के आने की इत्तिला बिजली की तरह गाँव भर में फैल गई थी और लोगों ने झगड़ू को रामनाथ तिवारी से मिल कर सारी स्थिति स्पष्ट कर देने को भेजा था ।

झगड़ू को देखते ही रामनाथ उठ खड़े हुए और उन्होंने झगड़ू के प्रणाम का उत्तर देते हुए कहा, "आइये, मिसिर जी! मैं आपकी प्रतीक्षा कर रहा था!" यह कह कर उन्होंने झगड़ू का हाथ पकड़ कर अपने साथ तख्त पर बिठलाने की कोशिश की।

लेकिन झगड़ू तख्त पर नहीं बैठे। इन्होंने कहा, "नहीं, तिवारी जी! आज हम फ़रियादी की हैसियत से राजा साहेब के सन्मुख उपस्थित भए हन, तौन हमार स्थान यू फरस आय!" और झगड़ू फ़र्श पर बैठ गए।

रामनाथ ने झगड़ू को एक बार ग़ौर से देखा, और उनका मुख गम्भीर हो गया तथा उनके मत्थे पर बल पड़ गए। उन्होंने कहा, "अच्छा, मिसिर जी! आप के साथ न्याय ही होगा, मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ। अब आप को जो कुछ कहना हो कह डालिये।"

रामनाथ की इस मुद्रा से उमानाथ को प्रसन्नता हुई, उमानाथ ने देखा कि रामनाथ के अन्दर तर्क की कमज़ोरी पैदा हो गई है। झगड़ू ने गला साफ़ करके कहा, "बात यू है, तिवारी जी, कि मनीजर साहेब आज कल बहुत ज़्यादती करब शुरू कर दीन्हिन हैं। लोगन का पिटवाइन, उनकी खेती उजाड़ दीन्हिन, उनके घर माँ आग लगवाय दीन्हिन। आखिर लोगन का जियन देहैं कि नाहीं। हमार जो कुछ अपमान कीन्हिन ऊकी तो हमें चिन्ता न आय लेकिन परमेसुर नाम के एक लड़का केर काल हाथ-पैर तुड़वाय दीन्हिन!"

"आप का अपमान भी हुआ है?" आश्चर्य से रामनाथ ने पूछा, फिर उन्होंने रामसिंह से कहा, "क्यों रामसिंह, मिसिर जी का कहना है कि तुमने उनका अपमान किया है। क्या बात है?"

"जी!..." सकपकाते हुए रामसिंह ने कहा, "बात यों हुई कि किसी आसामी को जो मैंने सज़ा दिलवाई तो मिसिर जी ने मुझसे कहलाया कि मैं गाँव में क़दम न रक्खूँ, वरना मेरी भी हालत वही होगी जो उस आसामी की हुई थी। और सरकार मैंने मिसिर जी की वह चुनौती इस नाचीज़ के

खिलाफ़ नहीं समझो बल्कि राजा साहेब के खिलाफ़ समझो, क्योंकि यहाँ तो मेरी हस्ती सरकार के प्रतिनिधि की हैसियत से है।"

"फिर तुमने क्या किया ?" रामनाथ ने पूछा।

"जी, करता क्या ! अपने दस-बारह आदमियों के साथ मैं उसी दिन रात के समय मिसिर जी की सेवा में हाज़िर हो गया मिसिर जी को समझाने के लिए कि मैंने जो कुछ किया वह ज़ाती नहीं था बल्कि सरकार के हुक्म की तामोली के रूप में था और उन्होंने मुझे जो चुनौती दी थी वह मुझे नहीं दी थी बल्कि राज को दी थी।"

"तो तुम फ़ौजदारी करने गए थे मिसिर जी से, मिसिर जी की आदत जानते हुए। तुमने समझा था कि जो बात क्षणिक आवेश में आकर मिसिर जी ने कह दी उसका बदला अपने को क़ानून की गिरफ़् से बचा कर ले लिया जाय। तो मिसिर जी ने तुम्हें चले आने दिया ? क्यों मिसिर जी ! यक़ीन नहीं होता, आपको जानते हुए। उस समय तो फ़ौजदारी होनी ही चाहिये थी !"

अब मनमोहन के बोलने की बारी थी, "जी, मिसिर जी ने लाठी तान ली थी, लेकिन मैंने देखा कि वे अकेले हैं और आप के आदमी, उनकी हत्या करने पर तुल कर गए हैं। लिहाज़ा मैंने मिसिर जी का हाथ पकड़ लिया था।"

रामनाथ चुप बैठे थोड़ी देर तक कुछ सोचते रहे, इसके बाद उन्होंने कहा, "फिर आगे !"

"अब हम का बताई !" झगड़ू ने उत्तर दिया, "तौन आप के आदमी मिल के परमेसुर का ऐस बुरी तरा मारिन कि कुछ न पूछौ ! और परमेसुरौ जिद पकड़ गा कि जब तक मनीजर से बदला न लै लीन जाई तब तक वह अन्न-जल न ग्रहण करी।"

रामनाथ ने कहा, "परमेश्वर के खिलाफ़ दो बातें हैं—एक तो वह अपना लगान देने से इनकार करता है दूसरे रिआया को बरगलाता है कि वह भी लगान न दे। मिसिर जी, ये बातें कहाँ तक ठीक हैं ?"

झगड़ू को कहना पड़ा, "हाँ, ईसे तो इनकार नाहीं कीन जाय सकत है। लेकिन ई सब का कारन आपके मनीजर का दुर्व्यवहार है। तौन परमेसुरौ का नया खून आय। सो ऐसी बातन पर ध्यान न देन चाही।"

रामनाथ हँस पड़े, "और ऐसी बातों पर ध्यान न देकर अपने को नष्ट कर लेना चाहिये!—आप यही कहना चाहते हैं, मिसिर जी? तो आप ग़लती करते हैं। अच्छा, मिसिर जी! अब मैं अपना निर्णय दे रहा हूँ। रामसिंह को मैं बर्खास्त कर रहा हूँ, इस बात पर कि उन्होंने आपका अपमान करके एक तरह से मेरा अपमान किया है। लेकिन रामसिंह अभी दो महीने तक इस राज्य के मैनेजर रहेंगे, यह साबित करने के लिए कि उनकी अन्य बातों से मैं सहमत हूँ और मैं दूसरों की ज़रा भी परवाह नहीं करता।"

इस निर्णय को सुन कर वहाँ सब लोग अवाक् रह गए। झगड़ू कुछ चुप रह कर बोले, "तिवारी जी, हमार आप से यह प्रार्थना आय कि हमरे कारन रामसिंह का कौनो दण्ड न दीन जाय, केवल ई लिए कि परमेसुर की बात पूरी हुई जाय, आप अबहीं रामसिंह का कौनो हलका-सा दण्ड दै देंय।"

रामनाथ तिवारी ने झगड़ू की आँखों से आँखें मिलाते हुए कहा, "और इस तरह मैं अपनी रिआया पर यह ज़ाहिर करूँ कि मैं कमज़ोर हूँ, मैं उससे दबता हूँ! मिसिर जी! आज के पहले तो यह परिस्थिति नहीं उत्पन्न हुई थी! यही रिआया थी, यही मैनेजर थे और यही मैं था। आप शायद कहेंगे कि आज के दिन लोग अपना अधिकार जान गए हैं। आप ही क्यों, आज सभी पढ़े-लिखे लोग यह कह रहे हैं। लेकिन जहाँ अधिकार की बात उठती है वहाँ मैं भी अपना अधिकार जानता हूँ। सबल अधिकारी है, यह नियम अनादि काल से लागू रहा है, अनन्त काल तक लागू रहेगा। मैं इस इलाक़े का मालिक हूँ, जो कुछ मैं कहूँगा, इस इलाक़े में बसने वालों को वही करना पड़ेगा। जो वह नहीं करना चाहता, जो मेरे कहने का विरोध करेगा, वह इस इलाक़े में नहीं रह सकता। जिस तरह होगा उसे दण्ड दिया जायगा।"

तिवारी जी की इस बात से झगड़ू तिलमिला उठे, "तिवारी जी, यू याद राखौ कि आपके ऊपर कानून है!"

"क़ानून!" तिवारी जी हँस पड़े, "शब्द-शब्द-शब्द! क़ानून शब्दों का एक जंजाल है। क़ानून बनता है कायरों के लिए, असमर्थों के लिए, निर्बलों के लिए। क़ानून हमने बनाए हैं, हम समर्थों ने अपनी सुविधा के लिए, और अपनी सुविधा के लिए हमीं उन्हें बदल सकते हैं, तोड़-मरोड़ सकते हैं, उन्हें दूसरे अर्थ पहना सकते हैं। मैं कहता हूँ, तुम सब पुलिस के पास जाओ, डिपटी कलेक्टर के पास जाओ, कलेक्टर के पास जाओ! तुम्हें कोई रोकता नहीं, रास्ता साफ़ खुला है। मिसिर जी, मैं फिर कहता हूँ कि मैं सबल हूँ, मैं क़ानून हूँ!"

झगड़ू उठ खड़े हुए, उनका चेहरा तमतमा उठा, "तो फिर, तिवारी जी, चलत-चलत हमहू एक बात आप से कहि देई; आप मनुष्यता के उपासक न आओ, आप दानवता के उपासक आओ; तौन आप का झुकाय दानवतै सकत है! अच्छा प्रनाम!" और झगड़ू वहाँ से चले गए।

थोड़ी देर तक वहाँ गहरा सन्नाटा छाया रहा, फिर तिवारी जी मुसकरा पड़े, "मुझे दानवता ही झुका सकती है! रामसिंह—यहाँ कितने लटैत हैं?"

"सरकार चालीस! हालत खराब देख कर मैंने बुलवा लिये थे।"

"और कुल कितनी बन्दूकें!"

"सरकार दस बन्दूकें हैं!"

१०

"ठीक है!" और तिवारी जी ने मुसकराते हुए कहा, "मुझे दानवता ही झुका सकती है! कितनी मज़ेदार बात है!"

कोठी से जब सब लोग बाहर निकले, मनमोहन ने रामसिंह से कहा, "ज़रा आप से दो एक बातें करनी हैं!"

"कहिये !" और मनमोहन और रामसिंह एक किनारे हो गए।

"आपको पण्डित रामनाथ तिवारी ने बर्खास्त कर दिया है। अगर आप दो महीने बाद न जाकर आज ही यहाँ से चले जाँय तो क्या कोई हर्ज है ?"

रामसिंह के मत्थे पर बल पड़ गए, "क्यों, मेरे जाने से क्या होगा ?"

"परमेश्वर की जान बच जायगी, और साथ ही शायद एक बहुत बड़ा खून-खराबा बच जाय !" मनमोहन ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

"हूँ ! ऐसी बात है ! अच्छा, इस पर ग़ौर करूँगा !"

"इसमें ग़ौर करने की क्या बात है ?"

रामसिंह एकाएक तन कर खड़े हो गए—उनके मुख से उनकी शिष्टता का आवरण हट गया, "तो मैं आपसे साफ़-साफ़ कह दूँ ! मेरी यहाँ से जाने की सम्भावना नहीं के बराबर है। जिन झगड़ू के कारण मुझे बर्खास्त होना पड़ा है, उन झगड़ू में कितना दम-खम है—एक दफ़े मैं यह देख लेना चाहता हूँ !"

मनमोहन ने रामसिंह को ग़ौर से देखा, एक अजीब तरह की दृढ़ता से भरी कठोरता रामसिंह के चेहरे पर थी। और अनायास ही मनमोहन का मुख कुछ विकृत हो गया, "हूँ ! तो एक बात मैं भी आपसे कह देना चाहता हूँ। मालूम होता है आप दूसरों को मिटाने पर ही तुल गए हैं। लेकिन दूसरों के मिटाने के प्रयत्न में कहीं आप खुद न मिट जाँय ज़रा इस पर सोच लीजियेगा।"

"तो क्या मैं इसे धमकी समझूँ ?" रामसिंह ने पूछा।

"आप इसे मेरी आखिरी बात समझिये !" और इतना कह कर बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये मनमोहन वहाँ से चल पड़ा।

मनमोहन जब घर पहुँचा, गाँव वाले झगड़ू को घेरे बैठे थे। झगड़ू कह रहे थे, "रामसिंह को दण्ड तो मिल चुका, जैसे दुई महीना बाद बर्खास्त भए तैसे आज !"

"लेकिन परमेश्वर तो प्राण देने पर तुला है !" एक ने कहा; "उसका कहना है कि रामसिंह को दण्ड नहीं मिला है, कमसे कम उसके साथ अन्याय करने पर !"

और इसी समय एक आदमी ने आकर बतलाया कि परमेश्वर ने जल पीना भी छोड़ दिया है। झगड़ू ने उठते हुए कहा, "तो फिर भगवान की इहै इच्छा है कि खून-खराबा होय !"

मनमोहन के साथ झगड़ू परमेश्वर के यहाँ पहुँचे; परमेश्वर बेहोश-सा पड़ा था। झगड़ू के आने पर उसने बड़े प्रयत्न से आँखें खोलीं, हाथ में जनेऊ लेकर उसने कहा, "मिसिर जी, इस जनेऊ की शपथ ली है। ब्राह्मण हो कर मैं शपथ नहीं तोड़ सकता !"

झगड़ू निराश वापस लौटे। उनके अन्दर भयानक उथल-पुथल मचा · परमेश्वर इतना अधिक कमज़ोर हो गया था कि दो-एक दिन से अधिक [illegible]ा चलना असम्भव था। वह रात एक दुश्चिन्ता से भरी हुई थी, एक [illegible]व निराशा चारों ओर छाई थी। झगड़ू की चौपाल में लोगों की भीड़ [illegible]ो जा रही थी। बहुमत यह था कि रात में ही महल पर चढ़ाई की जाय जम कर युद्ध हो।

पूरी बात सुन कर झगड़ू ने अपना निर्णय दिया, "तो फिर आज फैसला जाय ! मृत्यु कबौं न कबौं तो अवस्य आई तो फिर कायरता-पूर्वक जिन्दा से कौन लाभ !"

और झगड़ू की बात सुन कर सब लोग उठ खड़े हुए।

पर मनमोहन ने झगड़ू का हाथ पकड़ लिया, "मिसिर जी ! आप क्या रहे हैं ? आप सब लोग मृत्यु के मुख में जा रहे हैं—क्या आप जानते हैं ?"

झगड़ू ने कहा, "हाँ, पर ई से क्या ?"

"इससे यह है कि आप युद्ध करने या लड़ने नहीं जा रहे हैं बल्कि आप [illegible] जा रहे हैं। वहाँ चालीस लठैत हैं, दस बन्दूकें हैं, और आप लोगों को [illegible]ओं की तरह मार डालने का पूरा प्रबन्ध है !"

झगड़ू ठिठक गए, और उनके साथ अन्य लोग भी। उसी समय मार्कण्डेय तिवारी जी के यहाँ से वापस लौटा। उसने जो यह भीड़ देखी तो अपने पिता के पास आकर पूछा, "क्या बात है, बप्पा!"

झगड़ू ने कोई उत्तर न दिया, लेकिन मार्कण्डेय सारी स्थिति समझ गया। उसने कहा, "लेकिन बप्पा! यह सब कितना गलत है—आप लोग हिंसा की शरण ले रहे हैं! क्या यह आपको शोभा देता है? आप एकाएक अपना कर्तव्य क्यों भूल गए?"

झगड़ू ने झुँझला कर कहा, "लेकिन तुम्हार अहिंसा तिवारी जी ऐसे मनइन के लिए नाहीं है। यहाँ तो परमेसुर के प्रानन का प्रश्न आय!"

"मैंने तिवारी जी से बातें की हैं, कल वह परमेश्वर के यहाँ जाएँगे और वहाँ सब बातें पूछकर वे अपना निर्णय देंगे!"

उस रात सब लोग चले गए। सुबह के समय रामनाथ तिवारी परमेश्वर के यहाँ पहुँचे। गाँव के अन्य लोग वहाँ पहले से ही इकट्ठा होकर तिवारी जी की प्रतीक्षा कर रहे थे। तिवारी जी ने परमेश्वर से कहा, "अच्छा तुम अपना अनशन तोड़ दो, जब ताक़त आ जाय तब मुझसे सब बातें बतलाना, मैं इतना विश्वास दिलाता हूँ कि मैं न्याय करूँगा!"

लेकिन परमेश्वर ने फिर जनेऊ हाथ में लेकर कहा, "मेरा न्याय तो यह है! मैंने शपथ ली है, राजा साहेब! और शपथ पूरी करके अपने ब्राह्मणत्व का पालन करूँगा!"

"तो तुम्हें मेरे न्याय पर विश्वास नहीं है?" ज़रा कड़े स्वर में रामनाथ ने कहा।

परमेश्वर के मुख पर एक रूखी मुसकराहट आई, "आपका न्याय तो नित्य हुआ करता है!"

रामनाथ तिवारी घूम पड़े। सब लोग स्तब्ध खड़े थे। घर के बाहर रामनाथ तिवारी रुके, उनके सामने गाँव वाले खड़े थे। रामनाथ ने गम्भीरता-

पूर्वक कहा, "जिसे मेरे न्याय पर विश्वास नहीं उसे मेरी मनुष्यता पर विश्वास नहीं; और इसलिए वह आदमी मरता है या जीता है, इससे मुझे कोई प्रयोजन नहीं !" और रामनाथ तिवारी अपनी कोठी को लौट गए।

११

परमेश्वर की तबीअत दोपहर से ही गिरने लगी और रात में उसकी मृत्यु हो गई। गाँव भर में परमेश्वर की मृत्यु की खबर फैल गई। सुबह उसकी अर्थी निकली।

परमेश्वर की अन्त्येष्टि क्रिया करके गाँव वाले शाम के समय लौटे। सारे गाँव में मुर्दनी छाई हुई थी। मनमोहन भी अर्थी के साथ श्मशान गया था; वहाँ से लौटकर उसने झगड़ू से कहा, "मिसिर जी। अब मैं चलूँगा। मैंने इस गाँव में बहुत कुछ देखा ! इतना देखा कि जी भर गया।"

झगड़ू की आँखों में आँसू आ गए। अपराधी की भाँति सर झुकाकर उन्होंने कहा, "जाओ मनमोहन ! कौन मुँह लैके हम तुम्हें रोकी। हम सब पसु आन ! परमेसुर दुनिया से चला गा, और रामसिंह ई गाँव से नाहीं गए ! न जाने भगवान की का इच्छा है !"

मनमोहन ने झगड़ू की इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया। उसका मुख भयानक-रूप से विकृत हो गया था। उसने दरवाज़े से निकलते हुए केवल इतना कहा, "मिसिर जी ! भगवान कुछ नहीं है, भगवान हमारी अकर्मण्यता से भरी कायरता भर है। अच्छा, मैं उमानाथ और तिवारी जी से मिलकर चला जाऊँगा। तिवारी जी मुझे स्टेशन भिजवाने का प्रबन्ध करा देंगे ! प्रणाम !"

जिस समय मनमोहन बानापुर के महल में पहुँचा, उसने देखा कि तिवारी जी अकेले बैठे कुछ सोच रहे हैं। बाहर रामसिंह तथा इलाके के अन्य कार्यकर्ता खड़े थे। वहाँ का सारा वातावरण दुश्चिन्ता से भरा था। मनमोहन सीधा कमरे में चला गया।

रामनाथ ने सर उठाया। मनमोहन ने कहा, "तिवारी जी! मैं जा रहा हूँ। आपकी आज्ञा लेने आया हूँ!"

रामनाथ ने मनमोहन से आँखें हटा लीं; कुछ देर तक उन्होंने शून्य की ओर देखा, फिर कहा, "मनमोहन! मुझे इस बात का दुःख है कि यह सब हो गया। मैं नहीं जानता कि आगे क्या होगा, पर मैं इतना अनुभव करता हूँ कि आगे जो कुछ होगा, बहुत सम्भव है वह इससे भी अधिक बुरा हो, भयानक हो! लेकिन इसमें मेरा क्या दोष है?"

रुखाई के साथ मनमोहन ने उत्तर दिया, "इस सम्बन्ध में मैं क्या राय दे सकता हूँ, राजा साहेब! यह तो अपना-अपना दृष्टिकोण है।

रामनाथ ने मानो मनमोहन के स्वर की रुखाई को अनुभव ही नहीं किया; उन्होंने फिर कहा, "मैं कहता हूँ कि पहले कभी यह सब क्यों नहीं हुआ? मैं पूछता हूँ कि आज की परिस्थिति की ज़िम्मेदारी मुझपर कैसे आ सकती है? यह इलाक़ा वही है, मैं वही हूँ, मेरे मुलाज़िम वही हैं और मेरी नीति वही है—फिर यह सब क्यों?"

मनमोहन इस बात पर मौन रहा।

रामनाथ स्वयम् ही बोल उठे, "हाँ समय बदल रहा है और समय के साथ दुनिया बदल रही है। लेकिन मैं कहता हूँ कि दुनिया ग़लत तरीक़े पर बदल रही है। यह अराजकता, यह एक दूसरे पर अविश्वास, यह दुराग्रह!—इस सबसे हमारा कल्याण नहीं हो सकता—कभी नहीं हो सकता। जहाँ हिंसा का सवाल है वहाँ विजयी वही होगा जिसके पास बल है, पाशविकता है! इस हिंसा का मुक़ाबिला करने के लिए, यही प्राकृतिक है कि हम भी अपनी हिंसा को पाशविकता की सीमा तक विकसित करें...!" और रामनाथ अपनी बात कहते-कहते रुक गए।

वे उठ खड़े हुए, "तो तुम जा रहे हो! अच्छा, मेरी कार तुम्हें स्टेशन तक पहुँचा देगी!" यह कहकर रामनाथ ने ख़िदमतगार को आवाज़ दी।

"देखो—उमा को बुलाकर कह दो कि वह मनमोहन को स्टेशन पहुँचा आवे !" तिवारी जी ने खिदमतगार से कहा।

उमानाथ ने मनमोहन का टिकट खरीदकर मनमोहन को गाड़ी पर बिटला दिया। उस समय छै बजे थे। गाड़ी चल दी।

अगले स्टेशन पर मनमोहन गाड़ी से उतर पड़ा। उस समय रात हो गई थी, और गहरा अन्धकार छाया था। रेल की पटरी-पटरी वह बानापुर की तरफ़ वापस लौटा।

जिस समय उसने बानापुर में प्रवेश किया, दस बज चुके थे। गाँव में सन्नाटा छाया था। दबे पाँव वह मैनेजर रामसिंह के घर पहुँचा।

रामसिंह के घर के सामने दो सिपाहियों का पहरा था। ये दोनों सिपाही आग के सामने बैठे हुए दम लगा रहे थे। उनकी नज़र बचाकर मनमोहन फाटक के अन्दर घुस गया।

बाहर के कमरे में रामसिंह दो सरबराकारों के साथ बैठे बातें कर रहे थे। मनमोहन बरामदे में दरवाज़े की आड़ में खड़ा होकर इन सरबराकारों के जाने की प्रतीक्षा करने लगा। थोड़ी देर बाद दोनों सरबराकार उठ कर चले गए। वे सरबराकार फाटक के बाहर निकल गए और रामसिंह अन्दर जाने को उठ खड़े हुए। उसी समय मनमोहन ने उनके कमरे में प्रवेश किया।

मनमोहन के कमरे में प्रवेश करते ही रामसिंह चौंक उठे, उन्होंने कहा, "आप ! आप यहाँ कैसे ? आप तो आज उन्नाव चले गए थे !"...और एका-एक रामसिंह रुक गए, उनका चेहरा पीला पड़ गया, वह भय से काँप उठे।

उस समय रामसिंह ने देखा कि उनके सामने मनुष्य नहीं खड़ा है, एक महा कुरूप दानव खड़ा है। मनमोहन मुसकरा रहा था और उसके हाथ में पिस्तौल थी। उसने कहा, "रामसिंह ! हम लोगों के विधान में मृत्यु का बदला मृत्यु हुआ करता है। तुमने परमेश्वर की हत्या की है, मैं तुम्हें उसका दण्ड देने आया हूँ !" और इसके पहले कि रामसिंह कुछ कहें, या अपनी

सहायता के लिए किसी को पुकारें, मनमोहन ने पिस्तौल का घोड़ा दाब दिया।

पिस्तौल की आवाज़ होते ही चारों ओर से लोग दौड़ पड़े। इस भगदड़ का लाभ उठा कर मनमोहन पिस्तौल दागता हुआ गाँव के बाहर हो गया।

१२

जिस समय रामसिंह की हत्या की खबर तिवारी जी के यहाँ पहुँची, वे लेटे हुए थे। उन्हें नींद न आई थी, उस समय वे बहुत अधिक उद्विग्न थे। उनका दिल कह रहा था कि जल्द ही कोई भयानक काण्ड होने वाला है, लेकिन उनकी समझ में न आ रहा था कि क्या होगा और कैसे होगा।

खबर पाते ही रामनाथ उठ खड़े हुए। उमानाथ के साथ वे रामसिंह के घर पहुँचे, वहाँ कुहराम मचा हुआ था। मनमोहन के पिस्तौल की गोली रामसिंह का हृदय पार कर गई थी और गोली लगते उसी क्षण उसके प्राण निकल गए थे। रामनाथ ने आते ही एक हरकारा थाना भेज दिया पुलिस को खबर करने के लिए, इसके बाद उन्होंने मानो अपने ही मे कहा, "यह गोली रामसिंह के नहीं मारी गई है, यह गोली मेरे मारी गई है।"

पुलिस वाले आए और तहक़ीक़ात शुरू हुई। कोई भी यह न कह सकता था कि रामसिंह की हत्या किसने की, किसी पर शक भी न किया जा सकता था। लेकिन यह स्पष्ट था कि रामसिंह की हत्या की गई, और गाँव की जैसी परिस्थिति थी, उसे देखते हुए इस पर आश्चर्य भी न होना था कि रामसिंह की हत्या की गई। रामसिंह का शव चीर-फाड़ के लिए उसी समय उन्नाव भेज दिया गया।

रामसिंह की हत्या की खबर सुबह गाँव में उस समय मालूम हुई जिस समय पुलिस ने तहक़ीक़ात के लिए गांव में प्रवेश किया। पर गाँव में पूरी तरह तहक़ीक़ात होने पर भी पुलिस के दारोग़ा और पण्डित रामनाथ तिवारी किसी निर्णय पर नहीं पहुँच सके। पुलिस के चले जाने के बाद ग्राम के

समय रामनाथ अपने महल के बरामदे में राज्य के कर्मचारियों से घिरे बैठे थे। कोई कुछ न बोल रहा था, किसी की समझ में कुछ न आ रहा था।

एकाएक रामनाथ उठ खड़े हुए, उन्होंने तन कर कहा, "यह वार रामसिंह पर ही नहीं किया गया, यह वार मुझ पर भी किया गया है, और इस वार का मुझे जवाब देना पड़ेगा। ठाकुर, जगदेव सिंह ! क्या किया जाय ?"

सरबराकार जगदेवसिंह रामसिंह के नज़दीकी रिश्तेदार होते थे। उन्होंने कहा, "सरकार ! सारा फ़िसाद झगड़ू मिसिर ने खड़ा किया है।"

"हो सकता है, लेकिन इससे तो मामला हल नहीं होता !" रामनाथ तिवारी कुछ सोचने लगे ! उन्होंने फिर कहा, "सवाल यह है कि किया क्या जाय ! क्या तुम्हारा ऐसा खयाल है कि झगड़ू इस हत्या में शामिल हैं, या उन्हें हत्या करने वाले का पता होगा ?"

"मैं तो ऐसा ही समझता हूँ, सरकार !"

"तो फिर मुझे झगड़ू से इस पर बात-चीत करनी पड़ेगी !" रामनाथ ने एक क़दम बढ़ाते हुए कहा, "मैं खुद झगड़ू के यहाँ चल रहा हूँ !"

रामनाथ तिवारी सदलबल झगड़ू के यहाँ पहुँचे। उस समय झगड़ू के यहाँ गाँव के लोग एकत्रित थे और रामसिंह की हत्या पर टीका-टिप्पणी कर रहे थे। रामनाथ को देखते ही सब लोग उठ खड़े हुए, झगड़ू ने तख्त पर बिछौना बिछाते हुए कहा, "प्रनाम तिवारी जी ! कैसे कष्ट कीन्हेव ? पधारो !"

रामनाथ तिवारी बैठे नहीं, खड़े ही खड़े उन्होंने पूछा, "मिसिर जी मैं आपके यहाँ यह पूछने आया था कि रामसिंह की हत्या किसने की ?"

झगड़ू चौंक उठे, "तो का आप का ऐस ख्याल है कि ई हत्या माँ हम शामिल हन ?"

रामनाथ ने व्यंगात्मक स्वर में कहा, "मैं आशा करता था कि मुझपर पीछे से वार न किया जायगा।"

एकाएक झगड़ू काँप उठे। अचानक ही उन्हें मनमोहन की याद हो

आई, 'निर्बल और सबल की लड़ाई केवल एक तरह सम्भव है, निर्बल सबल पर जब वार करे, पीछे से करे!' और झगड़ू ने कोई उत्तर नहीं दिया। वे उस समय सोच रहे थे—'क्या मनमोहन ने यह किया है? लेकिन मनमोहन तो कल शाम के समय ही उन्नाव चला गया था, उमानाथ उसे खुद गाड़ी पर चढ़ा आए थे!'

कुछ देर तक झगड़ू के उत्तर की प्रतीक्षा करने के बाद रामनाथ ने कहा, "क्यों मिसिर जी! बोलते क्यों नहीं; रामसिंह की हत्या का बदला मैं ज़रूर लूँगा। अगर आप उस आदमी का नाम मुझे बतला दें जिसने यह काण्ड किया है तो गाँव के अन्य लोग मेरे बदले की चक्की से बच जाएँगे!"

"और नहीं तो?" झगड़ू के पास खड़े हुए परमानन्द सुकुल ने पूछा।

रामनाथ ने तेज़ नज़र से परमानन्द सुकुल को देखा, "और नहीं तो मैं सारे गाँव को उजाड़ दूँगा, इस गाँव को जलवा कर राख कर दूँगा!" उत्तेजित हो कर रामनाथ ने कहा।

"और यह सब आप कर के सही सलामत बच जाएँगे और हम नपुंसक की तरह देखते रहेंगे"—मन्नू दुबे ने रामनाथ की आँखों से अपनी आँखें मिलाते हुए कहा।

और उसी समय परमानन्द सुकुल ने कहा, "आपकी क्या हस्ती जो यह सब करें? हम ऐसे निबल नहीं हैं, तिवारी जी!"

"मेरी हस्ती देखना चाहते हो तो देख लेना!" और रामनाथ अपने आदमियों के साथ वापस लौट आए!

दूसरे दिन रामनाथ के आदमियों के साथ पुलिस के दारोग़ा गाँव में आए। परमानन्द सुकुल और मन्नू दुबे को बाँध कर वे रामनाथ की कोठी पर ले गए। यह बात आँधी की तरह गाँव भर में फैल गई! रामनाथ ने चुनौती दे दी थी।

ख़बर एक गाँव से दूसरे गाँव में पहुँची, और दूसरे से तीसरे में। आस-

पास के गाँव के आदमी उत्तेजित हो कर बानापुर में एकत्रित होने लगे, और करीब दो-तीन घण्टे के बाद ही तीन चार सौ लट्ठ-बन्द आदमी रामनाथ की कोठी की तरफ़ चल पड़े। उस समय झगड़ू ने उन लोगों को शान्त रहने को बहुत कुछ समझाया-बुझाया, लेकिन वहाँ झगड़ू की बात सुनने को कोई भी तैयार न था। झगड़ू ने देखा कि एक अति भयानक काण्ड होने वाला है। एक बार रामनाथ को समझाने के लिए झगड़ू वहाँ से रामनाथ के यहाँ चले, भीड़ से यह वादा करके कि आध घंटे के अन्दर ही वे मामला ते करके लौट आवेंगे !"

जिस समय झगड़ू रामनाथ के यहाँ पहुँचे, पुलिस-दारोग़ा के साथ बैठे हुए रामनाथ गाँव में एकाएक उत्पन्न हो जाने वाली परिस्थिति पर बातें कर रहे थे। झगड़ू के पहुँचते ही बातें बन्द हो गईं। दारोग़ा जी ने झगड़ू से कहा, "कहिये मिसिर जी ! गाँव वालों के क्या इरादे हैं ?"

झगड़ू ने पुलिस-दारोग़ा के सवाल का कोई जवाब नहीं दिया, उन्होंने रामनाथ से कहा, "हम आपसे यू प्रार्थना करन आए हैं कि परमानन्द सुकुल और मन्नू दुबे का छोड़ दीन जाय। और फिर यू हमार जिम्मेदारी कि गाँव माँ कौनो उपद्रव न होई !"

"और अगर न छोड़े गए तो ?" रामनाथ ने पूछा।

झगड़ू रामनाथ के स्वर को जानते थे, उन्होंने कहा, "तिवारी जी ! आप यू हमार व्यक्तिगत प्रार्थना समझौ ! हम गाँव की तरफ़ से आपका चुनौती देन नाहीं आए हन !"

रामनाथ मुसकरा पड़े, "आपकी प्रार्थना है, मिसिर जी ! आपने मुझे अजीब परिस्थिति में डाल दिया। पर आपकी बात मैं नहीं टालूँगा !" इस बार उन्होंने पुलिस दारोग़ा से कहा, "दारोग़ा जी, उन दोनों आदमियों को आप यहाँ बुलाइये और उन्हें आगाह करके छोड़ दीजिये !"

दारोग़ा ने दोनों आदमियों को बुलाया; उनकी हथकड़ियाँ खोल दी

गईं। रामनाथ ने कहा, "आप लोग जा सकते हैं! अपने छूटने पर आप लोग मिसिर जी को धन्यवाद दें!"

दोनों चले गए, बिना एक शब्द कहे हुए, सर झुकाए! पर उन दोनों की मुद्रा में कुछ ऐसी बात थी जो वहाँ बैठे हुए लोगों को अच्छी नहीं लगी।

भीड़ रामनाथ की कोठी से करीब एक मील की दूरी पर खड़ी हुई थी। मन्नू दुबे उस हथियारबन्द भीड़ को देखते ही चिल्ला उठे, "धिक्कार है हम लोगन पर! आज हमार सब मर्दानगी बूड़ गई। हमारा इतना अपमान हुआ, हथकड़ी पहिना कर हम लोगों को पुलिस वाले ले गए और तुम लोग मुर्दा की तरह खड़े रहे। अब यह गांव रहने काबिल नहीं रह गया।"

मन्नू दुबे की इस बात ने आग में घृत का काम किया। कुछ लोगों ने पूछा, "हम लोग मरने-मिटने पर तैयार होकर निकले हैं। बोलो क्या किया जाय?"

अब परमानन्द की बारी थी। उन्होंने पास खड़े हुए एक आदमी की लाठी छीनकर घुमाते हुए कहा, "आज फ़ैसला हो जाना चाहिये। जो अपने को मर्द समझता हो वह आवे हमारे साथ!" और यह कह कर वे रामनाथ की कोठी की तरफ़ घूम पड़े। उत्तेजित भीड़ परमानन्द और मन्नू के पीछे-पीछे चल पड़ी।

भीड़ की आवाज़ सुनकर रामनाथ और अन्य लोग चौंक उठे। भीड़ तेज़ी के साथ बढ़ी आ रही थी। दारोग़ा ने उठते हुए कहा, "राजा साहेब! भीतर चलिये! मालूम होता है यह लोग बलवा करने आ रहे हैं। अपने आदमियों को इकट्ठा कीजिये, मुकाबिला करने के लिए!"

पर रामनाथ बैठे ही रहे, "आने दीजिये! सुनूँ भी कि ये लोग क्या करना चाहते हैं!"

भीड़ उस समय तक सामने आ गई थी। दारोग़ा जी तेज़ी के साथ कमरे अन्दर घुस गए, और उन्होंने भीतर से दरवाज़ा बन्द कर दिया। मन्नू ने स्वर में कहा, "काहे! का बात है?"

पर झगड़ू की बात मानो किसी ने सुनी ही नहीं; एक मिनट में दोनों चारों तरफ़ से घिर गए। परमानन्द मुकुल ने चिल्लाकर कहा, "लो! हमें हथकड़ी पहनाने का बदला लो!" और उन्होंने रामनाथ पर लाठी का प्रहार किया।

पर झगड़ू ने यह प्रहार अपने हाथों पर लिया, और उसी समय मन्नू दुबे ने लाठी चलाई। उस समय रामनाथ खड़े हो गए। लाठी उनके सर पर पड़ी और वे गिर पड़े। झगड़ू ने चिल्लाकर कहा, "हत्यारो! यू का करि रहे हो?"

लेकिन भीड़ पागल हो गई थी। एक साथ पचास लाठियाँ उठीं। और उसी समय झगड़ू रामनाथ तिवारी के ऊपर लेट गए। पचासों लाठियाँ झगड़ू पर पड़ीं।

और एकाएक मार्कण्डेय की आवाज़ आई, "बप्पा! बप्पा! यह क्या हो रहा है?"

मार्कण्डेय की आवाज़ सुनते ही मानो भीड़ का पागलपन ग़ायब हो गया। लाठियाँ रुक गईं, और मार्कण्डेय दौड़ता हुआ वहाँ पहुँचा। उस समय लोगों ने देखा कि झगड़ू की आंखें बन्द हैं और उनके सर से ख़ून की धार बह रही है। इस समय तक रियासत के दस आदमी और पुलिस के दस आदमी बन्दूकें लिए हुए वहाँ आ गए थे।

भीड़ ने देखा कि रामनाथ ज़िन्दा हैं और उसने झगड़ू के प्राण ले लिये।

गईं। रामनाथ ने कहा, "आप लोग जा सकते हैं! अपने छूटने पर आप लोग मिसिर जी को धन्यवाद दें!"

दोनों चले गए, बिना एक शब्द कहे हुए, सर झुकाए! पर उन दोनों की मुद्रा में कुछ ऐसी बात थी जो वहाँ बैठे हुए लोगों को अच्छी नहीं लगी।

भीड़ रामनाथ की कोठी से करीब एक मील की दूरी पर खड़ी हुई थी। मन्नू दुबे उस हथियारबन्द भीड़ को देखते ही चिल्ला उठे, "धिक्कार है हम लोगन पर! आज हमार सब मर्दानगी बूड़ गई। हमारा इतना अपमान हुआ, हथकड़ी पहिना कर हम लोगों को पुलिस वाले ले गए और तुम लोग मुर्दा की तरह खड़े रहे। अब यह गाँव रहने क़ाबिल नहीं रह गया।"

मन्नू दुबे की इस बात ने आग में घृत का काम किया। कुछ लोगों ने पूछा, "हम लोग मरने-मिटने पर तैयार होकर निकले हैं। बोलो क्या किया जाय?"

अब परमानन्द की बारी थी। उन्होंने पास खड़े हुए एक आदमी की लाठी छीनकर घुमाते हुए कहा, "आज फ़ैसला हो जाना चाहिये। जो अपने को मर्द समझता हो वह आवे हमारे साथ!" और यह कह कर वे रामनाथ की कोठी की तरफ़ घूम पड़े। उत्तेजित भीड़ परमानन्द और मन्नू के पीछे-पीछे चल पड़ी।

भीड़ की आवाज़ सुनकर रामनाथ और अन्य लोग चौंक उठे। भीड़ तेज़ी के साथ बढ़ी आ रही थी। दारोग़ा ने उठते हुए कहा, "राजा साहेब! भीतर चलिये! मालूम होता है यह लोग बलवा करने आ रहे हैं। अपने आदमियों को इकट्ठा कीजिये, मुक़ाबिला करने के लिए!"

पर रामनाथ बैठे ही रहे, "आने दीजिये! सुनूँ भी कि ये लोग क्या कहना चाहते हैं!"

भीड़ उस समय तक सामने आ गई थी। दारोग़ा जी तेज़ी के साथ कमरे के अन्दर घुस गए और उन्होंने भीतर से दरवाज़ा बन्द कर दिया। झगड़ू ने खड़े होकर कड़े स्वर में कहा, "काहे! का बात है?"

पर झगड़ू की बात मानो किसी ने सुनी ही नहीं; एक मिनट में दोनों चारों तरफ़ से घिर गए। परमानन्द मुकुल ने चिल्लाकर कहा, "लो! हमें हथकड़ी पहनाने का बदला लो!" और उन्होंने रामनाथ पर लाठी का प्रहार किया।

पर झगड़ू ने यह प्रहार अपने हाथों पर लिया, और उसी समय मन्नू दुबे ने लाठी चलाई। उस समय रामनाथ खड़े हो गए। लाठी उनके सर पर पड़ी और वे गिर पड़े। झगड़ू ने चिल्लाकर कहा, "हत्यारो! यू का करि रहे हो?"

लेकिन भीड़ पागल हो गई थी। एक साथ पचास लाठियां उठीं। और उसी समय झगड़ू रामनाथ तिवारी के ऊपर लेट गए। पचासों लाठियाँ झगड़ू पर पड़ीं।

और एकाएक मार्कण्डेय की आवाज़ आई, "बप्पा! बप्पा! यह क्या हो रहा है?"

मार्कण्डेय की आवाज़ सुनते ही मानो भीड़ का पागलपन गायब हो गया। लाठियाँ रुक गईं, और मार्कण्डेय दौड़ता हुआ वहाँ पहुँचा। उस समय लोगों ने देखा कि झगड़ू की आंखें बन्द हैं और उनके सर से खून की धार बह रही है। इस समय तक रियासत के दस आदमी और पुलिस के दस आदमी बन्दूकें लिए हुए वहाँ आ गए थे।

भीड़ ने देखा कि रामनाथ ज़िन्दा हैं और उसने झगड़ू के प्राण ले लिये।

चौथा परिच्छेद

१

रेल की पटरी पटरी मनमोह रातो-रात पैदल उन्नाव पहुँच गया।

जिस वक्त मनमोहन प्रभानाथ के बँगले पर पहुँचा, प्रभानाथ सो कर उठ चुका था। मनमोहन को देखते ही वह चौंक उठा, आश्चर्य से उसने पूछा, "अरे, इस वक्त तुम यहाँ कैसे?"

कुरसी पर बैठते हुए मनमोहन ने कहा, "सब कुछ बताता हूँ, लेकिन ज़रा ठहर कर। रात भर पैदल चलता हुआ यहाँ पहुँचा हूँ।"

थोड़ी देर में नौकर ने प्रभानाथ को चा के लिए बुलाया। मनमोहन को साथ लेकर प्रभानाथ चा पीने वाले कमरे में पहुँचा, वहाँ वीणा प्रभानाथ का इंतज़ार कर रही थी। मनमोहन को देखते ही वह उठ खड़ी हुई, उसने मनमोहन को नमस्कार किया। लेकिन शायद मनमोहन ने न वीणा को देखा, न उसके नमस्कार को देखा; सर झुकाए हुए वह एक खाली कुर्सी पर बैठ गया था। और उसने वीणा को उस समय देखा जब वीणा ने चा बना कर प्याला उसके सामने रख दिया।

वीणा को देखते ही मनमोहन चौंक कर उठ खड़ा हुआ; नमस्कार करते-हुए उसने मुस्कराने का प्रयत्न किया, "क्षमा कीजियेगा, मैंने आप को देखा नहीं था। मैं आपके अस्तित्व को, और आपके ही अस्तित्व को नहीं, स्वयम् अपने अस्तित्व को भूला हुआ था!" इतना कह कर वह फिर कुर्सी पर बैठ गया और उसने एक ठंढी साँस ली।

वीणा की आँखों में कौतूहल चमक उठा, उसने पूछा, "आखिर कौन सी ऐसी बात हुई जो आप इतना अधिक उद्विग्न हैं!"

"बात !" मनमोहन ने ज़रा हिचकिचाते हुए कहा, "बात...कुछ भी नहीं, और शायद बहुत बड़ी। मैं बानापुर से आ रहा हूँ, प्रभानाथ, तुम्हारी रियासत के मैनेजर का खत्म करके, और उसको खत्म करने के साथ तुम्हारी रियासत में एक बहुत बड़े खून-खराबे को रोक कर !" और यह कह कर मनमोहन ने बानापुर के संघर्ष का पूरा क़िस्सा आदि से अन्त तक कह सुनाया।

इस क़िस्से को सुन कर प्रभानाथ गम्भीर हो गया, उसने कहा, "मनमोहन ! तुम समझते हो कि तुमने बानापुर के संघर्ष और विद्रोह को खत्म कर दिया है, लेकिन मैं कहता हूँ कि तुमने एक ऐसा काम किया है जिसके परिणाम की कल्पना करते ही मैं काँप उठता हूँ। इस समय वहाँ क्या हो रहा होगा, मैं नहीं जानता; लेकिन कुछ भयानक काण्ड हो रहा होगा ! तुम दुआ को पूरी तरह नहीं जानते !"

चा पी कर मनमोहन लेट गया। वह जिस समय सोकर उठा, बारह बज गए थे।

वीणा स्कूल चली गई थी और प्रभानाथ बाहर लान पर आधा धूप में तथा आधा एक पेड़ की छाया में कुर्सी पर बैठा हुआ एक किताब पढ़ रहा था। मनमोहन बाहर निकल आया, वह प्रभानाथ के सामने लान पर ही बैठ गया। उसने पूछा, "कौन सी किताब है ?"

"कार्ल मार्क्स का कैपीटल !"

मनमोहन हँस पड़ा, "तो समाजवादी बनने की धुन तुम पर कैसे सवार हुई ?"

प्रभानाथ मुसकराया, "समाजवाद ऐसा कुछ बुरा भी नहीं मालूम होता, गो कि मैं समाजवादी बनने की इस समय तो नहीं सोच रहा हूँ। यह किताब मझले भइया की है, पढ़ने के लिए और कोई किताब नहीं थी इसलिए इसी को खोल कर बैठ गया।" कुछ रुक कर प्रभानाथ ने पूछा, "नींद तो अच्छी तरह आई ?"

"खूब अच्छी तरह ! सारी थकावट मिट गई ! हाँ प्रभानाथ, एक बात कहनी थी। आज मैं कानपुर जा रहा हूँ, मैं समझता हूँ कि अज्ञात-प्रवास की अवधि समाप्त कर देनी चाहिये, अब काम करना है।"

प्रभानाथ कुछ बोला नहीं, वह मौन मनमोहन को देख रहा था।

मानो मनमोहन ने प्रभानाथ के किसी भी प्रकार उत्तर की आशा न की थी, कुछ रुक कर उसने फिर कहा "छोटी-सी ज़िन्दगी और भयानक-रूप से अनिश्चित ! इसका प्रत्येक क्षण मूल्यवान है, प्रभानाथ ! और हमारे सामने काम ही काम है ! तो शाम की गाड़ी से मैं कानपुर जा रहा हूँ। परसों सरदार विजय सिंह के मकान पर शाम के वक्त तुम्हें आना है !"

"समझा !" प्रभानाथ ने कहा, "और वीणा को भी साथ लेता आऊँ ?"

मनमोहन ने कुछ देर तक सोचा, फिर उसने कहा, "ज़रूरत तो कोई खास नहीं है, लेकिन अगर चाहो तो साथ लेते आना; शायद कुछ निकल ही आवे ! और सब से बड़ी बात यह है कि इससे तुम्हें संतोष होगा !"

२

तीसरे दिन रात को सरदार विजय सिंह के मकान पर लोग एकत्रित हुए। कानपुर की पार्टी के तीस आदमी वहाँ मौजूद थे और उनके अलावा दो आदमी और थे, जिन्हें प्रभानाथ न पहचानता था। मनमोहन ने बतलाया कि वे दोनों आदमी दिल्ली से आए हैं। वीणा एक कोने में गुम-सुम बैठी थी।

सब लोगों के बैठ जाने के बाद कारंवाई शुरू हुई। विजय सिंह ने बतलाया कि जो दो आदमी दिल्ली से आए हैं उनका कहना है कि वहाँ की पार्टी के पास रुपया नहीं है और वहाँ के कार्यकर्ता विवश तथा अकर्मण्य बैठे हैं। साथ ही कानपुर की पार्टी का रुपया भी धीरे-धीरे खत्म हो रहा है।

इसके बाद निस्तब्धता छा गई। अन्त में मनमोहन ने कहा, "तो फिर क्या हो ?—रुपए का तो इंतज़ाम करना ही होगा।"

"और रुपया पाना आसान काम नहीं है !" एक आदमी हँस पड़ा, "फिर एक सवाल और उठता है—कितना रुपया चाहिये ?"

"चाहिये तो बहुत ज़्यादा ! दिल्ली के लिए, कानपुर के लिए ! और बंगाल से अलग रुपए की मांग है। वहाँ पुलिस की जो सरगर्मी है तथा जिस प्रकार वहाँ के कुछ लोगों के विश्वासघात के कारण परिस्थिति उत्पन्न हो गई है उससे वहाँ कुछ दिन के लिए काम स्थगित-सा हो रहा है, और वहाँ के प्रमुख कार्य-कर्ताओं को भागना है। महीनों से वे अज्ञात स्थानों में बन्द से हैं।"

इसी समय एक आदमी और आया, सब लोग चुप हो गए। आने वाले ने कहा, "कल रात पैंसेजर गाड़ी से बिंदकी रोड से खजाना जाएगा, फ़तेहपुर !"

"पूरा पता लगा लिया है ?" विजय सिंह ने पूछा।

"हाँ, करीब दस हज़ार रुपया होगा।"

विजय सिंह का चेहरा प्रसन्नता से चमक उठा, "भगवान हमारी मदद कर रहा है। कल रात को ही काम करने का अवसर मिल गया।"

थोड़ी देर तक सब मौन बैठे रहे, सब सोच रहे थे। उस मौन को मनमोहन ने तोड़ा, "हूँ, कल रात डाका डालना है !" वह हँस पड़ा, "कल—बिंदकी रोड से गाड़ी चलती है बारह बजे, और फतेहपुर पहुँचती है एक बजे। बीच में दो स्टेशन हैं। लेकिन हमें सब से छोटा स्टेशन चाहिये, वह कुरुस्ती कलाँ; वहाँ सिर्फ़ एक स्टेशनमास्टर है, वही टिकट बाबू है। और मान लो दो चपरासी; तो कुल मिल कर हुए तीन आदमी। इन तीन आदमियों के लिए हमारा एक आदमी काफ़ी है। एक कार पर। एक ड्राइवर के लिए और एक गार्ड के लिए। इन चार के अलावा चार आदमी और चाहियें खजाने के साथ पुलिस वालों के लिए और खजाना ट्रेन से अपनी कार तक पहुँचाने के लिए। इस तरह कुल आठ आदमियों की ज़रूरत है।

विजय सिंह ने कहा, "एक मैं हूँ !"

और मनमोहन ने उसी समय कहा, "दूसरा मैं हूँ।" यह कह कर उसने प्रभानाथ को एक अजीब तरह देखा। और प्रभानाथ भी अनायास ही कह पड़ा "तीसरा मैं हूँ।"

उस समय वीणा उठ खड़ी हुई, "चौथी मैं हूँ।"

मनमोहन ने कहा, "मैं अस्वीकार करता हूँ। इस काम में स्त्री को कोई आवश्यकता नहीं!"

सब लोगों ने मनमोहन को बात का समर्थन किया।

इसके बाद लाटरी डालकर टिकट निकाले गए—पाँच आदमियों का चुनाव इन टिकटों से हुआ। कार्यवाही समाप्त होने के पहले विजय सिंह ने कहा, "कार का प्रबन्ध मैं लूँगा।"

३

दो बजे रात के समय उस स्टेशन पर कोई मुसाफ़िर न था। जिस समय इन डाका डालने वालों की कार स्टेशन के बाहर रुकी, बिंदकी रोड से आने वाली ट्रेन की रोशनी दूर से दिख रही थी। एक आदमी ने स्टेशनमास्टर और वहाँ के खलासियों को वश में किया। तब तक गाड़ी स्टेशन पर आकर रुक गई। गाड़ी के रुकते ही विजय सिंह इंजन की तरफ़ झपटा और मनमोहन गार्ड की तरफ़। प्रभानाथ की अध्यक्षता में तीन आदमी उस डब्बे में घुस गए जिसमें खजाना रक्खा था।

प्रभानाथ और उसके एक साथी के हाथ में पिस्तौलें थीं। और इन दोनों को देखते ही पुलिस वालों के हाथ पैर ढीले पड़ गए। प्रभानाथ और उसका साथी, दोनों पिस्तौलें ताने खड़े रहे और दो आदमियों ने खजाने के सन्दूक कार पर लादने शुरू किये। उसके बाद सब लोग कार की तरफ़ चले, प्रभानाथ और मनमोहन को छोड़ कर। जब सब लोग कार पर बैठ गए तब विजय सिंह ने सिटी दी। विजय सिंह के सीटी देते ही मनमोहन और प्रभानाथ पिस्तौलें दागते हुए तेज़ी के साथ कार की तरफ़ बढ़े।

खजाने के साथ बारह पुलिस वाले थे, सशस्त्र। उनकी आँखों के आगे खजाना लुट रहा था, और वे विवश बैठे थे। लेकिन उसी गाड़ी के सेकंड क्लास में एक और आदमी था जो इस काण्ड को बड़े कौतूहल के साथ देख रहा था। प्रभानाथ और मनमोहन के भागने के साथ ही उसने अपने रिवाल्वर से उन दोनों की तरफ़ फ़ायर किया। गोली प्रभानाथ के बाँए हाथ वाले पुट्ठे में धँस गई। उसी समय मनमोहन ने घूम कर उस आदमी की तरफ गोली छोड़ी। पर वह आदमी उस समय तक गाड़ी से नीचे उतर आया था।

मनमोहन और प्रभानाथ स्टेशन की इमारत के पास आ गए थे—वे अपनी कार से क़रीब पचीस क़दम के फ़ासिले पर थे। उसी समय उस आदमी ने दूसरी गोली चलाई। इस बार गोली मनमोहन की जाँघ में घुस गई। मनमोहन ने फिर उलट कर पिस्तौल चलाई, एक आह के साथ उस आदमी के पास खड़े हुए एक दूसरे आदमी के गिरने का धमाका हुआ।

इस समय तक बारहो पुलिसमैन अपनी राईफ़लें लिए हुए गाड़ी से उतर पड़े, और बारह राईफ़लें एक साथ छूटीं।

मनमोहन और प्रभानाथ इस समय स्टेशन की इमारत के बाहर हो रहे थे। मनमोहन ने खतरे को देख लिया, उसने प्रभानाथ से कहा, "तुम जाओ, और सब लोग कार पर चल दो! मैं इस जंगल में कहीं छिप जाऊँगा।

प्रभानाथ ने उसी समय ज़ोर से कहा, "सरदार—तुम चलो। हम लोग कल तक पहुँच जाएँगे।" और उसके कहने के साथ ही कार चल दी। इधर मनमोहन को सहारा देते हुए प्रभानाथ रात के गहरे अंधकार में विलीन हो गया।

जिस आदमी ने ये दो गोलियाँ चलाई थीं उसका नाम विश्वम्भर-दयाल था, और वह पुलिस डिपार्टमेण्ट में था। विश्वम्भरदयाल खुफ़िया विभाग का एक बड़ा कर्मचारी था और वह भारतसरकार से सम्बद्ध था। वह असिस्टेण्ट सुपरिण्टेण्डेण्ट के पद पर था और वह उस गाड़ी से इलाहाबाद

जा रहा था जहाँ दो दिन रुक कर उसे कलकत्ता के लिए चल देना था। कलकत्ता में आतंकवादियों के दल की जड़ खोद निकालने के लिए उसकी नियुक्ति हुई थी।

विश्वम्भरदयाल ने देख लिया था कि दो आदमी ज़ख्मी हो गए हैं और कार बिना उन्हें लिए हुए ही चल पड़ी है। उसने पुलिस वालों को दो टुकड़ी में बाँट कर प्रभानाथ और मनमोहन का पीछा करने का हुक्म दिया। एक टुकड़ी के साथ वह था, दूसरी के साथ ख़जाने के साथ वाला हवलदार था।

पेड़ों के झुरमुट में छिपते हुए मनमोहन और प्रभानाथ दोनों चल रहे थे। मनमोहन की जाँघ से खून बह रहा था और धीरे-धीरे उसकी जाँघ में पीड़ा बढ़ रही थी। थोड़ी दूर तक चलने के बाद पुलिस वालों के पैरों की आवाज़ धीमी पड़ी। प्रभानाथ ने अपने रूमाल से मनमोहन की जाँघ में पट्टी बाँध दी। उसी समय उन्हें पुलिस वालों की टार्च का प्रकाश दिखलाई दिया और उनके पैरों की आवाज़ें बढ़ने लगीं। ऐसा मालूम होता था कि टार्च के प्रकाश में पुलिस वालों को इन दोनों की झलक मिल गई।

प्रभानाथ मनमोहन को हाथ का सहारा देते हुए दूसरी ओर घूम पड़ा; और उन्हें दूसरी ओर भी दूर पर टार्च का प्रकाश दिखलाई दिया। पुलिस वालों की दूसरी टुकड़ी उस ओर थी।

इस समय तक दोनों घनी झाड़ियों के बीच आ गए थे। उनके सामने एक नाला था जो सूखा था, और दोनों उस नाले में उतर गए। अब वे नाले-नाले चलने लगे; किधर! वे स्वयम् न जानते थे। करीब दो फ़र्लाङ्ग चलने के बाद उन्हें नाले के ऊपर पुल दिखलाई दिया। दोनों उस पुल के नीचे घुस गए।

दूर पर पुलिस वालों के पैरों की आवाज़ें साफ़ सुनाई पड़ रही थीं; वे जानते थे कि दो जख्मी आदमी कहीं पास में ही हैं और वे दूर नहीं जा सके होंगे। एक ओर से आवाज़ आई, "कहीं उस पुल के नीचे न छिपे हों!"

"लेकिन पुल के अन्दर कौन जाएगा!" एक ने कहा।

प्रभानाथ ने सुना। उसने मनमोहन से कहा, "वे लोग पुल के अन्दर आने की कोशिश करेंगे चलो, यहाँ से निकल चला जाय!"

मनमोहन उठ खड़ा हुआ। दो क़दम चलने के बाद वह रुक गया, "नहीं प्रभानाथ! मैं नहीं चल सकता! जाँघ का दर्द अब बहुत बढ़ गया है। तुम यहाँ से निकल जाओ, कल मौक़ा पा कर मुझे यहाँ से उठा ले जाना!" और उसने धीरे से कहा, "अगर मैं ज़िन्दा रहा!"

उस समय प्रभानाथ ने जबर्दस्ती मनमोहन को उठा कर कंधे पर लाद लिया, और वह पुल के बाहर दूसरी ओर निकल पड़ा। पुलिस वाले सतर्कता के साथ पुल की ओर बढ़ रहे थे। प्रभानाथ सारा बल लगाकर तेज़ी के साथ आगे बढ़ रहा था। दो फ़र्लांग तक चलने के बाद वह एक घने पेड़ की छाया में बैठ गया। मनमोहन ने कहा, "प्रभानाथ! हम लोग कहाँ हैं?"

प्रभानाथ ने एक ठंढी साँस ली, "मैं कह नहीं सकता!"

उसी समय उन्हें दूर पर पैरों की आवाज़ें सुनाई दीं; इस समय तक पुलिस वालों के साथ कुछ गाँव वाले भी एकत्रित हो गए थे, और उस प्रदेश की छान-बीन सरगर्मी के साथ हो रही थी।

प्रभानाथ ने कहा, "वे लोग इधर ही आ रहे हैं! इन बेईमानों से यह भी नहीं हुआ कि ज़रा आराम कर लेने देते!" और वह हँस पड़ा। उठते हुए उसने मनमोहन को हाथ का सहारा दिया, "चलो मनमोहन!"

"नहीं प्रभानाथ!" मनमोहन ने कहा, "तुम जाओ, और उन्हें आने दो। अपनी पिस्तौल भी तुम मुझे दे दो—बस! मैं इन लोगों को समझ लूँगा!"

"यह नहीं हो सकता। मैं इस तरह तुम्हें न मरने दूँगा!" प्रभानाथ ने दृढ़ता के साथ कहा।

"मुझे बचाने में हम दोनों को मरना होगा!" मनमोहन ने एक ठंढी साँस ली।

लेकिन प्रभानाथ ने मानो मनमोहन की बात सुनी ही नहीं। उसने मन-मोहन को उठा लिया, और वह तेज़ी के साथ चल पड़ा। चारों ओर भयानक अंधकार था, और प्रभानाथ खेतों को पार करता हुआ चला जा रहा था।

"कहाँ चल रहे हैं?" मनमोहन ने पूछा।

"कह नहीं सकता! केवल इतना जानता हूँ कि चल रहे हैं!"

चारों ओर गहरा सन्नाटा छाया था। कभी-कभी दूर से पैरों की आवाज़ें मिल जाती थीं, जिनसे यह मालूम होता था कि पीछा करने वाले थके नहीं, न उन्होंने पीछा करने का इरादा ही छोड़ा है।

मनमोहन सोच रहा था, एक ठंढी साँस भर कर उसने कहा, "ठीक कहते हो, प्रभानाथ! हम सब केवल इतना ही जानते हैं कि हम चल रहे हैं, और यही हमारी मुसीबत है। यही मुसीबत रही है, यही मुसीबत रहेगी। अगर हम इतना जान सकते कि हम कहाँ चल रहे हैं तो अधिक अच्छा होता। लेकिन......लेकिन शायद यह सम्भव नहीं है।"

प्रभानाथ मौन था, पता नहीं वह मनमोहन की बात सुन भी रहा था। पर यह साफ़ मालूम हो रहा था कि प्रभानाथ थक गया था; वह हाँफ रहा था। मनमोहन ने काफ़ी देर तक प्रभानाथ के बोलने की प्रतीक्षा करके कहा, "नहीं मुसीबत तब हल होगी जब हम यह जान लें कि हम कहाँ चल रहे हैं। इस बिना लक्ष्य के चलते रहने से मैं ऊब गया हूँ, प्रभानाथ!"

लेकिन प्रभानाथ ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। प्रभानाथ के लिए यह समय बात करने का नहीं था—उसके सामने सवाल यह था कि किस तरह सही सलामत बच-निकला जाय।

मनमोहन ने कुछ रुक कर कहा, "प्रभानाथ! प्यास लगी है!"

"देखो—आगे चल कर कोई गाँव मिल जाय!"

"नहीं, प्रभा! बुरी तरह प्यासा हूँ! मेरा गला सूख रहा है। तुम थक

गए हो—मैं यह साफ़ देख रहा हूँ ! मुझे तुम यहीं लिटा दो, देखो पास में कोई नहर या तालाब हो।"

प्रभानाथ वास्तव में थक गया था। उसने मनमोहन को ज़मीन पर लिटा दिया और फिर वह पानी की तलाश में चल दिया।

प्रभानाथ करीब बीस-पचीस क़दम गया होगा कि उसे पिस्तौल की आवाज़ सुनाई दी। यह पिस्तौल की आवाज़ वहाँ से आई थी जहाँ वह मनमोहन को लिटा आया था। प्रभानाथ दौड़ा, उसने देखा कि मनमोहन चित पड़ा है, उसका एक हाथ उसके मत्थे पर है और उसके हाथ में पिस्तौल है ! प्रभानाथ ने मनमोहन को देखते ही कहा, "यह क्या कर डाला, मनमोहन !"

मनमोहन का चेहरा एक भयानक पीड़ा से ऐंठ रहा था। उसने अपनी पीड़ा को दबाने के लिए मुसकराने का प्रयत्न करते हुए कहा, "प्रभा ! दो आदमियों के मरने की अपेक्षा एक का मरना ज़्यादा अच्छा है ! अब तुम जाओ—अपने घर ! और मैं जा रहा हूँ···हम दोनों के चलने का लक्ष्य तो मिल गया। अभी तक हम लक्ष्यहीन चलते रहे थे।

प्रभानाथ खड़ा था, निस्तब्ध और विमूढ़। मनमोहन ने फिर कहा, "प्रभा, ज़रा मेरे पास बैठ जाओ—हाँ, ठीक ! प्रभा, अन्तिम समय एक बात मैं तुमसे कहूँगा—तुम इस क्रान्तिकारी दल को छोड़ दो। यह बड़ा ग़लत रास्ता है, यह रास्ता उन लोगों के लिए है जो निराश हो चुके हैं !" मनमोहन छट-पटा रहा था। उसने फिर कहा, "मैं जा रहा हूँ, प्रभा ! मेरी तुमपर ममता हो गई है—क्यों ? मैं नहीं कह सकता। लेकिन एक बात की ख़ुशी है—आज मैंने तुममें वह मानवता देखी जिसपर से मैं विश्वास खो चुका था। मैंने देखा कि मुझे बचाने के लिए तुम अपनी जान ख़तरे में डाल रहे हो ! उफ़, प्रभा ! तुम नहीं जानते कि मैंने कितना बर्दाश्त किया है ! कितनी ज़ोर की प्यास लगी है—अन्तिम समय यदि पानी की एक बूँद मिल सकती !"

"मैं पानी लिए आता हूँ !" प्रभानाथ ने कहा।

"नहीं ! यह भी बर्दाश्त कर सकता हूँ। कुछ क्षण—बस इतनी ही देर

लेकिन प्रभानाथ ने मानो मनमोहन की बात सुनी ही नहीं। उसने मन-मोहन को उठा लिया, और वह तेज़ी के साथ चल पड़ा। चारों ओर भयानक अंधकार था, और प्रभानाथ खेतों को पार करता हुआ चला जा रहा था।

"कहाँ चल रहे हैं ?" मनमोहन ने पूछा।

"कह नहीं सकता ! केवल इतना जानता हूँ कि चल रहे हैं !"

चारों ओर गहरा सन्नाटा छाया था। कभी-कभी दूर से पैरों की आवाज़ें मिल जाती थीं, जिनसे यह मालूम होता था कि पीछा करने वाले थके नहीं, न उन्होंने पीछा करने का इरादा ही छोड़ा है।

मनमोहन सोच रहा था, एक ठंढी साँस भर कर उसने कहा, "ठीक कहते हो, प्रभानाथ ! हम सब केवल इतना ही जानते हैं कि हम चल रहे हैं, और यही हमारी मुसीबत है। यही मुसीबत रही है, यही मुसीबत रहेगी। अगर हम इतना जान सकते कि हम कहाँ चल रहे हैं तो अधिक अच्छा होता। लेकिन......लेकिन शायद यह सम्भव नहीं है।"

प्रभानाथ मौन था, पता नहीं वह मनमोहन की बात सुन भी रहा था। पर यह साफ़ मालूम हो रहा था कि प्रभानाथ थक गया था; वह हाँफ रहा था। मनमोहन ने काफ़ी देर तक प्रभानाथ के बोलने की प्रतीक्षा करके कहा, "नहीं मुसीबत तब हल होगी जब हम यह जान लें कि हम कहाँ चल रहे हैं। इस बिना लक्ष्य के चलते रहने से मैं ऊब गया हूँ, प्रभानाथ !"

लेकिन प्रभानाथ ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। प्रभानाथ के लिए यह समय बात करने का नहीं था—उसके सामने सवाल यह था कि किस तरह सही सलामत बच-निकला जाय।

मनमोहन ने कुछ रुक कर कहा, "प्रभानाथ ! प्यास लगी है !"

"देखो—आगे चल कर कोई गाँव मिल जाय !"

"नहीं, प्रभा ! बुरी तरह प्यासा हूँ ! मेरा गला सूख रहा है। तुम थक

था—उस समय वह बुरी तरह थका हुआ था। लेकिन उसे नींद न आ रही थी।

करीब दो घंटे के बाद उसे श्यामनाथ की आवाज़ सुनाई दी—ड्राइंग-रूम में से। श्यामनाथ कह रहे थे, "जहाँ तक मैं कह सकता हूँ, फ़तहपुर में कोई भी क्रान्तिकारी नहीं है। वह लोग कानपुर के रहे होंगे—कानपुर में इन क्रान्तिकारियों का एक बहुत बड़ा अड्डा है भी। इस तरह की वारदात मेरे इलाक़े में पहली है।"

और इसके उत्तर में एक दूसरी आवाज़ ने कहा, "मेरा भी ऐसा ही खयाल है। लेकिन सवाल यह है कि वह दूसरा आदमी ग़ायब कहाँ हो गया? जहाँ तक मैं समझता हूँ, वह आदमी भी ज़ख्मी हो गया है; और वह उस स्टेशन से बहुत दूर नहीं गया होगा क्योंकि किसी ट्रेन का समय भी नहीं है।"

दूसरे आदमी की आवाज़ सुनकर प्रभानाथ चौंक उठा। यह दूसरा आदमी कौन है? क्या यह वही आदमी तो नहीं है जिसने रात में गोली चलाकर उसे और मनमोहन को ज़ख्मी किया था?

श्यामनाथ ने फिर कहा, "लेकिन यह आदमी कौन है जो मरा हुआ पाया गया है। उसके पास कोई ऐसी चीज़ नहीं मिली जिससे उसका पता लगाया जा सके। सिर्फ़ उसके पैरों में बँधा हुआ एक रूमाल और उस रूमाल पर एक अक्षर है—पी। इस पी के क्या माने हैं? परमेश्वरी, पूरन, प्रद्योत—न जाने कितने नाम हैं।"

"प्रभाकर!" दूसरी आवाज़ ने कहा।

"अरे हाँ, प्रभाकर! क्या सचमुच वह प्रभाकर ही है? यक़ीन तो नहीं होता!"

दूसरी आवाज़ ने कहा, "मैं जानता हूँ कि वह प्रभाकर है। प्रभाकर का फ़ोटो मेरे पास है। मैं परेशान था, इस आदमी से। न जाने कितनी कोशिशें की गईं, इस आदमी को पकड़ने की; लेकिन ग़ज़ब का फ़ितरती आदमी

तो बर्दाश्त करना है, जब एक लम्बी ज़िन्दगी मैंने बर्दाश्त करने में बिता दी ! अच्छा, प्रभा ! तुम मुझे वचन दो कि तुम इस क्रान्ति के मार्ग से हट जाओगे—मुझे वचन दो !"

"मनमोहन !…"

"मैं मर रहा हूँ, प्रभा, और मैं कहता हूँ—अपने सारे अनुभवों को लेकर कहता हूँ कि यह ग़लत मार्ग है। मुझे वचन दो !…" मनमोहन ने प्रभा को एक बड़ी करुण दृष्टि से देखा।

प्रभानाथ ने कहा, "मैं वचन देता हूँ !"

"ठीक, प्रभा ! अब मैं शान्तिपूर्वक मर सकता हूँ—म—र—र—हा—हूँ !" और प्रभानाथ ने देखा कि मनमोहन का सर लटक गया, उसके हाथ एकाएक ऐंठ गए। लेकिन उनके होठों पर एक हलकी सी मुसकान है।

४

मनमोहन के सिरहाने बैठ कर प्रभानाथ ने भगवान से मनमोहन की आत्मा को शान्ति देने की प्रार्थना की; इसके बाद वह वहाँ से चल पड़ा उस समय उसे दिशा-ज्ञान न था, उसके सर में चक्कर आ रहा था। चलते-चलते वह पक्की सड़क पर पहुँच गया और उसने फ़तेहपुर की राह ली। जिस समय वह श्यामनाथ के बँगले में पहुँचा, सुबह हो रही थी। पहरेदार ने प्रभानाथ को सलाम किया ! चुपचाप प्रभानाथ अपने कमरे में चला गया। कमरे में पहुँचकर उसने कपड़े बदले, रात वाले कपड़ों को उसने जला दिया। पर उस समय उसके हाथ में असह्य पीड़ा हो रही थी।

जिस समय प्रभानाथ मकान में पहुँचा था, श्यामनाथ वहाँ न थे। रात में ही उन्हें ट्रेन की डकैती की खबर मिल गई थी और वे तहक़ीक़ात को निकल पड़े थे। प्रभानाथ अपने कमरे में पड़ा छटपटा रहा था—उसका हाथ सूज आया था। गोली हाथ के अन्दर रह गई थी। रात भर वह जागता रहा

था—उस समय वह बुरी तरह थका हुआ था। लेकिन उसे नींद न आ रही थी।

करीब दो घंटे के बाद उसे श्यामनाथ की आवाज़ सुनाई दी—ड्राइंग-रूम में से। श्यामनाथ कह रहे थे, "जहाँ तक मैं कह सकता हूँ, फ़तहपुर में कोई भी क्रान्तिकारी नहीं है। वह लोग कानपुर के रहे होंगे—कानपुर में इन क्रान्तिकारियों का एक बहुत बड़ा अड्डा है भी। इस तरह की वारदात मेरे इलाक़े में पहली है।"

और इसके उत्तर में एक दूसरी आवाज़ ने कहा, "मेरा भी ऐसा ही खयाल है। लेकिन सवाल यह है कि वह दूसरा आदमी ग़ायब कहाँ हो गया? जहाँ तक मैं समझता हूँ, वह आदमी भी ज़ख्मी हो गया है; और वह उस स्टेशन से बहुत दूर नहीं गया होगा क्योंकि किसी ट्रेन का समय भी नहीं है।"

दूसरे आदमी की आवाज़ सुनकर प्रभानाथ चौंक उठा। यह दूसरा आदमी कौन है? क्या यह वही आदमी तो नहीं है जिसने रात में गोली चलाकर उसे और मनमोहन को ज़ख्मी किया था?

श्यामनाथ ने फिर कहा, "लेकिन यह आदमी कौन है जो मरा हुआ पाया गया है। उसके पास कोई ऐसी चीज़ नहीं मिली जिससे उसका पता लगाया जा सके। सिर्फ़ उसके पैरों में बँधा हुआ एक रूमाल और उस रूमाल पर एक अक्षर है—पी। इस पी के क्या माने हैं? परमेश्वरी, पूरन, प्रद्योत—न जाने कितने नाम हैं।"

"प्रभाकर!" दूसरी आवाज़ ने कहा।

"अरे हाँ, प्रभाकर! क्या सचमुच वह प्रभाकर ही है? यक़ीन तो नहीं होता!"

दूसरी आवाज़ ने कहा, "मैं जानता हूँ कि वह प्रभाकर है। प्रभाकर का फ़ोटो मेरे पास है। मैं परेशान था, इस आदमी से। न जाने कितनी कोशिशें की गईं, इस आदमी को पकड़ने की; लेकिन ग़ज़ब का फ़ितरती आदमी

था। सवाल मेरे सामने यह नहीं है कि वह लाश प्रभाकर की है या किसी दूसरे आदमी की; सवाल मेरे सामने यह है कि क्या वह रूमाल उसी आदमी का है? जहाँ तक मैं जानता हूँ, प्रभाकर के रूमाल पर 'पी' अक्षर न होना चाहिए। अब यह सवाल उठता है कि क्या वह रूमाल उसके साथी का है?"

प्रभानाथ यह सुनकर चौंक उठा। उसे याद हो आया कि उसने अपना रूमाल मनमोहन के ज़ख्म पर बाँध दिया था। इस बात से वह बहुत अधिक चिन्तित हो उठा। यह दूसरा आदमी कौन है, क्या है, कहाँ का है? रात में वह गोली चलाने वाले की शक्ल न देख सका था। वह उठा, दरवाज़े की साँस से उसने देखा—एक दुबला-सा क्लीन-शेव आदमी बैठा हुआ सिगरेट पी रहा था। उस आदमी की उम्र कोई तीस साल की होगी, मझोला क़द; साँवला रंग और उसके मुख पर एक प्रकार की कठोरता।

नौकर ने चा की ट्रे उन दोनों आदमियों के सामने रख दी। प्रभानाथ फिर आकर पलंग पर लेट गया।

चा पी चुकने के बाद श्यामनाथ ने कहा, "मिस्टर विश्वम्भर दयाल! आप थोड़ा-सा आराम कर लें—रात भर की दौड़-धूप के बाद कुछ आराम की ज़रूरत होगी ही।" यह कहकर उन्होंने प्रभानाथ के कमरे की तरफ़ इशारा किया, "उस कमरे में चले जाइये, मेरे लड़के का है। वह आजकल उन्नाव गया है। बिस्तर बिछा हुआ है—आराम से सोइये!"

मिस्टर विश्वम्भर दयाल कमरे में प्रवेश करते ही चौंक उठे—उनके सामने प्रभानाथ खड़ा था।

५

दोनों ने एक दूसरे को ध्यान से देखा, थोड़ी देर तक दोनों मौन खड़े रहे। इसके बाद प्रभानाथ ने मुसकराते हुए कहा, "काका जी को यह पता नहीं कि मैं रात में आ गया था, इसी से उन्होंने आपको मेरे कमरे में भेजने की गलती की। चलिये, मैं आपको दूसरे कमरे में पहुँचा दूँ!

एकाएक विश्वम्भर दयाल की गम्भीरता जाती रही, वे खिलखिला कर हँस दिये, "आप रात को आए और आपके काकाजी को इसका पता तक नहीं ! वाक़ई, बड़ी मज़ेदार ग़लती रही मिस्टर......"

"प्रभानाथ ! मेरा नाम प्रभानाथ है ! जी हाँ, ग़लती मज़ेदार हुई..." और प्रभानाथ चलने के लिए घूम पड़ा।

विश्वम्भर दयाल प्रभानाथ के साथ दूसरे कमरे में पहुँचे, उन्हें कमरे में छोड़कर प्रभानाथ लौट आया।

विश्वम्भर दयाल से मिलकर प्रभानाथ के मन में एक अजीब तरह की हलचल पैदा हो गई। वह आदमी भयानक था—प्रभानाथ उसके चेहरे को देखते ही समझ गया था। छोटी-छोटी, तेज़ और पैनी निगाह जो आदमी के हृदय तक को चीर देने का प्रयत्न करती हों, मुख पर एक अजीब तरह की कठोरता से भरी दृढ़ता। प्रभानाथ सीधा श्यामनाथ के कमरे में पहुँचा। बड़ी मुश्किल से वह अपने दर्द को बर्दाश्त कर रहा था। प्रभानाथ को देखते ही श्यामनाथ उठ खड़े हुए, "अरे प्रभा ! तुम कब आए ?"

"सुबह !" और प्रभानाथ कराह उठा।

"अरे !—तुम्हें क्या हुआ ?" श्यामनाथ ने प्रभानाथ की तरफ़ बढ़ते हुए कहा, "सुबह तो कोई गाड़ी नहीं आती !..." और श्यामनाथ कहते-कहते रुक गए। उन्होंने देखा कि प्रभानाथ का चेहरा पीला पड़ गया है, उसका हाथ सूज गया है और वह दर्द से छटपटा रहा है।

प्रभानाथ ने कहा, "इसमें गोली धँस गई है, काकाजी !" और वह दर्द से फिर कराह उठा।

एकाएक श्यामनाथ सर से पैर तक सिहर उठे, "तो क्या—क्या वह रुमाल तुम्हारा था ?"

"हाँ !" प्रभानाथ ने एक ठंढी साँस ली।

"तुम्हें यहाँ आते किसी ने देखा तो नहीं ?"

"सिर्फ चौकीदार ने देखा है—और ''वह आपके मेहमान—वे मुझे देख गए हैं! काका बड़ा दर्द है!"

श्यामनाथ हत-बुद्धि से खड़े थे, उनको इस सब पर यक़ीन हो रहा था। लेकिन उनके सामने खड़ा हुआ उनका लड़का दर्द से कराह रहा था, और उन्हें कुछ करना था। कुछ देर तक मौन रह कर उन्होंने प्रभानाथ की तरफ़ देखा। प्रभानाथ के चेहरे पर असह्य पीड़ा के भाव अंकित थे, श्यामनाथ को ऐसा लगा मानो प्रभानाथ गिर पड़ेगा। बढ़कर उन्होंने प्रभानाथ को सम्हाला, उसे कुर्सी पर बिठलाते हुए उन्होंने कहा, "चलो, तुम्हें डाक्टर के यहाँ ले चलता हूँ!..."

और यह कहते-कहते वे रुक गए। अपनी बात के खोखलेपन से वे स्वयम् ही चौंक उठे—"नहीं तुम्हें फ़तहपुर से बाहर जाकर इलाज कराना होगा। बाहर जाकर। कानपुर?—नहीं, वहाँ खतरा है। हाँ, इलाहाबाद! मैं डाक्टर अवस्थी को चिट्ठी लिखे देता हूँ, उनके यहाँ चले जाओ। सब कुछ उन्हें बतला देना!"

प्रभानाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया, उसकी आँखें बन्द थीं।

श्यामनाथ ने स्वयं सुराही से गिलास में ढाल कर पानी प्रभानाथ को पिलाया, प्रभानाथ ने आँखें खोल दीं। श्यामनाथ ने कहा, "क्या तुम अकेले इलाहाबाद जा सकते हो? मेरा अभी यहाँ से चल देना ठीक न होगा।"

एक क्षीण मुसकराहट के साथ प्रभानाथ ने कहा, "मैं अकेला जाऊँगा!"

"तो तुम तैयार हो जाओ, एक्सप्रेस आती ही होगी।"

६

कमरे से प्रभानाथ के जाने के बाद विश्वम्भर दयाल सोए नहीं, प्रभानाथ को देख कर उन्हें ऐसा लगा मानो उन्होंने कहीं उसे देखा है। विश्वम्भर

दयाल बहुत देर तक सोचते रहे कि कहाँ उन्होंने इस युवक को देखा है, और एकाएक उन्हें रात वाली घटना स्मरण हो गई। ऐसा ही लम्बा और सुडौल वह आदमी था जो मरने वाले के साथ था। और वह आदमी एकाएक ग़ायब हो गया था।

विश्वम्भर दयाल ने सोचना आरम्भ किया, "यह नवयुवक रात में आया, इसके पिता को इसके आने का पता नहीं। तो क्या वह नवयुवक सच बोला ? और फिर उस युवक का चेहरा पीला था, उसकी आँखें लाल थीं—मानो वह बुरी तरह थका हुआ था। तो क्या यही तो वह आदमी न था जो ग़ायब हो गया था ! लेकिन यह नवयुवक—यह सुपरिन्टेन्डेण्ट पुलिस पण्डित श्यामनाथ तिवारी का लड़का—यह क्रान्तिकारी दल में कैसे होगा ?"

विश्वम्भर दयाल उठ बैठे—वे बरामदे में टहलने लगे। सामने फाटक पर पुलिस का कांस्टेबिल बैठा था। उसको बुला कर विश्वम्भर दयाल ने पूछा, "यह तुम्हारे छोटे बाबू सुबह जिस वक़्त आए उस वक़्त क्या ड्यूटी पर तुम्हीं थे ?"

"जी हाँ," कांस्टेबिल शिवसिंह ने उत्तर दिया।

विश्वम्भर दयाल का चेहरा प्रसन्नता से चमक उठा। तो वह युवक झूठ बोला—वह रात में नहीं, बल्कि सुबह आया था।

"कितने बजे आए थे ?" विश्वम्भर दयाल ने फिर पूछा।

प्रभानाथ की बाबत इस जिरह से शिवसिंह के कान खड़े हुए। उसको ऐसा लगा कि दाल में कुछ काला है; वह सतर्क हो गया, "ठीक वक़्त तो मुझे याद नहीं, शायद छै या सात बजे रहे होंगे।"

"उनके साथ कुछ असबाब वग़ैरह था ?" विश्वम्भर दयाल ने फिर सवाल किया।

"यह तो मैंने ग़ौर नहीं किया !" शिवसिंह विश्वम्भर दयाल की बात को टाल गया।

विश्वम्भर दयाल समझ गए कि अब उन्हें शिवसिंह से ठीक उत्तर की आशा नहीं करनी चाहिये! लौट कर वे फिर कमरे में लेट गए। उनके हृदय में एक तरह की प्रसन्नता भर गई थी! मामले का पता इतनी आसानी से लग सकेगा इसकी उन्होंने कल्पना भी न की थी। जिस मुलज़िम की तलाश में हैं वह उसी घर में है—लेकिन सबूत? और सबूत पाने के पहले सब से बड़ी बात यह है कि वह मुलज़िम सुपरिन्टेण्डेण्ट पुलिस का लड़का है।

प्रभानाथ श्यामनाथ का लड़का है—और श्यामनाथ के खिलाफ़ सबूत पाना कठिन है। लेकिन असम्भव नहीं है—विश्वम्भरदयाल यह जानते थे। लेकिन यही कब निश्चित था कि प्रभानाथ ज़ख्मी है, और प्रभानाथ वास्तव में क्रान्तिकारी दल में शामिल था। मानो प्रभानाथ रात में ही आया हो और सुबह के वक्त वह टहलने चला गया हो। जब वह टहल कर वापस आ रहा हो उस समय उसे शिवसिंह ने देखा हो!

विश्वम्भर दयाल एक अजीब उलझन में थे; लेकिन प्रत्येक क्षण उनके मन में यह धारणा जमती जा रही थी कि प्रभानाथ ही मुलज़िम है और प्रभानाथ निश्चय-रूप से ज़ख्मी है। इस सब का पता पहरे वाले सिपाही से लग सकता है, पहरे वाला सिपाही ही यह बतला सकता है कि प्रभानाथ सुबह जब आया तब उसके कपड़े अस्त-व्यस्त थे।

विश्वम्भर दयाल उठ खड़े हुए, उन्हें कुछ करना ही होगा। 'असम्भव' नाम की चीज़ पर उन्होंने कभी विश्वास नहीं किया था। वे अनुभव कर रहे थे कि अनायास ही उनके हाथ में एक ऐसा सूत्र आ गया जिसका मिलना बहुत अधिक कठिन होता। और एक बार सूत्र हाथ में आ जाने के बाद उन्हें पूरी कार्रवाई करनी ही थी।

विश्वम्भर दयाल रात भर सोए न थे, और कुछ देर पहले तक उन्हें ज़ोर की नींद आ रही थी; लेकिन नींद अब उनकी आँखों से गायब हो चुकी थी। वे बरामदे में आए—वहाँ श्यामनाथ बैठे हुए थे और प्रभानाथ की

प्रतीक्षा कर रहे थे। विश्वम्भर दयाल को देखते ही श्यामनाथ ने कहा, "क्यों ? क्या नींद नहीं आ रही ?"

"नहीं !" विश्वम्भर दयाल ने उत्तर दिया। वह श्यामनाथ के सामने बैठ गये, कुछ रुककर उन्होंने कहा, "जो काम हाथ में लिया है, बिना उसे पूरा किये अब मुझे नींद-आराम सब हराम। आप आफ़िस चल रहे हैं न !"

"हाँ !" श्यामनाथ ने उत्तर दिया, "लेकिन अभी एक मुआइने में जाना है—वहाँ करीब आध घण्टे का काम है; उसके बाद में आऊँगा। आप चलें !" और यह कह कर ड्राइवर से कार मँगवाई।

विश्वम्भर दयाल श्यामनाथ को मौक़ा न देना चाहते थे कि वह प्रभानाथ से मिल कर उसे बचाने की कोई कार्रवाई कर सके। उनका ऐसा ख़याल था कि प्रभानाथ अभी श्यामनाथ से नहीं मिला और श्यामनाथ को प्रभानाथ के सम्बन्ध में अभी तक कुछ नहीं मालूम। लेकिन जब विश्वम्भर दयाल को कार पर बिठला कर श्यामनाथ ने ड्राइवर से कहा कि वह कार वापस लावे, और वे स्वयम् कार पर नहीं बैठे तब विश्वम्भर दयाल को चिन्ता हुई। कहा, "चलिये, वहीं से चले जाइयेगा।"

विश्वम्भर दयाल के इस रुख से श्यामनाथ को बुरा लगा, और शायद दूसरे मौक़े पर वह अपनी बात पर अड़ भी जाते; पर इस समय मामला ही दूसरा था; उन्होंने कार पर बैठते हुए कहा, "चलिये, अच्छी बात है !"

श्यामनाथ के साथ चलने से विश्वम्भर दयाल एक प्रकार से निश्चिन्त हो गए। पुलिस आफ़िस में पहुँच कर श्यामनाथ ने विश्वम्भर दयाल को सब सुविधाएँ देने का आदेश दिया और फिर वे उठ खड़े हुए। उन्होंने कहा, "एक घण्टे में काम खत्म हो जाएगा—आप मेरा इंतज़ार कीजियेगा।"

श्यामनाथ के चले जाने के बाद विश्वम्भर दयाल ने सब इंसपेक्टर माता प्रसाद को बुलाया। सब इंसपेक्टर माता प्रसाद मोटे से अधेड़ आदमी थे, सुलझे हुए दिमाग़ के। विश्वम्भर दयाल ने कहा, "माता प्रसाद साहेब, मेरा ऐसा ख़याल है कि आप कायस्थ हैं !"

"हाँ हुज़ूर !" माता प्रसाद ने अदब के साथ उत्तर दिया।

"और मैं भी कायस्थ हूँ !" विश्वम्भर दयाल ने कहा, "और इसपर आप मेरे बुज़ुर्ग हैं ! इसलिए मैं आप को भाई साहेब कहूँगा !"

"मेहरबानी है हुज़ूर की—वरना ओहदे में, हैसियत में तो खाकसार हुज़ूर का गुलाम है !"

"तो भाई साहेब ! बात यह है कि कप्तान साहेब के यहाँ जो सिपाही आज सुबह पहरे पर था क्या आप उसके नाम व पता का पता लगा सकते हैं ?

"क्या बात है ?" माता प्रसाद ने पूछा।

"पहले आप बतलाइये कि क्या आप उसे जानते हैं और उस पर अपना असर डाल सकते हैं पीछे मैं आप से सब कुछ बतलाऊँगा !"

माता प्रसाद चक्कर में पड़ गए। जिस ढंग से विश्वम्भर दयाल बातें कर रहे थे वह ढंग अच्छा न था, उस बात में कहीं न कहीं कोई कुरूपता अवश्य थी। उसने ज़रा बच कर कहा, "जी...उसका पता लगाना होगा।"

माता प्रसाद के इस उत्तर से विश्वम्भर दयाल समझ गए कि उन्हें माता प्रसाद को कुछ और दम दिलासा देना होगा। उन्होंने माता प्रसाद को ग़ौर से देखा, फिर माता प्रसाद की पीठ पर हाथ रखते हुए उन्होंने कहा, "मैंने आपको अपना भाई साहेब कह दिया है और इसलिए मैं आप से कोई बात छिपाऊँगा नहीं। मामला यह है कि कल रात को डकैती के सिलसिले में मेरा शक कप्तान साहेब के साहेबज़ादे पर है, और मेरा खयाल है कि वह वही क्रान्तिकारी है जो गोली खा कर ला पता हो गया था। आप शायद मेरे शक की वजह भी जानना चाहेंगे। तो वजह यह है कि साहबज़ादे आज सुबह तशरीफ़ लाए—बिना किसी असबाब के। मैंने उनको सुबह कप्तान साहेब के बँगले पर देखा—चेहरा ज़र्द था और आँखें सुर्ख थीं। यह साफ़ मालूम होता था कि वे रात भर सोए नहीं हैं। इसके अलावा सुबह के वक़्त कोई

गाड़ी भी नहीं आती। और सब से बड़ी बात तो यह है कि श्यामनाथ साहेब को भी अपने साहबज़ादे के आने का कोई इल्म न था।"

माता प्रसाद सन्नाटे में आ गए। कुछ देर तक तो उनके मुँह से बोल ही न निकला, फिर सम्हल कर उन्होंने कहा, "यह तो बुरी बात है! कप्तान साहेब के लड़के के खिलाफ़......" और वे कहते-कहते रुक गए।

विश्वम्भर दयाल ने कहा, "बुरी बात तो ज़रूर है, लेकिन जो मेरा फ़र्ज़ है, जो आपका फ़र्ज़ है, जो हरेक पुलिस वाले का फ़र्ज़ है—यानी अमनो-आमान क़ायम रखना और मुजरिम को सज़ा दिलाना—उसे तो अदा करना ही पड़ेगा। मैं जानता हूँ कि पण्डित श्यामनाथ साहेब निहायत ही नेक व शरीफ़ आदमी हैं, मैं जानता हूँ कि उनका मातहत उनके इखलाक़ व उनकी नेकी का गुलाम है; लेकिन किया क्या जाय, भाई साहेब—यह मजबूरी है।"

माता प्रसाद ने कोई उत्तर नहीं दिया, वे सोच रहे थे।

विश्वम्भर दयाल को शायद माता प्रसाद के अन्तर्द्वन्द्व का पता था, उन्होंने फिर कहा, "भाई साहेब—हम पुलिस वाले दया और मुहब्बत के वास्ते नहीं बने हैं—हमें तो अपना फ़र्ज़ अदा करना चाहिये। मैं आपको अपना भाई साहेब मानता हूँ और इसलिए मैं आपसे इतना और कह दूँ कि ऐसे मौक़े बेर-बेर नहीं आते। इस मौक़े का फ़ायदा उठाइये—और इसमें मेरी ही नहीं बल्कि आपकी भी बहुत बड़ी तरक्क़ी होगी।"

हिचकिचाते हुए माताप्रसाद ने कहा, "फिर क्या करना होगा?"

"अकेले उस लड़के का ज़ख्मी होना पूरा सबूत नहीं है—यह भी साबित करना होगा कि वह अलस्सुबह बाहर से आया बिना किसी असबाब के—पैदल। वह थका हुआ था, उसके कपड़े मैले थे व कपड़ों पर ख़ून के दाग़ थे—वग़ैरह—वग़ैरह। और इसके लिए पण्डित श्यामनाथ के बँगले पर जो सिपाही सुबह के वक्त पहरे पर था उसकी शहादत की ज़रूरत पड़ेगी। मुझसे वह सही-सही बात न बतलाएगा आपकी मदद की ज़रूरत होगी!"

"मैं आपकी मदद करूँगा!" माताप्रसाद ने कहा।

७

शिवसिंह का बयान ले लिया गया, और वह बयान इस प्रकार था, "सुबह करीब सात बजे प्रभानाथ बँगले में दाखिल हुए। उनके कपड़े फटे हुए थे और कपड़ों पर ख़ून के दाग़ थे। उस वक्त प्रभानाथ के पैर डगमगा रहे थे; ऐसा मालूम होता था कि पैदल एक लम्बा रास्ता तै किये हुए आ रहे हैं और बेतहाशा थके हुए हैं। उनके साथ कोई सामान न था। इधर कई दिनों से प्रभानाथ फ़तेहपुर के बाहर गए थे। जब वे गए थे तो अपना सामान ले गए थे और फ़तेहपुर से वह अपनी कार पर गए थे। प्रभानाथ के इस हालत में होने से मुझे ताज्जुब तो ज़रूर हुआ लेकिन चूँकि वे कप्तान साहेब के साहेबज़ादे हैं इसलिए मुझे उनसे किसी भी तरह की बातचीत करने की या पूछताछ करने की कोई हिम्मत नहीं हुई। उन्होंने भी मुझसे कोई बात नहीं की न उन्होंने मुझसे किसी की बाबत कुछ दरियाफ़्त किया। सीधे वे अपने कमरे में चले गए।"

बयान देकर शिवसिंह चला गया। थोड़ी देर बाद श्यामनाथ लौटे उस समय विश्वम्भर दयाल और माताप्रसाद बैठे हुए परामर्श कर रहे थे कि आगे क्या कार्रवाई की जाय। श्यामनाथ के आने पर विश्वम्भर दयाल ने कहा, "मिस्टर श्यामनाथ! मुझे बड़ी नींद लग रही है—कुछ देर आराम करना चाहता हूँ!"

"चलिए बँगले पर; आप बेकार ही यहाँ चले आए। सो लेते तो अच्छा होता। कहिये कुछ काम-काज हुआ?"

उठते हुए विश्वम्भरदयाल ने कहा, "हुआ तो, लेकिन नहीं के बराबर है। हाँ, इस तहक़ीक़ात में मैं मिस्टर माता प्रसाद को अपने साथ लेना चाहता हूँ, आप को इसमें कोई एतराज तो नहीं है?"

"भला मुझे इसमें क्या एतराज हो सकता है—आप बड़ी खुशी से मिस्टर माता प्रसाद को ले सकते हैं?" चलते हुए श्यामनाथ ने कहा।

"तो मिस्टर माता प्रसाद आप भी मेरे साथ बँगले पर चलिये, वहीं बातचीत होगी !" और विश्वम्भर दयाल ने माता प्रसाद को अपने साथ ले लिया।

तीनों आदमी श्यामलाल के बँगले पहुँचे। ड्राइंग-रूम में बैठ कर विश्वम्भरदयाल ने श्यामनाथ से कहा, "आपके साहबज़ादे क्या अभी तक सो रहे हैं ? दिखलाई नहीं दिये !"

श्यामनाथ ने अपने को सम्हालते हुए उत्तर दिया, "वह तो यहाँ नहीं है; मैंने तो शायद आपसे सुबह ही कहा था कि वह बाहर गया है।"

"लेकिन सुबह के वक्त आपके साहेबज़ादे अपने कमरे में मौजूद थे, हम लोगों के आने के चन्द घण्टे पहले आये थे और उस वक्त आराम क रहे थे।"

"ताज्जुब की बात है मुझे उसके आने की खबर ही नहीं मिली !" य कहते हुए श्यामनाथ ने प्रभानाथ के कमरे का दरवाज़ा खोल दिया। कमर खाली था। श्यामनाथ ने मानो अपने आप ही कहा, "कहाँ गया ?" औ उन्होंने अपने नौकर स्वामी को आवाज़ दी।

"प्रभा कहाँ है ?" श्यामनाथ ने स्वामी से पूछा।

"छोटे सरकार ! क्या छोटे सरकार उन्नाव से लौट आए ?" स्वामी आश्चर्य से पूछा।

स्वामी को विदा करके श्यामनाथ ने कहा, "बड़े ताज्जुब की बात है उसके आने की खबर न मुझे है न इस घर के नौकरों को है !"

विश्वम्भरदयाल के मत्थे पर बल पड़ गये ! काम इतना आसान न है—वे समझ गए। उन्होंने कहा, "बहुत मुमकिन है मुझसे कुछ ग़लती गई हो !" और वह फिर कुरसी पर बैठ गए।

थोड़ी देर तक सब लोग मौन बैठे रहे। इस मौन को श्यामनाथ तोड़ा, "तो अब आप आराम कर लीजिये !"

"जी—आराम तो क्या करूँगा—अब तो मुझे उस वारदात की सरगर्मी के साथ छानबीन करनी होगी!" इसके बाद विश्वम्भरदयाल माताप्रसाद की ओर घूमे, "यहाँ किसी भी क़िस्म का पता या सुराग़ लगना मुश्किल है—मुझे कानपुर चलना चाहिये क्योंकि मेरे ख़याल से डाकू कानपुर से आये थे! इस वक़्त कानपुर के लिए कोई गाड़ी जाती है?"

"करीब दो घण्टे बाद यहाँ से एक्सप्रेस जाएगी!" माताप्रसाद ने उत्तर दिया।

"तो वह एक्सप्रेस ठीक रहेगी!" इस बार विश्वम्भर दयाल श्यामनाथ की ओर घूमे, "देखिये, मैं अपने साथ मिस्टर माताप्रसाद को ले जाना चाहता हूँ। फ़तेहपुर ज़िले का तो कोई आदमी मेरे साथ चाहिये!"

श्यामनाथ ने अनुभव किया कि विश्वम्भर दयाल हुक्म चला रहे हैं। विश्वम्भरदयाल से श्यामनाथ भली भाँति परिचित न थे, उन्हें सिर्फ़ इतना मालूम था कि विश्वम्भरदयाल भारत-सरकार के गुप्तचर विभाग का एक आदमी है। लेकिन श्यामनाथ यह अच्छी तरह समझते थे कि विश्वम्भरदयाल ओहदे में उनसे छोटा होगा, और इसलिए विश्वम्भरदयाल का इस तरह हुक्म चलाना उन्हें अच्छा नहीं लगा। उन्होंने रुखाई के साथ कहा, "मिस्टर माताप्रसाद को तो मैं आपके साथ नहीं भेज सकूँगा क्योंकि यहाँ के काम-काज में हर्ज होगा। इसके अलावा चूँकि यह वारदात मेरे इलाक़े में हुई है लिहाज़ा मैं समझता हूँ कि इसके बाबत आपको तकलीफ़ करने की कोई ज़रूरत नहीं।"

इस उत्तर के लिए मानो विश्वम्भर दयाल तैयार बैठे थे, "नहीं—इसमें तकलीफ़ की क्या बात—ऐसे ही मामलों के लिए तो हम लोग रक्खे गए हैं।" यह कहकर उन्होंने अपनी जेब से एक तार निकाला जो इलाहाबाद से इंसपेक्टर जेनरल पुलिस के यहाँ से आया था। तार विश्वम्भर दयाल ने श्यामनाथ के हाथ में रख दिया। उसमें लिखा था, "कुरसी कलां डकैती की तहक़ीक़ात का काम मिस्टर विश्वम्भर दयाल को, जो भारत सरकार के

गुप्तचर विभाग के हैं, सौंपा जाता है। वे फ़तेहपुर की पुलिस से हर तरह की मदद ले सकते हैं।"

श्यामनाथ ने आँखें फाड़ कर विश्वम्भर दयाल को देखा—और उस समय उन्हें यह अनुभव हुआ कि उनके सामने जो आदमी बैठा हुआ है वह चतुर है, दृढ़ है और किसी हद तक कठोर भी है। उन्होंने ठंढी साँस लेकर कहा, "ठीक है—माताप्रसाद साहेब को अपने साथ आप ले जा सकते हैं।"

दो घंटे बाद विश्वम्भर दयाल कानपुर की गाड़ी पर सवार हो गए। माताप्रसाद अपना असबाब वग़ैरह लेने अपने घर चले गए थे। जिस समय वे स्टेशन पहुँचे, गाड़ी ने सीटी दे दी थी। वे भी विश्वम्भर दयाल के डब्बे में बैठ गए।

जब गाड़ी फ़तेहपुर के प्लेटफ़ार्म से निकल गई तब माताप्रसाद ने कहा, "आज सेकण्ड क्लास का सिर्फ़ एक टिकट बिका है—इलाहाबाद के वास्ते—और वह टिकट एक्सप्रेस जाने के पहले बिका है। इसके आगे और कुछ पता नहीं चल सका।"

"इलाहाबाद!" विश्वम्भर दयाल ने धीरे से दुहराया, "इलाहाबाद! ठीक है। कानपुर में खतरा है। कानपुर में छानबीन होगी, कानपुर में तहक़ीक़ात होगी। माताप्रसाद साहेब! हमें सुबह की गाड़ी से ही इलाहाबाद के लिए रवाना होना पड़ेगा।" विश्वम्भर दयाल मुसकराए, "बरखुरदार से मुलाक़ात करनी निहायत ज़रूरी है, और वह भी जल्दी से जल्दी!"

"लेकिन इलाहाबाद में कैसे पता लगेगा?" माताप्रसाद ने पूछा।

विश्वम्भर दयाल की कुरूप मुसकराहट अभी तक उनके होठों पर मौजूद थी, "कह नहीं सकता, लेकिन यह जानता हूँ कि पता लगेगा ज़रूर! जानते हैं, माता प्रसाद साहेब—मैं तक़दीर पर यक़ीन करने वाला हूँ और मैं यह जानता हूँ कि इस वक्त मेरी क़िस्मत अच्छी है, मेरा सितारा बुलन्दी पर है। इसका सबूत शायद आप पाना चाहें, तो सुनिये। रात के वक्त मैं इत्तिफ़ाक़ से ही उस गाड़ी में था जिसमें डाका पड़ा था। मैंने गोली चलाई, और यह

इत्तिफ़ाक़ की ही बात है कि मेरी दोनों गोलियाँ कारगर हुईं। यह इत्तिफ़ाक़ की ही बात है कि वह शख़्स जिसका नाम प्रभाकर है और जिसे गिरफ़्तार करने में हिन्दुस्तान की पुलिस के अच्छे से अच्छे आदमी नाकामयाब हुए, मेरी गोली का शिकार हुआ। यह इत्तिफ़ाक़ की ही बात है कि प्रभाकर की गोली मेरे न लगकर मेरी बग़ल में खड़े हुए पुलिस वाले के लगी, जबकि दुनिया जानती है कि प्रभाकर का निशाना अचूक होता था। और सबसे बड़ी इत्तिफ़ाक़ की बात तो यह है कि दूसरा आदमी मुझे बड़ी आसानी से एन सुपरिंटेण्डेण्ट पुलिस के मकान में ही दिख गया। माताप्रसाद साहेब! आप यक़ीन रखिये, मेरा सितारा बुलन्द है और मैं जानता हूँ कि साहेबज़ादे का पता मुझे बड़े मज़े में लग जायगा।"

माता प्रसाद विश्वम्भर दयाल की बात से काफ़ी अधिक प्रभावित हो गए, "वाक़ई बात तो आपने बड़े पते की कही। चलिये, इलाहाबाद में ही क़िस्मत आज़मायी जाय!"

दूसरे दिन सुबह विश्वम्भर दयाल मानाप्रसाद के साथ इलाहाबाद के लिए रवाना हो गए। गाड़ी इलाहाबाद दोपहर में पहुँची! गाड़ी से उतरते ही विश्वम्भर दयाल इंसपेक्टर जेनरल पुलिस के पास पहुँचे। इंसपेक्टर जेनरल ने इलाहाबाद के सुपरिंटेंडेंट पुलिस से फ़ोन पर सब बातें बतला कर विश्वम्भर दयाल को हर तरह की मदद देने को कह दिया।

८

उमानाथ ने डाक्टर अवस्थी के नाम एक पत्र लिखकर प्रभानाथ को दे दिया था। डाक्टर अवस्थी का पूरा नाम था डाक्टर ब्रजबिहारी अवस्थी, और वे उमानाथ के अभिन्न मित्र थे। वे इलाहाबाद में सिविल सर्जन थे; और इलाहाबाद नगर में उनका मान था।

प्रभानाथ जब डाक्टर अवस्थी के घर पहुँचा, डाक्टर अवस्थी घर पर ही

थे। प्रभानाथ को देखते ही वे उठ खड़े हुए, "तुम, प्रभा!—अरे—तुम्हारे चेहरे पर यह पीलापन कैसा! क्या हुआ?"

प्रभानाथ ने डाक्टर अवस्थी को कोई उत्तर नहीं दिया—वह निष्प्राण-सा पास पड़ी हुई कुर्सी पर बैठ गया। इसके बाद उसने अपनी जेब से पण्डित श्यामनाथ का पत्र निकाल कर डाक्टर अवस्थी को दिया।

डाक्टर अवस्थी ने उस पत्र को तीन बार आदि से अन्त तक पढ़ा, फिर उसमें दियासलाई लगाकर वे प्रभानाथ के सामने खड़े हो गए, "हूँ! तो यह बात है! तुम्हारा असबाब?"

"ताँगे में है।" प्रभानाथ ने कहा।

डाक्टर अवस्थी ने प्रभानाथ का असबाब उतरवा कर एक ख़ाली कमरे में रखवाया और ताँगा विदा कर दिया। "तुम्हारे काका का कहना है कि तुम्हें मौत के मुँह से बचाना है! बचाने की कोशिश करूँगा, प्रभा—भरसक कोशिश करूँगा!"

प्रभानाथ इस बार भी मौन रहा। कुछ देर रुककर डाक्टर अवस्थी ने फिर कहा, "तुम्हें यह क्या सूझी जो तुम यह नासमझी का काम कर बैठे? लेकिन नहीं, यह वक़्त यह सब बात कहने का नहीं है। इस वक़्त तो तुम्हारे हाथ का आपरेशन करके गोली निकालनी होगी और तुम्हें अच्छा होने में क़रीब एक महीना लगेगा। डाक्टर अवस्थी ने घड़ी की ओर देखा—दो बज चुके थे। उन्होंने फिर कहा, "और तुम्हारा आपरेशन, अभी इसी वक़्त करना होगा। तुम्हारा अस्पताल जाना ठीक न होगा—मैं तुम्हें वहाँ ले भी न जाऊँगा; इसलिए यह आपरेशन यहीं, मेरे मकान पर होगा। लेकिन आपरेशन करने का सारा सामान मुझे अस्पताल से लाना पड़ेगा। आपरेशन के बाद तुम मेरे घर में ही रहोगे—कहीं भी निकल कर नहीं जा सकते। समझे!"

"जी हाँ!"—और प्रभानाथ ने अपनी आँखें बन्द कर लीं।

डाक्टर अवस्थी के मकान पर उनकी पत्नी के सिवाय और कोई न था।

वह प्रभानाथ को एक खाली बेडरूम में ले गए और उसे वहाँ लिटा दिया, "मैं अभी आया!" और यह कहकर डाक्टर अवस्थी अस्पताल चले गए।

एक घंटे बाद डाक्टर अवस्थी आपरेशन का सामान लिये हुए वापस लौटे। वे अकेले ही आए थे। अपने विश्वासपात्र नौकर से उन्होंने कमरे में पानी तौलिया साबुन वग़ैरह मँगवा लिया। उन्होंने प्रभानाथ से कहा, "प्रभा! मैं नहीं चाहता कि कोई बाहर वाला यह जान सके कि मैंने तुम्हारा आपरेशन किया है और तुम मेरे मकान में हो। इसलिए मैं आपरेशन में मदद करने के लिए किसी को अपने साथ नहीं लाया, एक कम्पाउंडर तक नहीं। अब सवाल यह है कि तुम्हें क्लोरोफ़ार्म कौन देगा!"

प्रभानाथ सम्हल कर बैठ गया, "आप इसकी फ़िक्र न कीजिये—मुझे क्लोरोफ़ार्म की कोई आवश्यकता नहीं; मैं बर्दाश्त कर लूँगा!"

डाक्टर अवस्थी ने प्रभानाथ को ध्यान से देखा, फिर उन्होंने हलकी मुसकान के साथ कहा, "जहाँ तक मेरा ख्याल है तुम आसानी से बर्दाश्त न कर सकोगे; मैं जानता हूँ कि तुम बर्दाश्त नहीं कर सकोगे। बर्दाश्त करने वाले लोग दूसरे होते हैं, मैंने उन्हें देखा है!"

प्रभानाथ को बुरा लगा, वह तन गया, "आप मुझे ग़लत समझ रहे हैं!"

इस बार डाक्टर अवस्थी हँस पड़े, "मैं तुम्हें ग़लत समझ रहा हूँ! कैसी मज़ेदार बात कही तुमने। वह नतीजा जो मैंने इन बातों को पका कर हासिल किया है, वह मुश्किल से ही झूठा हो सकेगा। लेकिन मैं तुम पर विश्वास करूँगा!"

डाक्टर अवस्थी ने प्रभानाथ को लिटा दिया। इसके बाद उन्होंने चाकू से उस स्थान को काटा जहाँ से गोली घुसी थी। प्रभानाथ ने दर्द बर्दाश्त करने की बहुत कोशिश की, लेकिन एक हलकी सी चीख निकल ही गई।

डाक्टर अवस्थी ने चाकू रोक लिया, वे मुस्कराए, "मैंने कहा था न कि तुम बर्दाश्त न कर सकोगे और मैंने ग़लत नहीं कहा। लेकिन प्रभा, मैं

जानता हूँ कि तुम वीर हो, और तुम्हें बर्दाश्त करना ही पड़ेगा। इसके सिवा कोई चारा नहीं।"

डाक्टर अवस्थी ने आपरेशन करके गोली निकाल दी, इसके बाद उन्होंने प्रभानाथ की मलहम पट्टी ख़ुद की।

९

इलाहाबाद में प्रभानाथ की छान बीन ज़ोरों के साथ शुरू हो गई, लेकिन इसमें पुलिस को कोई सफलता न मिल सकी। विश्वम्भर दयाल को पूरा विश्वास था कि प्रभानाथ इलाहाबाद में ही है और किसी डाक्टर से इलाज करवा रहा है; लेकिन किसी भी डाक्टर के यहाँ उसका पता न चल सका। क़रीब-क़रीब शहर के सब कम्पाउण्डरों से पूछताछ की गई और इसमें भी विश्वम्भर दयाल को असफलता ही मिली।

तीसरे दिन विश्वम्भर दयाल एक तरह से निराश हो गए। दोपहर को खाना खाकर विश्वम्मभर दयाल माताप्रसाद से उसी सम्बन्ध में बातचीत करने लगे। इलाहाबाद में तहक़ीक़ात की पूरी रिपोर्ट विश्वम्भरदयाल के सामने थी। उस रिपोर्ट को विश्वम्भरदयाल दो बार आदि से अन्त तक पढ़ गए। उनका चेहरा धुँधला हो गया, एक ठंढी आह भर के उन्होंने कहा, "मुमकिन है साहेबज़ादे और आगे बढ़ गए हों।—बनारस, पटना, कलकत्ता—कहीं भी। सोचा हो कि नज़दीक रहने में खतरा है।"

"मुझे तो यक़ीन है कि प्रभानाथ साहेब आगे बढ़ गए हैं—शायद कलकत्ता क्योंकि वहाँ डाक्टरी इलाज अच्छा होता है!" माता प्रसाद ने कहा।

"लेकिन मुझे यक़ीन है कि साहेबज़ादे इलाहाबाद में ही हैं और मेरे हाथों गिरफ़्तार होंगे!" विश्वम्भर दयाल यह कह कर चुप हो गए, वह सोचने लगे। थोड़ी देर बाद विश्वम्भर दयाल ने सर उठाया "लेकिन साहेबज़ादे हैं कहाँ? सवाल यह है! इलाहाबाद में जितने बँगले हैं, सब का पता

मैंने ले लिया। किन बँगलों में डाक्टर आते हैं और वहाँ कौन बीमार है, इस बात का भी पता है!"

कुछ सोचकर माता प्रसाद ने कहा, "क्या यह मुमकिन है कि साहेबज़ादे किसी डाक्टर के घर में ही ठहरे हों?"

"मुमकिन है! लेकिन उन डाक्टरों के कम्पाउण्डरों से भी तो कोई पता नहीं चलता!"

"सरकारी अस्पताल अभी तक नहीं देखा गया है!" माता प्रसाद ने कहा।

विश्वम्भर दयाल हँस पड़े, "कोई ज़रूरत नहीं। इतना बड़ा जुर्म कर के और उसका सबूत रखते हुए साहेबज़ादे सरकारी अस्पताल में न भरती होंगे, इतना यक़ीन है!" कुछ रुक कर उन्होंने फिर कहा, "लेकिन आपका ख्याल ठीक है, सरकारी अस्पताल की भी जाँच हो जानी चाहिये। यह तो कहने को न रह जाय कि ज़रा सी ग़लती हो गई।"

शाम के समय माता प्रसाद के साथ विश्वम्भर दयाल सरकारी अस्पताल पहुँचे। उस समय वहाँ डाक्टर अवस्थी न थे, एक असिस्टेंट सर्जन से इन दोनों की मुलाक़ात हुई। विश्वम्भर दयाल ने उससे पूछ-ताछ शुरू की, लेकिन इस असिस्टेंट सर्जन ने उनके प्रश्नों का उत्तर देने से यह कहते हुए इनकार कर दिया, "जब तक सिविल सर्जन की आज्ञा न हो, तब तक हम लोग इस अस्पताल के सम्बन्ध में कोई भी बात नहीं बतला सकते और न आपको अस्पताल दिखला सकते हैं।"

"सिविल सर्जन किस समय आते हैं?" विश्वम्भर दयाल ने पूछा।

"सुबह!" उन्हें उत्तर मिला।

विश्वम्भर दयाल ने सिविल सर्जन के बँगले का पता ले लिया। कार सिविल सर्जन के बँगले की तरफ़ मोड़ दी गई। डाक्टर अवस्थी उस समय प्रभानाथ के पास बैठे हुए उससे बात कर रहे थे। विश्वम्भर दयाल का कार्ड

पाकर वे बाहर आए। विश्वम्भर दयाल और माता प्रसाद को ड्राइंग-रूम में बिठलाते हुए उन्होंने कहा, "कहिये, आप लोगों ने कैसे तकलीफ़ की?"

विश्वम्भर दयाल ने गला साफ़ करके कहा, "बात यह है डाक्टर साहेब कि एक क्रान्तिकारी ज़ख्मी होकर इलाहाबाद की तरफ़ आया है और यहीं कहीं इलाज करा रहा है। मैंने बहुत पता लगाया लेकिन कहीं उसका पता नहीं लगा। सोचा कि एक दफ़े सरकारी अस्पताल भी देख लूँ, गोकि जहाँ तक मेरा खयाल है वह सरकारी अस्पताल में भरती न हुआ होगा। बहरहाल जब अस्पताल पहुँचा तो वहाँ के डाक्टर ने बतलाया कि बिना आपकी इजाज़त के यह मुमकिन नहीं।"

डाक्टर अवस्थी ने कागज-क़लम लेते हुए कहा, "इस काम के लिए आपको यहाँ तकलीफ़ करने की क्या ज़रूरत थी, आपने वहीं से मुझे फ़ोन कर लिया होता। खैर मैं चिट्ठी लिखे देता हूँ।"

डाक्टर अवस्थी ने विश्वम्भर दयाल को चिट्ठी दे दी, और विश्वम्भर दयाल माताप्रसाद के साथ कार पर बैठकर अस्पताल की तरफ़ चल पड़े। माता प्रसाद ने कहा, "इन डाक्टर साहेब को तो मैंने कप्तान साहेब के यहाँ देखा है, उनके तो यह बहुत बड़े दोस्त हैं!"

विश्वम्भर दयाल के मत्थे पर बल पड़ गए, "क्या कहा? यह कप्तान साहेब के दोस्त हैं?"

"जी हाँ! और इसलिए मैं समझता हूँ कि हम लोगों का अस्पताल जाना बेकार ही होगा। अगर साहेबज़ादे वहाँ होते तो डाक्टर साहेब इतनी आसानी से चिट्ठी न दे देते।"

विश्वम्भर दयाल तेज़ी के साथ सोच रहे थे। तो क्या प्रभानाथ इलाहाबाद में सिविल सर्जन के इलाज में है? और अगर है तो कहाँ ठहरा हुआ है?

विश्वम्भर दयाल और माता प्रसाद को अस्पताल में कोई पते की बात न मिल सकी। रात में दोनों थके हुए होटल वापस आए। लेकिन विश्वम्भर

दयाल को न जाने क्यों यह विश्वास हो गया कि प्रभानाथ डाक्टर अवस्थी के इलाज में है। उन्होंने माता प्रसाद से कहा, "भाई साहेब! मुझे पूरा यक़ी है कि प्रभानाथ यहाँ इलाहाबाद में है, और वह डाक्टर अवस्थी के इला में है! आप शायद वजह जानना चाहेंगे लेकिन वजह मैं बतला नहीं सकत वजह मैं जानता नहीं। अगर वजह की तलाश करने लगूँ तो भाई साहेब, मु अपना पेशा छोड़ देना पड़ेगा। विश्वम्भर दयाल कहते-कहते हँस पड़े, ए अजीब रूखी-सी हँसी, "जी हाँ, हमारा वास्ता पड़ता है मुजरिमों से और जु हैवानियत है। मुजरिम वही इंसान होता है जिसकी हैवानियत उसकी इंस नियत पर हावी हो जाती है। और जहाँ हैवानियत है, वहाँ बहस नहं दलील नहीं!"

विश्वम्भर दयाल कहते-कहते रुक गए, उनके मत्थे पर बल पड़ गा उनका चेहरा कुछ भयानक-रूप से विकृत हो गया, "हैवानों से इस क़द साविक़ा पड़ता है माता प्रसाद साहेब कि एक कामयाब पुलिस के अफ़सर इंसानियत बाक़ी ही नहीं रह जाती। हमें सूँघना पड़ता है, हमारी हर हरक ऊल जलूल, बिना मानी-मतलब की होती है। और इसलिए जिसे ह एनीमल इंस्टिंक्ट कहते हैं वह मुझमें मौजूद है! मैं कहता हूँ कि प्रभानाथ यहीं इलाहाबाद में है, डाक्टर अवस्थी के इलाज में है और वह मेरे हा गिरफ़्तार होगा, बचेगा नहीं!"

पता नहीं मुंशी माता प्रसाद विश्वम्भर दयाल की बातों को समझे नहीं, उन्होंने इतना ज़रूर कहा "मुझे तो काम इतना आसान नहीं दिखला देता! मामला सिविल सर्जन का है......"

"और मामला सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस के लड़के का भी है! है न ऐ बात? लेकिन भाई साहेब, मैं तो सिर्फ़ एक बात समझाता हूँ—मामला मे है और मेरे पीठ पर बैठी हुई सरकार का है! हमें डाक्टर अवस्थी व हरकतों पर नज़र रखनी पड़ेगी।"

१०

विश्वम्भर दयाल के हुक्म से दो सादी वर्दी-वाले ख़ुफ़िया पुलिस के सिपाही सिविल सर्जन के बँगले के सामने तैनात कर दिये गए। सिविल सर्जन साहेब कहाँ जाते हैं, कब जाते हैं, उनके यहाँ कौन कौन लोग आते हैं, इन सब बातों की पूरी-पूरी खबर विश्वम्भर दयाल को मिलती थी। तीसरे दिन उन्हें यह खबर मिली कि पण्डित श्यामनाथ तिवारी डाक्टर अवस्थी के यहाँ आए थे और एक घण्टा ठहर कर चले गए। यह खबर पाते ही विश्वम्भर दयाल ख़ुशी से उछल पड़े। उन्होंने माता प्रसाद से कहा, "भाई साहेब, क़िस्मत अच्छी मालूम होती है। साहेबज़ादे यहीं इलाहाबाद में मौजूद हैं, और इसका सबूत यह है कि पण्डित श्यामनाथ तिवारी डाक्टर अवस्थी के यहाँ आए थे। लेकिन सवाल यह है कि साहेबज़ादे ठहरे कहाँ हैं?

"शायद कप्तान साहेब की मोटर का पीछा करने से पता लग जाता!"

"हाँ लेकिन जिस वक़्त वह आए उस वक़्त हम लोगों को खबर ही नहीं मिली, और अब उनका पता चलाना बड़ा मुश्किल है। मौक़ा चूक गया।"

थोड़ी देर तक विश्म्भर दयाल बैठे रहे, फिर उन्होंने कहना आरम्भ किया, मानो वे वह बात अपने ही से कह रहे हों, "पण्डित श्यामनाथ आए थे! एक घण्टा ठहरे और चले गए। कहाँ गए? जहाँ प्रभानाथ ठहरा है। अरे!—क्या साहेबज़ादे ख़ुद डाक्टर अवस्थी के यहाँ तो नहीं ठहरे हैं?"

विश्वम्भर दयाल उठ खड़े हुए और उन्होंने एक सिगरेट सुलगाई। इसके बाद वे कमरे में टहलने लगे। वे कह रहे थे, "माता प्रसाद साहेब! प्रभानाथ डाक्टर अवस्थी के यहाँ ही ठहरा है, वहीं उसका इलाज हो रहा है। मिल गया! कितनी आसानी से मिला—और किस जगह मिला! उफ़! बाप सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस, उसका इलाज कर रहा है एक सिविल सर्जन जो उसका रिश्तेदार भी हो सकता है; और लड़का क्रान्तिकारी, जिसने एक ऐसा जुर्म किया है जिसकी सज़ा मौत है! हा! हा! हा! कितनी मज़ेदार बात है, भाई साहेब!"

विश्म्भर दयाल हँस रहे थे और माता प्रसाद उन्हें आश्चर्य से देख रहे थे ! उन्होंने विश्म्भर दयाल को इस तरह हँसते कभी न देखा था । एकाए विश्वम्भर दयाल गम्भीर हो गए, उन्होंने फिर कहना आरम्भ किया, "ज ज़िन्दगी के साथ खेलता है क्या उसे मौत की परवाह भी होती है ? य लड़का—क्या यह मौत से डरता है ? क्यों माता प्रसाद साहेब—क्या य प्रभानाथ मौत से डरता होगा ?"

"यह कहना तो मुश्किल है, लेकिन यह सवाल ही क्यों उठा ?" मात प्रसाद ने पूछा ।

"यह सवाल क्यों ? माता प्रसाद साहेब, यह सवाल इसलिए कि इसी जवाब पर मेरी कामयाबी या नाकामयाबी, मेरी फ़तह या शिकस्त की बुनि याद है ! आप जानते हैं मैं क्यों इस लड़के के पीछे पड़ा हूँ ? शायद आ नहीं जानते ! तो मैं आपको बतलाता हूँ, क्योंकि जो कुछ मैं कर रहा हूँ व किसी क़दर इंसानियत से नीचे वाली चीज़ समझ में आ सकती है । आखि पण्डित श्यामनाथ साहेब ने मुझे अपने घर में ठहराया, उन्होंने मेरी अच्छ तरह से खातिरदारी की और उन्हीं के लड़के के पीछे मैं पड़ा हूँ, उ गिरफ़्तार करने पर आमादा हूँ ! अगर मैं इस मामले को छोड़ दूँ तो इसक किसी को कुछ भी पता न चलेगा । और यह लड़का भी यह रास्ता छो देगा । अगर खुद न छोड़ेगा तो इसके वालदैन इससे यह रास्ता छुड़ा देंगे । और वाक़या यह है कि मैं इतना गिरा हुआ भी नहीं हूँ कि ख्वामख्वा किसी के खून का प्यासा होऊँ ! तो फिर मैं इस लड़के के पीछे इतनी बु तरह क्यों पड़ा हूँ ?—सवाल यह है ! इसका जवाब सब से पहले देना पड़ेग माता प्रसाद साहेब ! और मैं कहता हूँ कि मैंने उस लड़के की शक्ल देख है ! गोकि थोड़ी देर के ही लिए देखी है, लेकिन ग़ौर से देखी है ! औ उस लड़के की शक्ल देख कर ही मुझे पता चल गया कि वह लड़का मौ का मुकाबिला नहीं कर सकता, हरगिज़ नहीं कर सकता ।"

"जब आप इतना जानते हैं तब तो उसके पीछे पड़ना और भी ग़लत है !

"नहीं, माता प्रसाद साहेब, अगर आप ठीक तौर से देखें तो आपको मालूम होगा कि सही है। वह मौत का मुक़ाबिला नहीं कर सकता, इसके मानी यह हैं कि वह मौत से डरता है, और चूँकि वह मौत से डरता है लिहाज़ा मैं उसे मौत से बचा दूँगा और उससे ज़िन्दगी की क़ीमत वसूल करूँगा..." विश्वम्भर दयाल फिर हँस पड़े, "जी हाँ भाई साहेब, ज़िन्दगी बख्शूँगा, उसे ज़रूर ज़िन्दगी बख्शूँगा, लेकिन उससे ज़िन्दगी की क़ीमत वसूल करके। और आप जानते हैं उसकी ज़िन्दगी की क़ीमत क्या होगी?"

"जी हाँ समझ गया। आप उसे मुखबिर बनाने की कोशिश करेंगे!"

"कोशिश ही नहीं करूँगा, उसमें कामयाब हूँगा।"

इस बार माता प्रसाद के हँसने की बारी थी, "मैं दिल से चाहता हूँ कि आप का खयाल सही निकले, लेकिन मुझे तो आपकी कामयाबी पर शंक है। मेरा भी खयाल है कि वह लड़का मौत से डरता है, और मेरा खयाल है कि मैं मौत से डरता हूँ, आप मौत से डरते हैं, हर एक इंसान मौत से डरता है। लेकिन दुनिया में कुछ ऐसी चीज़ें हैं जो किन्हीं किन्हीं लोगों के लिए मौत से भी ज़्यादा खौफ़नाक हैं। उन चीज़ों में एक है बेइज़्ज़ती! जहाँ तक मैं कप्तान साहेब व उनके खान्दान को जानता हूँ, बेइज़्ज़ती से वे सब के सब बहुत ज़्यादा डरते हैं, इतना ज़्यादा डरते हैं कि वे मौत का सामना करने को तैयार हो जाएँगे!"

माता प्रसाद की बात ने मानो विश्वम्भर दयाल को चौंका दिया हो, वह टहलते-टहलते रुक गए, माता प्रसाद पास आकर, उनकी आँखों से आँख मिला कर उन्होंने कहा, "क्या वाक़या आपका यह खयाल है?"

"जी हाँ!" माता प्रसाद ने विश्वम्भर दयाल की नज़र से अपनी नज़र हटा कर कहा, "इस खान्दान को मैं थोड़ा-बहुत जानता हूँ। सब के सब ऐंठदार आदमी हैं, दबना और झुकना शायद इस खानदान में कोई नहीं जानता।"

"तो क्या मैं ग़लती करता हूँ ?" विश्वम्भर दयाल ने अपने आप ही कहा, "क्या इसमें मुझे नाकामयाबी मिलेगी ? माता प्रसाद साहेब ! क्या कहा आपने ? सब के सब ऐंठ में फूले हुए, न दब सकते हैं, न झुक सकते हैं !" और एकाएक विश्वम्भर दयाल में वही पुराना विश्वास और जोश लौ आया, "हाँ ! खुदी में ग़र्क हैं। और जब खुद ही मिटने का सवाल आ जा तब ? नहीं, माता प्रसाद साहेब ! हर इंसान झुक सकता है, मौत के आ झुकना ही पड़ता है !"

११

"कहिये चाचा जी, अभी कितने दिन और लगेंगे ?" प्रभानाथ ने पूछा

डाक्टर अवस्थी पट्टी बाँध चुके थे, प्रभानाथ के पलँग के सामने उन्हो कुरसी खिसका कर बैठते हुए कहा, "मैं समझता था कि ज़ख्म के पूरने ज्यादा वक़्त लगेगा, लेकिन देखता हूँ कि पन्द्रह दिनों में ही ठीक जायगा !" कुछ रुक कर डाक्टर अवस्थी ने फिर कहा, "प्रभा ! एक ब पूछूँगा, ठीक-ठीक जवाब देना !"

"जी हाँ ! चाचाजी ! लेकिन इतना ही पूछियेगा जितने का मैं ठ जवाब दे सकूँ !"

डाक्टर अवस्थी मुसकराए, "उतना ही पूछूँगा, यह यक़ीन दिलाए दे हूँ, और अगर कहीं ज़्यादा पूछ बैठूँ तो जवाब देने से इनकार कर देन मैं ज़रा भी बुरा न मानूँगा।"

प्रभानाथ भी मुस्कराया, "तो फिर पूछिये !"

डाक्टर अवस्थी ने कहा, "पहला सवाल यह है कि तुमने यह टेर मूवमेण्ट क्यों ज्वाइन किया ? क्या तुम समझते हो कि इस मूवमेण्ट द तुम ब्रिटिश सरकार को उलट सकोगे ?"

"चाचाजी ! मैं समझता हूँ कि ब्रिटिश सरकार को हिन्दुस्ता

केवल इस तरह निकाला जा सकता है कि हिन्दुस्तानी अंग्रेज़ों को युद्ध करके हरा दें। लेकिन सामने आकर हिन्दुस्तानी अंग्रेज़ों से युद्ध नहीं कर सकते, और इसलिए अंग्रेज़ों पर, ब्रिटिश सरकार पर पीठ-पीछे से ही हमला करना होगा। अब सवाल यह है कि क्या हम लोग इस सरकार को उलट सकते हैं? यहाँ मैं केवल इतना कहूँगा कि हम, यानी मैं और मेरे साथी भले ही इस सरकार को न उलट सकें क्योंकि हमारी संख्या अभी बहुत कम है, लेकिन एक समय आ सकता है जब हमारी तादाद बहुत अधिक बढ़ जाय। और उस हालत में इन मुट्ठी भर अंग्रेज़ों को निकाल बाहर करना क्या मुश्किल है?"

"और क्या तुम्हारा खयाल है कि तुम्हारी तादाद इतनी बढ़ सकेगी?"

"मुझे पूरा यक़ीन है!"

"और मुझे पूरा यक़ीन है कि तुम्हारी तादाद किसी भी हालत में इतनी ज्यादा न बढ़ सकेगी। तुम समझते हो कि आयर्लैंएड के रास्ते पर चल कर हिन्दुस्तान में भी तुम क्रान्ति कर सकते हो, लेकिन प्रभा, तुम हिन्दुस्तान को पहचानते नहीं! तुम्हारे मार्ग में बाधा बनने वाले, तुम्हें मिटाने वाले अंग्रेज़ न होंगे, वे होंगे हिन्दुस्तानी, गुलाम, स्वार्थी और देशद्रोही हिन्दुस्तानी जो ब्रिटिश सरकार के टुकड़ों के बदले धर्म, ईमान, मनुष्यता सभी कुछ बेंच सकते हैं!"

इसी समय डाक्टर अवस्थी के नौकर ने आकर खबर दी कि बाहर कई पुलिस वाले खड़े हैं और एक पुलिस के अफ़सर ने डाक्टर अवस्थी को बुलाया है।

इस खबर को सुन कर डाक्टर अवस्थी सहम गये। नौकर से उन्होंने कहा, "बँगले के पीछे देखो, वहाँ तो कोई पुलिस वाला नहीं है!"

नौकर ने लौट कर कहा, "सरकार पुलिस सारा बँगला घेरे हुए है!"

डाक्टर अवस्थी ने उठते हुए कहा, "प्रभा, तुम चिन्ता न करना! देखूँ तो क्या मामला है!"

प्रभानाथ ने दृढ़ता के साथ कहा, "चाचाजी, अगर वे मुझे गिरफ़्तार करने आए हों तो मैं तैयार हूँ। मेरी वजह से आप किसी तरह की मुसीबत में न पड़ियेगा।"

डाक्टर अवस्थी बाहर निकले। ड्राइंगरूम में इलाहाबाद के सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलीस के साथ विश्वम्भरदयाल खड़े थे। डाक्टर अवस्थी ने कहा, "कहिये—आप लोगों ने कैसे तकलीफ़ की?"

विश्वम्भरदयाल ने वारंट निकालते हुए कहा, "प्रभानाथ नाम के एक टेररिस्ट पर वारंट है, वह आपके बँगले में है, इसलिए उसे गिरफ़्तार करने आया हूँ!"

"वह मेरे बँगले में है—यह आपको कैसे मालूम?"

"मुझे मालूम नहीं है बल्कि शक है!"

"और महज़ शक पर आप लोगों ने पुलिस वालों से मेरा बँगला घिरवा लिया है! आप जानते हैं मैं कौन हूँ और मेरे बँगले में आप लोग घुस कैसे आये?"

विश्वम्भरदयाल ने दूसरा वारंट निकालते हुए कहा, "मैं जानता था डाक्टर अवस्थी कि मुझे सिविल सर्जन के बँगले से मुलज़िम गिरफ्तार करना है और इसलिए मैं यह सर्च वारंट लेता आया हूँ!"

"मैं अपने बँगले की तलाशी किसी हालत में नहीं लेने दूँगा!" डाक्टर अवस्थी ने कड़े स्वर में कहा।

यह बातचीत काफ़ी तेज़ आवाज़ में हो रही थी, कि एकाएक लोगों ने देखा कि प्रभानाथ ड्राइंगरूम में चला आ रहा है। प्रभानाथ आकर बीच कमरे में खड़ा हो गया। उसने कहा, "क्या आप लोगों के पास मेरे नाम कोई वारंट है!"

डाक्टर अवस्थी पुलिसवालों और प्रभानाथ के बीच में आ गए, "मैं

आप लोगों को किसी हालत में इस लड़के को गिरफ्तार न करने दूँगा। यह बीमार है और मेरे इलाज में है!"

विश्म्भर दयाल ने कहा, "जी हाँ! यह लड़का आपके ही इलाज में रहेगा, लेकिन अस्पताल में रहेगा और पुलिस की हिरासत में रहेगा।"

पाँचवाँ परिच्छेद

१

जिस समय दयानाथ को मार्कण्डेय का वह पत्र मिला जिसमें मार्कण्डेय ने अपने पिता की मृत्यु की सूचना दी थी, दयानाथ फिर से जेल जाने को कर रहा था। सत्याग्रह चल रहा था और ब्रिटिश सरकारी क्षेत्रों में एक प्रकार की चिन्ता पैदा हो गई थी। पहली राउण्ड टेबिल कानफ़रेंस में हिन्दुस्तान ने कोई दिलचस्पी न ली थी, दुनिया की नज़र में उसका खोखलापन नज़र आ चुका था। और साथ ही देश के कुछ नेताओं ने कांग्रेस का राउण्ड टेबिल कानफ़रेंस में शामिल होने की आवश्यकता समझ कर कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार में समझौता कराने का प्रयत्न आरम्भ कर दिया था।

मार्कण्डेय का पत्र पढ़ कर दयानाथ अवसन्न सा रह गया। वह जानता था कि बानापुर में जो कुछ फ़िसाद हुआ उसके जड़ में रामनाथ तिवारी की अहम्मन्यता और उनका प्रतिक्रियावादी होना ही था। इस भयानक काण्ड की पूरी जिम्मेदारी उसके पिता पर है—वह अच्छी तरह जानता था; ग्लानि से वह क्षुब्ध हो गया।

दयानाथ के सामने अब यह प्रश्न उपस्थित हो गया कि वह बानापुर जाय या न जाय। बानापुर में उसके पिता मौजूद थे, बानापुर के गाँव वाले मौजूद थे। यही नहीं, बानापुर में सम्भवतः इस समय संघर्ष चल रहा होगा—ज़ोरों के साथ। दयानाथ के जाने से और भी असाधारण परिस्थिति उत्पन्न हो सकती है। यह भी सम्भव है कि बानापुर गाँव के लोग उसके पिता के प्रति अपनी घृणा को दयानाथ के साथ भी बरतें। उन गाँव वालों को क्या पता कि दयानाथ घर का त्याज्य पुत्र है। एक बार दयानाथ के अन्दर वाले कायर मानव ने कहा, "नहीं, बानापुर जाना उचित नहीं।"

लेकिन दूसरे ही क्षण दयानाथ के अन्दर वाला वीर मानव बोल उठा, "इससे क्या? मेरा कर्तव्य है अपने मित्र के प्रति संवेदना! लोक-मत से मुँह फेर लेना कायरता है—वीरता है लोकमत का सामना करने में!" और उसी समय दयानाथ ने तै कर लिया कि उसे मातमपुरसी करने के लिए बानापुर जाना ही चाहिये।

दयानाथ बानापुर पहुँच कर सीधे मार्कण्डेय के यहाँ पहुँचा। मार्कण्डेय अपने पिता का क्रिया-कर्म करके बैठा था। दयानाथ को देखते ही मार्कण्डेय की आँखों में आँसू आ गए। उसने दयानाथ का मौन-भाव से स्वागत किया। दयानाथ में हिम्मत नहीं थी कि वह मार्कण्डेय से बात करे। चुपचाप सर झुकाकर वह मार्कण्डेय के सामने बैठ गया।

थोड़ी देर तक दोनों मौन बैठे रहे; फिर उस मौन को मार्कण्डेय ने तोड़ा, "क्या सीधे यहीं आ रहे हो?"

"हाँ!" दयानाथ ने उत्तर दिया, "घर का त्याज्य पुत्र हूँ न! आना आवश्यक था इसलिए चला आया—कल चला जाऊँगा—रात भर तुम्हारे यहाँ ठहरूँगा!"

फिर दोनों मौन हो गए। अब की बार दयानाथ के बोलने की बारी थी, "क्या से क्या हो गया, मार्कण्डेय।"

मार्कण्डेय के मुख पर एक करुण मुसकान आ गई, "दया! बप्पा की मृत्यु मैंने अपनी आँखों देखी है। मुझे इस बात पर गर्व है कि बप्पा मेरे पिता थे! एक बहुत बड़ी हिंसा को बचाने के लिए उन्होंने अपने प्राण दिये!"

उस समय संध्या ढल रही थी और रात की कालिमा ने ग्राम-प्रान्त को ढँकना आरम्भ कर दिया था। पश्चिम में शुक्र तारा झलमला रहा था। दयानाथ ने आकाश की कालिमा पर अपनी आँखें गड़ाते हुए कहा, "हाँ मार्कण्डेय! मैंने सब कुछ सुना है!"

उस समय दयानाथ गम्भीर था, बहुत अधिक गम्भीर! उस ग्राम में,

जिसे वह कुछ दिनों पहले तक अपना समझता था, आज वह बिल्कुल पराया था। बानापुर का वह विशाल महल, जिसमें दयानाथ ने अपने जीवन का एक बड़ा भाग हँसी-खुशी में बिताया था, दूर पर एक भयानक दानव की भाँति उन्नत-मस्तक खड़ा था। और दयानाथ के चारों ओर उदासी का अथाह-सागर लहरा रहा था। उसके अन्तर वाली गहरी कालिमा सारे आकाश को घेरती हुई बढ़ रही थी।

और दयानाथ के ठीक सामने मार्कण्डेय बैठा था, श्वेत वस्त्र पहने हुए। मार्कण्डेय के मुख पर सौम्य भाव था, उत्साह था, आत्माभिमान था। दयानाथ ने कुछ देर तक चुप रह कर कहना आरम्भ किया, "मार्कण्डेय! लज्जा से मेरा मस्तक झुका जा रहा है। वह हिंसा जिसकी ज्वाला को शान्त करने के लिए झगड़ू काका ने अपने प्राण दे दिये, वह मेरे पिता द्वारा प्रज्वलित की गई थी!"

"नहीं, दया! ऐसी बात न कहो!" मार्कण्डेय ने दयानाथ को रोकते हुए कहा, "इसमें दोष तिवारी जी का नहीं है। मैंने बहुत सोचा, और मैं तो इसी निर्णय पर पहुँचा कि यही आज का विधान है! आज का समस्त समाज इसी हिंसा की नींव पर विकसित हुआ है। तिवारी जी को अधिक से अधिक इस हिंसा की नींव पर स्थापित समाज का प्रमुख प्रतिनिधि कहा जा सकता है!" चुप हो कर मार्कण्डेय ने अपने चारों ओर देखा। कुछ गाँव वाले सामने बैठे हुए अलाव ताप रहे थे। उन गाँव वालों की ओर कुछ देर तक देख कर मार्कण्डेय ने दयानाथ से कहा, "इन्हे देखते हो—ये जो न सोच सकते हैं, न समझ सकते हैं! ये जो भयानक-रूप से कायर हैं! सदियों से शासित होने वाले, अपमानित होने वाले यही लोग ज़रा-ज़रा सी बात पर खून-खराबी कर सकते हैं, हत्या कर सकते हैं। और इसका कारण है कि हम सब के सब अपनी प्राकृतिक और स्वाभाविक हिंसा को लेकर पैदा हुए हैं और हम सब अर्ध-विकसित हैं! इस जन-समुदाय की हिंसा और पशुता को दूर करने में समय लगेगा। इस हिंसा को हिंसा द्वारा दूर करना असम्भव है—इसे दूर करने का एक मात्र साधन है, अहिंसा!"

"लेकिन मार्कण्डेय, हिंसा के आगे अहिंसा कब तक टिक सकती है? इस तरह क्या वास्तव में अहिंसा सम्भव है? क्या वह अहिंसा आगे चल कर नष्ट न हो जाएगी?" दयानाथ ने पूछा।

मार्कण्डेय मुसकराया, "दयानाथ! यह प्रश्न स्वाभाविक है। और इस स्थान पर हमें यह याद रखना पड़ेगा कि अहिंसा की प्रतिक्रिया अहिंसा ही हो सकती है और इसलिए अहिंसा कभी भी नष्ट नहीं हो सकती। हाँ, अहिंसा कठिन अवश्य है—शायद बहुत अधिक कठिन। हम सब मनुष्य हैं—अपनी-अपनी अपूर्णता लिए हुए; हम सब अर्धविकसित हैं। लेकिन हमारा लक्ष्य है पूर्णता प्राप्त करना, विकसित होना। आज जो हिंसा का साम्राज्य चारों ओर फैला हुआ है उसका मुख्य कारण यह है कि हिंसा की प्रतिक्रिया हिंसा है। हम दूसरों की प्रतिक्रिया में हिंसा करते हैं और दूसरे हमारी प्रतिक्रिया में हिंसा करते हैं। इस तरह क्रिया और प्रतिक्रिया में हिंसा बढ़ती जाती है। और आज दिन इतने भयानक रूप में हिंसा ने समाज पर आधिपत्य कर लिया है कि एक-आध अहिंसा के काम का कोई असर हो ही नहीं सकता। दयानाथ! आवश्यकता है व्यापक रूप में अहिंसा की!"

"पर मेरा अनुभव बतलाता है कि यह सम्भव नहीं। दो एक दिन तक सब कुछ किया जा सकता है, लेकिन अपने जीवन को पूर्ण-रूप से अहिंसा-मय बना लेना असम्भव है!" दयानाथ ने कहा।

"यहीं ग़लती करते हो दयानाथ! यह सब किया जा सकता है, केवल साधना की—साधारण नहीं बल्कि असाधारण साधना की आवश्यकता है कि तुम अडिग बन सको! अपनी साधना द्वारा तुम अपने आस-पास वालों को साधना करने के लिए प्रेरित कर सकते हो—उन्हें अपना आत्मिक बल प्रदान करके सार्वजनिक व्रत को सफल बनाने में सहायक हो सकते हो!"

दयानाथ ध्यान से मार्कण्डेय की बात सुन रहा था। एक ठंढी साँस लेकर उसने कहा, "शायद तुम ठीक कहते हो मार्कण्डेय; वास्तव में अहिंसा बहुत बड़ी साधना है, साधना ही नहीं, तपस्या है! पर व्यक्ति यह साधना

और तपस्या कर सकता है—समाज किस तरह इसे कर सकता है। और हम समाज के एक अंग हैं, इसलिए समाज को—"

मार्कण्डेय सम्हल कर बैठ गया। ऐसा मालूम होता था कि उसके पिता की आत्मा अपनी समस्त साधना और बलिदान के साथ उसपर आ गई थी; उस समय उसकी आँखों में एक अजीब तरह की चमक आ गई थी, उसकी वाणी में दृढ़ता भर गई थी, "दयानाथ! तुमने ठीक कहा कि व्यक्ति को समाज में रहना है—समाज व्यक्तियों का समूह है। ऐसी हालत में जो चीज़ व्यक्ति के लिए सम्भव है वह समाज के लिए भी सम्भव है। अहिंसा कल्याण-कारी तभी हो सकती है जब वह व्यक्ति से ऊपर उठकर समाज की चीज़ बन सके। और मैं समझता हूँ कि समाज को अहिंसक बनाया जा सकता है, यही नहीं, अहिंसक बनाना पड़ेगा। हम, तुम और हमारी श्रेणी के और भी लोग जो अपने को विकसित मानव कहते हैं, अपने को समाज का नेता समझते हैं—यह हम लोगों का काम है कि हम लोग समाज को अहिंसामय बनावें। इतने बड़े काम के लिए हमें दूसरों का बलिदान नहीं करना है, हमें अपना ही बलिदान करना है। हममें—हम अहिंसा के उपासकों में और दुनिया के अन्य नेताओं में बहुत बड़ा अन्तर है! दूसरे जो कुछ करते हैं, अपने लाभ के लिए करते हैं, अपने ऐश-आराम के लिए करते हैं, और इसलिए अपने सिद्धान्तों पर वे लोग दूसरों की बलि चढ़ा देते हैं। लेकिन हम जो कुछ करते हैं वह मानवता के कल्याण के लिए करते हैं और उसमें हमें अपना ही बलिदान देना होगा। दयानाथ! यह काम एक-दो बलिदानों से न चलेगा, इतने कम बलिदानों से यह हज़ारों वर्ष की विचार-धारा, हमारी जन्मजात पशुता आसानी से दूर न होगी। इनको दूर करने में समय लगेगा, और लाखों आदमियों के बलिदान की इसमें ज़रूरत है!"

मंत्रमुग्ध-सा दयानाथ मार्कण्डेय की बातें सुन रहा था और मार्कण्डेय कहता जा रहा था, "समाज को अहिंसक बनाने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति अहिंसक बने। हम अहिंसा के उपदेशों से युक्त लम्बे-लम्बे

व्याख्यान देकर समाज को अहिंसक नहीं बना सकते। हमारे कांग्रेस मूवमेण्ट में जो अहिंसा दिख रही है वह कई स्थलों पर मुझे अहिंसा के व्यंग-रूप में नज़र आती है क्योंकि वह अहिंसा अधिकांश स्थलों पर अहिंसा नहीं है बल्कि कायरता है। मैंने उन बड़े-बड़े कांग्रेस-नेताओं को देखा है जो अहिंसा का उपदेश देते फिरते हैं, जो जलूस में लाठी खाते हैं, जो जेल जाते हैं। लेकिन उन्हीं लोगों का व्यक्तिगत जीवन भी मैंने देखा है, और उस व्यक्तिगत जीवन में मैंने देखी है भयानक हिंसा। आज जिस अहिंसा को मैं देख रहा हूँ वह नीति के लिए अपनाई गई है और नीति के लिए अपनाई जाने वाली अहिंसा मेरी नज़र में कायरता है। दयानाथ! आवश्यकता है व्यक्तिगत जीवन में अहिंसा की।"

दयानाथ ने एक ठंढी साँस ली, "तुम ठीक कहते हो, मार्कण्डेय! समाज को अहिंसामय बनाने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति अहिंसक बने। और यही सबसे कठिन काम है!......" दयानाथ कहते-कहते रुक गया; उसे उसी समय सुनाई पड़ा, "प्रणाम, बड़के भइया!"

दयानाथ ने घूमकर देखा, सामने उमानाथ खड़ा था। उमानाथ ने कहा, "आप आए लेकिन आपने आने की खबर ही नहीं दी। मैंने माना कि आप ददुआ को खबर नहीं देना चाहते थे, लेकिन भला मैंने आपका कौन-सा अपराध किया है?"

स्नेह से उमानाथ के कंधे पर हाथ रखते हुए दयानाथ ने कहा, "हाँ, उमा! मैं अपनी ग़लती मानता हूँ। लेकिन मेरे आने की खबर तुम्हें मिल ही गई। कहो, अच्छी तरह तो हो!"

"अच्छी ही तरह समझिये!" उमानाथ ने कहा, "जो कुछ अभी तक हुआ, जो कुछ अब हो रहा है और आगे चलकर जो कुछ होने वाला है—उस सब पर सोचने से जी काँप उठता है—लेकिन फिर भी ज़बर्दस्ती इस सबके बीच रहना पड़ता है।"

मार्कण्डेय उमानाथ की बात सुन कर हँस पड़ा, "अरे उमानाथ! तुम

भी क्या कह रहे हो ! न कुछ खास चीज़ हुई है, न हो रही है और न होने वाली है। ये सब बड़ी साधारण बातें हैं—इनमें से एक भी बात असाधारण नहीं है। अनादिकाल से लोग मरते आए हैं, अनन्त काल तक मरते रहेंगे इस मरने-मारने का असर हम लोगों के ऊपर स्पष्ट-रूप से कितना पड़त है ? मैं कहता हूँ—ज़रा भी नहीं ; जितना जी चाहे रो लो, दिन दो दिन महीना दो महीना, साल दो साल ! इसके बाद बिना हँसे तबीअत नहीं मान की। कल जो कुछ हो चुका है, दुनिया उसे भूल चुकी है; आज जो कुछ ह रहा है, यही दुनिया कल उसे भूल जाएगी। यही प्रकृति का क्रम है !"

उमानाथ मार्कण्डेय की बात सुनकर मुसकराया, "ठीक कहते हो, मार्क ण्डेय भइया ! और यही हमारा सबसे बड़ा दुर्भाग्य है। अगर हम चीज़ों क इतनी आसानी से न भूलें तो शायद दुनिया कुछ और की और हो जाय !"

२

दयानाथ से मिलकर जिस समय उमानाथ घर पहुँचा, रामनाथ खा खाने के लिए उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्हें पता चल गया था कि उम नाथ दयानाथ से मिलने के लिए मार्कण्डेय के घर गया है। कड़े स्वर उन्होंने उमानाथ से कहा, "सुना है दया यहाँ आया है और तुम उस मिलने गए थे !"

"जी हाँ !" शान्तभाव से उमानाथ ने उत्तर दिया।

"और मैं कहता हूँ कि तुम बिना मुझसे पूछे दयानाथ से क्यों मिल गए ?"

उमानाथ उद्धत स्वभाव का अवश्य था, लेकिन आज तक उसने अ पिता के सामने अपना संयम न तोड़ा था। पर इधर कई दिनों में उसने कुछ देखा-सुना उससे उसके हृदय के अन्दर एक भयानक विद्रोह भर ग था। उस विद्रोह के विस्फोट का समय आ गया था। रामनाथ के इस प्र को, और इस प्रश्न से अधिक उनके कड़े स्वर को सुनकर वह अपना सं

तोड़ बैठा। उसने रूखे स्वर में कहा, "मैं पूछ सकता हूँ कि मैंने आपकी गुलामी का पट्टा कब लिखा!"

उमानाथ का यह उत्तर सुनकर वे स्तब्ध रह गए! थोड़ी देर तक एक-टक वे उमानाथ को देखते रहे; वे यह देख रहे थे कि क्या उनके सामने बैठा हुआ उद्धत युवक वास्तव में उमानाथ है! उसके बाद उन्होंने धीरे से कहा, "हूँ! तो तुम भी गुलामी के खिलाफ़ जिहाद करने वाले हो!"

और बिना उमानाथ के उत्तर की प्रतीक्षा किये हुए वह मुँह फेरकर वहाँ से चले गए।

उस रात पण्डित रामनाथ तिवारी से ठीक तौर से भोजन न किया गया। उनका बड़ा लड़का उसी गाँव में मौजूद था, लेकिन बिल्कुल पराया-सा। और उस दिन उन्होंने देखा कि उनका दूसरा लड़का भी उनके हाथों से निकल गया। भोजन करके वे अकेले अपने कमरे में बैठ गए। उनका मन भारी था, उनकी आत्मा में एक भयानक अशान्ति थी। उन्हें कुछ ऐसा अनुभव हो रहा था कि सारी दुनिया एकाएक बदल गई है। यह सब क्या हो रहा है, यह सब क्यों हो रहा है, यह सब कैसे हो रहा है? और इन प्रश्नों का उत्तर उन्हें न मिल रहा था। उनका अतीत, उस अतीत का गौरव, उनका सारा का सारा विगत जीवन एक चित्र की भाँति उनकी आँखों के आगे आ गया था, और उस चित्र के परदे पर वह एक महान कुरूप वर्तमान को अंकित होता हुआ देख रहे थे। और उन्होंने ज़बर्दस्ती बलपूर्वक अपनी आँखें बन्द कर लीं। लेकिन उनकी आँखों के आगे से वर्तमान फिर भी ओझल न हो सका, उस वर्तमान को उनकी स्थूल आँखें न देख रही थीं, उस वर्तमान को देख रही थी उनकी चेतना। और वे एकाएक उठ खड़े हुए! दरवाज़े के पास जाकर वे रुके और बाहर देखने लगे!

बाहर गहरा अंधकार था, लेकिन फिर भी तिवारी जी बाहर ही देख रहे थे, मानो वे अंधकार के अंक को चीरकर उसके समस्त रहस्यों को निकाल लेने पर कटिबद्ध हो गए हैं। और दूर पर उन्हें एक प्रकाश दिखाई दिया

जिसे देखते ही वह चौंक उठे। वह प्रकाश उनके महल की तरफ़ आने वाली मोटर का था।

तिवारी जी ने नौकर को आवाज़ दी, "देखो कौन है ?" और वे आकर तख्त पर बैठ गए।

थोड़ी देर में रामनाथ ने देखा कि श्यामनाथ कमरे में चले आ रहे हैं। श्यामनाथ के पैर काँप रहे थे और चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। आते ही वे करुण स्वर में चिल्ला उठे, "भइया !" और बिना दूसरा शब्द कहे वे आराम कुरसी पर बैठे नहीं बल्कि गिर से पड़े। श्यामनाथ ने अपने सर पर हाथ रख लिए और आँखें बन्द कर लीं।

श्यामनाथ की हालत देख कर रामनाथ चौंक उठे, उन्होंने पूछा, "क्या बात है ?...अरे तुम्हें हुआ क्या है, तबीअत तो ठीक है न !"

पर श्यामनाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया, शायद उनमें से उत्तर देने की क्षमता जाती रही थी। वे रामनाथ की ओर निर्निमेष देख रहे थे, पर उनकी आँखों के आगे सिवा सूनेपन के और कुछ न था। रामनाथ श्यामनाथ की इस मुद्रा से घबरा गए, उठ कर वे श्यामनाथ के पास गए। श्यामनाथ के कंधे को हिलाते हुए उन्होंने पूछा, "क्यों बोलते क्यों नहीं ? तुम्हारी ऐसी हालत क्यों है ?"

श्यामनाथ के मुख से अनायास निकल पड़ा, "भइया ! प्रभा गिरफ़्तार हो गया है !"

"प्रभा गिरफ्तार हो गया ?" चौंकते हुए रामनाथ ने पूछा, "क्या वह भी कांग्रेस वालों के बरग़लाने में आ गया था ?"

"नहीं, भइया ! कांग्रेस में नहीं, वह गिरफ़्तार हुआ है डकैती और हत्या के अभियोग में। वह क्रांतिकारियों में शामिल था। उसने ट्रेन में डाँका डाला था, और उस डकैती में वह ज़ख्मी हुआ था !"

रामनाथ ने यह सब सुना ! बिना कुछ समझे-बूझे, बिना कुछ अनुभव

किये हुए, बिना किसी प्रकार की भावना अथवा चेतना के यह सब सुना, और लौट कर वे तख्त पर बैठ गए। कुछ देर तक वे मौन बैठे रहे, फिर उन्होंने कहा, "अब क्या हो?"

"यही आप से पूछने आया हूँ!" श्यामनाथ ने कहा।

"उसकी ज़मानत का कुछ प्रबन्ध किया?"

"बहुत कोशिश की भइया, लेकिन उसकी ज़मानत नहीं हुई। भइया, यह वारदात मेरे ही इलाक़े में हुई थी, लेकिन मामला मेरे हाथों में नहीं है, वह स्पेशल पुलिस के हाथ में सौंप दिया गया है। मैं, पुलिस का सुपरिण्टेण्डेण्ट भी उसकी ज़मानत नहीं करा सका।" यद्यपि श्यामनाथ की आँखों में आँसू न थे तो भी श्यामनाथ का स्वर रो रहा था। "भइया, उसे बचाइये—किसी तरह बचाइये।"

रामनाथ उठ खड़े हुए और वे उस कमरे में टहलने लगे। उस समय वे सोच रहे थे, बड़ी तेज़ी के साथ। और टहलते-टहलते वे कमरे के दरवाज़े पर रुक गए। उन्होंने वहीं से कहा, "श्यामू! रात के इस सघन अंधकार को देख रहे हो?—सिवा उस अन्धकार के वहाँ और कुछ नहीं है। तुम कहते हो कि प्रभा को बचाऊँ। क्या मैं उसे बचा सकूँगा? कह नहीं सकता! नहीं-नहीं श्यामू! बचाना और मारना—यह हमारे हाथ में नहीं है, ज़रा भी नहीं है। यह सब उस अदृश्य के हाथ में है जिसे लाख प्रयत्न करने पर भी मैं नहीं देख पा रहा हूँ!" और धीरे-धीरे रामनाथ का स्वर कड़ा हो गया, "श्यामू! जी चाहता है कि उस अंधकार के अंक को चीर कर देखूँ कि वहाँ क्या है? यह सब जो चारों ओर हो रहा है क्यों हो रहा है, किसकी इच्छा से हो रहा है, कैसे हो रहा है? इस सब को करने वाला कौन है, और इस सब के करने से उसे कौन-सा फ़ायदा होता है, कौन-सा सुख मिलता है! वह बनाता है, मिटाता है! लेकिन यह क्यों—यह क्यों?"

रामनाथ कहते-कहते रुक गए। इतना सब कह लेने पर भी क्या वे सत्य के निकट ज़रा भी पहुँच सके? दरवाज़े से वे लौट पड़े, फिर अपने तख्त पर

वे बैठ गए। आज वे एक तरह की थकावट अनुभव कर रहे थे। वे स्पष्ट देख रहे थे कि उनकी आँखों के आगे एक तरह की निराशा का धुँधलापन घिरता आ रहा है। और फिर उन्होंने अपने सारे शरीर को एक झटका दिया, अपनी आत्मा पर घिरती हुई शिथिलता को दूर करने के लिए। उन्होंने नौकर से कहा, "उमा को भेज दो!"

उमानाथ अपने कमरे में लेटा हुआ एक उपन्यास पढ़ रहा था। उसे श्यामनाथ के आने का पता न था। कमरे में आकर उसने श्यामनाथ को देखा और अभिवादन किया, "काका, प्रणाम!"

पर अपने अभिवादन का उत्तर न पाकर उसे आश्चर्य हुआ। श्यामनाथ अर्धमूर्छित अवस्था में बैठे थे। जो कुछ हो रहा था, उन्हें शायद इस सब का पता न था।

रामनाथ ने कहा, "उमा! प्रभा गिरफ़्तार हो गया है, रेल पर डाँका डालने के जुर्म में! मुझे अभी इसी समय चलना है!"

"कहाँ?" उमानाथ ने पूछा।

"कहाँ?" रामनाथ ने श्यामनाथ की ओर मुड़ कर पूछा, "प्रभा इस समय कहाँ है? फ़तहपुर में या कानपुर में?"

"इलाहाबाद में है!" श्यामनाथ ने कहा, "मैंने उसे डाक्टर अवस्थी के यहाँ इलाज कराने भेजा था, वहीं वह गिरफ्तार हुआ। लेकिन शायद उसे वे लोग कानपुर ले आए हों।"

"लेकिन चलना कहाँ होगा?" रामनाथ ने पूछा।

"कानपुर!" श्यामनाथ ने उठते हुए कहा, "भइया, कानपुर में ही कोशिश करनी होगी, क्योंकि मामला अभी तक पुलिस के हाथ में है! और यह खैरियत है कि मामला अभी तक पुलिस के ही हाथ में है!"

"पुलिस के हाथ में है—और इसमें तुम मेरी मदद लेने आए हो? क्यों—तुम क्या यह सब नहीं कर सकते?" रामनाथ ने पूछा।

श्यामनाथ फूट पड़े, "भइया, मेरे हाथ पैर ढीले पड़ गए हैं। अगर सरे का मामला होता तो मैं सब कुछ कर सकता था, लेकिन यह मामला रे लड़के का है, मेरा है! भइया, आप मेरे साथ चलिये, मेरे दिल में एक कार का भय समा गया है—मेरे प्राणों में एक प्रकार की निराशा भर ाई है!"

उमानाथ ने कहा, "भइया, अगर आप उचित समझें तो मैं बड़के भइया को भी खबर दे दूँ!"

"क्या दया यहाँ है?" श्यामनाथ ने पूछा।

"जी हाँ! मार्कण्डेय भइया के यहाँ ठहरे हैं!" उमानाथ ने कहा, आपको मालूम हो गया होगा कि यहाँ क्या-क्या हो चुका है।

"दया को अभी खबर दो जा कर—उसे अपने साथ लेते आओ!" श्यामनाथ ने अधीर होकर कहा।

"नहीं, दया को खबर देने कोई ज़रूरत नहीं, न कोई फ़ायदा है। गाड़ी तैयार करो, उमा! अभी चलना है, इसी समय!" यह कह कर रामनाथ तिवारी उठ खड़े हुए।

३

प्रभानाथ की गिरफ़ारी की खबर दयानाथ को सुबह मिली, और इस खबर को सुनकर वह स्तब्ध हो गया। उसे यह भी मालूम हुआ कि उसके पिता, उमानाथ और श्यामनाथ रात के समय ही कानपुर के लिए रवाना हो गए। मार्कण्डेय से दयानाथ ने कहा, "सुना!"

मार्कण्डेय मुसकराया, "हाँ दयानाथ, सुना! और यह सब सुनकर मुझे ज़रा भी ताज्जुब नहीं हुआ। प्रभानाथ क्रान्तिकारी हो सकता है, इसकी कल्पना तुम लोगों में से किसी ने न की होगी, मैं कहता हूँ, मैंने भी नहीं की थी। लेकिन इसमें ताज्जुब की कोई बात नहीं। उसमें क्रान्तिकारी बनने की हिंसा

मौजूद थी—वह हिंसा जो तुम्हारे कुल के सब लोगों को मिली है—तुम्हें भी मिली है ! तुम उस हिंसा से मुक्त नहीं हो, दयानाथ !"

आश्चर्य से दयानाथ ने मार्कण्डेय की ओर देखा, "क्या कहा, मार्कण्डेय ? मुझमें हिंसा है ?"

इस बार मार्कण्डेय हँस पड़ा। "हाँ दया ! तुममें भी हिंसा है, उतनी ही जितनी तुम्हारे पिता में है। अन्तर केवल इतना है कि तुम्हारे अन्दर वाली हिंसा किसी हद तक दबी हुई है। तुम जानते हो कि यह हिंसा क्या है ? यदि तुम हिंसा का विश्लेषण कर सको तो समझ जाओगे !"

दयानाथ ने सीधे-सादे भाव से कहा, "हिंसा को मैं अच्छी तरह जानता हूँ ! उसका विश्लेषण मैं क्या करूँ ? हिंसा है दूसरों पर प्रहार करने की प्रवृत्ति ! और मैं समझता हूँ कि मैं दूसरे पर प्रहार करने वाली प्रवृत्ति को पूरी तौर से दबा चुका हूँ !"

मार्कण्डेय ने सर हिलाया, "नहीं दया ! तुम समझते भर हो; पर वास्तविकता इससे भिन्न है ! अच्छा बताओ, हम दूसरों पर प्रहार क्यों करते हैं ? तुम कहोगे कि यह हमारी एक प्रवृत्ति भर है ! पर बात यहीं खत्म नहीं हो जाती ! हमें और आगे बढ़ना पड़ेगा। दूसरों पर प्रहार करने की यह प्रवृत्ति हमारी अहम्मन्यता का रूपान्तर भर है ! जिसमें जितनी अधिक अहम्मन्यता है, उसमें उतनी ही अधिक भयानक रूप में दूसरों पर प्रहार करने की प्रवृत्ति है। और मैं जानता हूँ दया कि तुममें अहम्मन्यता है, उतनी ही अधिक जितनी तुम्हारे पिता में अथवा अन्य भाइयों में है !"

दयानाथ कुछ देर तक सोचता रहा, फिर उसने कहा, "लेकिन, मार्कण्डेय, मैं तो अहम् पर विश्वास करने वाला हूँ और जहाँ अहम् होगा वहाँ अहम्मन्यता भी होगी। अगर तुम समझते हो कि हमारे विकास के लिए अहम् को मिटा देना अनिवार्य है तो मैं तुमसे असहमत हूँ, क्योंकि अहम् एक मनोवैज्ञानिक सत्य है और कोई भी समझदार व्यक्ति इस सत्य की उपेक्षा नहीं कर सकता।"

मार्कण्डेय के पास उत्तर तैयार था "मैंने कब कहा कि अहम् मनोवैज्ञानिक सत्य नहीं है। अगर मैं इस बात से इनकार करता तो मैं न जाने कब का समाजवादी बन गया होता। लेकिन दया! अहम् में और अहम्मन्यता में भेद है! अहम् और अहम्मन्यता के भेद को जान लेना तथा इसके बाद अहम्मन्यता को छोड़ कर केवल अहम् का विकास करना—यह एक असाधारण साधना है। यह याद रखना, अहम्मन्यता अहम् और दूसरों के पार्थक्य से होती है, अहम्मन्यता सीमित और अविकसित अहम् का गुण है जिसमें वह बुद्धि और ज्ञान तो मानवता के लिए वरदान-रूप में आए हैं, अभिशाप बन जाया करते हैं। हमारी आज की दुरवस्था का मूल कारण यह सीमित और संकुचित अहम् है। इस अहम् को असीमत्व प्रदान करना, दूसरों को दूसरा न समझ कर अपना समझना—यही अहम् का विकास है और यही अहम्मन्यता का विनाश है!"

"शायद तुम ठीक कहते हो!" दयानाथ ने कहा, "और मैं इतना मानता हूँ कि मेरे कुल में हर एक आदमी में अहम्मन्यता है! और...... और......जाने भी दो, मार्कण्डेय!" दयानाथ अपनी ही बात में उलझ कर कुछ सोचने लगा।

"क्यों, क्या सोच रहे हो?" मार्कण्डेय ने पूछा।

"यही की मुझे आज ही कानपुर चल देना चाहिये! प्रभा गिरफ़्तार हो गया; सब लोग कानपुर गए हैं, और मैं यहाँ पड़ा हूँ!"

"लेकिन तुम जा कर ही क्या करोगे? इस मामले में तुम्हारा बीच में पड़ना ठीक नहीं। उससे मामला बिगड़ ही सकता है। तुम उसे सुधार न सकोगे!"

"हाँ, यह ठीक कहते हो। लेकिन फिर भी इस समय मेरा कानपुर में होना ज़रूरी है। प्रभानाथ की पैरवी में मदद कर सकता हूँ। इसके अलावा कांग्रेस का भी काम है!"

उसी दिन शाम के समय दयानाथ कानपुर के लिए रवाना हो गया।

जस समय वह घर पहुँचा उसने देखा कि उमानाथ वहाँ मौजूद है और वह पण्डित ब्रह्मदत्त से बातें कर रहा है। पण्डित ब्रह्मदत्त ज़ोरों में कह रहे थे, "कामरेड! मजाल है कि वे लोग मुझे बिना मेरी इच्छा के जेल में रख सकते! नाकों चने चबवा दिये, नाकों! आखिरकार झख मार कर मुझे छोड़ना ही पड़ा!"

"लेकिन यह क़ैदियों का यूनियन! यह तो बड़ा नया-सा आइडिया था!" उमानाथ ने मुसकराते हुए कहा!

"क्यों? नए आइडिया की क्या बात! आखिर जेल के क़ैदी भी तो वर्कर्स हैं, ठीक उसी तरह जिस तरह मिल के मज़दूर! फ़र्क इतना है कि जहाँ क़ैदी एक इमारत में क़ैद है वहाँ मज़दूर एक क्षेत्र में। वास्तविक स्वाधीनता किसी को भी प्राप्त नहीं है। फिर मिल के मज़दूरों का जितना शोषण किया जाता है उससे कहीं अधिक क़ैदियों का शोषण होता है! मैं कहता हूँ कि उन क़ैदियों को, वे जो काम करते हैं, उसकी मज़दूरी क्यों नहीं दी जाती? आप कहेंगे कि उन्हें सज़ा मिली है। और सज़ा मिलने की वजह से वे लोग बन्द कर दिये गये हैं। बाहर घूम नहीं सकते, कहीं निकल नहीं सकते, किसी को देख नहीं सकते, किसी से मिल नहीं सकते। दुनिया की सारी की सारी हँसी, खुशी उनसे छीन ली गई है। न उन्हें बीबी का सुख, न उन्हें बच्चों का सुख! इतनी सज़ा क्या उन्हें काफ़ी नहीं है जो उन क़ैदियों से बड़ी से बड़ी मेहनत ली जाय और वह भी जबर्दस्ती, फिर इसके बाद उन्हें उनकी मेहनत की मज़दूरी न दी जाय! नतीजा यह होता है कि जब वे जेल के बाहर निकलते हैं तो भूखे और कंगाल। इसके अलावा मुलज़िम होने का टप्पा भी उनके लगा होता है। और इस सब का नतीजा यह होता है कि जेल के बाहर आते ही उन्हें जुर्म करने की ज़रूरत होती है।"

उमानाथ मुसकराया, "बात तो तुमने बड़े पते की कही। विलायत में क़ैदियों को उनके काम की तनख्वाहें मिलती हैं। लेकिन तुम्हारा यह क़ैदियों का यूनियन कहाँ तक चला?"

ब्रह्मदत्त हँस पड़ा, "अभी यह क़ैदियों का यूनियन क्या चलेगा! वह तो मैंने जेलर को यह दिखलाने के लिए चलाया था कि मैं क्या बला हूँ!"

दयानाथ को देखते ही उमानाथ ने बातचीत बन्द कर दी। उठते हुए उसने कहा, "आप आ गए बड़के भइया—बड़ा अच्छा किया।"

"ददुआ और काका कहाँ ठहरे हैं?" दयानाथ ने पूछा।

"होटल में! मैंने बहुत कहा कि यहाँ ठहरें, और काका जी ने भी ज़ोर दिया, लेकिन ददुआ को तो आप जानते ही हैं कितने ज़िद्दी आदमी हैं। मुझसे भी वहीं ठहरने को कह रहे थे, लेकिन मैंने साफ़-साफ़ कह दिया कि घर रहते हुए मैं होटल में नहीं ठहर सकता।"

कुर्सी पर बैठते हुए दयानाथ ने कहा, "हाँ; तो उमा क्या बात है? प्रभा क्यों गिरफ़्तार हुआ।"

"कुरुस्तीकलाँ की डकैती के सिलसिले में—वह भी उस डकैती में शामिल था। भइया, प्रभा क्रान्तिकारी हो सकता है, इसकी मैंने कल्पना भी न की थी!"

"मुझे भी ताज्जुब हो रहा है उमा! कितना शान्त और सुशील! यह सब क्या हो रहा है?" और दयानाथ उठ कर घर के अन्दर चलने लगे। तब तक ब्रह्मदत्त ने कहा, "नमस्कार दयानाथजी! आपने तो मुझे देखा तक नहीं!"

"अरे पण्डित ब्रह्मदत्तजी! क्षमा कीजियेगा—दिमाग़ अजीब उलझन में है!" दयानाथ ने मुड़ कर कहा।

"जी हाँ! जब दिमाग़ है तब वह कभी-कभी उलझन में भी हो सकता है!" और ब्रह्मदत्त अपने उस कटु व्यंग पर खिलखिला कर हँस पड़ा।

दयानाथ को ब्रह्मदत्त का हँसना उसके व्यंग से भी अधिक बुरा लगा, उसने कहा, "ब्रह्मदत्तजी! संस्कृति नाम की एक चीज़ होती है जो लोगों को बड़ी मुश्किल से मिलती है। मुझे दुःख है कि वह संस्कृति आपको नहीं मिल

की। लेकिन शायद इसमें आपका दोष नहीं है—दोष है हमारे समाज का !" और दयानाथ अन्दर चला गया।

ब्रह्मदत्त ज़ोर से हँस पड़ा, "संस्कृति ! संस्कृति ! उमानाथ जी—सुना आपने ! कितनी मज़ेदार बात है !" लेकिन उसके तमतमाए हुए चेहरे से यह स्पष्ट था कि ब्रह्मदत्त पर आघात हुआ है, ऐसा आघात कि वह तिलमिला उठा है, "शायद संस्कृति के ठीकेदार वे लोग हैं जिनके पास पैसा है, जो अमीर घरों में पैदा हुए हैं, जिन्हें जीवन में सब प्रकार की सुविधाएँ मिली हैं ! कितनी मज़ेदार बात है !" और ब्रह्मदत्त हँसता रहा, मानो वह अपनी इस व्यंगात्मक और कुरूप हँसी से अपने दिल पर लगी हुई चोट की मरहम-पट्टी करने का प्रयत्न कर रहा हो।

उमानाथ ने बात को सम्हालने की कोशिश की, "ब्रह्मदत्तजी, आपने सुना ही है कि प्रभानाथ गिरफ़्तार हो गया है। बड़के भइया की बात पर इसलिए बुरा न मानियेगा। हम सब लोग इस मामले में बहुत अधिक परीशान हैं !"

"कोई बात नहीं कामरेड ! ऐसी बातें तो करीब-करीब रोज़ ही सुनने को मिलती हैं—एक तरह से मैं इन बातों को सुनने का आदी हो गया हूँ !" ब्रह्मदत्त ने सम्हलते हुए कहा, "लेकिन यह संस्कृति, यह सभ्यता ! समाज की विषमता द्वारा उत्पन्न ये चीज़ें—इन पर वे लोग जो समाज में समता उत्पन्न करने के दावेदार हैं, गर्व कैसे कर सकते हैं; यह कांग्रेस वाले पूँजीपति, ये कितने झूठे और ढोंगी हैं ! अच्छा खाते हैं और पहनते हैं !"

"हाँ, अधिकांश आदमी ऐसे हैं ब्रह्मदत्त ! लेकिन यह तो मानना ही पड़ेगा कि जो सच्चे कांग्रेसवाले हैं, जिनका अहिंसा पर पूर्ण विश्वास है, वे ऐसे नहीं हैं !"

"बिल्कुल ग़लत ! मैं कहता हूँ कि सबके सब ऐसे हैं। जब मैं देखता हूँ उन लोगों को जो सर हिला कर मेरे साथ सहानुभूति दिखलाते हैं, जो मुझ पर दया का भाव प्रदर्शित करते हैं, तब मैं सच कहता हूँ मेरी तबीअत जल

उठती है। मुझे ऐसा लगता है कि वह आदमी मेरा उपहास कर रहा है, मेरा ही नहीं, सारी मनुष्यता का उपहास कर रहा। मैं कहता हूँ मुझसे लड़ो, मुझसे झगड़ो, मुझे गाली दो—मुझे ज़रा भी बुरा न लगेगा, क्योंकि यह सब तुम मेरी बराबरी में आकर करते हो; लेकिन जब तुम मुझसे लड़ना टाल जाते हो, यह प्रदर्शित करते हुए कि तुम इतने ऊँचे हो कि मुझसे लड़ना-झगड़ना तुम्हें शोभा नहीं देता, और इसलिए लड़ने-झगड़ने की जगह तुम मेरे साथ प्रेम, दया, सहानुभूति की बात चलाने लगते हो, तब मुझे ऐसा मालूम होता है कि तुम मुँह चिढ़ा रहे हो, तुम मेरा उपहास कर रहे हो!"

उमानाथ ब्रह्मदत्त की बात सुन रहा था और उसे ताज्जुब हो रहा था ब्रह्मदत्त की उस बात पर। जो कुछ वह ब्रह्मदत्त के सम्बन्ध में जानता था, जितना कुछ उसे ब्रह्मदत्त का अनुभव था, उससे वह कल्पना भी न कर सकता था कि ब्रह्मदत्त ऐसे महत्वपूर्ण सत्य की तह तक पहुँच सकता है। उसने कहा, "लेकिन ब्रह्मदत्त, इतना कटु होने की आवश्यकता नहीं! तुम्हारे अन्दरवाली कटुता दूसरे का अहित करने के स्थान पर तुम्हारा ही अहित कर सकती है। इस कटुता से ऊपर उठ कर रचनात्मक कार्य करने में ही कल्याण है!"

"हाँ, मैं यह जानता हूँ! लेकिन कामरेड, ज़रा सोचो तो, यह कटुता कितनी मनोवैज्ञानिक है। आप लोग ऊँचे समाज के हैं, सम्पन्न हैं, आपको ऊँची शिक्षा प्राप्त करने की सुविधाएँ मिली हैं! लेकिन मैं ग़रीब घर में पैदा हुआ; तिरस्कार और अपमान के बीच में मैं पला, ऊँची शिक्षा मिलने के साधनों का सर्वथा अभाव था। जहाँ त योग्यता, लगन, कर्मण्यता का सवाल है, वहाँ मैं किसी से कम नहीं हूँ। लेकिन फिर भी देखता हूँ कि लोग लगातार मुझे दबाने का प्रयत्न करते हैं। नित्य ही मुझे इन घमण्डी अमीरों के सामने आना पड़ता है, इनकी अहम्मन्यता का मुझे मुक़ाबिला करना पड़ता है। आप जानते नहीं कामरेड! कभी किसी पूँजीपति के सम्पर्क में आप अभाव की स्थिति में नहीं आए। आप अपनी सारी योग्यता

और सारी ईमानदारी लेकर किसी भी मूर्ख से मूर्ख और चरित्रहीन से चरित्र-हीन पूँजीपति के सामने जाइये, और आप देखियेगा कि वह आपके व्यक्तित्व को चाँदी और सोने के पाटों के बीच में डाल कर पीस कर रख देने की कोशिश करेगा। मैं पूछता हूँ दुनिया में कौन-सा नेता है, कौन-सा महात्मा है जो पूँजीपति के इशारों पर न नाचता हो?"

उमानाथ ब्रह्मदत्त के तर्कों का उत्तर न दे सकता था, क्योंकि वे स्वयम् उमानाथ के तर्क थे। अन्तर केवल इतना था कि जहाँ वह उमानाथ का पढ़ा हुआ तर्क भर था, वहाँ वह ब्रह्मदत्त का अनुभव था और उन अनुभवों से जनित उसके गहन विश्वास से भरा हुआ विद्रोहात्मक व्यक्तित्व था। उस समय घड़ी ने रात के दस बजाए।

ब्रह्मदत्त उठ खड़ा हुआ, "अरे! दस बज गए और मैं अभी तक आपके यहाँ बैठा रहा। अब आप सोइये जाकर कामरेड उमानाथ!"

"तो कामरेड, कल मिलना! जहाँ तक मैं समझता हूँ कांग्रेस का काम-काज ढीला पड़ने लगा है; और लोगों की दौड़-धूप से यह पता चलता है कि कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार में जल्दी ही कोई समझौता होने वाला है। लिहाज़ा अब हमारे काम-काज करने का अवसर आ रहा है, और उसकी तैयारी करनी है। सब कार्य-कर्ताओं से मिल कर एक भावी कार्यक्रम बनाना पड़ेगा।

"हाँ कामरेड! मैं कल सुबह नौ बजे आऊँगा!" यह कह कर ब्रह्मदत्त चला गया।

४

कानपुर आकर जो पहिला काम पण्डित रामनाथ तिवारी ने किया वह था विश्वम्भर दयाल से मिलना। उस समय विश्वम्भर दयाल अपने होटल में बैठे नाश्ता कर रहे थे और माताप्रसाद उनके सामने बैठे थे। विश्वम्भर दयाल कह रहे थे, "यहाँ तक पहुँच गया हूँ माता प्रसाद साहेब; जिस काम

को हाथ में उठाया, इतनी बड़ी उम्मीदों के साथ, उसे यहाँ तक ले आया। अब आगे क्या होगा ? उसकी कल्पना कर सकता हूँ !" इसी समय नौकर ने पण्डित रामनाथ तिवारी के आने की सूचना दी।

विश्वम्भर दयाल राजा रामनाथ तिवारी का स्वागत करने के लिए बाहर गए और उन्हें कमरे में ले आए। तिवारी जी को बिठलाते हुए विश्वम्भरदयाल ने कहा, "कहिए राजा साहब ! क्या सेवा कर सकता हूँ ?"

पण्डित रामनाथ तिवारी थोड़ी देर तक अपने सामने बैठे हुए आदमी को ग़ौर से देखते रहे। एकहरे बदन का आदमी, चेहरा किसी क़दर कुरूप, लम्बी नाक और चमकीली आँखें। पण्डित रामनाथ ने समझ लिया कि जो आदमी उनके सामने बैठा है वह असाधारण बुद्धि का आदमी है और किसी हद तक ज़िद्दी तथा अपनी धुन का पक्का। ज़रा सम्हलते हुए रामनाथ तिवारी ने बात आरम्भ की, "मैं आपसे प्रभानाथ के सम्बन्ध में बात करने आया था !"

"हाँ-हाँ ! लेकिन आपको कष्ट उठाने की क्या ज़रूरत थी। पण्डित श्यामनाथ तिवारी से तो मैंने साफ़-साफ़ कह दिया था कि प्रभानाथ मेरे लड़के की तरह है, उस पर आँच न आने पावेगी !" मुसकराते हुए विश्वम्भर दयाल ने कहा।

"जी हाँ, आपकी मेहरबानी है ! लेकिन मैं आपसे स्पष्ट और काम की बात करने आया हूँ। आपको इसमें कोई एतराज़ तो न होगा ?" यह कह कर पण्डित रामनाथ तिवारी ने माताप्रसाद की ओर इस प्रकार देखा मानो उस आदमी की उपस्थिति में उन्हें बात कहने में संकोच हो रहा हो।

विश्वम्भरदयाल ने माताप्रसाद से कहा, "माता प्रसाद साहेब, आपको बाज़ार जाना था न ! देखिये मेरे लिए कुछ फल लाना न भूलियेगा !"

माताप्रसाद वहाँ से उठ कर चले गए। थोड़ी देर रुक कर रामनाथ ने कहा, "जी ! मैं यह दरियाफ़्त करने आया था कि आप इस लड़के की जान की क्या क़ीमत चाहते हैं ?"

विश्वम्भरदयाल इस तरह के प्रश्न सुनने का आदी था। वह मुसकराया, "वह क़ीमत क्या आप दे सकेंगे राजा साहेब ?—"

"आप बतलाइये तो सही—" रामनाथ ने कहा, "दस हज़ार, बीस हज़ार, एक लाख—कितना चाहते हैं आप ?

विश्वम्भरदयाल हँस पड़ा, "जी, आप मुझे ग़लत समझ रहे हैं राजा साहेब ! मैं पैसों का भूखा नहीं हूँ; आपकी कृपा से मैं भी बहुत बड़े सम्पन्न कुल का आदमी हूँ—पचास हज़ार—लाख मैं आसानी से खर्च कर सकता हूँ ! नहीं राजा साहेब—रुपए-पैसे में जान की क़ीमत समझ कर मुझसे बात करने आकर आपने ग़लती की !"

विश्वम्भरदयाल के इस उत्तर से रामनाथ सकपका गए, "फिर–फिर–" तिवारी जी आगे न कह सके; उनकी समझ में न आ रहा था कि अब क्या कहा जाय।

लेकिन इस अजीब मनोवैज्ञानिक परिस्थिति से विश्वम्भरदयाल ने उन्हें निकाल लिया, "मैं जानता हूँ कि आप क्यों आए हैं और क्या चाहते हैं ! आप आए हैं प्रभानाथ को छुड़ाने; और मुझे अफ़सोस है कि उसका जुर्म बड़ा संगीन है—वह जुर्म है ब्रिटिश सरकार को उलटने की कोशिश करना।"

"आप अच्छी तरह जानते हैं कि वह ब्रिटिश सरकार को नहीं उलट सकता, यह उसका लड़कपन था कि वह उन बाग़ियों के गिरोह में शामिल हो गया !"

"जी हाँ, यह मैं जानता हूँ। लेकिन दूसरा जुर्म जो उससे भी ज़्यादा संगीन है, वह है कि उसने या उसके साथी ने दो सिपाहियों की हत्या की है।"

"मिस्टर विश्वम्भरदयाल ! इसीलिए मैं आपके पास आया हूँ !"

"आप मेरे यहाँ आए हैं राजा साहेब, और इसी लिए मैंने आपसे कहा

था कि आपके लड़के पर आँच न आवेगी। सिर्फ़ वह थोड़ी सी मदद कर दे। और मैं आपसे वादा करता हूँ कि मैं उस पर से हत्या का मामला भी हटा लूँगा!"

"कैसी मदद आप चाहते हैं?" रामनाथ ने पूछा।

"जी, मैं सिर्फ़ इतना चाहता हूँ कि वह अपने साथियों का नाम व पता बतला दे!"

विश्वम्भरदयाल की बात सुन कर पण्डित रामनाथ तिवारी थोड़ी देर तक मौन बैठे रहे, इसके बाद उन्होंने धीरे से कहा, "तो आप उसे मुखबिर बनाना चाहते हैं?"

"जी...मुखबिर क्या, मैं एक तरह से इस बड़े काम में उसकी मदद चाहता हूँ!" लड़खड़ाते हुए विश्वम्भर दयाल ने कहा।

रामनाथ उठ खड़े हुए, "मिस्टर विश्वम्भरदयाल! आप प्रभानाथ से ऐसा काम कराना चाहते हैं जो उसके नाम पर ही नहीं, हम लोगों के नाम पर भी बहुत बड़ा कलंक होगा। जहाँ तक मेरा ख़याल है, प्रभानाथ आप की यह शर्त किसी हालत में न मंजूर करेगा। क्या उसे बचाने का कोई दूसरा तरीक़ा नहीं है?"

पण्डित रामनाथ तिवारी के उठने के साथ विश्वम्भरदयाल भी उठ खड़ा हुआ था, "जी! मैंने आप को सब से आसान तरीक़ा बतलाया है राजा साहेब, और इस तरीक़े पर आपको तो कोई एतराज़ न होना चाहिये। आखिर मैं चाहता क्या हूँ? मुजरिमों को गिरफ़्तार करना! पीठ-पीछे वार करने वालों को ढूँढ़ निकालना! ये बड़े खतरनाक क़िस्म के मुजरिम हैं, इनको गिरफ़्तार करने में मदद देना तो हरेक आदमी का कर्तव्य है!"

रामनाथ अच्छी तरह समझ गए कि विश्वम्भरदयाल से अधिक बात करना बेकार है, वे जानते थे कि उस पुलिस अफ़सर से वे पराजित हुए। और वे यह भी समझ गए थे कि विश्वम्भरदयाल उस समय शक्तिशाली

है। उन्होंने कहा, "देखिये! इस मामले में आप अभी जल्दी न कीजियेगा; मैं ग़ौर करूँगा।"

रामनाथ तिवारी को उनकी कार तक पहुँचा कर जब विश्वम्भरदयाल कमरे में लौटा तब उसे अच्छा न लग रहा था। उसे ऐसा लग रहा था कि उसका दाँव ठीक नहीं पड़ा। रामनाथ तिवारी की हिचकिचाहट से भरी मुद्रा में उसने कुछ ऐसी बात देखी जिससे उसे एक प्रकार की निराशा हुई। उसने श्यामनाथ तिवारी को देखा था, और उसने देख लिया था कि श्यामनाथ तिवारी कमज़ोर आदमी हैं, भावुक और व्यक्तित्व हीन। और श्यामनाथ को पहिचान लेने के बाद उसे अपनी सफलता पर विश्वास हो गया था। लेकिन आज—रामनाथ से मिल कर, उनसे बातचीत करके उसका वह विश्वास डिग गया। प्रभानाथ श्यामनाथ का नहीं बल्कि रामनाथ का पुत्र है, विश्वम्भर दयाल को यह भी मालूम हो गया था।

माताप्रसाद ने बाज़ार से लौट कर देखा कि विश्वम्भरदयाल गुम-शुम कुरसी पर बैठे कुछ सोच रहे हैं। मुसकराने का प्रयत्न करते हुए माता-प्रसाद ने पूछा, "कहिये! राजा सहेब से क्या बातचीत हुई!"

विश्वम्भरदयाल ने सर उठाया, "बहुत थोड़ी-सी बात हुई, नपी-तुली बात हुई और साथ ही जो बात हुई वह मुझे अच्छी नहीं लगी!"

"उस बातचीत को अगर आप मुझे बतला दें तो कोई हर्ज तो न होगा? मुमकिन है मैं आप की कुछ मदद ही कर सकूँ!" माताप्रसाद ने कहा।

"आप शायद इस मामले में मेरी ज़्यादा मदद न कर सकेंगे। लेकिन चूँकि मैंने इस मामले में आपको शामिल कर लिया है इसलिए मैं आप से कोई बात न छिपाऊँगा। राजा साहेब मुझे रिश्वत देने आए थे!"

माताप्रसाद को इस बात पर कोई आश्चर्य नहीं हुआ, "कितनी रिश्वत दे रहे थे?"

मुसकराते हुए विश्वम्भरदयाल ने कहा, "अगर मैं चाहता तो एक लाख तक दे देते !

"एक लाख !" माताप्रसाद की आँखें फैल गईं, "बड़ी लम्बी रक़म है ! और आपने इनकार कर दिया ?"

"क्यों ? क्या आप समझते हैं कि मैं एक लाख पर बिक सकता हूँ ?" विश्वम्भरदयाल ने माताप्रसाद को कौतूहल की नज़र से देखते हुए कहा, "तो फिर आप मुझे अभी तक नहीं पहचान सके माताप्रसाद साहेब ! मैं रुपयों का भूखा नहीं हूँ। भगवान की कृपा से मेरे पास बहुत कुछ है। मुझे चाहिये ताक़त, ओहदा, इज़्ज़त ! मैं इस क्रान्तिकारी दल को ढूँढ निकालना चाहता हूँ।"

"फिर ?" माता प्रसाद ने ऐसे स्वर में कहा मानों उन्हें विश्वम्भरदयाल की महत्वाकांक्षाओं में कोई भी दिलचस्पी नहीं है।

"मैंने अपनी शर्त पेश की कि प्रभानाथ मुखबिर बन जाय। लेकिन इसमें रामनाथ तिवारी कुछ पशोपेश करते दिखलाई दिये।"

माताप्रसाद अब फूट पड़े, "आपने बहुत बड़ी ग़लती की ! एक मौक़ा हाथ में आया था, वह निकल गया। लम्बी रक़म हाथ लग रही थी। आपने अभी तो उसे लड़के के बाप से बात की है, जब बाप इतना पशोपेश कर रहा है, तब लड़का यक़ीनन मुखबिर बनने से इनकार कर देगा। मैं आपसे कहे देता हूँ कि आप ने ग़लत रास्ता अपनाया है, और आप देखेंगे कि आप महज़ हवाई क़िले बना रहे हैं।"

विश्वम्भरदयाल उठ खड़े हुए, उनके मुख पर एक अजीब तरह की कठोरता आ गई थी, "क्या आप ठीक कह रहे हैं माताप्रसाद साहेब ? क्या वास्तव में इसमें मुझे असफलता मिलेगी ? नहीं, आप ग़लती करते हैं। मैंने उस लड़के को देखा है, ग़ौर से देखा है। और मुझे यकीन है कि वह कमज़ोर दिल का है, कमज़ोर तबीअत का है ! क्या वह मौत का मुक़ाबिला कर सकता है ! शायद ! लेकिन उसमें कमज़ोरी है, और उसकी कमज़ोरी

का मैं फ़ायदा उठाना चाहता हूँ ! किस तरह से ? सवाल मेरे सामने यह है !"

५

जिस समय ब्रह्मदत्त उमानाथ से मिलने के लिए दयानाथ के बँगले में पहुँचा, उसने देखा कि दयानाथ अकेले ड्राइंग-रूम में बैठा हुआ कुछ सोच रहा है। दयानाथ ने ब्रह्मदत्त को देखा या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता, पर दयानाथ वैसा का वैसा बैठा रहा। ब्रह्मदत्त ने दरवाज़े पर रुक कर कहा, "माफ़ कीजियेगा दयानाथ जी ! मैं उमानाथ जी से मिलने आया हूँ। उन्होंने मुझसे इस समय यहां मिलने को कहा था !"

"ओह ! क्षमा कीजियेगा—मैंने आपको देखा नहीं था।" दयानाथ ने ब्रह्मदत्त का स्वागत करने के लिए उठते हुए कहा, "आइये ! दरवाज़े पर क्यों खड़े हैं ?"

"मुझे डर मालूम होता था कि कहीं आप मुझे कमरे से निकाल बाहर न करें !" हँसते हुए ब्रह्मदत्त ने कहा। कमरे में आकर वह सोफ़े पर पैर फैला कर बैठ गया, "क्यों दयानाथ जी ? आप इतना अधिक चिन्तित क्यों हैं ?"

"क्या बतलाऊँ ब्रह्मदत्त जी ! आप जानते ही हैं कि पिता ने मुझे त्याग दिया है ! वे मुझसे इतना अधिक नाराज़ हैं कि कानपुर आ कर वे होटल में ठहरे। प्रभानाथ की गिरफ़्तारी की मुझे ख़बर तक देने की ज़रूरत भी उन्होंने नहीं समझी ! मैं सोच रहा था कि आख़िर यह सब क्या हो रहा है और क्यों हो रहा है ?" और ब्रह्मदत्त ने देखा कि दयानाथ के मुख पर एक अजीब तरह की विवशता है !

दयानाथ की इस विवशता पर ब्रह्मदत्त को दयानाथ की ओर सहानुभूति हुई या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता, उसने गम्भीरतापूर्वक कहा, "हां दयानाथ जी ! दुनिया बड़ी विचित्र जगह है, और इस विचित्र जगह में बातें भी बड़ी विचित्र होती हैं। लेकिन यह सवाल—यह तो कोई नई चीज़ नहीं

है। मैं कहता हूँ कि अधिकांश मनुष्यों में यह संघर्ष रोज का क़िस्सा बन गया है। एक तरह से मैं तो यहाँ तक कह सकता हूँ कि एक साधारण आदमी का सारा अस्तित्व ही इसी संघर्ष में है। मैं जब अपने जीवन का अध्ययन करता हूँ; अपने अतीत पर मनन करता हूँ, वर्तमान को देखता हूँ, भविष्य की कल्पना करता हूँ तब मुझे आश्चर्य होने लगता है कि मैं ज़िन्दा कैसे हूँ। दयानाथ जी, मेरी सलाह तो यह है कि भावुकता को तिलांजलि देकर जिस प्रकार आपके सामने जीवन आता जाय उसी रूप में आप उसे स्वीकर कर लीजिये।"

ब्रह्मदत्त ने जो बात कही थी वह अपने समझ से बड़े महत्व की बात कही थी, एक दार्शनिक सत्य की व्याख्या की थी लेकिन दयानाथ उस बात को सुन कर झल्ला उठा। दयानाथ ने अपना दुखड़ा रोया था ब्रह्मदत्त से कुछ सहानुभूति प्राप्त करने के लिए, दर्शन-शास्त्र पर एक लम्बा व्याख्यान सुनने के लिए नहीं। उसने तीव्र दृष्टि से ब्रह्मदत्त को देखा और फिर उठ खड़ा हुआ, भीतर जाने के लिए। पर दयानाथ दरवाज़े पर से उमानाथ का स्वर सुन कर रुक गया।

उमानाथ ब्रह्मदत्त से कह रहा था, "आ गए कामरेड! माफ़ करना, मैं ज़रा देर से सो कर उठा।" और उसने नौकर को पुकार कर चा और नाश्ता लाने का हुक्म दिया।

दयानाथ ने उमानाथ से पूछा, "उमा, क्या तुम ददुआ से आज मिलोगे?"

"जी हाँ! चा पीकर बस वहीं जा रहा हूँ! आप भी चलिये न!"

"नहीं उमा! मेरा वहाँ जाना ठीक न होगा। तुम जानते ही हो कि ददुआ ने मुझे अपने यहाँ आने से मना कर दिया है!"

"यह ठीक है, लेकिन होटल में जाकर उनसे मिल लेने में क्या हर्ज है? आखिर वे आपके पिता ही हैं, और उनके लिए यह एक बहुत बड़ी विपत्ति का काल है!" ब्रह्मदत्त ने दयानाथ से कहा।

"आप नहीं समझते ब्रह्मदत्त जी ! यह उनके ही लिए नहीं, मेरे लिए भी विपत्ति का काल है। प्रभा मेरा भी भाई है। लेकिन मेरे यहाँ रहते हुए भी ददुआ होटल में ठहरे। मैं बानापुर में मौजूद था, लेकिन प्रभानाथ की गिरफ़ारी की मुझे खबर तक देने से उन्होंने उमा को मना कर दिया था।" इसके बाद उसने उमानाथ से कहा, "नहीं उमा ! मैं नहीं जाऊँगा।"

उमानाथ ने उत्तर दिया, "आप ठीक कहते हैं। मैं भी यही समझता हूँ कि आपका वहाँ जाना ठीक न होगा।"

नाश्ता आ गया था और दोनों कामरेडों ने डटकर नाश्ता किया। इसके बाद उमानाथ ने ब्रह्मदत्त का हाथ पकड़ कर उठाते हुए कहा, "चलो कामरेड, अब चला जाय ! रास्ते में बातचीत होगी।" फिर उसने दयानाथ से कहा, "बड़के भइया, आपकी कार मैं लिए जा रहा हूँ। आपको कहीं जाना तो नहीं है ?"

"अभी तो नहीं, लेकिन जल्दी आ जाना। और बतलाना कि क्या-क्या हुआ ! मैं बहुत चिन्तित हूँ।"

उमानाथ ने चलते हुए ब्रह्मदत्त से कहा, "हाँ, तो मैं कह रहा था कि हम लोगों को अब अपना काम आरम्भ कर देना चाहिए। कानपुर के वर्तमान संगठन को मैं संतोषजनक नहीं समझता। जब मज़दूरों के इस प्रमुख केन्द्र की यह हालत है तब प्रान्त के अन्य स्थानों में क्या हालत होगी, इसकी कल्पना मैं कर सकता हूँ।"

"जी हाँ, मैं आपसे सहमत हूँ !" ब्रह्मदत्त ने उत्तर दिया, "जो काम हम यहाँ कर रहे हैं, उसमें हमें उत्साह नहीं, उमंग नहीं !"

"लेकिन मैं पूछता हूँ कि यहाँ पर काम ही क्या हो रहा है ?" उमानाथ ने गंभीरतापूर्वक पूछा, "कितने मज़दूरों को दुनिया की गतिविधि का पता है ? कितने मज़दूर अपनी वास्तविक स्थिति, अपने अभाव तथा अपने अधिकारों को समझते हैं ? कितने मज़दूर शिक्षित हैं ? क्या यहाँ मज़दूरों का कोई पत्र है ?"

"जी नहीं ! पत्र के लिए पूँजी की ज़रूरत होती है, और वह पूँजी हमारे पास नहीं है। फिर भला हम पत्र कैसे निकाल सकते हैं। लेकिन मेरा खयाल है कि मज़दूरों का एक पत्र होना अत्यन्त आवश्यक है !"

"मैं उस पूँजी का प्रबन्ध कर दूँगा। ब्रह्मदत्त जी ! पत्र का निकलना ज़रूरी है। आप अगले सप्ताह कानपुर के मज़दूर-नेताओं की एक सभा बुला लीजिए। मैं और लोगों के सम्पर्क में आना चाहता हूँ—उनसे मिलकर अपना एक कार्यक्रम निर्धारित करना चाहता हूँ।"

"अच्छी बात है; मैं सभा का प्रबन्ध कराए देता हूँ ! अगले रविवार को ठीक रहेगा न !"

"हाँ कामरेड !" कार उस समय तक मेस्टन रोड और चौक के चौराहे पर आ गई थी। कश्मीरी होटल, जहाँ उसके पिता ठहरे थे सामने दिख रहा था। उमानाथ मुसकराया, "अगर ब्रिटिश-राज के लिए कोई सबसे अधिक खतरनाक है तो मैं हूँ; न बड़के भइया हैं जिनको जेल जाने का सार्टीफ़िकेट मिल चुका है और न प्रभा है जिसकी फाँसी की तैयारियाँ हो रही हैं।"

कार रुक गई और ब्रह्मदत्त के साथ उमानाथ उतर पड़ा। ब्रह्मदत्त ने कहा, "अच्छा कामरेड अब मैं जाऊँगा; मैं आपसे परसों मिलूँगा।"

ब्रह्मदत्त को विदा करके उमानाथ होटल में पहुँचा।

उस समय पण्डित रामनाथ तिवारी पूजा से उठकर होटल के बरामदे में बैठे हुए मेस्टन रोड की भीड़ को देख रहे थे। उस समय वे न कुछ सोच रहे थे, न समझ रहे थे, वे केवल देख रहे थे—एकटक ! वे क्या देख रहे हैं, क्यों देख रहे हैं—इसका भी पता उन्हें न था।

विश्वम्भरदयाल से मिलने के बाद तिवारी जी किसी क़दर हत-बुद्धि से हो गए थे। उन्होंने काम इतना कठिन न समझा था जितना उन्हें विश्वम्भरदयाल से मिलने के बाद मालूम हुआ था। मुश्किल ही नहीं, उनके अन्दर से किसी ने कह दिया था, "काम असम्भव है !" और इस असम्भव शब्द ने उन्हें मर्माहत कर दिया था। शाम के समय जब विश्वम्भरदयाल के यहाँ

से वे असफल लौटे थे, उन्होंने श्यामनाथ से कोई बात नहीं की थी। सुबह से अभी तक श्यामनाथ से उनकी मुलाक़ात न हुई थी। उमानाथ जब रामनाथ के सामने पहुँचा तो रामनाथ ने कहा, "उमा! श्यामू कहाँ है? ज़रा उसे बुलाना!"

श्यामनाथ अपने कमरे में उदास लेटे हुए थे! उमानाथ ने उनसे कहा, "काका! दुदुआ आप को बुला रहे हैं!"

श्यामनाथ चौंक कर उठ खड़े हुए। उस समय उनका चेहरा मुर्झाया हुआ था, उनकी आँखें लाल थीं। रात भर उन्हें नींद न आई थी। रामनाथ ने पिछली रात उनसे बात नहीं की, इसी से वे समझ गए थे कि रामनाथ को काम में सफलता नहीं मिली। स्वयम् कुछ पूछने का उन्हें साहस न हुआ था। आज श्यामनाथ अपनी विवशता, अपनी निर्बलता, और अपनी कायरता बुरी तरह अनुभव कर रहे थे। उनका लड़का गिरफ़्तार हो गया था, और उसे बचाने का उनके पास कोई उपाय न था। रात भर वे सोचते रहे कि क्या किया जाय, पर उन्हें उस विषम समस्या का कोई हल न मिल सका था।

सर झुकाए हुए श्यामनाथ रामनाथ के सामने बैठ गए। रामनाथ ने कहा, "श्यामू—कल शाम मेरी विश्वम्भरदयाल से जो बात-चीत हुई उससे मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि वह आदमी सख्त है और ज़िद्दी है। इसी से मैंने उससे ज़्यादा बात नहीं की क्योंकि मेरी बात-चीत से मामला सुधरने की जगह बिगड़ सकता था। मेरा ख़याल है कि उससे तुम्हें बात-चीत करनी चाहिये।"

श्यामनाथ ने पूछा, "लेकिन आपसे क्या बातें हुईं?"

"क्या करोगे उन बातों को सुनकर, उनकी याद आते ही मेरा खून खौलने लगता है। उसने यह कैसे समझ लिया कि मेरा लड़का मुख़बिर बनने पर राज़ी हो जायगा!" थोड़ी देर रुक कर उन्होंने फिर श्यामनाथ से कहा, "तुम्हीं उससे मिलो, सम्हल कर बात करो। मुझे अधिक आशा तो नहीं है लेकिन सम्भव है तुम्हें कुछ सफलता मिल जाय!"

"क्या ले-देकर कुछ काम नहीं चल सकता ?" श्यामनाथ ने पूछा ।

"नहीं श्यामू—उस आदमी को पैसे का लोभ नहीं है । अगर उस आदमी के साथ कोई चीज़ काम कर सकती है तो वह है भावना !"

श्यामनाथ उठ खड़े हुए, "तो फिर मैं जा रहा हूँ । लेकिन भइया, न जाने क्यों मुझे उस आदमी से घृणा हो गई है । मैं उसका मुँह नहीं देखना चाहता, उससे बात करना तो दूर रहा । उफ़ ! मैं नहीं जानता था कि वह आदमी इतना भयानक निकलेगा, नहीं तो मैं उसे उस दिन अपने घर में लाता ही नहीं ।"

"ख़ैर, जो हो गया वह हो गया । वह तुम्हारे बस की बात नहीं थी । अब जो तुम्हारे बस की बात है वह करो !" रामनाथ ने अपने छोटे भाई को आश्वासन देते हुए कहा ।

इसी समय श्यामनाथ ने देखा कि माताप्रसाद उनके यहाँ चले आ रहे हैं । माताप्रसाद को अपने यहाँ आते देख कर श्यामनाथ के अन्दर आशा की एक लहर दौड़ गई । उन्होंने तपाक के साथ कहा, "आइए मुंशी माता-प्रसाद साहेब ! कहिये कैसे आना हुआ ! तशरीफ़ रखिये !"

बैठते हुए माता प्रसाद ने कहा, "मैंने सुना कि हुज़ूर कानपुर तशरीफ़ लाए हैं । लिहाज़ा मैंने सोचा कि हुज़ूर की हाज़िरी बजाता चलूँ !"

"जी हाँ ! प्रभानाथ की गिरफ़ारी के सिलसिले में आया हुआ हूँ ।" श्यामनाथ ने कहा ।

"वह तो मुझे कल शाम को ही मालूम हो गया था जब राजा साहेब इस सिलसिले में डिप्टी साहेब से मिलने तशरीफ़ ले गए थे ।" अपनी आवाज़ थोड़ी-सी धीमी करते हुए माताप्रसाद ने कहा, "हुज़ूर खुद क्यों नहीं डिप्टी साहेब से मिलते ? मुमकिन है कोई सूरत निकल आवे !"

"वहीं जाने की मैं तैयारी कर रहा था । क्या आप समझते हैं कि मेरे मिलने से कुछ काम बन सकेगा ?" श्यामनाथ ने थाह लेने के लिए पूछा ।

"मेरा तो खयाल है, गोकि डिप्टी साहेब कुछ अजीब तरह के आदमी हैं।"

६

विश्वम्भर दयाल मानों श्यामनाथ की प्रतीक्षा ही कर रहे थे। उन्होंने उठते हुए कहा, "आइये मिस्टर तिवारी।" और यह कह कर उन्होंने श्यामनाथ से हाथ मिलाने के लिए अपना हाथ बढ़ाया।

श्यामनाथ को जबर्दस्ती विश्वम्भरदयाल से हाथ मिलाना पड़ा। मजबूरी जो न करावे वह थोड़ा। थोड़ी देर तक श्यामनाथ मौन बैठे रहे फिर उन्होंने कहा "मैं आप के यहाँ आ ही रहा था कि माताप्रसाद से मेरी मुलाक़ात हो गई। यह तो आप क़यास कर ही सकते हैं कि मैं आप के यहाँ क्यों आया हूँ!"

"जी हाँ! आप के बड़े भाई राजा साहेब भी कल मेरे यहाँ पधारे थे।" विश्वम्भरदयाल ने मुसकराते हुए कहा, "देखिये मिस्टर तिवारी! आप जानते ही हैं कि इन क्रान्तिकारियों के उपद्रव आज कल बुरी तरह बढ़ रहे हैं, और इसमें हम पुलिस वालों की बड़ी बदनामी हो रही है। अभी कुछ दिन पहले ज़िला रायबरेली में एक सब इंसपेक्टर को गोली मार दी गई थी, और आज तक मुजरिमों का पता नहीं चला। इस वाक़ये में भी दो पुलिस के सिपाही जान से मारे गए।"

"यह तो मैं जानता हूँ!" श्यामनाथ ने कहा, "लेकिन आपका मतलब क्या है?"

"मैं वही कह रहा था!" विश्वम्भरदयाल ने उत्तर दिया, "देखिये मिस्टर तिवारी, आप सरकार का नमक खाते हैं और एक ज़िम्मेदारी के ओहदे पर हैं। अपने लिए भी मैं यही बात कह सकता हूँ! ऐसी हालत में हम दोनों का यह फ़र्ज है कि अपनी ज़िम्मेदारी पूरी करें, उन छिपे हुए, भयानक क़िस्म के मुजरिमों को ढूँढ़ निकालें, उन्हें सज़ा दिलवाएँ। और

मैं समझता हूँ कि हम लोग यह काम प्रभानाथ के ज़रिये आसानी से कर सकते हैं !"

"यह किस तरह ?" विश्वम्भरदयाल का मतलब समझते हुए भी श्यामनाथ ने पूछा।

"इस तरह कि वह अपने वालिद को व मुझे इन क्रान्तिकारियों का पता लगाने में मदद दे। आपका खान्दान प्रसिद्ध राजभक्त खान्दान है; प्रभानाथ के लिए यह एक बहुत आला मौक़ा है कि वह अपनी राजभक्ति दिखलावे। वह आपका हाथ बटावे !" विश्वम्भरदयाल कहता जा रहा था और श्यामनाथ के मुख के भावों को भी साथ-साथ पढ़ता जा रहा था, "बुरा न मानियेगा। प्रभानाथ जैसे आपका लड़का है वैसे मेरा लड़का है। लेकिन क्या करूँ मजबूरी है ! मुझे सरकार के प्रति भी तो अपना कर्तव्य पालन करना है; और इस काम में आप का लड़का हम लोगों की सहायता कर सकता है ?"

"लेकिन यह काम प्रभानाथ कभी न करेगा—कभी न करेगा !" श्यामनाथ ने एक-एक शब्द पर इस प्रकार ज़ोर देते हुए कहा मानो वे स्वयम् प्रभानाथ का यह काम पसन्द न करेंगे।

विश्वम्भरदयाल को कुछ हँसी आ गई, लेकिन अपनी हँसी को दबाते हुए उसने कहा, "जो, मैं मानता हूँ कि इस काम में उसे हिचकिचाहट होगी, जब कि खुद आपको हिचकिचाहट हो रही है। वह यह समझेगा कि वह अपने साथियों के साथ दग़ाबाज़ी करेगा; और वही क्यों ज़्यादातर लोग यही समझेंगे। लेकिन अगर आप ध्यान से देखें तो आप के सामने यह साफ़ हो जायगा कि बुराई को दूर करने के लिए, बुराई को मिटाने के लिए हम जो कुछ करते हैं वह पाप नहीं कहलाता, नीति कहलाती है। उस काम को हमें साधारण नैतिक नियमों से तो नहीं नापना चाहिये !"

श्यामनाथ ने विवशतापूर्वक कहा, "लेकिन मिस्टर विश्वम्भरदयाल आप ज़रा सोचिये तो कि आप उससे क्या काम कराना चाहते हैं।"

"वह तो मैंने आप को साफ़ साफ़ समझा दिया है !" विश्वम्भर दयाल ने कहा, "मैं आप को यक़ीन दिलाता हूँ कि इसके बाद मैं उस लड़के को ए० एस० पी० नामज़द करा दूँगा—यह मेरा जिम्मा ! मिस्टर तिवारी ! कोरी भावुकता में पड़ जाना हम पुलिस वालों को शोभा नहीं देता !"

श्यामनाथ कभी भी अच्छे तार्किक नहीं रहे; विश्वम्भरदयाल ने जो तर्क दिये थे वे उनके लिए अकाट्य थे। पर उनकी आत्मा कह रही थी कि प्रभानाथ से एक बहुत जघन्य काम करने को कहा जा रहा है। उन्होंने एक बार फिर प्रयत्न किया, "मिस्टर विश्वम्भरदयाल, मैं आप से विनय करता हूँ कि आप और कोई दूसरा रास्ता बतलाइये ! आप अपनी इस शर्त पर मत अड़िये—मैं आपसे फिर कहता हूँ कि वह लड़का आप की इस शर्त को किसी हालत में न मानेगा !" श्यामनाथ के स्वर में एक करुण विवशता स्पष्ट थी।

"आप कोशिश तो करके देखिये मिस्टर तिवारी ! मैं जानता हूँ कि वह राज़ी हो जायगा ! सिर्फ़ उसे अच्छी तरह समझाने की ज़रूरत है ! मैं उसे खुद समझाता, लेकिन मैं जानता हूँ कि वह मेरी बात नहीं सुनेगा क्योंकि वह मुझे ग़ैर समझता है !"

"और अगर वह न माना !"

"अगर वह न माना !" विश्वम्भरदयाल ने अपने मत्थे पर हाथ लगाते हुए श्यामनाथ के प्रश्न को दुहराया, "और अगर वह न माना ! तो मिस्टर तिवारी, मामला मेरे हाथ के बाहर है क्योंकि इस मामले की खबर केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों के पास पहुँच चुकी है। उस वक्त मामला अदालत के हाथ में होगा !"

इस उत्तर से श्यामनाथ तिलमिला उठे। वे उठ खड़े हुए, उस समय उनका मुख क्रोध से लाल हो गया था, "अच्छी बात है मिस्टर विश्वम्भर-दयाल—मैं जाता हूँ। आप जो चाहे करें, मैं समझ गया कि आपसे मेरा कुछ भी भला नहीं हो सकता। आपके यहाँ हम लोगों का दौड़ना, अपने को इतना नीचे गिराना बेकार था !" और श्यामनाथ चल दिये।

रामनाथ श्यामनाथ की प्रतीक्षा कर रहे थे। श्यामनाथ से सब बातें सुन कर उन्होंने कहा, "श्यामू! वारदात तुम्हारे इलाक़े में हुई है, जितनी भी शहादत पेश होगी वह फ़तहपुर की होगी; तुम अपने इलाक़े को सम्हालो जा कर, और मैं लखनऊ जा रहा हूँ—होम-मेम्बर से मिलने।

उसी दिन शाम के समय पण्डित रामनाथ तिवारी लखनऊ के लिए रवाना हो गए।

७

एकाएक खबर आई कि गांधी-अर्विन पैक्ट हो गया। दयानाथ को यह खबर उस समय मिली जब वह कांग्रेस-कार्य-कर्ताओं के साथ अपने कमरे में बैठा हुआ भावी कार्यक्रम पर बात-चीत कर रहा था। टेलीफ़ोन का रिसीवर रखते हुए उसके अपने इर्द-गिर्द बैठे हुए लोगों को यह खबर दी। सब लोग थोड़ी देर के लिए चुप हो गए। फिर दयानाथ ने एक मुसकराहट के साथ कहा, "चलो! झगड़ा खत्म हुआ!"

और उसी समय ब्रह्मदत्त ने कहा, "जो कुछ हुआ। वह बुरा हुआ। यह हमारी जीत नहीं बल्कि हार हुई।"

मार्कण्डेय पास ही बैठा हुआ था। उसने कहा, "शायद तुम ठीक कहते हो ब्रह्मदत्त!"

दयानाथ बिगड़ कर बोला, "क्यों? इसमें ठीक क्या है? मैं तो कहता हूँ कि इसमें कांग्रेस की विजय हुई। ब्रिटिश सरकार को कांग्रेस के आगे झुकना पड़ा, समझौता करने पर मजबूर होना पड़ा।"

"जैसा मजबूर होना पड़ा वह मैं अच्छी तरह से जानता हूँ, "ब्रह्मदत्त ने ज़रा तेज़ी से कहा, "महात्मा गांधी राउण्ड टेबिल कानफ़रेंस में जाएँगे—है न ऐसा! और वहाँ एक से एक प्रतिक्रियावादी हिन्दुस्तानी मौजूद हैं। स्पीचें होंगी, बहसें होंगी, और इस के बाद—टाँय-टाँय-फ़िश! न कुछ होने का, न कुछ मिलने का।"

यह ब्रह्मदत्त का व्यक्तिगत विचार था, और अगर दयानाथ इस व्यक्तिगत विचार से असहमत था तो वह भी अपना व्यक्तिगत विचार प्रकट कर सकता था। लेकिन दयानाथ एकाएक बिगड़ उठा, उसने कहा, "तुम उतना ही सोच-समझ सकते हो जितनी तुम्हें शिक्षा मिली है, उसके आगे सोचना-समझना तुम्हारे लिए असम्भव है!"

मार्कण्डेय ने उसी समय दयानाथ को टोका, "क्या कह रहे हो दयानाथ—तुम अपने शब्द वापस लो!"

लेकिन शब्द निकल चुके थे, और उन शब्दों का वापस आना ग़ैर-मुमकिन था। ब्रह्मदत्त ने तड़प कर उत्तर दिया, "वह शिक्षा जो दूसरों के रक्त द्वारा धन से तुम्हें मिली है तुम्हीं को मुबारक हो! उस शिक्षा के साथ मानवता का अभिशाप है! वह शिक्षा जिस पर तुम्हें इतना अभिमान है, जिसका तुम दिन-रात ढिंढोरा पीटा करते हो, कल्याणकारिणी हो ही नहीं सकती!"

दयानाथ का चेहरा क्रोध से तमतमा उठा, "ब्रह्मदत्त! तुमने मेरा अपमान किया है। लेकिन यह ख़ैरियत है कि तुमने मेरे अतिथि की हैसियत से मेरा अपमान किया है!" और दयानाथ उठ खड़ा हुआ।

ब्रह्मदत्त भी उठ खड़ा हुआ, "मैंने तुम्हारा अपमान किया है, इसलिए कि मैं ग़रीब हूँ। और तुम जो अमीर हो सब कुछ कह सकते हो, सब कुछ कर सकते हो, बिना किसी की भावना को ठेस पहुँचाए हुए—बिना किसी का अपमान किये हुए! कितनी मज़ेदार बात है!"

मार्कण्डेय ने दयानाथ का हाथ पकड़ कर बिठला लिया, "दया! तुम अपने को भूल रहे हो, तुम अपने आदर्श से गिर रहे हो। तुमने अनुचित बात कही, अपने अनौचित्य को स्वीकार करने के स्थान पर तुम अपनी बात पर अड़े हुए हो।"

ब्रह्मदत्त वहीं खड़ा था, और मार्कण्डेय ने दयानाथ से जो कुछ कहा उससे ब्रह्मदत्त को एक तरह से संतोष हुआ। यह साबित हो गया था कि

ग़लती दयानाथ की थी. ब्रह्मदत्त की नहीं। दयानाथ ने झल्ला कर कहा, "लेकिन—लेकिन—मार्कण्डेय तुमने सुना कि ब्रह्मदत्त ने क्या-क्या कहा !"

"हाँ, ब्रह्मदत्त को वह सब कहने का पूरा अधिकार था क्योंकि ब्रह्मदत्त को अहिंसा पर विश्वास नहीं। ब्रह्मदत्त की नैतिकता और तुम्हारी नैतिकता में ज़मीन-आसमान का अन्तर है। अगर ब्रह्मदत्त की हिंसात्मक नीति को तुमने भी अपना लिया, तो तुम्हारा पवित्रता का वह सिद्धान्त, मानवता का वह आदर्श जिन्हें तुम अपने जीवन में अपना चुके हो—ये सब के सब कहाँ रह गए ?"

मार्कण्डेय की पहली बात ने ब्रह्मदत्त को शान्त करने के लिए जो कुछ भी प्रभाव उत्पन्न किया था, उसकी दूसरी बात ने उस सब पर पानी फेर दिया। ब्रह्मदत्त बुरी तरह भड़क उठा, "तुम्ही लोगों को मुबारक हो यह तुम्हारा ढोंग—क्योंकि यह सब सिद्धान्त, यह सब नैतिकता जिसकी तुम गला फाड़ कर दुहाई देते हो—इस सब को मैं कोरा ढोंग समझता हूँ और खुले आम कहता भी हूँ। तुम देवता बनो—मैं तो मनुष्य की हैसियत से कायम रहने में ही अपना गौरव समझता हूँ !"

"काश कि तुम—तुम्ही क्या हम सब मनुष्य बन सकते ब्रह्मदत्त ! हम सबों में पशुता है, वही पशुता जिसे हम हिंसा कहते हैं। और मानवता के विकास के अर्थ होते हैं उस हिंसा को अपने से निकाल बाहर करना, उस पशुता को छोड़ देना। लेकिन मैं देखता हूँ कि अपनी उस पशुता को क़ायम रखने पर तुम तुले हुए हो, यही नहीं, अपनी उस पशुता पर तुम्हें गर्व भी है !" मार्कण्डेय ने कहा।

ब्रह्मदत्त ज़ोर से हँस पड़ा, "कायरता और नपुंसकता पर विश्वास करने वाले गुलामो ! इंसान की शक्ल में भेड़-बकरियों की नस्लें पैदा करो—खूब पैदा करो ! लो, मैं तो चला !" और ब्रह्मदत्त वहाँ से चलता बना। ब्रह्मदत्त तो उस कमरे से चला गया, लेकिन उसकी हँसी का ठहाका उस कमरे में गूँजता रहा।

इतनी कटु बात चीत के बाद, यह स्वाभाविक ही था, कि कांग्रेस की उस सभा में एक प्रकार की शिथिलता आ जाती। ब्रह्मदत्त के जाने के बाद धीरे-धीरे कांग्रेस के सभी कार्यकर्ता वहाँ से चले गए। अकेले दयानाथ और मार्कण्डेय वहाँ रह गए।

ब्रह्मदत्त की हँसी का ठहाका अब भी दयानाथ के कानों में गूँज रहा था—कठोर और कर्कश! दयानाथ सोच रहा था—मौन! मार्कण्डेय थोड़ी देर तक दयानाथ की इस गम्भीर मुद्रा को कौतूहल के साथ देखता रहा, फिर उसने दयानाथ का कंधा हिलाते हुए पूछा, "दयानाथ—क्या सोच रहे हो?"

दयानाथ मानो चौंक उठा। उसने कहा, "मार्कण्डेय! ब्रह्मदत्त की बात सुनी?"

"हाँ सुनी! लेकिन उससे क्या?"

"उससे क्या?" दयानाथ के मत्थे पर बल पड़ गए, "उससे क्या?—मार्कण्डेय, बड़ी कठोर बात कह गया है वह चलते-चलते! इंसान की शक्ल में भेड़-बकरियों की नस्लें। ठीक यही शब्द हैं उसके! मार्कण्डेय—मैं सोच रहा हूँ क्या वास्तव में उसकी बात ठीक है!"

"तुम क्या समझते हो?" मार्कण्डेय ने मुसकराते हुए पूछा।

"मैं क्या समझता हूँ? मार्कण्डेय! जो कुछ मैं समझता हूँ उसे कहने की हिम्मत नहीं पड़ती। इतने दिनों तक जिस सिद्धान्त को अपने जीवन का एकमात्र सत्य मान रक्खा है, यही नहीं, जिस सिद्धान्त को मैंने अपना अस्तित्व ही बना लिया है, वह कहीं मिथ्या न साबित हो जाय! इसका मुझे डर लगता है, इसीलिए मैं सच कहता हूँ उस पर सोचने-समझने की इच्छा नहीं होती, कायर की तरह उस प्रश्न को जबर्दस्ती अपने सामने से हटा

वह दयानाथ के सामने—ठीक सामने खड़ा हो गया, और दयानाथ के कंधों पर उसने अपने दोनों हाथ रख दिये। दयानाथ की नज़र से अपनी नज़र मिलाते हुए उसने कहा, "दयानाथ! जो कुछ मिथ्या है वह त्याज्य है। उस पर मोह करना अपने को धोखा देना है, अपने ही साथ विश्वासघात करना है। और इसलिए मैं तुमसे अनुरोध करूँगा कि तुम सोचो, ठीक तरह से सोचो और समझो! बाहर की बातों का असर तुम पर इसलिए पड़ता है कि तुम्हारे अन्तर में अविश्वास है, निर्णय की कमी है। तुमने अपनी बुद्धि को पूर्ण विकास का अवसर नहीं दिया है। यह हिंसा और अहिंसा का प्रश्न—यही आज का एकमात्र प्रश्न है। यह याद रखना, दूसरों को सुधारने की प्रवृत्ति हिंसा है, स्वयम् सुधरने की प्रवृत्ति अहिंसा है। अगर इस बुनियादी बात पर तुम्हें विश्वास हो सके, यदि तुम्हारी बुद्धि इसे स्वीकार कर सके, यदि तुम्हारी आत्मा इस बात को पूर्ण रूप से ग्रहण कर ले तब दूसरों की बातों का असर तुम पर पड़ने के स्थान पर तुम्हारी बातों का असर दूसरों पर पड़ेगा, तब तुम्हारे अन्दर कमज़ोरी के स्थान पर बल और साहस आ जायगा।"

मार्कण्डेय की बात का असर दयानाथ पर पड़ा या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता। वह उठ खड़ा हुआ और मुसकराया, "शायद तुम ठीक कहते हो मार्कण्डेय—मुझे आत्मविवेचन करना ही होगा।"

मार्कण्डेय के चले जाने के बाद दयानाथ अकेला रह गया। उस समय रात हो गई थी और नौकर ने कमरे की बिजली जला दी थी। दयानाथ वैसा ही बैठा रहा। वह उस समय तेज़ी के साथ सोच रहा था। उस समय उसकी हालत ठीक वैसी हो रही थी जैसी बारात चले जाने के बाद लड़की के पिता की होती है। उसकी आत्मा में एक प्रकार की भयानक शिथिलता भर गई थी।

इधर कई महीने किस हलचल में बीते; ऐसी हलचल, जिसमें दयानाथ ने अपने को पूरी तौर से खो दिया था। और एकाएक वह हलचल खत्म हो गई। दयानाथ के सामने अब थी वास्तविकता—कठिन और कुरूप!

क्या से क्या हो गया! आज दयानाथ मानो इस चीज़ पर सोचने को कटिबद्ध हो गया था। नशा उतर जाने के बाद अर्धचेतन खुमार में जिस प्रकार मनुष्य का मस्तिष्क धुँधला हो जाता है, ठीक उसी तरह उस समय उसका मस्तिष्क धुँधला था। चीज़ों को ठीक तौर से देखने की क्षमता उसमें नहीं है, वह यह अच्छी तरह जानता था, लेकिन फिर भी वह जबर्दस्ती सोच रहा था!

"क्या से क्या हो गया!" यह केवल एक मीमांसा भर थी, लेकिन इस मीमांसा के अन्दर एक बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न भी था—"आगे चल कर क्या होने वाला है?" विगत शून्य का नाम है लेकिन विगत की स्थिति भविष्य की कल्पना के साथ मिलकर एक समस्या बन जाती है। विगत अनुभव भविष्य का निर्माण-कर्ता होता है; और दयानाथ का विगत कटुताओं का एक बहुत बड़ा संग्रह था। उन कटुताओं से घिरा हुआ दयानाथ सोच रहा था।

उसने वैभव को ठुकरा दिया था, एक आदर्श को पाने के लिए। और मानो उस आदर्श का मूल्य चुकाने के लिए अकेले उसका वैभव ही काफ़ी न था, उसको अतिरिक्त मूल्य चुकाना पड़ा था, अपने घरवालों से सम्बन्ध-विच्छेद के रूप में। प्रभानाथ डकैती और हत्या के अभियोग में जेल में है, और इस विपत्ति के काल में भी उसके पिता ने उसे नहीं पूछा। उसके पिता ने उसे हरदम के लिए शरीर के सड़े हुए अंग की भाँति काटकर फेंक दिया। आज दयानाथ की क्या स्थिति थी? उसका आदर्श उसे कहाँ तक चढ़ा सका था? कानपुर नगर में उसकी कितनी इज्ज़त थी? जनता पर उसके प्रभाव का कितना स्थायित्व था? जो बलिदान उसने किया था उसका पुरस्कार क्या था और कैसा था?

दयानाथ जानता था कि उसके विरोधियों की संख्या काफ़ी अधिक है। वह सोच रहा था, "आखिर मेरा इतना विरोध क्यों? क्या मैं ईमानदार नहीं? क्या मैंने बलिदान करने में कोई कमी की है? क्या मैंने व्यक्तिगत

लाभ पर ध्यान दिया है ? और इतना होते हुए भी मेरा विरोध बहुत अधिक है, उग्र है और बढ़ता ही जा रहा है। आखिर लोग अकारण ही मेरा विरोध क्यों करते हैं ?"

और स्वयम् दयानाथ ने ही उत्तर दिया, "गिरे हुए, स्वार्थी और अशिक्षित आदमी ! यही लोग मेरा विरोध करते हैं ! यह ब्रह्मदत्त ! आखिर यह क्या है ? अशिक्षित और उद्धत ! इसकी ईमानदारी पर भी लोगों को शक है। फिर भी लोग उसको मानते हैं—उसकी हाँ में हाँ मिलाते हैं। आखिर उसमें कौन सी योग्यता है ? उसने कौन-सा त्याग किया है ? कांग्रेस में आने के पहले उसकी आर्थिक स्थिति क्या थी, और आज क्या है ! किस कुल और समाज का वह आदमी है—उसकी संस्कृति कितनी, उसका चरित्र ही क्या ? फिर भी लोग उसे मानते हैं ! यह क्यों ? वह नेता क्यों बन गया—कैसे बन गया ?"

दयानाथ ज़ोर से कह उठा, "क्या मेरा यह सब त्याग बेकार गया ?"

८

दयानाथ का त्याग वास्तव में बेकार गया या नहीं, यह नगर-कांग्रेस के सभापति के चुनाव से साबित होने वाला था।

कांग्रेस कमेटी के सभापति के पद के लिए खड़े होने की इच्छा दयानाथ में ज़रा भी न थी, पर उसके दल वालों ने उसे उस पद के लिए खड़े होने को मजबूर किया। लाला रामकिशोर के इस्तीफ़े से विचित्र स्थिति पैदा हो गई थी। लाला रामकिशोर कानपुर के प्रमुख नागरिक थे, करोड़पती और मिल मालिक। कांग्रेस के भी वे बहुत बड़े कार्यकर्ता थे। लेकिन उस मूवमेंट में लाला रामकिशोर का जेल न जाना लोगों को बुरा लगा। लाला राम-किशोर का स्वास्थ्य अच्छा न था, और डाक्टरों ने—उनमें कानपुर के प्रमुख कांग्रेस कार्यकर्ता डाक्टर हीरालाल भी थे—लाला रामकिशोर को आगाह कर दिया था कि उनके जेल जाने से उनका हृदय-रोग उभर सकता है। लेकिन

जनता को लाला रामकिशोर के व्यक्तिगत जीवन से कोई दिलचस्पी न थी, उसने यही मतलब लगाया कि लाला रामकिशोर ऐन मौके पर अपने को बचा गये।

इसके अलावा समाजवादी दल एक अरसे से लाला रामकिशोर के खिलाफ़ प्रचार करता रहा था। उन लोगों का कहना था कि लाला रामकिशोर कांग्रेस में इसलिए हैं कि कांग्रेस द्वारा पूँजीपतियों का भला हो सकता है। लाला रामकिशोर की मिलों में मज़दूरों के साथ वही अन्याय होता था तथा ज़्यादतियाँ होती थीं जो अन्य पूँजीपतियों की मिलों में मज़दूरों के साथ होती हैं। और लाला रामकिशोर के जेल न जाने से इन वाम-पक्ष वालों का ज़ोर बढ़ रहा था।

दयानाथ लाला रामकिशोर की पार्टी का आदमी था। कांग्रेस के कार्यकर्ता अभी तक दक्षिण-पंथ के लोग ही होते आए थे—और सम्भवतः उसका कारण था कि दक्षिण-पंथ के लोगों के पास पैसा था। पर अब परिस्थिति बदल रही थी, वाम-पंथ के आदमी आगे बढ़ रहे थे। उनको रोकना ज़रूरी था; और इसलिए लाला रामकिशोर की पार्टी ने दयानाथ को ढाल की तरह कानपुर नगर कांग्रेस कमेटी के सभापति के पद के लिए खड़ा कर दिया। जनता जानती थी कि दयानाथ महान त्यागी तथा निःस्वार्थ आदमी हैं।

लेकिन हवा बदल चुकी थी—रामकिशोर बुरी तरह बदनाम हो गए थे, और रामकिशोर के साथ रामकिशोर की पार्टी भी बदनाम हो चुकी थी। दयानाथ का व्यक्तित्व क्या उस हवा के रुख को बदल सकेगा? प्रश्न यह था!

इस प्रश्न का उत्तर मार्कण्डेय ने दयानाथ को अपनी सलाह के रूप में दिया, "दयानाथ! अब भी समय है। ब्रह्मदत्त से मिलकर बातें कर लो, हम समझते हैं कि उसको अपने पक्ष में करने से हमें बहुत बड़ी सहायता मिलेगी!"

उसपर दयानाथ ने कहा, "नहीं मार्कण्डेय! ब्रह्मदत्त से बात करना—उसकी खुशामद करना! इतना नीचे गिरने में मुझे विश्वास नहीं। मैं जानता हूँ कि मुझे विजय मिलेगी।"

मार्कण्डेय हँस पड़ा, "दया—तुम ग़लती कर रहे हो। यह निश्चय नहीं कहा जा सकता कि तुम्हें सफलता मिलेगी ही!"

"क्या कहा?" दयानाथ मानो आश्चर्य से चौंक-सा उठा, "क्या तुम समझते हो कि मेरी सफलता अनिश्चित है? मार्कण्डेय—मुझे विश्वास नहीं होता तुम्हारी बात पर!"

"विश्वास करना होगा दया! कल्पना लोक से उतर कर हमें वास्तविकता का मुक़ाबिला करना है। तुम शायद नहीं जानते कि लाला रामकिशोर के कारण हमारी पार्टी का बल बहुत घट गया है। फिर कांग्रेस में बहुत से नए-नए आदमी आ गए हैं और वे नए आदमी, जहाँ तक मैं समझता हूँ, हमारा साथ न देंगे!"

"लेकिन यह सवाल पार्टी का नहीं है, यह सवाल मेरा है मार्कण्डेय।" दयानाथ ने उत्तर दिया, "क्या तुम समझते हो कि लोग मेरे ख़िलाफ़ वोट देंगे?"

"अगर लोग तुम्हारे ख़िलाफ़ वोट दें तो मुझे तो कोई आश्चर्य न होगा।" मार्कण्डेय ने सहज भाव से कहा।

दयानाथ का चेहरा तमतमा उठा, "तो फिर मार्कण्डेय! मैं समझ लूँगा कि कांग्रेस बेईमानों और अयोग्य आदमियों का एक समूह भर है!"

"और यह समझ कर भी तुम ग़लती ही करोगे दयानाथ!" मार्कण्डेय ने थोड़ा-सा गम्भीर होकर कहा, "क्योंकि तुम्हें वोट देने के समय लोग तुम्हें वोट न देंगे, बल्कि तुम्हारी पार्टी को वोट देंगे। और तुम जानते ही हो कि तुम्हारी पार्टी किसी हद तक बदनाम हो चुकी है।"

"लेकिन मार्कण्डेय! सभापति के पद के लिए मैं खड़ा हो रहा हूँ, व्यक्ति की हैसियत से! जो लोग मुझे वोट नहीं देते उन्हें मुझ पर विश्वास नहीं, मेरी नेकनीयती और ईमानदारी पर उन्हें शक है।"

मार्कण्डेय ने कहा, "दयानाथ—एक बात याद रखना—लोग वोट देने

आते हैं वोट न देने नहीं आते हैं। तुम यह क्यों भूल जाते हो कि तुम्हारे अलावा उन लोगों के सामने एक और भी आदमी है—और उस आदमी पर उन्हें अधिक विश्वास हो सकता है, उस आदमी को वे तुमसे अधिक पसन्द कर सकते हैं।"

"लेकिन मार्कण्डेय—मेरे मुक़ाबिले जो आदमी खड़ा है—तुम क्या, सब लोग जानते हैं कि उसमें रुपए-पैसे की ईमानदारी की कमी है!"

"मैं मानता हूँ दयानाथ—लेकिन तुम यह क्यों भूल जाते हो कि तुम समर्थ हो, तुम्हारे सामने अभाव नहीं है और इसलिए तुम ईमानदार बने रह सकते हो। लेकिन इस बात से मुझे मतलब नहीं—जब तुमने अपनी बात उठाई है तब मैं उसी पर बात करूँगा। यह तो तुम जानते ही हो कि बहुत से लोग तुमसे व्यक्तिगत-रूप से खिलाफ़ हैं!"

"हाँ—यह मैं मानता हूँ।"

"और क्या तुमने कभी यह सोचा है कि यह क्यों? तुमने उनका कोई अहित नहीं किया, फिर वे लोग तुम्हारे खिलाफ़ क्यों हैं?" मार्कण्डेय ने पूछा।

"हाँ मार्कण्डेय—मैंने इसपर बहुत सोचा। लेकिन मुझे इसका कोई उत्तर नहीं मिला। मुझे स्वयम् आश्चर्य होता है कि आखिर वे लोग मेरे खिलाफ़ क्यों हैं। अभी तुम्हीं ने कहा है कि मैंने उनका कोई अहित नहीं किया, मैंने अपने जीवन में कोई ऐसा काम नहीं किया कि लोग मुझसे घृणा करें। फिर भी मैं कभी-कभी यह अनुभव करता हूँ कि कुछ लोग मुझसे घृणा तक करते हैं।"

"तो मैं इसका कारण बतलाता हूँ।" मार्कण्डेय ने कहा, "दयानाथ! तुममें अहम्मन्यता है, कठोर और कुरूप; और लोग तुम्हारी अहम्मन्यता बर्दाश्त नहीं कर सकते! तुम्हारी हर हरकत में, तुम्हारे हर काम में, दूसरे के साथ तुम्हारे बर्ताव में तुम्हारी अहम्मन्यता का जबर्दस्त पुट रहता है, और

अपनी उस अहम्मन्यता को तुम देख नहीं पाते क्योंकि वह तुमसे पृथक की चीज़ नहीं।"

दयानाथ कुछ देर तक चुपचाप मार्कण्डेय की इस बात पर सोचता रहा, फिर एक ठंढी साँस लेकर उसने कहा, "शायद तुम ठीक कहते हो मार्कण्डेय! लेकिन तुम्हीं बताओ मैं क्या करूँ! मैं वास्तव में अनुभव करता हूँ कि अधिकांश मनुष्य ऐसे नहीं हैं जिनके साथ मैं बराबरी से मिल सकूँ। उनमें बेईमानी है, उनमें बेवकूफ़ी है, उनमें संस्कृति, शिष्टता और सभ्यता का अभाव है!" यह कहते-कहते दयानाथ उठ खड़ा हुआ, "मार्कण्डेय! समझ में नहीं आता कि क्या करूँ! आज तुमने एक बहुत कटु सत्य मेरे सामने रख दिया जिसकी मैं उपेक्षा नहीं कर सकता। चुनाव बहुत नज़दीक आ गया है, और इस चुनाव में मुझे सफलता प्राप्त करनी है—जिस तरह भी हो वैसे! ज़रा कोशिश करो!"

मार्कण्डेय भी उठ खड़ा हुआ, "दयानाथ, मैं तो केवल एक उपाय देख पा रहा हूँ—वह है ब्रह्मदत्त से बातें करके उसे अपनी तरफ़ कर लेना!"

"ब्रह्मदत्त से मिलना, ब्रह्मदत्त की खुशामद करना! नहीं मार्कण्डेय—यह असम्भव है, मुझसे किसी हालत में न होगा। मैं ब्रह्मदत्त को जानता हूँ, पतित और बेईमान आदमी! उससे मिलने में कोई फ़ायदा नहीं!

"और मेरा ख्याल है कि ब्रह्मदत्त के सम्बन्ध में आपकी धारणा बहुत ग़लत है बड़के भइया!" दयानाथ को उमानाथ के ये शब्द स्पष्ट-रूप से सुनाई पड़े।

६

"अरे उमा—तुम! कब आए? और दद्दुआ कहाँ हैं?" दयानाथ ने पूछा।

"दद्दुआ तो उन्नाव चले गए, लखनऊ में कोई सफलता नहीं मिली!"

उमानाथ ने उत्तर दिया, "और इसलिए वे उन्नाव में ही रुक गए। मुझे प्रभा की पैरवी में काका जी की मदद करने के लिए यहाँ भेज दिया है।"

"मेरे सम्बन्ध में भी कुछ कहा है?" दयानाथ ने ज़रा हिचकिचाते हुए पूछा।

"जी...कुछ नहीं; शायद जल्दी में थे!" दबी ज़बान उमानाथ ने उत्तर दिया।

"हूँ!" दयानाथ ने केवल इतना कहा, लेकिन उनके इस छोटे से 'हूँ!' में एक असह्य पीड़ा थी। दयानाथ मौन हो गया, और उसकी आँखों के आगे एक भयानक सूनापन आ गया। मार्कण्डेय पास ही खड़ा था, उसने दयानाथ की उस अन्तर्वेदना को पढ़ लिया, उसने कहा, "दया! साहस करो, अपने को सुस्थिर रक्खो! साधना का मार्ग बड़ा कठिन है, उस मार्ग पर रत रहना ही तुम्हारे लिए इष्ट है। बड़ी विषम स्थिति में आ पड़े हो दयानाथ, यह तुम्हारे आत्मिक बल की परीक्षा का समय है। सम्हालो—अपने को, जैसे भी हो सम्हालो!" और यह कह कर मार्कण्डेय चला गया।

मार्कण्डेय की बात का असर दयानाथ पर पड़ा। उसकी चेतना और कर्मण्यता एकाएक जाग उठे; एक बार फिर वह अपने आपे में आ गया। उसने उमानाथ से कहा, "उमा! मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि मेरा इस समय क्या कर्तव्य है! इतनी बड़ी विपत्ति के समय में पूछा तक नहीं जा रहा हूँ, जैसे मैं मर गया हूँ!"

उमानाथ मुसकराया, "केवल दद्दुआ की नज़र में ही बड़के भइया! हम लोगों की नज़र में नहीं। काका, मैं और प्रभा—हम सब आपके हैं, आप हमारे हैं। प्रभा पर जितना अधिकार दद्दुआ का है उतना ही अधिकार आप का भी है। आप जो कुछ भी कर सकते हैं कीजिये, यद्यपि इसमें मुझे बहुत कम आशा है कि आप वास्तव में कुछ कर सकेंगे।"

"क्यों? मैं क्यों न कुछ कर सकूँगा?" दयानाथ ने पूछा, "उमा! मैं वकील हूँ—कानपुर नगर का एक प्रमुख वकील; और जहाँ तक मैं समझता

हूँ प्रभा का मामला अब अदालत में आ गया है। ऐसी हालत में इस मामले में जो कुछ कोई कर सकता है वह वकील ही कर सकता है !"

उसी दिन रात के समय पण्डित श्यामनाथ तिवारी भी फ़तहपुर से कानपुर आ गए। श्यामनाथ सीधे होटल पहुँचे, पर जब वहाँ उन्हें पण्डित रामनाथ तिवारी या उमानाथ के आने की सूचना न मिली तो वह दयानाथ के यहाँ आए।

उमानाथ ने श्यामनाथ को, लखनऊ में जो कुछ हुआ था वह ब्यौरे-वार बतला दिया।

श्यामनाथ उमानाथ से सब बातें सुनकर कुछ देर सोचते रहे। इसके बाद उन्होंने दयानाथ की ओर देखा, "दया ! अब क्या हो ? प्रभानाथ को किसी तरह बचाना ही होगा, वह तुम्हारा भाई है !"

दयानाथ ने मुसकराने का प्रयत्न करते हुए कहा, "काका ! वकालत छोड़ चुका हूँ, लेकिन भाई को बचाने के लिए फिर वकालत करूँगा—जो कुछ मेरे बस में है, उठा न रक्खूँगा ! देश के अच्छे से अच्छे वकील को बुलाऊँगा। हाँ, पुलिस के गवाह तो आपके ही हाथ में हैं न !"

"हाँ दया ! मैंने उनसे बातें कर ली हैं और जहाँ तक मैं समझता हूँ वे अपना बयान बदल देंगे। कल मैंने उस कांस्टेबल को जो मेरे बँगले में तैनात था यहाँ बुलाया है, उससे बात कर लेना !"

"तब फिर मामले में क्या रक्खा है ! मैं समझता हूँ कि प्रभा के छूटने में कोई मुसीबत न होगी, "उमानाथ ने कहा।

"तुम ग़लती करते हो उमा !" दयानाथ ने कहा, "काका के सामने ऐसी मुसीबतें खड़ी हो सकती हैं जिनकी काका ने कभी कल्पना भी न की हो ! प्रभा के खिलाफ़ जुर्म बड़ा संगीन है, और साथ ही यह भी याद रखना कि क्रान्तिकारियों के मामले में सरकार पूरी-पूरी दिलचस्पी लेती है !"

यह बातें हो ही रही थीं कि माताप्रसाद के आने की सूचना आई।

श्यामनाथ ने माताप्रसाद को वहीं बुलवा लिया। माताप्रसाद ने आते ही श्यामनाथ को लम्बा चौड़ा सलाम किया, "हुज़ूर की कार इधर आते हुए दिख गई थी। सोचा हुज़ूर को हाज़िरी देता चलूँ।"

"आप की बड़ी मेहरबानी है! तशरीफ़ रखिये!" श्यामनाथ ने कहा, "कहिये, विश्वम्भरदयाल साहेब अभी यहीं हैं न?"

"जी हाँ—उसी होटल में हैं!"

"क्या हाल हैं उनके?"

"कुछ न पूछिये हुज़ूर! अब तो मुझसे भी भेद रखने लगे। अपनी ज़िद पर अड़े हुए हैं! अच्छा हुज़ूर—एक अर्ज़ करूँ?"

"हाँ-हाँ! कहिये!"

गला साफ़ करते हुए माताप्रसाद ने कहा, "हुज़ूर! मामला तो हमी लोगों के हाथ में है। अगर विश्वम्भरदयाल साहेब को कोई सबूत ही न मिलने पाए! हुज़ूर ही तो फ़तहपुर के कप्तान हैं!"

श्यामनाथ ने माताप्रसाद को ध्यान से देखा, वह सोच रहे थे कहीं यह आदमी भेद तो लेने नहीं आया है। लेकिन उनका अनुभव उनसे कह रहा था कि माताप्रसाद उनके साथ विश्वासघात नहीं करेगा। फिर भी कुछ सम्हलते हुए श्यामनाथ ने कहा, "मामला तो विश्वम्भरदयाल के हाथ में है माताप्रसाद साहेब! सरकार ने यह मामला उनके हाथ में सौंप दिया है। और जैसा विश्वम्भरदयाल साहेब चाहेंगे वैसा करेंगे!"

माताप्रसाद मुसकराए, "लेकिन हुज़ूर! हम लोग तो आपके आदमी हैं, और हमारे लिए आपकी आज्ञा सब कुछ है। जो कुछ आप कहेंगे वही होगा।"

श्यामनाथ अब फूट पड़े, "माताप्रसाद! प्रभानाथ को बचाना है, जिस तरह भी हो बचाना है—मैं तो सिर्फ़ इतना जानता हूँ!"

"तो हुज़ूर विश्वास रखिये—उसे बचाने की जी जान से कोशिश करूँगा!" माताप्रसाद ने कहा, "आप मुझे अपना ही आदमी समझिये!"

"माताप्रसाद ! इसमें मेरी जो कुछ भी मदद करोगे वह बेकार न जाएगी—यह तो तुम जानते ही हो !"

"हाँ हुज़ूर ! आप लोगों के आला खान्दान को और आप लोगों की उदारता को कौन नहीं जानता ! लेकिन उस सब की बात नहीं—सिर्फ़ हुज़ूर के खयाल से यह सब करूँगा ।"

माताप्रसाद इसी के लिए श्यामनाथ के पास आए थे। श्यामनाथ को एक और सहायक मिला ।

लेकिन न माताप्रसाद को और न श्यामनाथ को इस बात का पता था कि उनका साबिका एक बहुत जबर्दस्त आदमी से पड़ रहा है। विश्वम्भर दयाल का व्यक्तित्व कितना प्रबल है, वह क्या-क्या कर सकता है, अगर इसका पता माताप्रसाद को होता तो वह कभी भी ऐसी बात न कहते ।

दूसरे दिन जब सुबह के समय माताप्रसाद विश्वम्भरदयाल के यहाँ पहुँचे, विश्वम्भरदयाल ने बड़े तपाक के साथ उनका स्वागत किया। माता प्रसाद को बिठलाते हुए विश्वम्भरदयाल ने पूछा, "कहिये माताप्रसाद साहेब ! पण्डित श्यामनाथ तिवारी के कैसे मिजाज़ हैं ! मुझसे तो बेहद नाराज़ होंगे !"

अपनी घबराहट दबाते हुए माता प्रसाद ने उत्तर दिया, "जी हुज़ूर ! कल रात रास्ते में कप्तान साहब मिल गए थे तो उन्होंने मुझे बुला लिया था ! बहुत ज्यादा फ़िक्र में हैं !"

विश्वम्भरदयाल मुसकराया, "तो इसमें आपके हिचकिचाने की क्या ज़रूरत है माताप्रसाद साहेब ? वे आपके अफ़सर हैं, और अगर आप उनके बँगले में खुद ब खुद मिलने गये तो इसमें हर्ज ही क्या है जो यह बात छिपाई जाय !" और इसके बाद विश्वम्भरदयाल ने माताप्रसाद से मुक़दमे की बातचीत शुरू कर दी ।

बातचीत खत्म हो जाने के बाद विश्वम्भरदयाल ने उठते हुए कहा,

"जहाँ तक मेरा खयाल है—आज शायद पण्डित श्यामनाथ तिवारी का फ़तहपुर से तबादिला हो जायगा।"

"कप्तान साहेब का आज तबादिला हो जायगा?" माताप्रसाद चौंक उठे, "लेकिन उनके तबादिले की तो कोई बातचीत थी नहीं!"

विश्वम्भरदयाल ने उत्तर दिया, "माताप्रसाद साहेब! यह मामला फ़तहपुर में हुआ है और हमें फ़तहपुर की शहादत चाहिये। मुजरिम का चचा फ़तहपुर का सुपरिण्टेण्डेण्ट आफ़ पुलिस है, उसकी मौजूदगी में हमें फ़तहपुर से शहादत मिलने में मुसीबत होगी। इसी बात को खयाल में रख मैंने इंसपेक्टर जेनरल से उनका तबादिला करवा दिया है!"

"हुजूर ने मुनासिब ही किया!" माताप्रसाद ने दबी ज़बान उत्तर दिया।

"जी हाँ, मेरा भी कुछ ऐसा ही खयाल है। इसके अलावा आज वह बँगले वाला कांस्टबिल पण्डित श्यामनाथ के साथ कानपुर आने वाला था, नए सुपरिंटेण्डेण्ट पुलिस ने उसे भी रोक दिया होगा और उस पर कड़ी निगरानी बिठला दी होगी! है न मजेदार बात!" और विश्वम्भरदयाल खिलखिलाकर हँस पड़ा। लेकिन कितनी भयानक थी वह विश्वम्भरदयाल की हँसी—माताप्रसाद सर से पैर तक काँप उठे।

१०

ब्रह्मदत्त ने उमानाथ से कहा, "कामरेड—तुम्हारे कहने के मुताबिक मैंने अबकी रविवार को मीटिंग बुला ली है। सब लोग इकट्ठा होंगे। लेकिन मैं देखता हूँ कि लोगों में जोश की कमी है।"

"यह स्वाभाविक ही है कामरेड!" उमानाथ ने उत्तर दिया, "एक बड़ा मूवमेण्ट समाप्त हो जाने के बाद लोगों में शिथिलता आ ही जानी चाहिए! लेकिन इस शिथिलता को दूर करना हमारा कर्तव्य है। साथ ही हम कोई मूवमेण्ट नहीं उठाने जा रहे हैं—हमारा मुख्य ध्येय होगा अपना

प्रचार करना—और उसके लिए यही उपयुक्त अवसर है !" थोड़ी देर तक रुक कर उमानाथ ने फिर कहा, "कम्यूनिज़्म का साहित्य जो हिन्दी और उर्दू में छपवाने को मैंने तुमसे कहा था, उसका क्या किया ?"

"वह पुस्तिकाएँ छप गई हैं और मिल-एरिया में बँट रही हैं। पुलिस वाले सरगर्मी के साथ तलाश कर रहे हैं कि ये पुस्तिकाएँ निकलती कहाँ से हैं !" और ब्रह्मदत्त हँस पड़ा।

उमानाथ मुसकराया, "ठीक है। और कामरेड, तुम शायद कामरेड नरोत्तम को जानते होगे ! आदमी बड़ा उत्साही और काम का मालूम होता है !"

ब्रह्मदत्त की भृकुटियों में बल पड़ गए, "कामरेड नरोत्तम ! हाँ, मिला तो कई बार हूँ, लेकिन उसके सम्बन्ध में मुझे कोई विशेष जानकारी नहीं है। तुम्हारा मतलब क्या है ?"

"वह अभी यहीं आने वाले हैं ! काम को विस्तृत-रूप से चलाने में हमें अधिक से अधिक आदमियों की ज़रूरत पड़ेगी न ! कामरेड मारीसन ने कामरेड नरोत्तम से मेरा परिचय कराया था। उन्होंने यह भी कहा था कि नरोत्तम ने उन्हें बहुत काफ़ी मदद की है। मैं समझता हूँ कि बाहर के प्रचार के लिए हम कामरेड नरोत्तम को नियुक्त कर दें, आदमी शिक्षित और कर्मण्य है !"

ब्रह्मदत्त मुसकराया, लेकिन उसकी मुसकराहट किसी हद तक व्यंगात्मक थी, "जहाँ तक बाहर के प्रचार का सवाल है, मुझे कुछ नहीं कहना है क्योंकि वह मेरा क्षेत्र नहीं है। लेकिन कामरेड मैं तुम्हें एक बात से आगाह कर देना आवश्यक समझता हूँ, नए और अनजाने आदमियों के सम्बन्ध में अच्छी तरह से छान-बीन कर लेनी चाहिये।"

ब्रह्मदत्त के अविश्वास पर उमानाथ को हँसी आ गई। "ठीक कहते हो कामरेड ! मैंने कामरेड नरोत्तम की बाबत अच्छी तरह जानकारी हासिल कर

ली है।" और उस समय उसे बाहर से एक आदमी की आवाज़ सुनाई दी, "क्या मिस्टर उमानाथ घर पर हैं।"

"लो कामरेड नरोत्तम आ गए!" कह कर उमानाथ कमरे के बाहर चला गया। बरामदे में एक नाटे क़द का गोरा सा युवक खड़ा था, सूट पहने हुए। उसकी आँखें चमकीली थीं और हाथ-पैरों में एक अजीब तरह की चपलता। उमानाथ ने कहा, "आइये कामरेड नरोत्तम! मैं आप के ही सम्बन्ध में कामरेड ब्रह्मदत्त से बातें कर रहा था।" उमानाथ नरोत्तम का हाथ पकड़ कर कमरे में ले आया। "इनको तो आप जानते ही होंगे—ये हैं कामरेड ब्रह्मदत्त!"

नरोत्तम मुसकराया, "नमस्कार कामरेड ब्रह्मदत्त! हम लोग एक दूसरे को अच्छी तरह जानते हैं!" उसने ब्रह्मदत्त से अपने नमस्कार का कोई जवाब न पाकर कहा, "आप लोग शायद किसी गम्भीर विषय पर बातें कर रहे थे।" और यह कह कर वह बैठ गया।

ब्रह्मदत्त एक शब्द नहीं बोला। वह ध्यान से कामरेड नरोत्तम को देख रहा था; एक तरह से ब्रह्मदत्त के देखने को असभ्यता पूर्वक घूरना भी कहा जा सकता था। नरोत्तम से वह केवल दो-चार बार मिला था, और प्रत्येक बार नरोत्तम ने उससे घनिष्ठता बढ़ाने का प्रयत्न किया था। पर न जाने क्यों ब्रह्मदत्त को नरोत्तम कभी पसन्द नहीं आया। शिष्ट, हँसमुख और सुसंस्कृत नरोत्तम को वह क्यों नहीं पसन्द कर सका, यह वह स्वयम् न जानता था। नरोत्तम की चमकीली आँखों में उसे कुछ ऐसी चीज़ मालूम हुई जिससे उसने नरोत्तम के निकट न आने में ही अपना कल्याण समझा। उसे कुछ ऐसा लगा कि नरोत्तम में कुछ चीज़ है—छिपी हुई, बन्द! नरोत्तम खुल कर मिलता था, हँस कर बात करता था, लेकिन ब्रह्मदत्त को ऐसा लगता था कि नरोत्तम का यह खुलकर मिलना, हँस कर बात करना—यह सब उसके अन्दर वाली किसी भयानक कुरूपता को छिपाने के लिए एक आवरण भर है!

उमानाथ ने बात छेड़ी, "तो फिर आपने ते कर लिया बाहर टूर करने के लिए!"

"जी हाँ—उसके लिए मैं एक दम तैयार हूँ। मुझे यहाँ से कब जाना है?"

"ऐसी कोई खास जल्दी नहीं—अभी कम से कम एक सप्ताह का समय आपके पास है। इस बीच में हम लोगों को अपना कार्यक्रम निर्धारित करना पड़ेगा।"

"जी हाँ! लोग कहते हैं कि जल्दी का काम शैतान का! हर काम करने के पहले खूब अच्छी तरह सोच-समझ लेना चाहिये!" और नरोत्तम खिलखिला कर हँस पड़ा। "काम करने का प्लान भी तो बनाना है!"

"नहीं, प्लान बनाने की कोई ज़रूरत नहीं, वह मेरे पास बना-बनाया मौजूद है। आप को उसी प्लान के मुताबिक काम करना होगा।" उमानाथ ने कहा।

नरोत्तम ने कहा, "जी हाँ—उसी प्लान के मुताबिक काम करूँगा। लेकिन क्या मैं यह पूछ सकता हूँ कि वह प्लान आपने तैयार किया है या आप को कहीं और से मिला है?"

ब्रह्मदत्त कुछ चौंक-सा पड़ा, "यह सवाल क्यों!"

नरोत्तम ने ज़रा सम्हलते हुए उत्तर दिया, "बात यह है कि अगर यह प्लान कामरेड उमानाथ ने तैयार किया है तो उसमें हम लोगों की सलाह से कुछ रद्दोबदल किया जा सकता है। काम मुझको ही करना है न! ऐसी हालत में अपनी कठिनाइयों के अनुसार उसमें कुछ करना चाहूँगा।"

"और अगर यह प्लान कामरेड उमानाथ ने न बनाया हो तो?" ब्रह्मदत्त ने पूछा।

नरोत्तम के उत्तर देने के पहिले ही उमानाथ बोल उठा, "कामरेड ब्रह्मदत्त! आप को मैं फिर बतला देना उचित समझूँगा कि हिन्दुस्तान में

कम्यूनिस्ट पार्टी का मैं प्रमुख आदमी हूँ। मेरे ऊपर कोई नहीं है। यह प्लान मैंने बनाया है!"

उमानाथ का इतना अधिक खुल जाना ब्रह्मदत्त को अच्छा नहीं लगा उसने फिर एक बार प्रयत्न किया "तो फिर ठीक है! मैं तो ऐसा समझत हूँ कि आप कामरेड नरोत्तम को अपना कार्यक्रम बतला दें और इन्हीं से एव प्लान बनवा लें क्योंकि काम इन्हीं को करना है!"

नरोत्तम हँस पड़ा, "आप ठीक कहते हैं कामरेड ब्रह्मदत्त! कामरेड उमा नाथ आप मुझे अपना प्लान दे दें और उसको मैं एक बार देख कर अध्ययन कर लूँ। इसके बाद जो जो परिवर्तन मुझे उसमें उचित लगेंगे—उन्हें नोट कर लूँगा और आपसे उन पर परामर्श कर लूँगा!"

लेकिन उमानाथ की अहम्मन्यता उस समय तक सतह पर आ गई थी दूसरों की यह मजाल कि वे उसके बनाए हुए प्लान पर अपनी क़लम चलावें! उसने तेज़ी से कहा, "कामरेड नरोत्तम! जो प्लान मैंने बनाया है व बहुत सोच-समझ कर! आप कार्यकर्ता हैं; बिना किसी बात पर शंका किये ग्रहण किये, काम करना—यह आप का कर्तव्य है। आप यह प्लान ले जाइये इसका अध्ययन कर लीजिये फिर आप को जो चीज़ें न समझ में आवें वह आप को समझा दूँगा!"

और उमानाथ ने प्लान ड्रार से निकाल कर नरोत्तम को दे दिया।

११

नरोत्तम के चले जाने के बाद ब्रह्मदत्त ने उमानाथ से कहा, "कामरेड—अगर बुरा न मानो तो एक बात तुमसे कहूँगा!"

"क्या बात है?" आश्चर्य से उमानाथ ने पूछा।

"मेरी तुमसे सलाह है कि तुम राजनीतिक मामले से सदा के लिए अपना हाथ खींच लो। तुम इन कामों के लिए नहीं बने हो!"

"क्या मतलब है तुम्हारा ?" उमानाथ ने ज़रा गरम होते हुए पूछा।

"मेरा मतलब यह है कि जितनी असावधानी के साथ तुम काम करते हो, जिस लापरवाही के साथ तुम बात करते हो उससे तुम किसी हालत में सफल नहीं हो सकते। यही नहीं, बल्कि मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि तुम खुद खतरे के मुँह में फाँद रहे हो और अपने साथियों को भी तुम खतरे में ढकेल सकते हो! तुम जानते ही हो कि कम्यूनिस्ट पार्टी पर सरकार की कड़ी नज़र है। आज तुमने, एक अनजाने आदमी के सामने खुल कर, उसपर यह प्रकट करके कि तुम कम्यूनिस्ट पार्टी के प्रमुख प्रतिनिधि हो, अदूरदर्शिता का परिचय दिया है!"

ब्रह्मदत्त की इस बात से उमानाथ निरुत्तर-सा हो गया। कुछ देर तक चुप वह सोचता रहा, फिर उसने कहा, "तुम ठीक कहते हो कामरेड। नरोत्तम के सामने खुल कर मैंने शायद ठीक नहीं किया।"

उसकी बात के तर्क को उमानाथ ने स्वीकार कर लिया, इस बात से ब्रह्मदत्त को प्रसन्नता हुई। उसने फिर कहा, "और उससे भी अधिक नासमझी का काम तुमने किया अपने हाथ से लिखा हुआ प्लान उसके हाथ में सिपुर्द करके! बिना इस पर सोचे कि उस प्लान के सरकार के हाथ में पड़ जाने से तुम पर मुसीबत पड़ सकती है!"

"उँह जाने भी दो! मुझे पूर्ण विश्वास है कि नरोत्तम ठीक तरह का आदमी है और वह मेरे साथ विश्वासघात नहीं करेगा!" लेकिन उमानाथ के शब्दों में चिन्ता की झलक साफ़ थी।

इसी समय मार्कण्डेय के साथ दयानाथ ने कमरे में प्रवेश किया। मार्कण्डेय ने ब्रह्मदत्त को देख कर ही कहा, "नमस्कार ब्रह्मत्तदजी—कहिये स्वास्थ्य कैसा है?"

ब्रह्मत्तदत्त ने अपने भुजदण्डों को ठीक तरह से देख भाल कर उत्तर दिया, "नमस्कार मार्कण्डेय जी! स्वास्थ्य आपकी कृपा से अच्छा है!"

मार्कण्डेय ने बैठते हुए अपनी बात जारी रक्खी, "बड़े मौके से मिल गए ब्रह्मदत्त ! मैं तुम्हें ढूँढ ही रहा था !"

ब्रह्मदत्त ने पूछा, "कहिये ! आप लोगों की क्या सेवा कर सकता हूँ ?"

मार्कण्डेय का स्वर थोड़ा और मुलायम हुआ, "भाई अब दयानाथ की लाज तुम्हारे हाथ में है। इस समय इन्हें तुम्हारी ही सहायता बचा सकती है।"

ब्रह्मदत्त मुसकराया, "ओ हो ! तो पण्डित दयानाथ को मेरी सहायता की आवश्यकता आ पड़ी। लेकिन यह सहायता मुझसे पहले क्यों नहीं माँगी गई मार्कण्डेय जी ?"

उत्तर दयानाथ ने दिया, "इसलिए कि मैं समझता था कि मेरा विरोध न होगा, और अगर थोड़ा-बहुत विरोध हुआ भी तो उसमें कोई दम न होगा !"

"क्यों ? क्या इसलिए कि दुनिया का सारा दम-खम आप में ही है दयानाथ जी ? लेकिन आपने अपनी ताक़त अन्दाज़ने में ग़लती की। आपके मुक़ाबिले जो शिवराम जी खड़े हुए हैं उनमें भी दम है !"

दयानाथ की भृकुटियाँ चढ़ गईं, "शिवराम ! ब्रह्मदत्त जी ! आप सब लोग अच्छी तरह जानते हैं कि शिवराम में ईमानदारी की कमी है। चन्दे की एक बहुत बड़ी रक़म उनके नाम पर चढ़ी हुई है जिसका उन्होंने अभी तक कोई हिसाब नहीं दिया है। यह तै है कि वह उस रक़म का कोई हिसाब देंगे भी नहीं, क्योंकि हिसाब दे ही नहीं सकते। फिर भी मुझे आश्चर्य होता है कि लोग एक बेईमान आदमी का समर्थन कर रहे हैं !"

ब्रह्मदत्त हँस पड़ा, "बेईमान आदमी ? हाँ दयानाथ जी, रुपये-पैसे के मामले में आप शिवराम जी को बेईमान कह सकते हैं। लेकिन दूसरी बातों में ? आप की सारी नैतिकता रुपयों-पैसों की है। यही रुपया-पैसा आप की उस नैतिकता का एकमात्र माप तौल है। लेकिन इस रुपये-पैसे के आगे भी कुछ है...यह आप नहीं समझ सकते !"

इस बार मार्कण्डेय के हँसने की बारी थी, "इस रुपये-पैसे के आगे भी कुछ है ब्रह्मदत्त! तुम इस बात को कह रहे हो—और वह भी शिवराम के लिए! मैं पूछता हूँ कि अगर रुपये-पैसे के ऊपर शिवराम किसी चीज़ को मानते होते तो जनता की उस रक़म पर, जो उनके पास धरोहर के रूप में रक्खी हुई थी—हाथ न लगाते! नहीं ब्रह्मदत्त—ग़लत कह रहे हो। न शिवराम के लिए रुपये-पैसे के ऊपर कोई चीज़ है और न तुम्हारे लिए!"

"यह आप क्या कह रहे है मार्कण्डेय भइया!" उमानाथ ने आश्चर्य से पूछा, "शिवराम कैपिटेलिस्ट है या बन रहा है, और इस लिए मैं उसके सम्बन्ध में यह माने लेता हूँ कि उसके लिए रुपये-पैसे से ऊपर कोई चीज़ नहीं है; लेकिन ब्रह्मदत्त तो कम्यूनिस्ट हैं। ब्रह्मदत्त के सम्बन्ध में आप यह कैसे कह सकते हैं?"

मार्कण्डेय सम्हल कर बैठ गया, "उमा! तुम भी तो कम्यूनिस्ट हो न! और मैं कहता हूँ कि ब्रह्मदत्त के लिए ही नहीं, तुम्हारे लिए भी रुपये-पैसे के उपर कुछ नहीं है! अगर मेरी बात पर तुम्हें बुरा लगे तो माफ़ करना, लेकिन मैं अभी सारी मीमांसा किये देता हूँ। हाँ, अगर मैं ग़लती नहीं करता तो तुम कम्यूनिस्ट समाज का निर्माण आर्थिक नींव पर मानते हो। है न ऐसा!"

"आप ठीक कहते हैं!" उमानाथ ने उत्तर दिया।

"ठीक! और अर्थ का दूसरा रूप है रुपया-पैसा। तो प्रत्येक कम्यूनिस्ट रोटी और पैसे के ऊपर ही प्रत्येक सामाजिक-अंग का निर्माण मानता है। उसके लिए धर्म-कर्म-विश्वास—यह सब एक ढकोसला है जिसे पैसे वाले सम्पन्न लोगों ने ग़रीबों और असमर्थों को धोखा देने के लिए, उन्हें बहला कर तथा फुसला कर उनका बेजा फ़ायदा उठाने के लिए बना रक्खा है। है न ऐसी बात?"

"बिल्कुल ठीक!" उमानाथ ने तपाक के साथ कहा।

"तो जहाँ तक ज़िन्दगी पर कम्यूनिस्टों के दृष्टिकोण का सवाल है, वह

वही है जो एक पूँजीपति का है। न पूँजीपति रुपए-पैसे के ऊपर किसी च
को मानता है, न कम्यूनिस्ट रुपए-पैसे के ऊपर किसी चीज़ को मानता
भेद केवल इतना है कि पूँजीपति इस बात को स्वीकार नहीं करता,
कम्यूनिस्ट इस बात को खुल्लम-खुल्ला स्वीकार करता है!"

"यह इसलिए कि पूँजीपति का इस बात को स्वीकार न करने में हित है

"ठीक! इस लिए कि पूँजीपति के पास है—प्रचुरता के साथ है।
कम्यूनिस्ट के पास नहीं है। पूँजीपति समाज से छीन कर इस रुपए पैसे
व्यक्ति में केन्द्रित करना चाहता है, वहाँ कम्यूनिस्ट चाहता है कि यह रु
पैसा व्यक्ति के हाथ से निकल कर समाज के पास चला जाय!"

"आप ठीक कहते हैं! पूँजीपति और कम्यूनिस्ट में यह अन्तर बड़े म
का है। पूँजीपति अपने लिए जीवित रहता है, कम्यूनिस्ट समाज के लिए

"दूसरों के लिए जीवित रहना!" मार्कण्डेय ने इन शब्दों पर ज़ोर
हुए कहा, "दूसरों के लिए जीवित रहना—एक मनोवैज्ञानिक असत्य!
ढंग से, प्रचार के लिए यह चिल्ला कर कहा जाता है कि हम दूसरों के
जीवित रहते हैं, लेकिन वास्तविकता इससे भिन्न है। कोई भी व्यक्ति
के लिए नहीं जीवित रहता—प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए जीवित रहता
कम्यूनिस्ट दूसरों से लेने में, छीनने में विश्वास करता है, दूसरों को दे
नहीं। कम्यूनिस्ट में आत्म-बलिदान की भावना नहीं। वह अपने ऊपर अ
से अधिक खर्च करने में विश्वास करता है। उसके आगे अभाव अथवा '
का विकराल रूप है, और वह 'अभाव अथवा नहीं' का प्रथम केन्द्र
को मान कर काम आरम्भ करता है। और कम्यूनिज़्म अभाव
प्रतिक्रिया भर है—इसके बाद कुछ नहीं!"

उमानाथ ने तड़प कर कहा, "मार्कण्डेय भइया! आप यह बात
भूलिये कि दुनिया के सब से बड़े कम्यूनिस्ट वे लोग रहे हैं जिन्हें मध्यव
पूँजीपति कहा जा सकता है, जिन्हें खाने पहिनने का कभी कोई अभाव नहं
है। इस सत्य को भुला कर आप अपने भयानक असत्य को अपना रहे हैं

मार्कण्डेय हँस पड़ा, "यही सत्य तो, जो कुछ मैं कह रहा हूँ उसका आधार है! एक मज़दूर! वह वास्तविक कम्यूनिस्ट हो ही नहीं सकता! सदियों से पिसते-पिसते उसकी आत्मा मर-सी चुकी है, वह न सोच सकता है, न समझ सकता है, अपने अभाव के रूप को देखने की उसमें क्षमता ही नहीं है। कम्यूनिस्टों में अधिक तर मध्यवर्ग के लोग ही हुए हैं, ऐसे लोग जिनका दुनिया के घमण्डी पूँजीपतियों से मुक़ाबिला हुआ और उनके मन में पूँजीपति वर्ग के स्वार्थ, अभिमान और उच्छृङ्खलता के प्रति विद्रोह पैदा हुआ। जिन लोगों में पूँजीपति के भाग्य पर ईर्ष्या हुई, जिन्होंने लगातार यह सोचा कि उन्हें वे सब सुविधाएँ क्यों नहीं मिलतीं जो पूँजीपतियों को प्राप्त हैं। ईर्ष्या और ईर्ष्याजनित विद्रोह पर ही कम्यूनिज़्म की नींव पड़ी है—यह याद रखना! विद्रोह संतोष से नहीं होता, वह होता है अभाव से; और अगर अभाव से तुम इन साधारण चीज़ों को—यानी रोटी-कपड़े को समझते हो—तो तुम्हारा बड़ा ग़लत ख्याल है!" मार्कण्डेय यह कहते-कहते उत्तेजित हो उठा, "उमानाथ! तुम यह बतला सकते हो कि दुनिया में किस कम्यूनिस्ट ने दूसरों की ग़रीबी से द्रवित हो कर अपनी सम्पत्ति उनके लिए दान कर दी है? तुम बता सकते हो कि किस कम्यूनिस्ट ने ऐयाशी, भोग-विलास छोड़े हैं, तुम बता सकते हो कि किस कम्यूनिस्ट ने त्याग किया है?"

"दान, त्याग, दया! मूर्खों के लिए बने हुए सिद्धान्त हैं—तुम इन पर विश्वास करो मार्कण्डेय भइया, लेकिन बुद्धिवादी कम्यूनिस्ट को इन पर विश्वास नहीं!"

"ठीक कहते हो उमानाथ! यह चीज़ें जिनका मतलब है 'देना'—इन पर तुम्हें विश्वास नहीं। तुम्हारा सिद्धान्त है लेना—ठीक वही सिद्धान्त जो पूँजीपति का है। कम्यूनिज़्म एक तरह से पूँजीवाद से भी भयानक है क्योंकि पूँजीवाद में जहाँ महज़ 'लेना' ध्येय है, वहाँ कम्यूनिज़्म का ध्येय 'लेने' के साथ 'मारना और मिटाना' भी है। दूसरे शब्दों में कम्यूनिज़्म पूँजीवाद की प्रतिक्रिया भर है; और साथ ही कम्यूनिज़्म में पूँजीवाद की हिंसा की एक विनाशात्मक प्रतिहिंसा भी है जो समाज के लिए कहीं अधिक भयानक है!"

उमानाथ ने आवेश में आकर कहा, "आप ने बहुत ग़लत बात कह डाली मार्कण्डेय भइया ! कम्यूनिज़्म की नींव 'लेने' पर अवश्य है, लेकिन वह 'लेना' स्वत्व और अधिकार के अन्तर्गत है। हम अपनी समर्थता पर विश्वास करते हैं—हम मनुष्य मात्र में पौरुष देखना चाहते हैं। हमारा सम्प्रदाय संघर्ष के युग का सम्प्रदाय है। दया और त्याग असमर्थों और अपाहिजों के लिए हैं—ये व्यक्तिगत चीज़ें हो सकती हैं, सामाजिक नहीं। दया और त्याग व्यक्ति के लिए भले ही कुछ हों, समाज के लिए यह दया और त्याग अनैतिक है, समाज के लिए आत्महत्या है। कम्यूनिज़्म समाज का सत्य है और चूँकि व्यक्ति समाज का भाग है, इसलिए व्यक्ति के लिए लाज़िमी है कि वह समाज के सत्य को अपनावे !" और उसी समय ब्रह्मदत्त ने कहा, "मैं तो यह कहता हूँ कि रूस की ओर देखो ! क्या से क्या हो गया है ! प्रत्येक व्यक्ति सुखी है, प्रत्येक व्यक्ति सम्पन्न है। दुनिया के उत्पीड़ितों के लिए, भेड़-बकरियों की तरह पिसने वाले कायर और मज़दूरों और किसानों के लिए रूस ने नवजीवन का संदेश दिया है !"

दयानाथ ने मुसकराते हुए पूछा, "क्या वास्तव में रूस का हरेक आदमी सुखी है, सम्पन्न है, सन्तुष्ट है ? क्या वास्तव में रूस ने अपने यहाँ से अभाव को निकाल फेंका है ?"

"हां ! हां ! रूस महान है !" ब्रह्मदत्त ने सामने पड़ी हुई सेंटर टेबिल पर हाथ पटकते हुए कहा।

"और मैं कहता हूँ कि तुम बिना जाने-बूझे, सोचे-समझे, रूस के नारे लगा रहे हो। तुम रूस के इतने बड़े ग़ुलाम हो कि उसकी बुराइयाँ तुम्हें नज़र आ ही नहीं सकतीं !" दयानाथ ने उत्तेजित होकर कहा।

मार्कण्डेय ने दयानाथ का हाथ पकड़ कर सचेत किया, "दया ! फिर तुम अपने ऊपर से अधिकार खो बैठे ! यह तुम्हें इस तरह उत्तेजित हो जाना शोभा नहीं देता !"

लेकिन दयानाथ की बात का असर पड़ चुका था। ब्रह्मदत्त ने उठने

हुए कहा, "जहाँ हमारे विचारों का इस तरह अपमान किया जाता है, जहाँ हमें इस तरह गालियाँ दी जाती हैं, वहाँ बैठना ग़लत है। अच्छा कामरेड उमानाथ, मैं आपसे फिर कभी मिलूँगा!"

१३

पण्डित श्यामनाथ तिवारी को तार द्वारा अपने तबादिले की खबर मालूम होने पर धक्का-सा लगा। जिस समय मिस्टर रार्बटसन उनसे चार्ज लेने आए, वे कानपुर जाने की तैयारी कर रहे थे। उन्हें यक़ीन नहीं हो रहा था कि यह क्या हो रहा है, लेकिन सरकारी आज्ञा थी और उन्हें चार्ज देना ही पड़ा। चार्ज देकर पण्डित श्यामनाथ तिवारी इंसपेक्टर जेनरल पुलिस से मिलने के लिए इलाहाबाद चले गए।

इन्सपेक्टर जेनरल पुलिस ने उन्हें बतलाया कि उनका तबादिला भारत-सरकार के अदेशानुसार किया गया है। उसने श्यामनाथ के साथ पूरी हमदर्दी ज़ाहिर की। उसी समय श्यामनाथ ने एक लम्बी छुट्टी ले ली।

इलाहाबाद से श्यामनाथ तिवारी उन्नाव पहुँचे। जिस समय श्यामनाथ रामनाथ के यहाँ पहुँचे, वीणा रामनाथ तिवारी को अखबार सुना रही थी। अपने बड़े भाई के सामने पहुँचते ही श्यामनाथ रो-से पड़े, "भइया—सर्वनाश हो गया!"

"क्या बात है?" रामनाथ ने घबरा कर पूछा।

"फ़तहपुर का चार्ज मुझसे आज सुबह ले लिया गया। भइया—जो कुछ भी मैं प्रभा को बचाने के लिए कर सकता था, अब न कर सकूँगा।

रामनाथ थोड़ी देर तक एक टक अपने छोटे भाई की ओर देखते रहे, इसके बाद उन्होंने अपनी आँखें शून्य में गड़ा दीं। कुछ रुक कर उन्होंने धीरे से कहा, "श्यामू! तुम्हे नियति पर विश्वास है?"

श्यामनाथ मर्माहत-से मौन रहे।

रामनाथ ने कुछ देर तक श्यामनाथ के उत्तर की प्रतीक्षा करके कहा, "नियति का चक्र चल रहा है श्यामू ! एक बहुत बड़ी ताक़त हमारे ख़िलाफ़ है। ज़रा सोच कर और समझकर हमें उस ताक़त का मुक़ाबिला करना पड़ेगा, बहुत सम्हल कर ! एक क़दम भी ग़लत पड़ा और विनाश अवश्यंभावी है। कहीं हम हार न जाँय, इसका ख्याल रखना पड़ेगा !" और अनायास ही रामनाथ उठ खड़े हुए, मानों उनका दम घुट रहा हो। उस समय वे कह रहे थे, अपने ही से, "कहीं हम हार न जाँय—हार न जाँय ! नहीं, हारना असम्भव है !" और वे उस समय बरामदे के बाहर निकल कर खड़े हो गए। अमावस्या की रात घिर आई थी—अमावस्या के उस गहरे अन्धकार में उन्होंने अपनी आँखें गड़ा दीं। "हे भगवान ! क्या मुझे पराजित होना पड़ेगा ? तुम चाहते क्या हो ? तुम्हारे विरुद्ध लड़ना !—इतना बल मुझमें नहीं है ! मुझे बल दो मेरे भगवान !"

उस रात पण्डित रामनाथ तिवारी को नींद नहीं आई। उनकी समझ में न आ रहा था कि प्रभानाथ को किस प्रकार बचाया जाय। उनकी हरेक चाल ग़लत पड़ रही थी, हर जगह उन्हें असफलता मिल रही थी। उन्हें ऐसा लग रहा था कि नियति उनके साथ युद्ध कर रही है, और नियति ने यह दृढ़ निश्चय कर लिया है कि वह उन्हें पराजित करेगी ही।

सुबह उन्होंने श्यामनाथ से कहा, "श्यामू ! कानपुर जा कर प्रभा की पैरवी का इन्तज़ाम करो ! इस बीच में मैं सोचूंगा कि क्या किया जाय !"

पर मानों श्यामनाथ के प्राणों में बल ही न रह गया हो ! बड़े करुण स्वर में उन्होंने कहा, "भइया ! आप कानपुर चलिये ! मुझसे कुछ न हो सकेगा ! अब आप का ही सहारा है !"

"अच्छी बात है—मैं चलता हूं !"

दूसरे दिन श्यामनाथ के साथ रामनाथ कानपुर के लिए रवाना हो गए। रामनाथ ने एक बँगला किराए पर ले लिया और उसी में वे उतरे। उन्हें

मालूम था कि उमानाथ दयानाथ के यहाँ ठहरा है, श्यामनाथ तिवारी को उन्होंने उमानाथ को बुलाने को भेजा।

श्यामनाथ जब दयानाथ के घर पहुँचे, उमानाथ घर पर न था। दयानाथ कांग्रेस के कार्यकर्ताओं के साथ अपने चुनाव की तैयारी में लगे थे। श्यामनाथ के आते ही उन्होंने उठकर श्यामनाथ के चरण छुए। और जब दयानाथ को पता लगा कि रामनाथ ने दूसरा बँगला किराए पर ले लिया है तब उन्होंने मर्माहत हो कर कहा, "तो काका! बात यहाँ तक पहुँच गई है। दद्दुआ ने इस तरह मुझे छोड़ दिया!"

श्यामनाथ ने इस पर केवल इतना कहा, "दया! तुम तो जानते ही हो बड़के भइया को!"

दयानाथ ने उत्तर दिया, "हाँ काका, मैं जानता हूँ! लेकिन उनके साथ आप सब लोगों ने—सब लोगों ने...!" और दयानाथ आगे कुछ न कह सके; उनका गला रुँध गया।

एक क्षण के लिए श्यामनाथ विचलित हो उठे। उन्होंने दयानाथ का हाथ पकड़ लिया, "दया! मुझे क्षमा करो! मैं जानता हूँ कि तुम्हारे साथ जो अन्याय हो रहा है उसमें मैं भी सम्मिलित हूँ! लेकिन मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि अपनी इच्छा के विरुद्ध! मैं अपने आपे में नहीं हूँ!"

छठा परिच्छेद

१

उमानाथ कह रहा था, और उसके सामने बैठे हुए दस आदमी गौर से सुन रहे थे, "ये सारी भावनाएँ, यह धर्म-कर्म, यह दया, यह प्रेम, यह त्याग!—यह सब का सब एक ढकोसला है, जिन्हें समर्थों ने असमर्थों को बहकाने के लिए, धोखा देने के लिए बनाया है। ये जितनी भावनाएँ हैं उनका रूप मनुष्य की सामर्थ्य अथवा असमर्थता के साथ बदलता रहता है। समाज के नियमों का निर्माण शासक-वर्ग के व्यक्तियों द्वारा हुआ है, और यही शासक-वर्ग समाज का शोषक-वर्ग है जिसने अपनी सुविधा के लिए, अनन्त काल तक शोषितों को अपना शिकार बनाए रखने के लिए, यह सब धर्म, कर्म, दया, करुणा का जाल बिछाया है। इनको दुहाई देना बहुत बड़ी छलना है और जन-समुदाय को इस छलना से बचाना पड़ेगा।

"अपने यहाँ के ही पूँजीपति बनिये को लो—वह बहुत बड़ा धर्मात्मा बनता है। उसने मन्दिर बनवाए हैं, उसने धर्मशालाएँ स्थापित किये हैं। उसने अस्पताल खोले, उसने स्कूल खोले। वह गंगा का स्नान करता है, वह निरामिष भोजी है। और उसके बाद उसका वास्तविक रूप देखो! मनुष्य का खून चूस कर वही पूँजीपति पनपता है, उसके ही शोषण के कारण लाखों आदमी भूखों तड़प कर मर जाते हैं। अपने स्वार्थ के लिए वह झूठ बोलता है, दूसरों को धोखा देता है। और साथ ही लोगों की आँखों में धूल झोंकने के लिए वह लाखों दान करता है!

"मैं पूछता हूँ कि यह राष्ट्रीयता है क्या? यह राष्ट्रीयता एक ढकोसला है जिसको पूँजीपतियों ने अपने स्वार्थ-साधन के लिए निर्माण किया है। इस

राष्ट्रीयता के नाम पर लाखों, करोड़ों आदमी अपनी जानें दे देते हैं। लेकिन ला किनका होता है? पूँजीपतियों का!

"कांग्रेस इन्हीं पूँजीपतियों की संस्था है और गांधी इन पूँजीपतियों का तेनिधि है! सत्याग्रह में जेल जाने वालों की संख्या पर ध्यान दो, और हें स्पष्ट हो जायगा कि उन लोगों में अधिकांश मध्यवर्ग के वे लोग हैं जिन्हें जीपतियों ने जेल जाने के लिए प्रोत्साहित किया है, जिनकी पूँजीपति समय-मय पर धन से सहायता करते रहते हैं। इस सत्याग्रह को चलाने वाले देश पूँजीपति हैं। और अब आप सब लोग पूछ सकते हैं कि देश के पूँजीपति स स्वतंत्रता-संग्राम में क्यों दिलचस्पी ले रहे हैं!

"इस स्वाभाविक प्रश्न का उत्तर ही हमारे सिद्धान्त की, हमारे समुदाय ो, हमारी नीति की सबसे बड़ी और अकाट्य दलील है। आप लोग यह ाद रखिये कि जन-समुदाय न स्वतंत्रता के रूप को जानता है, न स्वतंत्रता मूल को—और यह बात केवल हिन्दुस्तान के जन-समुदाय पर ही लागू हीं है, यह बात दुनिया के प्रत्येक स्वतंत्र अथवा परतंत्र जन-समुदाय पर ागू है। उत्पीड़ित, दलित और अशिक्षित जन-समुदाय केवल राज्य से ही ासित नहीं है, वह पूँजीवाद अथवा उच्चश्रेणीवाद का गुलाम है। मजदूर ो अपने मालिक के, किसान को ज़मीन्दार के इशारों पर नाचना पड़ता है। स मज़दूर अथवा किसान की सारी नैतिकता, उसका हँसना-गाना, उसका र्म-कर्म—यह सब का सब पूँजीपति के चंद चाँदी के टुकड़ों पर बिक चुका । उसका सारा अस्तित्व उस पशु का सा अस्तित्व है जो मालिक के यहाँ लता है, उसका अन्न खाता है, उसका असबाब ढोता है। और इसलिए ान-समुदाय की स्वतंत्रता के प्रति उपेक्षा स्वाभाविक ही है। मैं यह मानता ़ कि विभिन्न देशों के जनसमुदाय में राष्ट्रीयता की एक झूठी और घातक ावना भर दी गई है, पर यह सब पूँजीपतियों ने तथा उच्च श्रेणी वालों ने ान-समुदाय को बेवकूफ़ बनाकर अपना स्वार्थ-साधन करने के लिए किया है। गौर इसीलिए मैं कहता हूँ कि जन-समुदाय में स्वतंत्रता के लिए वास्तविक त्साह होना असम्भव है। वह तो इतना जानता है कि उसे अनन्त काल

तक गुलामी करनी ही पड़ेगी—अपने मालिक की ; वह मालिक चाहे हिन्दु-स्तानी हो चाहे अंग्रेज़ हो !

"देश की स्वतंत्रता से लाभ होगा केवल पूँजीपति को। आज अंग्रेज़ पूँजीपति अपने साम्राज्यवाद की सहायता से हमारे देश का सारा व्यवसाय अपने हाथ में किये हुए है। वह हमारे देश के व्यवसाय को पनपने नहीं देता। इसके माने यह हैं कि हमारे देश का पूँजीपति उतना मुनाफ़ा नहीं कर सकता जितना अंग्रेज पूँजीपति कर लेता है। और इसीलिए आज हिंदु-स्तानी पूँजीपति का यह स्वार्थ है कि हिन्दुस्तान स्वतंत्र हो जिससे वह बिना रोक-टोक देश के जन-समुदाय को उत्पीड़ित और शोषित कर सके, जिससे वह भेड़-बकरी के समान हिन्दुस्तान के जन-समुदाय को अपना गुलाम बना सके।

"और इसीलिए मैं कहता हूँ कि इस राष्ट्रीयता की लड़ाई में हमें, हम मजदूरों को, हम किसानों को न कोई दिलचस्पी हो सकती है, न कोई दिल-चस्पी होनी चाहिये। हमें पूँजीपतियों से लड़ना है, हमें संगठित होकर श्रेणी-वाद का विनाश करना है—तभी हमें वास्तविक स्वतंत्रता मिलेगी !"

"लेकिन यह सम्भव किस प्रकार है ?" एक आदमी ने पूछा।

उमानाथ ने उत्तर दिया, "यह विश्व-क्रान्ति द्वारा सम्भव है !"

"और विश्व-क्रान्ति कैसे सम्भव है ?"

"रूस द्वारा !" उमानाथ ने कहा, "रूस विश्व-क्रांति की आयोजना कर रहा है, हमें उसके लिए तैयार होना चाहिये। और इसीलिए मैं कहता हूँ कि यह राष्ट्रीयता, यह स्वराज्य की लड़ाई—यह सब बेकार है। मेरे मत में तो यह हम लोगों के हितों के लिए किसी अंश तक हानिकारक है। अभी इस परतंत्रता की हालत में तो हम सब हिन्दुस्तान के निवासी—हम मजदूर, किसान, मध्यवर्ग के लोग और पूँजीपति—ब्रिटेन के खिलाफ रूस की सहा-यता कर सकते हैं, और इसीलिए रूस से हम हिन्दुस्तान में विश्व-क्रांति [illegible] आसानी से [illegible], लेकिन यदि एक बार हिन्दुस्तान को स्वतंत्रता मि-

गई और देश के मज़दूर तथा किसान एक बार देश के पूँजीपतियों के शिकंजे में पूरी तौर से कस गए तो याद रखियेगा, उस कल्याणकारी भावी विश्व-क्रान्ति के समय रूस का विरोधी एक जबर्दस्त दल हिन्दुस्तान में तैयार हो जायगा।"

"इसके माने तो यह हुए कि जब तक रूस विश्व-क्रांति न करे तब तक हम हिन्दुस्तानियों को ब्रिटेन की गुलामी करनी चाहिये, और खास तौर से तब जब विश्वक्रांति का न कोई निश्चित समय है, न उसकी कोई निश्चित रूप-रेखा है!" प्रभदत्त ने कहा।

"रूप रेखा मौजूद है लेकिन वह गुप्त है—उसे मैं प्रकट नहीं कर सकता। और ज़रा आप लोग चीज़ों पर ठीक तौर से ग़ौर करें। जैसा मैं कह चुका हूँ राष्ट्रीयता एक छिछली और धोखे की चीज़ है, हमारी समस्या राष्ट्रीय समस्या नहीं है, हमारी समस्या वर्गवाद की अन्तर्राष्ट्रीय समस्या है। दुनिया भर के मज़दूर-किसान उत्पीड़ित हैं, दुनिया भर के पूँजीपति मौज करते हैं। इसलिए हमें पूँजीवाद के ख़िलाफ़ युद्ध करते रहना है। हमारा युद्ध एक दिन का नहीं है, एक वर्ष का नहीं है, इस युद्ध की अवधि एक लम्बी अवधि रहेगी। इस युद्ध में हमें कुशल लोगों का नेतृत्व चाहिये, और वह नेतृत्व हमें रूस से ही मिल सकता है। रूस की जो नीति है वह हमारी नीति होनी चाहिये। और जितनी जल्दी हम विश्व-क्रान्ति के लिए तैयार हो सकते हैं उतनी ही जल्दी विश्वक्रान्ति होगी। यह याद रखिये कि यह समाजवादी दल अकेले रूस में नहीं है, अकेले हिन्दुस्तान में नहीं है, यह समाजवादी दल सारी दुनिया में फैला है और सारी दुनिया के मज़दूर और अन्य शोषित लोग रूस की अध्यक्षता में, रूस के पवित्र नेतृत्व में इस विश्वक्रांति के लिए तैयार हो रहे हैं!"

२

उमानाथ के इस व्याख्यान का प्रभाव वहाँ बैठे हुए अधिकांश आदमियों पर पड़ा, और जिस समय उमानाथ वहाँ से निकला, एक नवयुवक ने

उसने कहा, "कामरेड उमानाथ! मैं आपको बधाई देता हूँ कि आपने हम लोगों को वास्तविक स्थिति समझा कर हमारी आँखें खोल दीं। मैं चाहता हूँ कि मैं आपकी कुछ सहायता कर सकूँ!"

"आप आजकल क्या करते हैं?" उमानाथ ने पूछा।

"आज कल मैं बेकार हूँ!" उस नवयुवक ने उत्तर दिया, "पिछले साल मैंने बी० ए० पास किया था; आगे पढ़ नहीं सकता क्योंकि घर की हालत बहुत खराब है; और अभी तक लाख कोशिश करने पर कोई नौकरी नहीं मिली। और नौकरी मिलती भी कैसे? नौकरी मिलने के लिए होनी चाहिये सिफारिश। हम एक बड़े आदमी के भाई भतीजे, नाते-रिश्तेदार हैं। पहले उन्हें नौकरी मिलेगी या मुझे!"

उमानाथ मुसकराया, "ठीक कहते हो! अच्छा, अगर मैं तुमसे यह कहूँ कि तुम एम० ए० पढ़ो तो उसमें तुम्हें कोई आपत्ति होगी?"

"एम० ए० मैं कैसे पढ़ूँ! मैं कह चुका हूँ न कि घर की हालत बहुत खराब है!"

"इसकी चिन्ता मत करो। तुम्हारी पढ़ाई का खर्च मैं बर्दाश्त करूँगा। तुम्हारा काम होगा यूनिवर्सिटी में रहकर विद्यार्थियों में समाजवाद का प्रचार करना। समाजवाद पर अधिक से अधिक पुस्तकें लिखी गई हैं—वह पूरा साहित्य मैं दूँगा, उसे तुम पढ़ डालो, उस साहित्य का दूसरे विद्यार्थियों में

ब्रह्मदत्त ने उमानाथ के साथ चलते हुए कहा, "कामरेड ! कामरेड नरोत्तम की कोई खबर मिली ?"

उमानाथ के मस्तक पर चिंता की एक हलकी-सी रेखा अंकित हो गई, "अभी तक तो नहीं मिली, और मैं कुछ ऐसा अनुभव कर रहा हूँ कि नरोत्तम के हाथ में काम सिपुर्द करके मैंने समझदारी का काम नहीं किया !"

ब्रह्मदत्त मुसकराया, "मैंने तुम्हें पहले ही आगाह कर दिया था कामरेड !" लेकिन ब्रह्मदत्त की मुसकराहट में भी चिन्ता निहित थी, "कामरेड ! अगर मान लो कि नरोत्तम तुम्हारे हाथ के लिखे हुए प्लैन को सरकार के हाथ में सिपुर्द कर दे तो ?"

"तो सरकार मुझे गिरफ़्तार कर सकती है, यद्यपि मेरी गिरफ़्तारी के लिए सिर्फ़ इतना-सा सबूत काफ़ी न होगा। फिर भी सरकार के खुफ़िया विभाग को तो तुम जानते ही हो—उन्होंने मेरे खिलाफ़ और न जाने क्या-क्या सबूत इकट्ठा कर रक्खे हों।"

कुछ देर तक ब्रह्मदत्त सोचता रहा, फिर उसने कहा, "कामरेड ! यह तो अच्छा नहीं हुआ। मुझे अब पूरी तौर से यक़ीन होने लगा है कि नरोत्तम का सी० आई० डी० विभाग से सम्बन्ध है। ज़रा सावधान रहना होगा आपको—और अगर कुछ मेरी सहायता की आवश्यकता हो तो आप उसी समय मुझे बुलवा लीजियेगा !"

ब्रह्मदत्त को रास्ते से ही विदा करके उमानाथ बँगले में पहुँचा। वहाँ एक आदमी बैठा हुआ उमानाथ की प्रतीक्षा कर रहा था।

उस आदमी ने उमानाथ से कहा, "मैं स्पेशल डिपार्टमेण्ट का इंस-पेक्टर लालबहादुर हूँ—तकलीफ़ के लिए माफ़ कीजियेगा, लेकिन आपसे कुछ ज़रूरी बातें पूछनी थीं !"

उमानाथ बैठ गया। उसने मन ही मन कहा, "तो आरम्भ हो गया !" और उसने लालबहादुर से कहा, "हाँ-हाँ ! पूछिये !"

लालबहादुर ने ज़रा गला साफ़ करके आरम्भ किया, "बात यह है कुँवर साहेब—आप जानते ही हैं—जी हाँ, हम लोगों को तो सरकार जैसा कहे वैसा करना पड़ता है। तो—जी हाँ, आपके खिलाफ़ कुछ ऐसी खबरें मिली हैं कि मुझे आपसे पूछताछ करने को तैनात किया गया है—लिहाज़ा मैं आपकी खिदमत में हाज़िर हो गया।" यह कहकर लालबहादुर मुसकराया।

उस समय तक, और खास तौर से लालबहादुर की बातचीत के ढंग से उमानाथ सुव्यवस्थित हो गया था। उमानाथ ने कहा, "हाँ-हाँ—तो पहले कुछ चा वा पी लीजिये फिर बातचीत होती रहेगी, आपको कोई खास जल्दी तो नहीं है?"

"अजी जल्दी किस बात की—हम लोग तो वक्त के मालिक होते हैं साहेब, सिर्फ़ मौत से बस नहीं चलता, वरना हमारी ब्रिटिश सरकार के बस में सब कुछ है।" और लालबहादुर अपने मज़ाक पर खुद हँस पड़ा।

उमानाथ ने नौकर से चा बनाने को कह दिया, फिर वह लालबहादुर के पास बैठ गया। उसने पूछा, "इंसपेक्टर साहेब—अब आप मुझे पहले यह बतलाइये कि सरकार के क्या इरादे हैं?"

"जी...इरादे क्या हैं—इसका तो मुझे कुछ खास पता नहीं, लेकिन कार्रवाई आपके खिलाफ़ शुरू कर दी गई है—यह तो इसी से आपको मालूम

महज़ चिल्लाते भर हैं कि सरकारी नौकरी छोड़ दो। पूछिये साहेब नौकरी छोड़ दूँ तो इतने लोगों को कांग्रेस खिलाएगी। वैसे देशभक्ति मेरे दिल में भी है—लेकिन कुँवर साहेब यह सब देशभक्ति उसी को शोभा देती है जिसके पास पैसा हो। मेरे पास भी अगर लाख-पचास हज़ार रुपया हो जाय, तो मैं भी देशभक्ति कर सकता हूँ!"

उमानाथ के चेहरे पर एक मुसकराहट आई, "इंसपेक्टर साहेब! अगर आप समझदारी के साथ काम करें तो कुछ दिनों में आपके पास इतना रुपया आसानी से हो सकता है!"

लालबहादुर ने ज़रा मुँह बनाते हुए कहा, "आपकी बड़ी कृपा है कुँवर साहेब—लेकिन दुनिया में हाथ-पैर बचाकर काम करने को ही बुद्धिमानी कहते हैं। इसके अलावा एक बात और—मुझे दान-दक्षिणा लेने में विश्वास नहीं। यहाँ तो खरा सौदा करने वाले आदमी हैं। अगर आप खरे सौदे को मेरी समझदारी समझ सकें तो वह समझदारी मेरे पास काफ़ी है।"

इस समय तक चा आ गई थी। उमानाथ और लालबहादुर ने चा पी। चा पीकर लालबहादुर ने कहा, "तो कुँवर साहेब! मुझे यह दरियाफ़ करना था कि आज-कल आप कानपुर में क्या कर रहे हैं, और आगे चल कर क्या करने के इरादे हैं?"

उमानाथ ने उत्तर दिया, "अपने छोटे भाई की, गिरफ़ारी के सिलसिले में उसकी पैरवी करने के लिए यहाँ रुका हुआ हूँ—इसके बाद क्या करूँगा, यह मैंने अभी ते नहीं किया है।"

"मिल एरिया में आपने कुछ सभाएँ कीं और कम्यूनिज़्म पर अपने कुछ व्याख्यान दिये—क्या यह बात ठीक है।

"चूँकि पण्डित ब्रह्मदत्त मेरे मित्र हैं वे मुझे दो-एक मज़दूरों की सभाओं में अवश्य ले गए। लेकिन कम्यूनिज़्म पर मैंने कोई व्याख्यान नहीं दिया—न मैं कम्यूनिस्ट हूँ!"

"आप जर्मनी में कम्यूनिस्ट-पार्टी के मेम्बर रहे हैं। साथ ही आप ने हिन्दुस्तान में कम्यूनिस्ट पार्टी के संगठन का एक बड़ा प्लान तैयार किया है—क्या आप इससे भी इनकार करते हैं? आप ज़रा सोच कर इसका उत्तर दीजियेगा—दो चार दिन का समय मैं आपको इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए दे सकता हूं। और जहां तक आपने पिछले बयान दिये हैं वे बिल्कुल ठीक हैं—मैंने उनकी तहकीकात कर ली है और उन्हें ठीक पाया है!" यह कह कर लालबहादुर हँस पड़ा।

उमानाथ ने अपने पर्स से सौ-सौ के दस नोट निकाल कर लालबहादुर की जेब में डाल दिये। "आपकी बड़ी कृपा है। आगे चलकर और जो कुछ कार्रवाई होने वाली होगी, उसका पता मुझे चल जायगा!"

"इतमिनान रखिये कुंवर साहेब! भरसक कोशिश करूँगा कि आप पर कोई आंच न आने पावे। लेकिन ज़रा हाथ-पैर बचा कर काम कीजियेगा!" लालबहादुर ने चलते हुए कहा।

३

रुक कर मार्कण्डेय ने फिर कहा, "उमा ! ब्रह्मदत्त पर तुम क्यों नहीं ज़ोर डालते ? ब्रह्मदत्त की एक काफ़ी मज़बूत पार्टी है, वह पार्टी अगर दयानाथ को वोट तो दे दे तो दयानाथ का चुन लिया जाना निश्चित हो जायगा।"

उमानाथ ने उत्तर दिया, "मार्कण्डेय भइया, कहावत यहाँ पर मुद्दई सुस्त और गवाह चुस्त की हो रही है। मार्कण्डेय बड़के भइया को सपोर्ट करने पर तैयार है, केवल एक शर्त पर कि बड़के भइया खुद उससे और उसकी पार्टी से वोट देने को कहें !"

"यह तो ठीक है। दया उन लोगों से कह दें, मामला खत्म हुआ।"

"लेकिन यही मुसीबत है मार्कण्डेय भइया ! बड़के भइया ब्रह्मदत्त और उसकी पार्टी के आगे हाथ फैलाना स्वाभिमान के विरुद्ध समझते हैं !"

यह बातें हो रही थीं कि एक कार बँगले के बरामदे में रुकी। उमानाथ यह देखने के लिए बाहर गया कि कौन आया है—और उसने देखा कि श्यामनाथ तिवारी पिछली सीट पर आँखें बन्द किये चुप बैठे हैं—और ड्राइवर आश्चर्य से उनकी ओर देख रहा है।

उमानाथ ने श्यामनाथ को हिलाया, "काका !"

श्यामनाथ ने आँखें खोलीं—उन्होंने अपने चारों ओर देखा, मानो वह उस स्थान को पहचानने की कोशिश कर रहे हों—और फिर धीरे-से मोटर का दरवाज़ा खोल कर वे उतरे। उमानाथ का सहारा लेकर वे बँगले की ओर बढ़े, उनके पैर लड़खड़ा रहे थे।

उमानाथ ने आश्चर्य से पूछा, "क्या हुआ काका ? क्या बात है ?"

श्यामनाथ ने भर्राए हुए गले से कहा, "कुछ नहीं।"

उमानाथ श्यामनाथ को बँगले के अन्दर ले गया, बरामदे में बिठलाते हुए उसने कहा, "नहीं काका ! कुछ खास बात तो अवश्य है—बतलाइये न !"

श्यामनाथ ने एक ठंडी साँस ली, "उमा ! प्रभा को तो मैंने बचा लिया है, लेकिन एक बहुत बड़ी क़ीमत देकर !"

उमानाथ चौंक उठा, "क्या कहा आपने? क्यों प्रभा को......" और उमानाथ के माथे पर बल पड़ गए।"

"हाँ उमा! मैंने उसे राजी किया—मैंने! बहला कर, फुसला कर, धोखा देकर! मैंने उससे कहा कि अगर उसने क्रांतिकारी-दल का नाम न बतलाया तो मैं आत्म-हत्या कर लूंगा। मैंने उससे कहा कि अपराधियों का नाम बतलाना सर्वथा उचित है। न जाने कितने दिनों तक मैंनेमेहनत की—और आज उसने अपनी स्वीकृति दे दी।" श्यामनाथ की आंखों में आँसू भरे थे।

उमानाथ ने कहा, "काका—पता नहीं आपने उचित किया या नहीं—लेकिन यह बात मुझे अच्छी नहीं लगी।"

श्यामनाथ फूट पड़े, "उमा, उसे बचाने का और कोई चारा न था। उसके खिलाफ तो जो सबूत इकट्ठा किये गए कि उनसे उसे फांसी की सज़ा निश्चित है। सतवंती में पुलिस इंस्पेक्टर की जो हत्या हुई थी उसमें भी वह शामिल था। अब तुम्हीं बताओ उसे किस तरह बचाया जा सकता था?"

शाम के समय श्यामनाथ तिवारी अपने बड़े भाई से मिलने के लिए उन्नाव चल दिये।

उस समय पण्डित रामनाथ तिवारी लोकमान्य तिलक वाला गीता का भाष्य सुन रहे थे और वीणा उसे पढ़ रही थी। श्यामनाथ तिवारी की कार देखते ही रामनाथ ने वीणा से कहा, "इस समय का अध्ययन समाप्त! अब आराम करो जा कर और नौकर से चा भिजवा देना।"

श्यामनाथ तिवारी ने अपने बड़े भाई के चरण छुए और सामने मौन बैठ गए। थोड़ी देर तक रामनाथ अपने छोटे भाई को देखते रहे, फिर उन्होंने पूछा, "कोई नई खबर?"

"जी हाँ! प्रभा को किसी तरह सरकारी गंवाह बनने को राज़ी कर लिया है!" श्यामनाथ ने कहा।

रामनाथ तिवारी मुसकराए—पर उस मुसकराहट में एक अजीब तरह की करुणा थी, "श्यामू! बहुत बड़ी पराजय हुई है हम लोगों की लेकिन जो कुछ हुआ वह ठीक ही हुआ! शायद और कुछ हो भी नहीं सकता था!"

कुछ रुक कर रामनाथ ने फिर कहा, "लेकिन न जाने क्यों—मुझे यह सब अच्छा नहीं लग रहा है श्यामू! एक जान बचाने के लिए दस—बीस—न जाने कितनी जानें नष्ट हों!" और एकाएक रामनाथ का मुख फिर विकृत तथा कठोर हो गया, "लेकिन—लेकिन—उन दस-बीस जानों की चिन्ता ही क्यों? लाखों आदमी रोज मरते हैं—हम किसकी चिन्ता करते हैं? फिर हमारे चिन्ता करने से होता ही क्या है!"

रामनाथ और श्यामनाथ को यह पता न था कि वीणा बरामदे के खम्भें की आड़ में खड़ी हुई यह बात-चीत सुन रही थी।

४

रात के समय भोजन करके पण्डित श्यामनाथ तिवारी कानपुर के लिए रवाना हो गए। श्यामनाथ को विदा कर पण्डित रामनाथ तिवारी अपने

ड्राइंग-रूम में चुपचाप बैठ गए। वे उस समय उदास थे—उनका मन भारी था। उनसे ठीक तरह से भोजन न किया गया था। श्यामनाथ ने जो खबर उन्हें दी थी, वह उन्हें न जाने कैसी-सी लगी।

विश्वम्भरदयाल से पण्डित रामनाथ तिवारी पार न पा सके थे—मुक़दमा अदालत में चलने लगा था। प्रभानाथ की पैरवी करने के लिए अच्छे से अच्छे वकील बुलाए गए थे। लेकिन पुलिस ने जाल अच्छी तरह बिछाया था, बड़ी सावधानी के साथ; प्रभानाथ का उस जाल से छूटना असम्भव-सा लग रहा था। वे बड़े से बड़े वकील भी प्रभानाथ को बचाने से निराश हो रहे थे। पुलिस ने पूरी तरह अपना मुक़दमा साबित कर दिया था।

अदालत ने पुलिस की प्रार्थना पर मुक़दमा कुछ दिनों के लिए मुल्तवी कर दिया था; विश्वम्भरदयाल ने फिर एक बार श्यामनाथ तिवारी के पास प्रस्ताव भेजा था कि अगर प्रभानाथ सरकारी गवाह बनने पर तैयार हो जाय और अपने साथियों का नाम बतला दे तो वह सरकार से कह कर प्रभानाथ को माफी दिलवा सकते हैं। और विश्वम्भरदयाल के इस प्रस्ताव ने रामनाथ को अजीब परिस्थिति में डाल दिया था।

रामनाथ तिवारी कानपुर से उन्नाव चले आए थे—कानपुर का वातावरण उन्हें असह्य हो रहा था। वे यह जानते थे कि प्रभानाथ विश्वम्भर दयाल की शर्तें मानने को कभी तैयार न होगा। और फिर परिणाम? परिणाम की कल्पना करते ही उनका हृदय काँप उठता था।

और आज जब उन्हें श्यामनाथ ने बतलाया कि उमानाथ विश्वम्भरदयाल की शर्तें मानने को तैयार हो गया है, उन्हें कोई प्रसन्नता नहीं हुई। उदास मन वे सारी घटनाओं पर सोच रहे थे। उसी समय उन्हें सुनाई पड़ा, "दद्दुआ!"

रामनाथ ने चौंक कर देखा, सामने वीणा खड़ी थी। "अरे तुम! अभी तक जाग रही हो? क्यों क्या बात है?"

वीणा रामनाथ के सामने आकर खड़ी हो गई। उसने कहा, "सुना है प्रभानाथ मुखबिर बनने पर राज़ी हो गए हैं?"

'मुख़बिर' शब्द से पण्डित रामनाथ तिवारी तिलमिला उठे। अपने को सम्हालते हुए उन्होंने कहा, "मुख़बिर नहीं, सरकारी गवाह बनने पर। एक यही तरीक़ा है कि जिससे उसकी जान बच सकती है!"

"लेकिन उनकी जान बचने के माने होंगे कम से कम छै जानों का जाना। उस हत्या में छै आदमी और थे। उसके अलावा क्रान्तिकारी दल में करीब तीस आदमी और हैं, और अगर प्रभा ने उनका नाम बतला दिया तो उन लोगों को कालेपानी तक की सज़ा हो सकती है।"

रामनाथ सम्हलकर बैठ गए—उन्होंने ग़ौर से वीणा को देखा, "तुम—तुम यह सब कैसे जानती हो? क्या तुम भी क्रान्तिकारी दल में हो?" और वीणा के उत्तर देने के पहले ही वे उठ खड़े हुए, "अब समझा—अब समझा कि प्रभा ने तुम्हें उन्नाव क्यों बुलाया था—अब समझा कि एक बंगाली लड़की से उसकी इतनी घनिष्टता क्यों थी, अब समझा!"

रामनाथ की इस मुद्रा से वीणा डरी नहीं, सहमी नहीं; उसने स्थिर-भाव से कहा, "आप ठीक समझे—लेकिन मैं आपसे पूछना चाहती हूँ कि प्रभानाथ जो कुछ कर रहे हैं क्या उचित कर रहे हैं? क्या आप उसे उचित समझते हैं!"

रामनाथ उत्तेजित हो उठे, "बिल्कुल उचित कर रहा है वह! तुम्हारी जान खतरे में है, तुम्हारे दोस्तों की जान खतरे में है—इसकी चिन्ता प्रभानाथ क्यों करे—इसकी चिन्ता हम लोग क्यों करें? जो जैसा करेगा वैसा भोगेगा—भोगें—मरें—छै नहीं छै सौ आदमी मरें—वे कीड़े हैं, हमें उनकी चिन्ता क्यों हो! जाओ यहाँ से, इसी समय मेरे घर से निकल जाओ!" रामनाथ चिल्ला उठे।

"इस तरह चिल्लाना आपको शोभा नहीं देता—मैं स्वयम् जा रही हूँ। विश्वासघातियों के घर का अन्न खा कर मैंने अपने को अपवित्र कर लिया है—इसका प्रायश्चित्त करना होगा न!"

"विश्वासघाती !" रामनाथ वीणा की तरफ क्रोध से बढ़े, "क्या कहा विश्वासघाती ?"

वीणा ने इस समय विकराल रूप धारण कर लिया था, "हाँ—पतित, कीड़ों से भी गए बीते—विश्वासघाती ! इतने आदमियों ने प्रभा पर विश्वास किया था—आज उस विश्वास को वह तोड़ रहा है। तुम लोग बड़े स्वाभिमानी, बड़े उच्च चरित्र के आदमी बनते हो। लेकिन मैं कहती हूँ कि तुम विश्वास को तोड़ने वाले, तुम अपने घनिष्ट मित्रों को दग़ा देने वाले हो। तुम उन लोगों की हत्या करने वाले—तुम कीड़ों से भी गए बीते हो—-तुम शैतान हो।"

रामनाथ से अब न रहा गया, बढ़कर उन्होंने वीणा के मुँह पर एक तमाचा मारा। उस तमाचे से वीणा गिर पड़ी। उसे घसीट कर रामनाथ ने दरवाजे के बाहर कर दिया। दरवाजे पर वीणा उठी, उसने लड़खड़ाते हुए स्वर में कहा, "विश्वासघाती ! विश्वासघाती !" और वह वहाँ से चली गई।

रामनाथ ने वीणा को रोका नहीं, उन्होंने उससे कुछ कहा नहीं; वे चुपचाप दरवाजे पर खड़े रहे। उनके कानों में रह-रह कर "विश्वासघाती !" शब्द सुनाई पड़ रहा था।

आज पहली बार रामनाथ तिवारी ने एक स्त्री पर हाथ उठाया था, आज पहली बार उन्होंने सत्-असत् की बुद्धि को खो दिया था। रामनाथ ने वीणा पर जो प्रहार किया था वह इसलिए कि वीणा ने रामनाथ पर एक भयानक प्रहार किया था—ऐसा प्रहार जिसे वह सम्हाल न सके थे। वीणा चली गई थी—लेकिन उसके प्रहार का असर रामनाथ पर बढ़ता ही जा रहा था।

"विश्वासघाती !" प्रभानाथ के लिए दुनिया इस भयानक शब्द का प्रयोग करेगी। और प्रभानाथ को यह विश्वासघात करने को प्रेरित किया गया है। रामनाथ कमरे में पागल की भाँति टहलने लगे।

रामनाथ की सारी अहम्मन्यता—उनका सारा आत्मगौरव उस समय तिलमिला उठा था, इतना कड़ा प्रहार किया था वीणा ने। वह मनुष्य

जिसने कभी झुकना नहीं जाना, जिसने दबना नहीं जाना—आज उसे एक स्त्री विश्वासघाती कह कर चली गई। दरवाजे पर आकर रामनाथ फिर रुके। बँगले के दूसरे भाग का दरवाजा बन्द होने का शब्द उन्हें सुनाई दिया—वे उधर गये। वीणा, कमरे के बाहर खड़ी थी और रामनाथ के कमरे की ओर देख रही थी। रामनाथ को देखते ही उसने अपना मुँह फेर लिया।

रामनाथ उसके पास पहुँचे। उन्होंने वीणा का हाथ पकड़ लिया, "वीणा—मुझे क्षमा करना जो मैंने तुम पर प्रहार किया—लेकिन तुमने मेरी आत्मा पर कितना कठिन प्रहार किया है, यह तुम न समझ सकोगी!"

वीणा चुप रही।

रामनाथ ने कहा, "इतनी रात में तो यहाँ से कोई गाड़ी नहीं मिलेगी! कहाँ जा रही हो?"

इस बार वीणा ने उत्तर दिया, "जहाँ जा रही हूँ वहाँ गाड़ी पर चढ़ के नहीं जाया जाता ददुआ।"

रामनाथ चौंक उठे, "क्या कहा? आत्महत्या करोगी?"

वीणा फूट पड़ी, "अपने और जिसे मैंने अपना सब कुछ मान लिया था उसके पाप का प्रायश्चित्त करूँगी—अपने प्राण देकर! इस शरीर के बन्धन से मुक्त होकर आत्मा शायद जेल के सीखचों के अन्दर पहुँच सके—और तब एक बार मैं उनसे यह जघन्य काम करने को रोकूँगी, एक बार वीर बन कर अपनी दुर्बलता पर विजय पाने को उत्साहित करूँगी ददुआ!"

रामनाथ ने कमरे का दरवाजा खोला, वीणा को अन्दर भेजते हुए उन्होंने कहा, "यह सब तुम्हें नहीं करना होगा। प्रभा ने जो दुर्बलता दिखाई है वह क्षणिक हो सकती है। कल मैं उससे मिलने कानपुर जा रहा हूँ!"

५

श्यामनाथ को विदा करके जब उमानाथ ड्राइंग-रूम में पहुँचा उस समय मार्कण्डेय सोफ़ा पर लेटा हुआ था। उमानाथ थोड़ी देर तक अनिश्चित-सा

दरवाज़े पर खड़ा रहा, फिर वह मार्कण्डेय के पास कुरसी पर बैठ गया। "सुना मार्कण्डेय भइया! पुलिस मेरे पीछे भी लग गई है। आज एक सब-इंसपेक्टर मुझसे पूछताछ करने आया था।"

मुसकराते हुए मार्कण्डेय ने कहा, "तो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है? हिन्दुस्तान में, और हिन्दुस्तान में ही क्यों, दुनिया में पैसों पर बिकने वालों की कमी नहीं है। चारों तरफ़ जासूसों का एक जाल बिछा है—तुम किसी पर विश्वास नहीं कर सकते। जहाँ विश्वास किया वहीं गए!"

मार्कण्डेय उठकर बैठ गया, "फिर! क्या किया तुमने?"

"अभी तो मैंने उस सब-इंसपेक्टर का मुँह बन्द कर दिया है; लेकिन कहावत है न 'मौत ने घर का रास्ता देख लिया।"

"उमा! तुम जो काम कर रहे हो वह काफ़ी ज़्यादा खतरे से भरा है—क्या तुम यह काम छोड़ नहीं सकते?"

"नहीं मार्कण्डेय भइया—यह काम मेरा जीवन बन चुका है। इस काम को छोड़ने के माने होंगे अपने को, अपने व्यक्तित्व को नष्ट कर लेना।"

"फिर क्या करोगे?" मार्कण्डेय ने पूछा।

"यही तो समझ में नहीं आता। एक बहुत बड़े संगठन की ज़िम्मेदारी मैंने ले ली है। मेरे यहाँ आने से पहले कामरेड मारीसन के हाथ में यह काम था। इसके बाद मेरी नियुक्ति हुई क्योंकि अंग्रेज़ होने के कारण कामरेड मारीसन पुलिस की निगाह में चढ़ गए थे। इसके अलावा हिन्दुस्तानी न होने के कारण वे यहाँ ठीक तौर से काम भी नहीं कर पाते थे। मैंने आते ही काम बढ़ा दिया है।"

कुछ सोच कर मार्कण्डेय ने कहा "अच्छा उमा! रूस जो हिन्दुस्तान में यह सब कर रहा है इसमें क्या रूस का कोई हित है या केवल विश्व-कल्याण के लिए ही वह यह सब कर रहा है?"

"केवल विश्व-कल्याण के लिए!" उमानाथ ने अपने शब्दों पर ज़ोर देते

हुए कहा, "रूस सारी दुनिया के दलित और उत्पीड़ित वर्ग का एकमात्र प्रतिनिधि है। रूस सारी दुनिया में साम्य स्थापित करना चाहता है!"

"मेरा ऐसा ख्याल है कि इस काम में रूस को काफ़ी रुपया ख़र्च भी करना पड़ता होगा!"

"निश्चय! बिना रुपए के कहीं कोई काम चलता भी है?" उमानाथ ने उत्तर दिया, "लेकिन हम कम्यूनिस्ट—हम लगन के आदमी हैं। कम से कम खर्च में अधिक से अधिक काम करना हमारा ध्येय है मार्कण्डेय भइया!"

"मुझे तुम हिन्दुस्तानी कम्यूनिस्टों और तुम्हारी बुद्धि पर तरस आती है!" यह कर मार्कण्डेय ज़ोर से हँस पड़ा।

चौंककर उमानाथ ने कहा, "यह आप क्या कह रहे हैं?"

मार्कण्डेय ने उत्तर दिया, "उमा! यह याद रखना कि जो पैसा देकर तुम लोगों को खरीद रहा है उसका इस खर्च करने में एक बहुत बड़ा स्वार्थ होना अनिवार्य है!"

"हम लोगों को खरीद रहा है? हम लोगों को कौन खरीद सकता है? हम अपने विश्वासों पर दृढ़ हैं—हम एक सिद्धान्त के लिए लड़ रहे हैं—हम पूँजीपतियों के भयानक शत्रु हैं। खरीदा-बेंचा जाता है पूँजीवाद में!" उमानाथ ने उत्तेजित हो कर कहा, "कांग्रेस के अन्दर जो पूँजीवाद का नग्न नृत्य हो रहा है उस माप से हम कम्यूनिस्टों को तौलने वालों की बुद्धि पर हमें तरस आना चाहिये मार्कण्डेय भइया!"

मार्कण्डेय कांग्रेस पर इस प्रहार को पी-सा गया। उसने कहा, "उमा! तो तुम्हारा ख्याल है कि रूस महान देश है!"

"हाँ—रूस महान देश है। रूस वालों ने ही पूँजीवाद को अपने यहाँ से निकाल बाहर करने का साहस किया है। रूस ही इस समय दुनिया का नेतृत्व करने के योग्य है!"

मार्कण्डेय उठ खड़ा हुआ, "उमानाथ! अंग्रेज़ों के हाथ बिकने वालों को फिर तुम व्यर्थ दोष दे रहे हो! उनकी और तुम्हारी स्थिति में कोई विशेष अन्तर नहीं। वे समझते हैं कि इंगलैण्ड के हाथ ही देश का कल्याण है जब कि तुम समझते हो कि रूस के हाथ देश का कल्याण है। हम इंगलैण्ड के हाथ बिकने वालों को दोष इसलिए देते हैं कि इंगलैण्ड यहाँ शासन कर रहा है। लेकिन तुम लोगों का यह प्रयत्न है कि अगर रूस यहाँ शासन करने आवे तो हिन्दुस्तान रूस की ग़ुलामी के लिए तैयार रहे। दुनिया में वास्तविकता बड़ी भयानक है, बड़ी ; रूप है। ये सारे सिद्धान्त मौखिक हैं, चीज़ वही सम्भव है जो मनोवैज्ञानिक है। और मनोविज्ञान कहता है कि अनुचित साधन अपनाने वाले का कभी उच्चादर्श हो ही नहीं सकता। जाल, फ़रेब, धोखा, झूठ, हिंसा—इनकी सत्ता के स्वीकार करने वाला कोई भी राष्ट्र दूसरों का कल्याण नहीं कर सकता उमा!" और मार्कण्डेय बिना उमानाथ का उत्तर सुने ही वहाँ से चला गया।

उस समय सूर्यास्त हो चुका था, और कमरे में अँधेरा छाया हुआ था। मार्कण्डेय एक बहुत कड़ी बात कह के चला गया था—उमानाथ इस को अनुभव कर रहा था। उस कमरे का अंधकार उसकी आत्मा में समाया जा रहा था। घबरा कर उमानाथ ने बिजली का स्विच दबा दिया। फिर आकर चुप चाप वह कुरसी पर बैठ गया।

पर उस बिजली के पीले प्रकाश में भी उमानाथ को धुँधलापन ही नज़र आ रहा था। अपने अन्दर इस तरह अचानक ही फिर आने वाली उदासी को उमानाथ समझ न पा रहा था। यह सब क्यों? उमानाथ को कुछ ऐसा अनुभव हो रहा था कि आगे कोई बहुत अशुभ घटना घटित होने वाली है। निराशा का एक अथाह सागर उसकी आँखों के सामने लहरा रहा था। और एकाएक उसने अपने से ही पूछा, "यह निराशा क्यों?"

सुबह से जो कुछ हुआ—वह कोई ऐसी बातें नहीं थीं जो उमानाथ को विचलित कर सकें। पुलिस के मामले को उसने टाल दिया था, प्रभानाथ का

मामला व्यक्तिगत प्रभानाथ का था, और उसमें भी प्रभानाथ के बचने की ही बात थी। और जो कुछ मार्कण्डेय कह गया, वह एक प्रलाप भर था। लेकिन फिर भी इन घटनाओं ने एक रूप होकर, एक में मिलकर उमानाथ के अन्दर भयानक उथल-पुथल पैदा कर दी थी। उमानाथ आँखें बन्द किये हुए सोच रहा था, "मैं यह सब क्या कर रहा हूँ? क्यों कर रहा हूँ—और आगे चलकर मुझे क्या करना होगा?" उमानाथ के सामने एक के बाद एक ये प्रश्न आ रहे थे और इन प्रश्नों का कोई स्पष्ट उत्तर उसके पास न था। एकाएक चौंककर उसने आँखें खोलीं, उसने देखा कि फ़र्श पर उसके सामने उसके पैर के पास महालक्ष्मी बैठी है।

"अरे तुम?" उमानाथ कह उठा!

"आज आप बहुत उदास हैं! अगर कोई हर्ज न हो तो मुझे बताइये, क्या बात है!" महालक्ष्मी ने करुण स्वर में पूछा।

उमानाथ जितना ही महालक्ष्मी को अपने जीवन से दूर हटाने का प्रयत्न करता था, उतना ही अधिक महालक्ष्मी उमानाथ के जीवन में आने का प्रयत्न करती थी। महालक्ष्मी भी उमानाथ के जीवन में एक समस्या थी। लगातार उमानाथ की सेवा—केवल एक दासी की भाँति—महालक्ष्मी ने अपना व्रत बना रक्खा था। महालक्ष्मी का त्याग, उसका असीम आत्म-बलिदान—उमानाथ इनकी उपेक्षा न कर सकता था। उमानाथ को महालक्ष्मी के प्रति क्रोध होता था, पर उस क्रोध से प्रबल भावना थी, उमानाथ के महालक्ष्मी के प्रति दुःख की।

उमानाथ ने कहा, महालक्ष्मी—आज न जाने क्यों मन एकाएक उदास हो गया है। ऐसा दिखता है कि मुझे हिन्दुस्तान छोड़ कर जाना पड़ेगा!"

महालक्ष्मी ने उमानाथ के पैर पकड़ लिये, "आप मत जाइये—उन्हीं को यहाँ बुला लीजिये। मैं घर वालों से कह कर सब कुछ ठीक कर दूँगी—लेकिन आप मत जाइये—मैं विनती करती हूँ!"

उमानाथ हँस पड़ा, "नहीं महालक्ष्मी, वह बात नहीं है। तुम नहीं समझोगी!"

"समझूँगी क्यों नहीं—आप समझाइये तो!"

"बात यह है कि पुलिस मेरे पीछे पड़ गई है। अभी तक कोई वारंट तो नहीं निकला, लेकिन न जाने किस दिन मेरे नाम वारंट निकल जाय। और कम से कम मैं तो गिरफ़ार नहीं होना चाहता!"

"क्या आप भी...आप भी..."महालक्ष्मी कहते-कहते रुक गई; उसका गला भर आया था।

"नहीं, मैंने डकैती नहीं की, हत्या भी नहीं की। लेकिन सरकार के खिलाफ़ मैं ज़रूर हूँ!"

"और कोई दूसरा उपाय नहीं है?" महालक्ष्मी की आँखों में आँसू भर आए थे।

उमानाथ हँस पड़ा, "इतनी अधिक चिन्ता की बात नहीं है! उठो, अन्दर जाओ! बड़के भइया आते होंगे!"

महालक्ष्मी सर झुकाए अन्दर चली गई, उमानाथ उठ कर बरामदे में आ गया।

थोड़ी देर तक उमानाथ बरामदे में खड़ा रहा, फिर उसके पैर अपने ही आप उठ गए—वह शहर की ओर चल दिया।

उस समय ब्रह्मदत्त घर पर ही था; उमानाथ के आते ही उसने उसका अभिवादन किया। "अरे कामरेड तुम इस वक्त!

एक रूखी मुसकराहट के साथ उमानाथ ने कहा, "ऐसे ही, घर में मन नहीं लग रहा था! तुम्हारे यहाँ चला आया।"

ब्रह्मदत्त ने उमानाथ के मुख पर चिन्ता के भाव पढ़ लिए, "क्या बात है कामरेड—आज तुम्हारा मुँह बहुत उतरा हुआ है। कोई खास घटना घटी है क्या?"

उमानाथ ने उत्तर दिया, 'हाँ ब्रह्मदत्त ! आज जब मैं मीटिंग के बाद घर लौटा तब एक पुलिस इंसपेक्टर मेरे घर पर आया। वह मेरे मूवमेण्ट पर तहकीकात करने भेजा गया था !"

"यह तो बुरा हुआ कामरेड ! मैंने पहले ही कहा था कि नरोत्तम पर विश्वास करके तुमने अच्छा नहीं किया। फिर ?"

"मैं जहाँ तक उस इंसपेक्टर का सवाल है, मैंने उसे तो अपने बस में कर लिया है। लेकिन ब्रह्मदत्त ! बात सरकार तक पहुँच गई है—अधिकारी वर्ग की आँखों में मैं आ चुका हूँ।"

ब्रह्मदत्त ने थोड़ी देर तक सोच कर कहा, "कामरेड, मेरी सलाह मानो तो थोड़े दिनों के लिए तुम अपना काम-काज बन्द कर दो। हम लोगों को तुमने काम समझा दिया ही है; हम लोग उसे चलाते रहेंगे। तुम यहाँ से हट जाओ, इसमें ही भला है। जब सरकार तुम्हारे मामले में असावधान हो जाय तब तुम काम शुरू कर देना!"

"मैं भी यही ठीक समझता हूँ।" उमानाथ ने उत्तर दिया।

६

सुबह दस बजे पण्डित रामनाथ तिवारी प्रभानाथ से मिलने पहुँचे। प्रभानाथ ने अपने पिता के चरण छुए और चुपचाप उदास खड़ा हो गया।

रामनाथ ने पूछा, "अच्छी तरह हो, किसी तरह की तो कोई तकलीफ तो नहीं है ?"

"जी नहीं, शारीरिक तकलीफ़ तो कोई नहीं है, लेकिन मानसिक पीड़ा ज़रूर है !"

"कैसी मानसिक पीड़ा ?" रामनाथ तिवारी ने पूछा।

इस बार प्रभानाथ ने सर उठाकर अपने पिता को देखा, "ददुआ ! काका ने कल सरकारी गवाह बनने की मेरी अनुमति ले ली है—लेकिन तब

से मेरे मन में एक भयानक अशान्ति भर गई है। यह काम जो मैं कर रहा हूँ अपनी इच्छा के विरुद्ध कर रहा हूँ।"

रामनाथ ने अपने पुत्र की आँखों से आँखें मिलाते हुए कहा, "प्रभा! अपने कर्मों का उत्तरदायी मनुष्य स्वयम् होता है। किसी के विवश करने से जिसे तुम अनुचित समझते हो उसे करना कहाँ तक उचित है इसका निर्णय तुम्हारे हाथ में है।"

प्रभानाथ बढ़कर पिता के चरणों पर गि ।। "ददुआ—कल से बुरी तरह भटक रहा हूँ। आपने मुझे उचित रास्ता दिखला दिया। एक बहुत बड़े पाप से आप ने मुझे बचा लिया है! अब मैं शान्तिपूर्वक हँसते-हँसते मर सकता हूँ।

रामनाथ सहम कर एक क़दम पीछे हटे, क्या कह रहे हो प्रभा! तुम मेरा मतलब ठीक तरह नहीं समझे।"

प्रभानाथ उठ खड़ा हुआ। उसके मुख की उदासी जाती रही थी; उसके मुख पर उल्लास का तेज था, दृढ़ता की चमक थी, "ददुआ मरना है ही—आज नहीं तो कल। इस नश्वर शरीर को बचाने का मोह मुझमें कैसे आ गया था, मुझे आश्चर्य हो रहा है। कैसे मैंने काका को अनुमति दे दी थी?"

रामनाथ को अब अपने पुत्र के सामने खड़ा रहना असह्य हो गया था। उन्होंने यह क्या कर डाला? रामनाथ के अन्दर वाला पिता उन्हें धिक्कार रहा था कि उन्होंने स्वयम् अपने हाथों अपने पुत्र को फाँसी पर चढ़ने को तैयार किया है। उन्होंने जल्दी से कहा, "प्रभा! तुमने अपने काका से जो वादा किया है उसे पूरा करो—मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है!"

"आपका आशीर्वाद तो मुझे मिल चुका है ददुआ!" प्रभानाथ ने उत्तर दिया, "अब कोई भी कमज़ोरी मुझ पर आधिपत्य नहीं जमा सकती, इतना विश्वास रखिये!"

रामनाथ से और ज़्यादा न बोला गया, सर झुकाए हुए वह अपने पुत्र के सामने से चले आए।

जेल से लौट कर पण्डित रामनाथ तिवारी को अपने छोटे भाई से मिलने की हिम्मत न हुई वे सीधे उन्नाव चले गए।

शाम के समय उन्होंने वीणा को बुलवाया, "कल वाली खबर कि प्रभानाथ मुखबिर बनने पर राज़ी हो गया है, ग़लत थी! मैं आज सुबह प्रभा से मिल आया हूँ।"

आश्चर्य से वीणा ने रामनाथ की ओर देखा, "आपने ददुआ........ आपने...मुझे आश्चर्य होता है!"

"चुप रहो, और जाओ यहाँ से! चुड़ैल कहीं की।" रामनाथ क्रोध में कह उठे, "अब मुझे अपना मुँह मत दिखाना!"

न जाने क्यों, रामनाथ की गाली सुनने पर भी, वीणा ने अनायास ही झुक कर रामनाथ के चरण की धूल अपने मस्तक पर लगा ली। उसने रामनाथ से कहा, "ददुआ—आपने अपने पुत्र को खोया है, लेकिन मैंने अपना सर्वस्व खो दिया है!"

रामनाथ का स्वर कठोर हो गया, "वीणा! क्या तुम सच कह रही हो?"

"देवता-तुल्य अपने पूज्य से मैं झूठ न बोल सकूँगी!" वीणा ने शान्त-भाव से उत्तर दिया।

रामनाथ थोड़ी देर तक कठोर दृष्टि से वीणा को देखते रहे, और फिर उन्होंने वीणा के मस्तक पर अपना हाथ रख दिया, "हिन्दू-पत्नी के कर्तव्य को तुम जानती हो—मुझे तुमसे आशा है!"

आपको मेरी ओर से निराश होने का अवसर न आएगा!" वीणा ने उत्तर दिया।

७

सुबह जब उमानाथ सोकर उठा, उसका मन हलका था। चाय पीकर जब वह ड्राइंग-रूम में गया, वहाँ दयानाथ अपने साथियों से चुनाव पर परामर्श कर रहे थे। मार्कण्डेय ने उमानाथ को देखते ही कहा, "आओ उमा, बड़े मौके से आ गए हो तुम अब यह ब्रह्मदत्त वाला मसला तुम हल करो!"

दयानाथ ने उत्तेजित होकर कहा, "ब्रह्मदत्त—ब्रह्मदत्त। मुझे ब्रह्मदत्त से कुछ नहीं कहना है, न मुझे उसकी सहायता की ही कोई आवश्यकता है। ये पतित और नीची कोटि के व्यक्ति—ये इतना ऊपर चढ़ जाँय, मुझसे भीख मँगवाएँ, खुशामद करवाएँ,—यह विधी की विडम्बना ही है!"

"इतना उत्तेजित होने की कोई बात नहीं दयानाथ।" मार्कण्डेय ने समझाया, "तुम यह याद रखना कि तुम राजनीति को अपने जीवन में अपना चुके हो, और राजनिति में यह सब कुछ करना पड़ता है!"

दयानाथ ने और भी गरम होकर कहा, "मार्कण्डेय—ऐसी कोई भी बात राजनीति में सही मानने को मैं तैयार नहीं हूँ जिसे साधारण जीवन में मैं बुरा समझूँ। मैं उस राजनीति को समाज के लिए घातक समझता हूँ जो नैतिकता से परे है!"

"पर यह बात नैतिकता से कहाँ परे है? तुमसे कोई अनैतिक बात करने को तो मैं नहीं कह रहा हूँ; मैं केवल इतना चाहता हूँ कि तुम ब्रह्मदत्त से स्वयम् मिल कर उससे अपनी पार्टी के साथ वोट देने के लिए कहो। मैं मानता हूँ कि इस काम में तुम्हारी अहम्मन्यता को धक्का जरूर लगेगा, लेकिन दयानाथ अहम्मन्यता के ऊपर उठना ही सब से बड़ी अहिंसा है।"

दयानाथ कह उठा, "मार्कण्डेय, अहिंसा निर्बल की चीज़ नहीं है, अहिंसा सबल की चीज़ है। निर्बल में अहिंसा कायरता समझी जाती है। आज मुझे अपना हित-साधन करना है, और अपने हित-साधन के लिए जब मैं ब्रह्मदत्त के सामने जाता हूँ तब मैं उसके अन्दर वाली हिंसा वृत्ति को तुष्ट

करके उसे और भी पुष्ट करने के पाप का भागी बन जाता हूँ। मैं ब्रह्मदत्त के सामने झुकने को तैयार हूँ लेकिन तब जब मैं सबल हूँ, जब ब्रह्मदत्त से मुझे कोई काम न हो, जब ब्रह्मदत्त को मुझसे कोई काम हो!"

"यही तुम्हारी अहम्मन्यता है दया!" मार्कण्डेय कह उठा, "तुम झुकने के लिए तैयार नहीं; तुम चाहते हो कि दूसरे तुम्हारे सामने झुकें। यह कोई बुरी बात भी नहीं है, जहाँ तक व्यक्तित्व का सवाल है, लेकिन राजनीति में अपने व्यक्तित्व को लोक-हित में मिला देना पड़ता है, और लोक-हित के लिए दूसरों के आगे झुकने में मैं तो कोई हर्ज नहीं समझता। मेरी बात मानो दया—बिना ब्रह्मदत्त के आगे झुके तुम्हारी विजय असम्भव है!"

दयानाथ थोड़ी देर तक सोचता रहा, फिर उसने कहा, "अच्छी बात है—जैसा कहते हो करूँगा, केवल तुम लोगों को संतुष्ट करने के लिए!" और वह उमानाथ की ओर घूमा, "उमा, अगर तुम्हें ब्रह्मदत्त मिलें तो उनसे कह देना कि मैं कल सुबह उनके यहाँ आऊँगा, वह घर पर ही रहें।"

सब लोगों के चले जाने के बाद जब दोनों भाई अकेले रह गए तब उमानाथ ने दयानाथ से कहा, "बड़के भइया! आपने सुना है—प्रभा सरकारी गवाह बनने पर राज़ी हो गया है!"

दयानाथ चौंक उठे, "असम्भव! यह क्या कह रहे हो?"

"कल शाम काका मुझसे कह गए हैं। वे कल रात ददुआ के यहाँ चले गए थे।"

दयानाथ गम्भीर हो गया, "विश्वास नहीं होता उमा! क्या प्रभा अपने प्राण बचाने के लिए अपने साथियों के साथ विश्वासघात करेगा? यह तो हम लोगों के कुल के नाम बहुत बड़ा कलंक होगा!"

उमानाथ हँस पड़ा, "प्राण बचाने के लिए मनुष्य क्या नहीं कर सकता बड़के भइया! लेकिन प्रभा को अपने प्राणों का इतना मोह हो गया है, इसकी मैंने कल्पना नहीं की थी।"

थोड़ी देर चुप रहकर उमानाथ ने फिर कहा, "बड़के भइया, विपत्ति के बादल मुझ पर भी मँडरा रहे हैं। कल एक पुलिस इंसपेक्टर मुझसे पूछ-ताछ करने आया था। एक हज़ार रुपया देकर मैंने अभी तो उसे अपनी ओर मिला लिया है, लेकिन खेल ज़्यादा दिनों तक नहीं चलेगा।"

"क्या कहा ! सरकार को तुम्हारे कम्यूनिस्ट होने का पता चल गया है ! यह तो बुरा हुआ !"

दो सौ तिरसठ

"ब्रह्मदत्त का कहना है कि मैं कुछ समय के लिए कानपुर से चला जाऊँ। सोच रहा हूँ कि दो-चार महीने के लिए बानापुर हो आऊँ, इस बीच में पुलिस भी मेरी तरफ़ से असावधान हो जाएगी !"

दयानाथ मुसकराया, "लेकिन यह कब तक ! दो-चार महीने बाद जब तुम आओगे, पुलिस फिर तुम्हारे पीछे लगेगी। छिपकर काम करना तो मुझे ठीक नहीं जँचता, जो कुछ करो खुलकर, निर्भीक होकर !"

"लेकिन बड़के भइया—आप जानते ही हैं कि हमारी संस्था ग़ैर-क़ानूनी है। खुलकर हम अपना काम कर ही नहीं सकते।"

"ऐसी हालत में तुम्हारा मार्ग ग़लत है—उसे सदा के लिए त्याग देना ही तुम्हारे लिए कल्याणकारी होगा !"

उमानाथ हँस पड़ा, "आप क्या कह रहे हैं भइया ! मैं अपने पवित्र आदर्श को छोड़ दूँ, असम्भव ! हमें ब्रिटिश-साम्राज्यवाद से लड़ना है, हमें पूँजीवाद का अन्त करना है, हमें सामन्तशाही को मिटाना है। यह काम आसान नहीं है जब कि देश के अधिकांश लोग भेड़-बकरियों से भी गए-बीते हैं।......"

उमानाथ अपनी बात ख़त्म भी न कर पाया था कि कमरे में सब-इंस्पेक्टर लालबहादुर ने प्रवेश किया। लालबहादुर दयानाथ को अच्छी तरह पहचा-

नता था, उसने दयानाथ को अभिवादन करके उमानाथ से कहा, "कुँवर साहेब मैं आपको आगाह करने आया हूँ—खतरा सर पर मँडरा रहा है।"

"क्या मतलब आपका उमानाथ ने पूछा।"

"मैं नहीं जानता कि अफ़सरान आपके मामले में इतनी सरगर्मी दिखलाएंगे। मेरा ऐसा खयाल है कि कल आपके नाम वारंट निकल जायगा। आपके पास चौबीस घंटे का वक्त है—आप जैसा उचित समझें करें।"

लालबहादुर के जाने के बाद दयानाथ ने पूछा, "अब क्या करोगे उमा! गाँव तो तुम नहीं जा सकते क्योंकि पुलिस वहाँ तुम्हारा पीछा करेगी।"

उमानाथ ने चिंतित भाव से कहा, "हाँ बड़के भइया! अब केवल एक उपाय है—मैं हिन्दुस्तान छोड़ दूँ। हिन्दुस्तान में जहाँ भी रहूँगा वहीं गिरफ़ार कर लिया जाऊँगा!"

"लेकिन हिन्दुस्तान के बाहर कैसे जा सकोगे?"

"इसकी चिन्ता आप न करें। बम्बई, कलकत्ता—जहाँ से होगा किसी भी विदेशी जहाज़ में स्मगल करके रवाना हो जाऊँगा—इन हथकण्डों में हम लोग सिद्धहस्त हैं। लेकिन सवाल मेरे सामने पैसे का है। हिन्दुस्तान से जाने के लिए मेरे पास दस-पाँच हज़ार रुपया तो होना ही चाहिये। इतना रुपया दद्दुआ से कैसे माँगा जाय?"

दयानाथ ने कहा, "मेरी तो आर्थिक स्थिति तुम जानते ही हो उमा। अभी तो तुम यहाँ से चले जाओ, फिर मौक़ा पाकर दद्दुआ से माँग लेना!"

"आप ठीक कहते हैं!" उमानाथ ने कहा।

और उसी दिन रात के समय उमानाथ कानपुर के बाहर चला गया।

सातवाँ परिच्छेद

१

"मैंने राजपूत-इतिहास में पढ़ा था कि बाप अपने बेटे को फाँसी दे सकता है! यक़ीन नहीं होता था माताप्रसाद—किस तरह एक बाप अपने बेटे को फाँसी के तख्ते पर भेज सकता है। लेकिन पण्डित रामनाथ तिवारी इस बीसवीं सदी में, अपने बेटे को फाँसी के तख्ते पर भेज रहे हैं—कुछ समझ में नहीं आता—ज़रा भी समझ में नहीं आता!" विश्वम्भरदयाल ने माताप्रसाद से कहा।

माताप्रसाद चुप थे—क्या हो रहा है, क्यों हो रहा है, कैसे हो रहा है—इस सबमें अब उन्हें कोई दिलचस्पी न रह गई थी। वे यह अनुभव कर रहे थे कि परिस्थितियों द्वारा वे एक अप्रिय तथा घृणित-काण्ड में पड़ गए हैं। उन्होंने विश्वम्भरदयाल को कोई उत्तर नहीं दिया।

पर अपनी बात विश्वम्भरदयाल ने माताप्रसाद से नहीं कही थी, वह बात उसने कही थी स्वयम् अपने से। प्रभानाथ ऐन मौक़े पर मुखबिर बनने से इनकार कर जायगा, इसकी उसने आशा न की थी। उनकी जीती हुई बाज़ी अनायास ही उसके हाथ से निकल गई। जज के सामने विश्वम्भरदयाल को लज्जित होना पड़ा, जज के सामने ही नहीं, सारे पुलिस डिपार्टमेंट के सामने, और सबसे बढ़कर अपने सामने उसे लज्जित होना पड़ा था। विश्वम्भरदयाल के मत्थे पर बल पड़ गए थे—उसके मुख पर एक भयानक प्रतिहिंसा की छाया घिर आई थी। कुछ देर तक वह चुपचाप बैठा रहा, और फिर वह फूट पड़ा, "बाप बेटे से कहे कि अपना बयान वापस लेकर फाँसी चढ़ जाय। मैं जानता हूँ कि प्रभानाथ बयान देता—लेकिन उस दिन रामनाथ ने प्रभानाथ से मिलकर मेरे किये-धरे पर पानी फेर दिया। अपने बेटे

की जान लेकर वह मुझे हराना चाहता है। मैं जानता हूँ—रामनाथ भी जानते हैं कि प्रभानाथ के फाँसी पर चढ़ने से मुझे कोई फायदा नहीं होगा—रामनाथ तिवारी का फ़ायदा उसी में है जिसमें मेरा फ़ायदा है। लेकिन रामनाथ तिवारी अपना फ़ायदा नहीं चाहते—इसलिए कि वे मेरा फ़ायदा नहीं चाहते। वह मुझे गिराना चाहते हैं, मुझे ज़लील करना चाहते हैं।"

इस बात का उत्तर देने की माताप्रसाद को कोई आवश्यकता नहीं थी क्योंकि यह बात भी विश्वम्भरदयाल ने माताप्रसाद से नहीं कही थी, वरन् अपने से कही थी; पर न जाने क्यों माताप्रसाद अपने को न रोक सके। उन्होंने कहा था, "अगर आप मुझे माफ़ करें तो मैं यह कहने की हिम्मत ज़रूर करूँगा कि आप चीज़ों को ग़लत तौर से समझ रहे हैं!"

"ग़लत तौर से समझ रहा हूँ!" विश्वम्भरदयाल ने माताप्रसाद पर अपनी तेज़ आँखें गड़ाते हुए पूछा, "माताप्रसाद साहेब आप क्या कह रहे हैं!"

"जी मैं ठीक कह रहा हूँ। मैंने आपको पहले ही आगाह कर दिया था कि आप ग़लत रास्ता अपना रहे हैं। राजा साहेब ने जो कुछ किया, उसी की उनसे उम्मीद की जा सकती थी। प्रभानाथ का मुखबिर बन जाना उनके आली खान्दान पर एक बहुत बड़ा कलंक होता—उस कलंक से वह बचना चाहते थे। उसमें आपकी दुश्मनी व दोस्ती का कोई सवाल नहीं उठता।"

विश्वम्भरदयाल कह उठा, "यहीं आप ग़लती करते हैं माताप्रसाद साहेब! असलियत यह है कि मेरे और राजा साहेब के बीच में एक शतरंज का खेल हो रहा है—प्रभानाथ उसमें महज़ एक मोहरा है। मैं पूछता हूँ कि प्रभानाथ के मुखबिर बनने को वह अपने खान्दान पर कलंक क्यों समझते हैं? और मान भी लिया जाय कि वह प्रभानाथ के मुखबिर बनने को वाक़ई अपने खान्दान पर कलंक समझते हैं, तो फिर ऐसी हालत में वह मुझे व मेरी हरकतों को किस नज़र से देखते होंगे—सवाल यह है। मैंने कहा न—प्रभानाथ मोहरा है—खेलने वाला मैं हूँ—चाल मेरी है। राजा साहेब मुझसे

नफ़रत करते हैं—नफ़रत ! अपने लड़के को भी क़ुर्बान करके वह मुझे हराना चाहते हैं—" और एकाएक विश्वम्भरदयाल हँस पड़ा। बड़ी कुरूप और भयानक हँसी थी वह, और वह बड़ी देर तक हँसता रहा। उसने कहा, "लेकिन माताप्रसाद साहेब—मैं भी जबर्दस्त खिलाड़ी हूँ; मुझे हराना आसान काम नहीं है। मैं जीतूँगा और फिर जीतूँगा—हारने के लिए मैंने क़दम नहीं उठाया।"

इस बार माताप्रसाद चौंक उठे—उन्होंने विश्वम्भर दयाल की ओर एक कौतूहल की दृष्टि डाली। माताप्रसाद की आँखों वाले कौतूहल को विश्वम्भर-दयाल ने पढ़ लिया था, "माताप्रसाद साहेब ! मौत से भी भयानक चीज़ होती है उसकी पीड़ा। मृत्यु में भय है, पीड़ा नहीं है। प्रभानाथ ने भय पर विजय पा ली है—मैं जानता हूँ वह पीड़ा पर विजय न पा सकेगा।"

"मैं समझा नहीं !" और माताप्रसाद की समझ में वास्तव में विश्वम्भर-दयाल की बात न आई थी।

"जी—आप नहीं समझ पाए—समझना मुश्किल भी है। आपको शायद यह पता नहीं कि दुनिया की बड़ी से बड़ी सरकारों को अकसर ऐसे लोगों से साबिका पड़ता है जो मौत से नहीं डरते। और उन लोगों पर हावी आना, उनसे बात कहला लेना, उनसे बातें निकाल लेना—कभी-कभी यह निहायत ज़रूरी होता है। ऐसी हालत में सरकार के सामने एक ही रास्ता रह जाता है—उस निर्भय आदमी को भयानक पीड़ा देना !"

"तो क्या आपका मतलब है कि उस लड़के को......?" माताप्रसाद कहते-कहते रुक गए।

"जी हाँ—आप बिल्कुल ठीक समझे ! मुझे उससे बात कहलानी है—और मैं कहलाऊँगा। हमारी सरकार लोगों से बात कहलाना जानती है—" और विश्वम्भरदयाल उठ खड़े हुए।

२

मुंशी माताप्रसाद स्तब्ध-से रह गए। बात यहाँ तक पहुँच सकती है—इसकी उन्होंने कल्पना भी न की थी। पण्डित श्यामनाथ तिवारी के लड़के के साथ वह बर्ताव किया जायगा जो साधारण खूनियों और डकैतों के साथ किया जाता है—शायद उससे भी कड़ा बर्ताव किया जाए। उन्होंने सुन रक्खा था कि पुलिस में कुछ ऐसे विभाग हैं जो अमानुषिक यंत्रणा देने में सिद्धहस्त हैं। उन यंत्रणाओं के आगे कड़े से कड़े दिल के आदमी भी काँप उठते हैं।

माताप्रसाद ने यह तै कर लिया कि इसकी सूचना पण्डित श्यामनाथ तिवारी को दे दी जाय। शायद विश्वम्भरदयाल ने माताप्रसाद से जो बातें कही थीं, इसीलिए कही थीं कि वे बातें पण्डित रामनाथ तिवारी के कानों तक पहुँच जाय। विश्वम्भर दयाल एक कुशल खिलाड़ी है—उससे भी अधिक भयानक खिलाड़ी है। माताप्रसाद जानते थे कि विश्वम्भर दयाल जीतने पर तुला हुआ है, जो बात उसने कही है उसे वह पूरा करेगा।

जब माताप्रसाद पण्डित श्यामनाथ तिवारी के यहाँ पहुँचे उन्हें पता चला कि श्यामनाथ तिवारी अपने भाई से मिलने को उन्नाव चले गए हैं। माताप्रसाद सीधे उन्नाव के लिए रवाना हो गए।

श्यामनाथ तिवारी को पिछले दिन ही यह खबर मिल गई थी कि प्रभानाथ ने मुखबिर बनने से इनकार कर दिया है। रामनाथ तिवारी से इस सम्बन्ध में बातें करने के लिए ही वह उन्नाव गए थे।

रामनाथ कह रहे थे, "श्यामू—मैं प्रभा को बचाऊँगा, मैं तुमसे कहता हूँ। अपनी सारी ताक़तें लगा दूँगा, मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि प्रभा को फाँसी नहीं होगी।"

उसी समय रामनाथ तिवारी को माताप्रसाद के आने की इत्तिला मिली।

वीणा बग़ल वाले कमरे में बैठी हुई इन दोनों भाइयों की बातचीत सुन

रही थी, और उसके मन में एक प्रकार की शान्ति थी, एक प्रकार का संतोष था। पर माताप्रसाद के आते ही उसका दिल न जाने क्यों धड़कने लगा। एक अज्ञात भय से वह सिहर उठी।

श्यामनाथ ने माताप्रसाद का स्वागत किया, "आइये माताप्रसाद साहेब! कैसे तकलीफ़ की?"

"हुज़ूर बड़ा ग़ज़ब हो गया। उस शैतान ने यह तै कर लिया है कि जिस तरह भी हो, प्रभानाथ से बात निकलवाई ही जायगी।" माताप्रसाद ने कहा।

"तुम्हारा मतलब है..." श्यामनाथ पूरी बात कहते-कहते रुक गए।

"जी हाँ—प्रभानाथ को टार्चर करने की तैयारी है! मुमकिन है टार्चर शुरू भी हो गया हो!"

रामनाथ उठ खड़े हुए, "बात यहाँ तक पहुँच गई है। मेरे लड़के को पुलिस टार्चर करेगी। श्यामू—चलो, मुझे अभी कानपुर चलना है।"

सब लोगों के चले जाने के बाद वीणा बरामदे में आकर बैठ गई। उस समय वह बहुत अधिक उद्विग्न थी। माताप्रसाद ने जो खबर दी थी उस खबर के महत्त्व को वह जानती थी। वह जानती थी कि टार्चर क्या बला है, वह यह भी जानती थी कि वीर से वीर आदमी भी उस टार्चर को नहीं बर्दाश्त कर सकता।

क्या पण्डित रामनाथ तिवारी कुछ कर सकेंगे? नहीं—कुछ भी नहीं। वीणा जानती थी कि उस महान ब्रिटिश सरकार की नज़र में रामनाथ तिवारी एक धूल के एक कण हैं। रामनाथ से कुछ नहीं होने का—और वीणा सिर से पैर तक सिहर उठी।

प्रभानाथ कहाँ है—यह न जानती थी। वह कानपुर में न होगा, यह निश्चित था। पुलिस उसे कानपुर से हटाकर और कहीं ले जाएगी—ऐसी जगह जिसका रामनाथ और श्यामनाथ को पता न लग सके। उसे प्रभानाथ का पता लगाना होगा, उसे अब काम करना होगा।

वीणा—एक तो स्त्री और उसपर अकेली—अपने पिस्तौल को देख रही थी और सोच रही थी। एक बहुत बड़ा, एक बहुत महत्व का काम था उसके सामने! क्या वह उसे कर सकेगी?

३

पण्डित रामनाथ तिवारी कानपुर के लिए रवाना हो गए थे, पर उनका दिल कह रहा था कि वे कुछ न कर सकेंगे। उनके मन में एक प्रकार की निराशा भर गई थी, उनके अन्दर एक प्रकार का भय समा गया था।

निराशा और भय—रामनाथ ने पहली बार इन चीजों का अनुभव किया था। बड़े जबर्दस्त आदमी से उनका मुकाबिला पड़ा है; और वे अब यह अनुभव करने लगे थे कि उस आदमी को पराजित करना असम्भव-सा है। विश्वम्भरदयाल ऐसे न जाने कितने आदमियों से उनका वास्ता पड़ चुका था, लेकिन कभी भी उन्हें उस प्रकार के भय का अनुभव न हुआ था। जो उनके सामने आया उसे उनके आगे झुकना पड़ा। आज पहली बार उन्हें अनुभव हुआ कि जो आदमी उनके सामने आया है वह उन्हें झुकाने पर तुला हुआ है।

और रामनाथ तिवारी को ऐसा अनुभव हुआ कि मनुष्य से नहीं, उस समय उनका युद्ध नियति के साथ चल रहा है। विश्वम्भरदयाल उस नियति का साधन-मात्र है।

मोटर तेज़ी के साथ चली जा रही थी और रामनाथ तिवारी सोच रहे थे। विश्वम्भरदयाल की इतनी मजाल कि वह उनके लड़के को टार्चर करे! वह चाहते थे कि विश्वम्भरदयाल उनके सामने आवे और वे विश्वम्भर-दयाल को मसल दें—हमेशा के लिए मिटा दें। प्रतिहिंसा की भयानक आग उनमें भड़क उठी थी।

कानपुर पहुँच कर वे सीधे जेल पहुँचे। वहाँ उन्हें मालूम हुआ कि सुबह के समय प्रभानाथ कानपुर से पुलिस की हिरासत में किसी अज्ञात-

उसी समय दयानाथ ने कहा, "चुप रहो मार्कण्डेय! ब्रह्मदत्त उमा क मित्र है—बहुत बड़ा मित्र है!"

दयानाथ का यह वाक्य उमानाथ को अखर गया। लेकिन उर मार्कण्डेय ने दिया, "दयानाथ मुझे दुःख इस बात का है कि उमानाथ लाख प्रयत्न करने पर भी तुम ब्रह्मदत्त को अपना मित्र नहीं बना सके। इस दोष उमा का नहीं है, ब्रम्हदत्त का नहीं है, दोष तुम्हारा है!"

इस समय तक दयानाथ के अन्दर वाली कटुता बहुत अधिक उभर चु थी, "मेरा दोष है मार्कण्डेय—मैं मानता हूँ! मैं इन पशु के तुल्य आदमि के आगे झुकने को तैयार नहीं—यह मेरा दोष है। मैंने इतना अधिक त्या किया, मैं पितृ-द्रोही बना, मैंने अपना सारा वैभव, सारा सुख छोड़ दिया- इन लोगों के लिए! और इसके परिणाम में मुझे क्या मिला? अविश्वास- अपमान! मेरा ही दोष है कि मैंने पहले इस सबको नहीं सोचा था, मैंने य नहीं सोचा था कि इनप शुओं के साथ काम करने के लिए स्वयम् पशु बन जा पड़ेगा! तुम ठीक कहते हो मार्कण्डेय—मैं अपने दोष को स्वीकार करता हूँ!

मार्कण्डेय को दयानाथ के इन उद्‌गारों से दुःख हुआ। उसने कहा "दया, ज़रा ठंडे दिमाग़ से सोचो! तुम्हारी अहम्मन्यता पर जो भयान प्रहार हुआ है उससे तुम मर्माहत हो रहे हो!"

पर दयानाथ इस समय आपे से बाहर हो चुका था, उसने कहा, "मेरी अहम्मन्यता नहीं, अहम्मन्यता उन लोगों की है जिन्होंने मेरा विरोध किया जिन्होंने असत् को अपनाया, जिन्होंने नेकी और शिष्टता का अपमान किया अभी तुमने ब्रह्मदत्त की बात उठाई है मार्कण्डेय! मैं तुमसे पूछता हूँ—ब्र दत्त को कब नेकी और ईमानदारी पर विश्वास रहा है? अपनी खुदी औ स्वार्थ में भूला हुआ वह आदमी! वह मेरे यहाँ आता है, वह उमा का बहु बड़ा मित्र बनता है, और ऐन मौक़े पर वह मेरे ख़िलाफ़ गया क्योंकि मैं उसकी खुशामद नहीं की, क्योंकि मैं उसके सामने झुका नहीं, क्योंकि मैंने उसके सामने हाथ नहीं फैलाया!"

मार्कण्डेय ने देखा कि दयानाथ अपने आपे में नहीं है, वह किसी भी प्रकार का तर्क सुनने को तैयार नहीं, और उसने इस बार प्रसंग बदलने की कोशिश की। श्यामनाथ की ओर घूमकर उसने कहा, "श्यामू काका! फिर आपने प्रभा के सम्बन्ध में आखिर कुछ तो सोचा होगा!"

श्यामनाथ कुछ देर के लिए दयानाथ की बातों में अपने को भूल गए थे। मार्कण्डेय की बात से वे चौंक उठे। उन्होंने बड़े करुण स्वर में कहा, "इसी सम्बन्ध में तो दया से सलाह लेने आया था; लेकिन दया अपने मामले में सब कुछ भूले हुए हैं! तुम भी तो वकील हो मार्कण्डेय! तुम बतलाओ मैं क्या करूँ!"

मार्कण्डेय ने कुछ सोचकर कहा, "आप एक बार इंसपेक्टर जेनरल पुलिस से मिलकर बातचीत कीजिये—मामला आपका है—शायद वहाँ से आपको कोई सहायता मिल जाय!"

श्यामनाथ चौंककर उठ बैठे, "हाँ, यह तुमने ठीक कहा। मुझे तो यह सूझा ही नहीं था। मैं कल सुबह ही इलाहाबाद चला जाऊँगा।

४

शाम के समय जब पण्डित रामनाथ तिवारी घर पहुँचे, वीणा बरामदे में चुपचाप बैठी रामनाथ तिवारी का इंतज़ार कर रही थी। रामनाथ तिवारी अपनी मोटर से चुपचाप उतर कर अपने कमरे में चले गए—उन्होंने भीतर से दरवाज़ा उड़का लिया।

वीणा समझ गई कि रामनाथ तिवारी को कोई सफलता नहीं मिली, उसका मन और भी भारी हो गया।

रात के समय भी जब रामनाथ तिवारी अपने कमरे से बाहर नहीं निकले तब वीणा ने डरते-डरते उनके कमरे का द्वार खोला। रामनाथ तिवारी चुप-चाप लेटे थे। वीणा ने कहा, "ददुआ!"

रामनाथ ने अपनी आँखें खोलकर वीणा को कुछ देर तक देखा, फिर शिथिल-स्वर में उन्होंने कहा, "क्या है ?"

"आपके खाने का समय हो गया है—उठिये !"

रामनाथ चुपचाप उठ खड़े हुए। ड्राइंगरूम में पहुँचकर वे बैठ गए—उन्होंने कहा, "मुझे भूख नहीं है !"

"कुछ थोड़ा-सा तो खा लीजिये !"

रामनाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया। वीणा रसोई से थाली परोसवा कर ले आई। भोजन करते हुए रामनाथ ने कहा, "प्रभा को पुलिस किसी अज्ञात-स्थान में ले गई है। मैंने बहुत पता लगाने की कोशिश की लेकिन मुझे पता न लग सका !"

रामनाथ की बात सुनकर वीणा काँप उठी। "ददुआ—यह तो बुरा हुआ !"

"बुरा हुआ या भला हुआ—यह मैं नहीं कह सकता ; लेकिन इतना जानता हूँ कि मैं आज पराजित हुआ—उस विश्वम्भरदयाल के हाथ से !" रामनाथ के स्वर में एक अजीब करुणा थी—दयनीयता थी।

वीणा चुप रही, रामनाथ की करुणा उसके हृदय में चुभ गई।

रामनाथ को उनके कमरे में पहुँचा कर वीणा लेट गई। उस समय वह बहुत उद्विग्न थी।

प्रभानाथ को वह जानती थी—बहुत अच्छी तरह ! वह जानती थी कि प्रभानाथ पुलिस के टार्चर को बर्दाश्त न कर सकेगा, और फलस्वरूप दो-एक दिन में वह सब कुछ कह देगा। प्रभानाथ को बचाना होगा—कैसे भी हो वैसे !

और वीणा के सामने सवाल था कि प्रभानाथ को कैसे बचाया जाय।

वीणा रात भर जागती रही—उसकी आँखों में निद्रा न थी।

वीणा स्पष्ट देख रही थी कि अन्त उसके सामने है—यह अन्त उस दिन से हमेशा उसके सामने रहा था जिस दिन वह क्रान्तिकारी दल में सम्मिलित हुई थी, पर उस अन्त को उसने इतने निकट से इसके पहले कभी अनुभव न किया था। लेकिन अन्त से उसे भय न था, झिझक न थी। केवल एक विचित्र प्रकार का स्पन्दन भर था। उसका विगत जीवन धीरे-धीरे उसके सामने छाया-चित्र की भाँति आने लगा—उसके अधिकांश साथी इस दुनिया से चले गए थे। और एकाएक प्रतिभा की मूर्ति उसके सामने आकर खड़ी हो गई।

प्रतिभा—वीणा की अभिन्न साथिन—उसके सामने खड़ी मुसकरा रही थी, मानो वह कह रही हो कि वह लगातार वीणा का इंतज़ार करती रही है। और एकाएक प्रभानाथ की मूर्ति प्रतिभा के बग़ल में आकर खड़ी हो गई। उद्धत, हृष्ट-पुष्ट प्रतिभाशाली नवयुवक !

प्रभानाथ से वीणा ने प्रेम किया था। वह प्रेम कितना प्रशान्त और कितना सम्पूर्ण था। अपने जीवन के प्रत्येक अभाव को वीणा ने अपने को प्रभानाथ में लय करके खो दिया था, उसका समस्त अस्तित्व प्रभानाथ था। और प्रभानाथ को पाकर वह अपने मार्ग से प्रायः हट गई थी। इस थोड़े से काल में, जब वह प्रभानाथ के साथ रही, वह अपने दल को भूल गई थी, वह अपनी प्रतिज्ञा को भूल गई थी, वह अपने व्रत को भूल गई थी। एक प्रभानाथ—और उसके आगे कुछ नहीं।

और एकाएक उसकी आँखों के आगे जेल की एक काल्पनिक कोठरी आ गई। उसने देखा कि सीखचों के अन्दर प्रभानाथ पड़ा है—उसके हाथों में हथकड़ियाँ हैं, पैरों में बेड़ियाँ हैं, और वह कराह रहा है! भय से वीणा चीख़ उठी; जबर्दस्ती उसने अपनी आँखें खोल दीं—और अब उसके सामने उसका कमरा था, जिसमें उषा की प्रथम किरणें प्रवेश कर रही थीं।

वीणा उठ खड़ी हुई। पण्डित रामनाथ तिवारी स्नान कर रहे थे। जल्दी-जल्दी वीणा ने पूजा के फूल तोड़कर पूजा-गृह में रख दिये—रामनाथ

तिवारी की ओर से वह तीन घंटे के लिए निश्चिन्त हो गई। सब कुछ करके वह अपने कमरे में लौटी। उसने अपनी सबसे सुन्दर साड़ी निकालकर पहनी, और दो चार आभूषण जो उसके पास थे उनसे उसने अपना सम्पूर्ण सिंगार किया। इसके बाद उसने अपना पिस्तौल निकाला। उस पिस्तौल को उसने बहुत दिनों से न छुआ था। आज उस पिस्तौल के लोहे को छूकर वह कुछ सिहर उठी। लेकिन उसने अपना मन कड़ा किया, पिस्तौल में उसने कारतूस लगा लिये।

वह कमरे के बाहर निकली। रामनाथ पूजा के कमरे में पूजा कर रहे थे। पूजा-गृह की देहली पर वह रुकी, और धीरे से उसने अपना मस्तक देहली पर रखकर प्रणाम किया। वह प्रणाम पूजा गृह के देवता को न किया गया था वह अन्तिम प्रणाम वीणा ने प्रभानाथ के पिता, अपने श्वसुर पण्डित रामनाथ तिवारी को किया था। और फिर दबे पाँव वह वहाँ से चल दी।

स्टेशन आकर वह कानपुर वाली गाड़ी में बैठ गई।

५

कानपुर स्टेशन पर उतर कर वीणा दयानाथ के बँगले की ओर रवाना हो गई। एक बार उसके मन में आया कि वह अपनी पार्टी वालों से मिले, उन्हें सारी परिस्थिति बतलावे, उनकी सहायता ले—पर दूसरे ही क्षण उसने अपना विचार बदल दिया। वह मामला उसका था, निजी, जिसका पार्टी वालों से कोई सम्बन्ध न था। प्रभानाथ उसका था, वह प्रभानाथ की थी। जो कुछ उसे करना था वह प्रभानाथ के हित के लिए, अपनी पार्टी वालों के लिए नहीं। उसके और प्रभानाथ के जीवन में किसी भी तीसरे व्यक्ति का आना उसके लिए असह्य था। जो कुछ करेगी वह करेगी।

आज वह अपने में एक नयी प्रकार की चेतना, एक नई स्फूर्ति अनुभव कर रही थी। आज वह साक्षात् शक्ति बन कर निकल पड़ी थी—[illegible] उसके मन में था। आज वह विनाश के ताण्डव के लिए तैयार हो कर आई थी।

उसकी अवस्था ठीक उस दीपक के समान थी जो बुझने के पहले एक प्रखर प्रकाश अपने चारों ओर बिखेर देता है। उसके मन में भय न था, उसके मन में झिझक न थी; अपने प्राणों को हथेली पर रख कर वह मौत से खेलने निकल पड़ी थी। प्रातः काल के बाल्य और हँसते हुए जीवन की ओर उसका ध्यान न था—वह अपने अन्तर में एक पूर्ण-रूप से विकसित और प्रौढ़ जीवन का अनुभव कर रही थी।

दयानाथ के बँगले के बाहर ही ताँगे से उतर कर उसने ताँगे वाले को विदा कर दिया। पैदल उसने बँगले में प्रवेश किया। उस समय आठ बजे थे।

उमानाथ बरामदे में बैठा हुआ अखबार पढ़ रहा था; वीणा को देख कर वह चौंक उठा। उठते हुए उसने कहा, आप इस वक्त यहाँ ?"

वीणा मुसकराई, "जी हाँ! प्रभानाथ की तलाश में निकली हूँ!"

वीणा की मुसकराहट में निहित उस करुणा को, और उसके वाक्य में निहित निश्चय को उमानाथ समझ सका या नहीं; यह नहीं कहा जा सकता; उसने केवल इतना कहा, "मैं समझता हूँ आप प्रभा का पता न लगा सकियेगा—ददुआ, काका और हम सब लोग पता लगाने में हार गए हैं।"

वीणा ने शान्त-भाव से कहा, "लेकिन मैं हारने के लिए नहीं निकली हूँ—मैं प्रभा का पता लगाने आई हूँ। थोड़ी-सी सहायता चाहती हूँ!"

"कैसी सहायता ?" कौतूहल से उमानाथ ने पूछा।

"मुझे आप विश्वम्भरदयाल का पता बतला दीजिये—उसके आगे मैं सब कुछ कर लूँगी!"

"चलिये, विश्वम्भरदयाल के बँगले में मैं आप को पहुँचा दूँ!" उमानाथ ने कहा।

"नहीं—आप मेरे साथ मत चलिये नहीं तो आप मुसीबत में फँस सकते हैं! मैं अकेले सब कुछ कर लूँगी। आप सिर्फ़ मुझे पता बतला दीजिये!"

उमानाथ ने वीणा को पता बतला दिया।

वीणा ने चलते हुए कहा, "मैं यहाँ आई थी और आप से मिली थी यह बात केवल दो व्यक्ति जानते हैं—आप और मैं, तीसरा आदमी इस बात को न जानने पाए यह मेरी आप से प्रार्थना है!"

वीणा चली गई और उमानाथ लौट कर फिर कुर्सी पर बैठ गया! वह अजीब चक्कर में था। आखिर वीणा क्या करेगी? लेकिन उसका मन कह रहा था कि वीणा कुछ करेगी ज़रूर—और जो कुछ वह करेगी वह भयानक होगा। उमानाथ ने वीणा के स्वर में एक तरह की दृढ़ता देखी, उसकी आँखों में एक तरह का विश्वास देखा था।

६

उमानाथ अनायास ही बहुत अधिक उद्विग्न हो उठा था। ऐसी उद्विग्नता शायद उसने पहले कभी अनुभव न की थी। लाख प्रयत्न करने पर भी उमानाथ को इस उद्विग्नता का कोई स्पष्ट कारण न मिल रहा था; पर फिर भी एक भयानक उथल पुथल वह अपने अन्तर में अनुभव कर रहा था! उमानाथ को उस समय कुछ ऐसा लग रहा था कि उसके चारों ओर जो कुछ है, वह सब का सब अनायास ही बदलने वाला है—और वह यह भी अनुभव कर रहा था कि यह बदला अच्छा न होगा, यह बदलना विनाश होगा! विनाश में निहित निर्माण भी है—उमानाथ को इस बात पर विश्वास था; लेकिन निर्माण की कोई स्पष्ट रूप-रेखा उसके सामने न होने के कारण उसका निर्माण के प्रति विश्वास उसके अन्दर वाले विनाश के प्रति भय पर विजय न पा सकता था!

उमानाथ उठ खड़ा हुआ—अशांत सा! उसने मन ही मन कहा, "[illegible] मैं नहीं जानता क्या होने वाला है!" और वह जोर से अपने अन्दर वाले [illegible] पर भी हँस पड़ा। कमरे से निकल कर वह बरामदे में बैठ गया। लेकिन बरामदे में भी उसकी विचार धारा ने साथ न छोड़ा, और

उसने उस समय दयानाथ और मार्कण्डेय के आगमन को मन ही मन धन्यवाद दिया।

मार्कण्डेय को उमानाथ के साथ छोड़ कर दयानाथ अन्दर चला गया। थोड़ी देरे तक दोनों चुप बैठे रहे इसके बाद मार्कण्डेय ने कहा, "देख रहे हो उमा—जरा-सी बात पर दयानाथ इतना अधिक कटु हो गये हैं!"

यह स्पष्ट था कि दयानाथ के अन्दर एक प्रकार की कटुता पैदा हो रही है, और इस पर उमानाथ को आश्चर्य हो रहा था। दयानाथ—त्याग और बलिदान का एकनिष्ट उपासक—एक ज़रा सी बात से उसके अन्दर कटुता क्यों पैदा हो रही है, उमानाथ की समझ में न आ रहा था। उमानाथ ने केवल इतना कहा, "मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा है! मार्कण्डेय भइया! बड़के भइया अपनी ही हठधर्मी के कारण इस चुनाव में हारे हैं, ऐसी हालत में वे दूसरों को दोष कैसे दे सकते हैं!"

"एक तरह से तुम्हारी बात ठीक है उमा, लेकिन एक दूसरा पहलू भी है—और अगर उस पहलू पर ग़ौर करोगे तो दयानाथ के अन्दर वाली कटुता तुम्हें स्वाभाविक लगेगी।"

उमानाथ ने मार्कण्डेय की बात का कोई उत्तर नहीं दिया, वह सोचने लगा! इतने में उसे सुनाई पड़ा, "कहो कामरेड, क्या सोच रहे हो?"

उमानाथ ने चौंककर देखा, ब्रह्मदत्त खड़ा मुस्करा रहा था। उमानाथ ने कहा, "कुछ नही, यों ही इस अजीब-ग़रीब दुनिया की अजीब-ग़रीब रफ़्तार पर सोच रहा था!"

ब्रह्मदत्त खिलखिला कर हँस पड़ा, "कामरेड! कुछ सोचना-विचारना—यह सब बेकार है! कुछ भी नहीं समझ में आ सकता—रत्ती भर नहीं!"

मार्कण्डेय ने कौतूहल के साथ ब्रह्मदत्त को देखा, फिर उसने मुस्कराते हुए कहा, "ब्रह्मदत्त—तुम भी दार्शनिक बन रहे हो! इस दर्शन से सम्हल कर ही रहना!"

ब्रह्मदत्त मार्कण्डेय की बात के व्यंग को पी गया, उसने मार्कण्डेय की बात का कोई उत्तर नहीं दिया। बैठते हुए उसने उमानाथ से कहा, "दयानाथ जी के क्या हाल हैं? अपनी पराजय पर उन्हें एक धक्का-सा लगा होगा! वे कल्पना भी नहीं करते थे कि वे पराजित होंगे!"

उमानाथ ने बात टालने की कोशिश की, "छोड़ो भी उस बात को ब्रह्मदत्त! जो कुछ हो चुका, उसपर बात करना बेकार है!"

लेकिन शायद ब्रह्मदत्त अपनी कैफ़ीयत देने पर तुल गया था, "नहीं कामरेड! उस बात को स्पष्ट न करना मेरे हित में न होगा क्योंकि प्रश्न तुम्हारे बड़े भाई का है, और इसलिए दयानाथ जी का मामला मेरे लिए किसी हद तक व्यक्तिगत प्रश्न हो जाता है। लेकिन कामरेड, मैंने बहुतेरी कोशिश की कि दयानाथ जी झुकें, अपनी अहम्मन्यता छोड़कर वह एक क्षण के लिए मेरे स्तर पर आवें, मुझसे बराबरी से मिलें! और मैं असफल हुआ, यह मार्कण्डेय जी अच्छी तरह जानते हैं! मनुष्यता का कल्याण करने का दम भरने वाला कांग्रेस का एकनिष्ठ प्रतिनिधि वर्गवाद का कितना बड़ा पुजारी हो सकता है यह मैंने दयानाथ जी में स्पष्ट देखा। और मैं कहता हूँ कामरेड, इस पर मुझे ग्लानि हुई, ग्लानि ही नहीं, एक प्रकार का भयानक विद्रोह मेरे प्राणों में भर गया!"

उमानाथ ब्रह्मदत्त की भावना को समझता था, वह भी तो वर्गवाद का भयानक शत्रु था! लेकिन न उमानाथ और न ब्रह्मदत्त दयानाथ का ठीक-ठीक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कर सके थे। उमानाथ ने कहा, "मुझे तुमसे कोई शिकायत नहीं, बल्कि भइया भी वर्गवाद के उतने ही बड़े प्रतिनिधि हैं जितना कोई पूँजीपति हो सकता है!"

इस पर मार्कण्डेय ने कहा, "उमा! एक बात तुम्हारी ठीक है, दूसरी बात में तुम गलती कर गए! दयानाथ वर्गवाद में विश्वास करते हैं, यह मैं मानता हूँ; लेकिन उनका वर्गवाद पूँजीवाद का वर्गवाद नहीं है, वह दूसरा ही वर्गवाद है!"

"यह दूसरा वर्गवाद कहाँ से निकल आया—ज़रा मैं भी सुनूँ !" ब्रह्मदत्त ने पूछा।

"लेकिन तुम बुरा न मान जाना !" मार्कण्डेय ने मुसकराते हुए कहा।

"आप इसकी चिन्ता न करें—मैं जानता हूँ कि आप लोग इस बात की ज़रा भी परवाह नहीं करते कि दूसरा आदमी आपकी बात पर बुरा मानता है या उसे पसन्द करता है ! आप लोग सत्य के उपासक है न !" और ब्रह्मदत्त अपने मज़ाक़ पर खुद हँस पड़ा।

मार्कण्डेय ने कहा, "तो फिर सुनो ब्रह्मदत्त ! दुनिया में एक चीज़ होती है संस्कृति; नेकी और ईमानदारी, शील और विनय ! आज इन मानवीय गुणों का उपासक एक नया वर्ग पैदा हो रहा है, और दयानाथ उस वर्ग के आदमी हैं !"

इस बात से ब्रह्मदत्त तिलमिला उठा, "नेकी, ईमानदारी, संस्कृति, शील और विनय ! समाज के भयानक भुलावे ! असत्य की नींव पर बनाए गए वे मन्दिर जिनमें पूँजीपति उत्पीड़ित जन-समुदाय को छल-कपट से फँसाकर अपना काम निकालता है !

लेकिन उमानाथ ने पूछा, "मार्कण्डेय भइया ! आपने जो कुछ कहा वह बाहरी रूप से ठीक दिखता है, लेकिन उसका एक आन्तरिक रूप है जिसे आप नहीं देख पाते ! यह संस्कृति, यह विनय, यह शील, यह नेकी, यह ईमान-दारी !—ये सब के सब समर्थता से उत्पन्न हैं, वह समर्थता जो दूसरों को दबाकर, दूसरों को उत्पीड़ित करके, दूसरों को असमर्थ बनाकर कुछ इने-गिने लोगों ने हासिल कर ली है !"

"यहीं ग़लती कर रहे उमा !" मार्कण्डेय ने उत्तर दिया, "यह सब चीजें, जिन्हें तुम समर्थ कहते हो उनके पास नहीं हैं। यद्यपि इन्हीं चीज़ों को मैं पूर्ण समर्थता समझता हूँ ! तुमने अपने समर्थ पूँजीपति को तो देखा ही है ! वह न नेक है, न ईमानदार है ! उसमें न शील है, न विनय है ! सांस्कृतिक दृष्टि से वह बहुत नीचे गिरा हुआ है ! यह नेकी-ईमानदारी की

अजदत्त मार्कण्डेय की बात के व्यंग को पी गया, उसने मार्कण्डेय की बात का कोई उत्तर नहीं दिया। बैठते हुए उसने उमानाथ से कहा, "दयानाथ जी के क्या हाल हैं? अपनी पराजय पर उन्हें एक धक्का-सा लगा होगा! वे कल्पना भी नहीं करते थे कि वे पराजित होंगे!"

उमानाथ ने बात टालने की कोशिश की, "छोड़ो भी उस बात को अजदत्त! जो कुछ हो चुका, उसपर बात करना बेकार है!"

लेकिन शायद अजदत्त अपनी कैफ़ीयत देने पर तुल गया था, "नहीं कामरेड! उस बात को स्पष्ट न करना मेरे हित में न होगा क्योंकि प्रश्न तुम्हारे बड़े भाई का है, और इसलिए दयानाथ जी का मामला मेरे लिए किसी हद तक व्यक्तिगत प्रश्न हो जाता है। लेकिन कामरेड, मैंने बहुतेरी कोशिश की कि दयानाथ जी झुकें, अपनी अहम्मन्यता छोड़कर वह एक क्षण के लिए मेरे स्तर पर आवें, मुझसे बराबरी से मिलें! और मैं असफल हुआ, यह मार्कण्डेय जी अच्छी तरह जानते हैं! मनुष्यता का कल्याण करने का दम भरने वाला कांग्रेस का एकनिष्ठ प्रतिनिधि वर्गवाद का कितना बड़ा पुजारी हो सकता है यह मैंने दयानाथ जी में स्पष्ट देखा। और मैं कहता हूँ कामरेड, उस पर मुझे ग्लानि हुई, ग्लानि ही नहीं, एक प्रकार का भयानक विद्रोह मेरे प्राणों में भर गया!"

उमानाथ अजदत्त की भावना को समझता था, वह भी तो वर्गवाद मानकर चलता था! लेकिन न उमानाथ और न अजदत्त दयानाथ का [illegible] और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कर सके थे। उमानाथ ने कहा, "मुझे कोई शिकायत नहीं, मुझे भरोसा भी वर्गवाद के ऊपर ही यह प्रति[illegible] [illegible] कोई [illegible] हो सकता है!"

इस पर मार्कण्डेय ने कहा, "उमा! एक बात [illegible] ठीक है, [illegible]! [illegible] वर्गवाद में [illegible] [illegible] [illegible] वर्गवाद [illegible] वर्गवाद नहीं है, [illegible]!"

इस बातचीत में उमानाथ को कोई रस न आ रहा था। वह अनुभव कर रहा था कि उसके लिए—और उसके ही लिए क्या, सारी दुनिया के लिए समय काम करने का है, बात करने का नहीं। पर उसकी समझ में न आ रहा था कि क्या काम किया जाय। वह उठ खड़ा हुआ और उसने ब्रह्मदत्त से कहा, "चलो कामरेड, थोड़ा-सा घूम ही आया जाय!"

ब्रह्मदत्त भी दयानाथ के बँगले में बैठने न आया था, उठते हुए उसने भी कहा, "चलो!"

उमानाथ ब्रह्मदत्त के साथ बँगले के बाहर पैदल ही निकल पड़ा। दोनों ताँगे की तलाश में चले जा रहे थे कि ब्रह्मदत्त को कुछ खटका-सा हुआ। उसने पीछे मुड़ कर देखा, करीब पचीस क़दम की दूरी पर दो आदमी उनके साथ-साथ चले आ रहे थे। इन दो आदमियों को ब्रह्मदत्त ने जब वह उमानाथ के यहाँ आया था, दयानाथ के बँगले के फाटक के पास खड़े देखा था। उसने धीरे-से उमानाथ से कहा, "कामरेड—दो आदमी हम लोगों का पीछा कर रहे हैं, और मेरा खयाल है कि तुम्हारा पीछा कर रहे हैं।"

उमानाथ ने कनखियों से उन दोनों को देखा, वे लोग निश्चिन्त भाव से इन दोनों के पीछे-पीछे चल रहे थे। उमानाथ ने कहा, "कामरेड मैं समझता हूँ कि अब मुझे कानपुर से चल देना चाहिये!"

इसी समय ब्रह्मदत्त ने दूर पर एक कार आती देखी। ब्रह्मदत्त सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस की कार पहचानता था, उसने उमानाथ से कहा, "उमा—तुम्हें यहाँ से भागना पड़ेगा; मेरा खयाल है उस कार में तुम्हारे नाम वारंट भी है!"

कार दूर ही थी और पीछा करने वाले दो आदमी उस समय तक ब्रह्मदत्त और उमानाथ के नज़दीक पहुँच गये थे। उनके बाँए हाथ पर कानपुर का ग्रीनपार्क था; दोनों ने ग्रीनपार्क में प्रवेश किया। पीछा करने वालों में एक आदमी पार्क के फाटक पर रह गया और एक इन दोनों के पीछे लग गया।

ब्रह्मदत्त ने उमानाथ से कहा, "कामरेड—अब हम दोनों का साथ छूटना

संस्कृति मनुष्य के अन्दर वाली प्रेम-दया-त्याग की भावनाओं पर अवलम्बित है, स्वयम् अपने को मिटाने की भावना द्वारा जनित है ! लेकिन शायद इसे तुम न समझ सकोगे क्योंकि तुम्हारी संस्कृति हिन्दुस्तानी नहीं है, तुम्हारी संस्कृति विदेशी है !"

ब्रमदत्त बोल उठा, "मार्कण्डेय जी ! मैंने माना कि उमानाथ जी विलायत हो आए हैं और उन पर विदेशी संस्कृति का प्रभाव पड़ा है, लेकिन मैं तो ठेठ हिन्दुस्तानी हूं !"

मार्कण्डेय मुसकराया, "हाँ ! तुम हिन्दुस्तानी ज़रूर हो क्योंकि तुम्हारा जन्म हिन्दुस्तान में हुआ है, और तुम्हारी शिक्षा-दीक्षा भी हिन्दुस्तान में ही हुई है ! लेकिन ब्रमदत्त ! हिन्दुस्तान में जो शिक्षा मिल रही है वह विदेशी है। आज एक सौ वर्ष से हम हिन्दुस्तानी विदेशी विचार-धारा का अध्ययन कर रहे हैं, और हम अपने को उस विदेशी विचार-धारा में पूरी तौर से खो चुके हैं ! धन और उपभोग को सत्य मानने वाली आज की हिंसात्मक विचार-धारा हिन्दुस्तान की नहीं है ! आज तुम अपनी दया, त्याग, ममता, भावना की संस्कृति को छोड़ कर जीवन के कुत्सित और हिंसात्मक संघर्ष को अपना सत्य मान बैठे हो !"

ब्रमदत्त, थोड़ी देर तक मार्कण्डेय ने जो कुछ कहा था, उस पर सोचता रहा; फिर उसने कहा, "जो बात आपने कही है मार्कण्डेय जी मैं उससे इनकार नहीं करता और न करना चाहता हूं ! वास्तव में मैं अपनी संस्कृति और अपनी सभ्यता का विरोधी हूं क्योंकि मैं जानता हूं कि हमारी संस्कृति और सभ्यता गलत है ! इस सभ्यता और संस्कृति के कारण ही हमें गुलामी भोगनी पड़ रही है—इसी के कारण हम पशुओं से भी गए-बीते हैं !"

मार्कण्डेय ने कहा, "ब्रमदत्त ! मैं स्वीकार करता हूं कि हम अपनी ही [illegible] के कारण [illegible] हैं, लेकिन [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] हो जाता ! [illegible] [illegible] !"

इस बातचीत में उमानाथ को कोई रस न आ रहा था। वह अनुभव कर रहा था कि उसके लिए—और उसके ही लिए क्या, सारी दुनिया के लिए समय काम करने का है, बात करने का नहीं। पर उसकी समझ में न आ रहा था कि क्या काम किया जाय। वह उठ खड़ा हुआ और उसने ब्रह्मदत्त से कहा, "चलो कामरेड, थोड़ा-सा घूम ही आया जाय!"

ब्रह्मदत्त भी दयानाथ के बँगले में बैठने न आया था, उठते हुए उसने भी कहा, "चलो!"

उमानाथ ब्रह्मदत्त के साथ बँगले के बाहर पैदल ही निकल पड़ा। दोनों ताँगे की तलाश में चले जा रहे थे कि ब्रह्मदत्त को कुछ खटका-सा हुआ। उसने पीछे मुड़ कर देखा, करीब पचीस क़दम की दूरी पर दो आदमी उनके साथ-साथ चले आ रहे थे। इन दो आदमियों को ब्रह्मदत्त ने जब वह उमानाथ के यहाँ आया था, दयानाथ के बँगले के फाटक के पास खड़े देखा था। उसने धीरे-से उमानाथ से कहा, "कामरेड—दो आदमी हम लोगों का पीछा कर रहे हैं, और मेरा खयाल है कि तुम्हारा पीछा कर रहे हैं।"

उमानाथ ने कनखियों से उन दोनों को देखा, वे लोग निश्चिन्त भाव से इन दोनों के पीछे-पीछे चल रहे थे। उमानाथ ने कहा, "कामरेड मैं समझता हूँ कि अब मुझे कानपुर से चल देना चाहिये!"

इसी समय ब्रह्मदत्त ने दूर पर एक कार आती देखी। ब्रह्मदत्त सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस की कार पहचानता था, उसने उमानाथ से कहा, "उमा—तुम्हें यहाँ से भागना पड़ेगा; मेरा खयाल है उस कार में तुम्हारे नाम वारंट भी है!"

कार दूर ही थी और पीछा करने वाले दो आदमी उस समय तक ब्रह्मदत्त और उमानाथ के नज़दीक पहुँच गये थे। उनके बाँए हाथ पर कानपुर का ग्रीनपार्क था; दोनों ने ग्रीनपार्क में प्रवेश किया। पीछा करने वालों में एक आदमी पार्क के फाटक पर रह गया और एक इन दोनों के पीछे लग गया।

ब्रह्मदत्त ने उमानाथ से कहा, "कामरेड—अब हम दोनों का साथ छूटना

चाहिये। मैं इन पुलिस वालों से उलझता हूँ, इस बीच तुम तेज़ी से पार्क के दूसरी तरफ़ निकल कर शहर की तरफ़ रवाना हो जाओ।

साथ वाला आदमी इन दोनों से दस क़दम पीछे था। ज्ञानदत्त ने रुक कर साथ चलने वाले आदमी से पूछा, "तुम हम लोगों के पीछे-पीछे क्यों चल रहे हो?"

"आपके पीछे मैं कहाँ चल रहा हूँ, मैं तो योंही घूमने चला आया हूँ।'

उमानाथ इस समय बहुत आगे बढ़ गया था। उस आदमी ने जैसे ही आगे बढ़ने की कोशिश की, ज्ञानदत्त ने उसका हाथ पकड़ लिया, "पहले मुझे यह बतलाओ कि तुम कौन हो और तुम्हारा मंशा क्या है?" उस आदमी ने हाथ छुड़ाने की कोशिश करते हुए कहा, "छोड़ो मेरा हाथ—बेकार उलझ रहे हो!"

लेकिन ज्ञानदत्त ने कहा, "पहले मेरे सवाल का जवाब दे दो तब तुम्हारा हाथ छोड़ूँगा।"

"वही जो तुम्हारे साथ थे !" लाला ने कहा।

मेरे साथ कोई नहीं था ! ब्रह्मदत्त ने ग्रीनपार्क के फाटक की तरफ़ क़दम बढ़ाते हुए कहा।

सुपरिंटेंडेंट पुलिस ने लाला से कहा, "इस आदमी को गिरफ़्तार कर लो, इसने मुलजिम के भागने में मदद दी है।"

ब्रह्मदत्त मुसकराया, "आप मेरा कुछ भी नहीं कर सकते—और आपका मुलज़िम अब आपको नहीं मिल सकता !"

७

प्रभानाथ के मामले में विश्वम्भरदयाल को अभी तक कोई सफलता नहीं मिली थी ! दो दिन से प्रभानाथ को एक मिनट भी नहीं सोने दिया गया था, लगातार उससे प्रश्न किये जा रहे थे। लेकिन प्रभानाथ यह सब बर्दाश्त कर रहा था !

विश्वम्भरदयाल को आश्चर्य हो रहा था, आश्चर्य ही नहीं, उसे एक तरह की निराशा हो रही थी ! क्या वास्तव में प्रभानाथ इतना वीर है कि वह इन यन्त्रणाओं को बर्दाश्त कर जाय ? अगर प्रभानाथ ने दो दिन और न बतलाया—तब ? तब विश्वम्भरदयाल की असफलता !

दो दिन बीत गए—अगले दो दिन भी बीत सकते हैं ! विश्वम्भरदयाल अजीब उलझन में था ! आखिर किस तरह प्रभानाथ से बात कहलाई जाय ?

और जब विश्वम्भरदयाल अपनी इन उलझनों में पड़ा था, उसी समय उसे वीणा के आने की सूचना मिली। बरामदे में आकर उसने देखा—एक युवती कुरसी पर बैठी विश्वम्भरदयाल की प्रतीक्षा कर रही है। विश्वम्भरदयाल ने पास पड़ी हुई कुरसी पर बैठते हुए कहा, "कहिये, कैसे तकलीफ़ की आपने ?"

"मैं आपसे प्रभानाथ के सम्बन्ध में बात करने आई हूँ !"

चाहिये। मैं इन पुलिस वालों से उलझता हूँ, इस बीच तुम तेज़ी से पार्क की दूसरी तरफ़ निकल कर शहर की तरफ़ रवाना हो जाओ।

साथ वाला आदमी इन दोनों से दस क़दम पीछे था। ब्रह्मदत्त ने रुक कर साथ चलने वाले आदमी से पूछा, "तुम हम लोगों के पीछे-पीछे क्यों चल रहे हो?"

"आपके पीछे मैं कहाँ चल रहा हूँ, मैं तो योंही घूमने चला आया हूँ।"

उमानाथ इस समय बहुत आगे बढ़ गया था। उस आदमी ने जैसे ही आगे बढ़ने की कोशिश की, ब्रह्मदत्त ने उसका हाथ पकड़ लिया, "पहले मुझे यह बतलाओ कि तुम कौन हो और तुम्हारा मंशा क्या है?" उस आदमी ने हाथ छुड़ाने की कोशिश करते हुए कहा, "छोड़ो मेरा हाथ—बेकार उलझ रहे हो!"

लेकिन ब्रह्मदत्त ने कहा, "पहले मेरे सवाल का जवाब दे दो तब तुम्हारा हाथ छोड़ूँगा।"

इस समय तक उमानाथ पेड़ों के एक झुरमुट के नीचे पहुँच गया था और वह पार्क की चहारदीवारी की तरफ़ दौड़ने लगा था। उस आदमी ने जोर से आवाज लगाई थी—"लाला!"

ब्रह्मदत्त ने देखा कि लाला के साथ सुपरिंटेंडेंट पुलिस और एक सब इंस-पेक्टर चले आ रहे हैं। ब्रह्मदत्त के लिए केवल एक उपाय था, उस आदमी का मुँह बन्द कर दिया जाय! ब्रह्मदत्त ने भरपूर एक घूँसा इस आदमी को मारा—और घूँसा खाकर वह आदमी ज़मीन पर गिर पड़ा।

पुलिस वाले दौड़कर ब्रह्मदत्त के पास आ गए। इंस्पेक्टर ने ब्रह्मदत्त से कहा, "तुमने इस आदमी को मारा क्यों?"

"इसने मुझे गाली दी थी।"

सुपरिंटेंडेंट पुलिस ने दूसरा सवाल किया, "उमानाथ कहाँ है?"

"कौन उमानाथ?" ब्रह्मदत्त ने पूछा।

"वही जो तुम्हारे साथ थे !" लाला ने कहा।

मेरे साथ कोई नहीं था ! ब्रह्मदत्त ने ग्रीनपार्क के फाटक की तरफ़ क़दम बढ़ाते हुए कहा।

सुपरिंटेंडेंट पुलिस ने लाला से कहा, "इस आदमी को गिरफ़ार कर ले, इसने मुलजिम के भागने में मदद दी है।"

ब्रह्मदत्त मुसकराया, "आप मेरा कुछ भी नहीं कर सकते—और आपका मुलज़िम अब आपको नहीं मिल सकता !"

७

प्रभानाथ के मामले में विश्वम्भरदयाल को अभी तक कोई सफलता नहीं मिली थी ! दो दिन से प्रभानाथ को एक मिनट भी नहीं सोने दिया गया था, लगातार उससे प्रश्न किये जा रहे थे। लेकिन प्रभानाथ यह सब बर्दाश्त कर रहा था !

विश्वम्भरदयाल को आश्चर्य हो रहा था, आश्चर्य ही नहीं, उसे एक तरह की निराशा हो रही थी ! क्या वास्तव में प्रभानाथ इतना वीर है कि वह इन यन्त्रणाओं को बर्दाश्त कर जाय ? अगर प्रभानाथ ने दो दिन और न बतलाया—तब ? तब विश्वम्भरदयाल की असफलता !

दो दिन बीत गए—अगले दो दिन भी बीत सकते हैं ! विश्वम्भरदयाल अजीब उलझन में था ! आखिर किस तरह प्रभानाथ से बात कहलाई जाय ?

और जब विश्वम्भरदयाल अपनी इन उलझनों में पड़ा था, उसी समय उसे वीणा के आने की सूचना मिली। बरामदे में आकर उसने देखा—एक युवती कुरसी पर बैठी विश्वम्भरदयाल की प्रतीक्षा कर रही है। विश्वम्भर-दयाल ने पास पड़ी हुई कुरसी पर बैठते हुए कहा, "कहिये, कैसे तकलीफ़ की आपने ?"

"मैं आपसे प्रभानाथ के सम्बन्ध में बात करने आई हूँ !"

विश्वम्भरदयाल चौंक उठा। उसने वीणा को ग़ौर से देखा—"क्या यह लड़की......?" और वीणा ने उसे अधिक सोचने का अवसर नहीं दिया, "देखिये—मैं आपसे प्रार्थना करने आई हूँ कि प्रभानाथ को आप बचा दें। मैं उनकी पत्नी हूँ—मेरा सुहाग आप मत लूटें!"

अपने उन्नाव के प्रवास काल में वीणा ने बड़ी साफ़ हिन्दुस्तानी बोलनी सीख ली थी। विश्वम्भरदयाल यह निश्चय न कर पा रहा था कि वह लड़की हिन्दुस्तानी है या बंगाली। वीणा के बात करने के ढंग में एक अहिन्दी भाषी की झलक तो स्पष्ट थी, लेकिन भाषा वह शुद्ध बोल रही थी।

विश्वम्भरदयाल ने कहा, "मैं क्या कर सकता हूँ! मैंने तो उसे एक उपाय बतलाया था, और वह राज़ी भी हो गया था, लेकिन ख़ुद उसके बाप ने उसे बरग़ला दिया।"

वीणा ने करुणभाव से कहा, "मैं जानती हूँ—ददुआ ने उन्हें मना कर दिया था। ददुआ के तीन लड़के हैं—एक चला गया तो दो तो रह जाएँगे—लेकिन मेरे लिए?—मेरा केवल एक ही आधार है!"

"लेकिन मैं मजबूर हूँ!" विश्वम्भरदयाल ने कहा, "केवल एक उपाय है—प्रभानाथ अपने साथियों का नाम बतला दे—और मैं ज़िम्मेदारी लेता हूँ कि वह साफ़ छूट जायगा!"

वीणा ने कहा, "आप मुझे उनसे मिला दें—मैं उन्हें इस बात पर राज़ी कर दूँगी। उन्हें जीवित रहना चाहिये, अपने लिए न सही, पर मेरे लिए तो! मेरी आपसे यही विनय है कि एक बार आप मुझे उनसे मिला दें! मैं उन्हें राज़ी कर लूँगी!"

विश्वम्भरदयाल मन ही मन प्रसन्न हो रहा था। जिस उलझन में वह पड़ गए थे, अनायास ही उस उलझन से निकलने का एक बहुत सुगम साधन उसके हाथ में आ गया था। उसने कहा, "अच्छी बात है, मैं अभी आप को प्रभानाथ से मिलाता हूँ चल कर, लेकिन याद रखियेगा कि अगर आपके घर वालों ने आपको सिर्फ़ इस बात के लिए भेजा है कि आप

प्रभानाथ का पता लगाएँ कि वह कहाँ है तो इसमें उनको असफलता ही होगी क्योंकि आज ही मैं उसका यहाँ से ट्रांसफ़र करके दूसरी जगह भेज दूँगा।"

विश्वम्भरदयाल ने अपनी कार निकलवाई और वीणा को साथ बिठला कर वे कैम्पजेल में पहुँचे। उन्होंने प्रभानाथ को बुलवाया।

प्रभानाथ की सारी शक्तियाँ उस दिन सुबह से ही जवाब देने लगी थीं। अपनी समग्र शक्तियों को वह दो दिनों तक कैम्प जेल की यन्त्रणाओं पर विजय पाने में लगाए रहा था—और अब उसकी शक्तियाँ क्षीण होने लगी थीं! प्रभानाथ के चारों ओर निराशा थी। सुबह से कई बार उसने सोचा था कि वह सब कुछ बतला कर इन यन्त्रणाओं से छुटकारा पाए—लेकिन उसी बची-खुची शक्तियों ने उसे ऐसा करने से प्रत्येक बार रोक दिया। पर प्रभानाथ जानता था कि अधिक समय तक उसकी शक्तियाँ उसका साथ न दे सकेंगी!

जिस समय प्रभानाथ वीणा के सामने आया, उसके पैर काँप रहे थे, उसके चेहरे पर पीलापन था। वीणा को देखते ही वह कह उठा, "तुम वीणा!"

वीणा ने आँख से इशारा किया—और प्रभानाथ समझ गया कि उसे अधिक बात नहीं करनी है। उसे केवल वीणा की बात सुननी है।

वीणा ने प्रभानाथ के पैर छुए—इसके बाद उसने रोनी सी सूरत बना कर कहा, "मैंने सुना है कि तुमने अपने साथियों का नाम बताने से इनकार कर दिया है! दद्दुआ की बात तुमने मान ली, लेकिन तुमने मेरा ज़रा भी ध्यान नहीं दिया। मैं तुम्हारे बिना कैसे जीवित रहूँगी! बोलो! बोलो!" और वीणा के हिचकियाँ बँध गईं।

स्त्री कितना बड़ा अभिनय कर सकती है यह प्रभानाथ ने सोचा तक न था। वीणा कहती जा रही थी, "तुमने मुझे विधवा बनाने के लिए ही मुझसे विवाह किया था क्या? क्या तुम्हारा मेरे प्रति कोई कर्तव्य नहीं है?"

विश्वम्भरदयाल चौंक उठा। उसने वीणा को ग़ौर से देखा—"क्या यह लड़की......?" और वीणा ने उसे अधिक सोचने का अवसर नहीं दिया, "देखिये—मैं आपसे प्रार्थना करने आई हूँ कि प्रभानाथ को आप बचा दें। मैं उनकी पत्नी हूँ—मेरा सुहाग आप मत लूटें!"

अपने उन्नाव के प्रवास काल में वीणा ने बड़ी साफ़ हिन्दुस्तानी बोलनी सीख ली थी। विश्वम्भरदयाल यह निश्चय न कर पा रहा था कि वह लड़की हिन्दुस्तानी है या बंगाली। वीणा के बात करने के ढंग में एक अहिन्दी भाषी की झलक तो स्पष्ट थी, लेकिन भाषा वह शुद्ध बोल रही थी।

विश्वम्भरदयाल ने कहा, "मैं क्या कर सकता हूँ! मैंने तो उसे एक उपाय बतलाया था, और वह राज़ी भी हो गया था, लेकिन ख़ुद उसके बाप ने उसे बरग़ला दिया।"

वीणा ने करुणभाव से कहा, "मैं जानती हूँ—ददुआ ने उन्हें मना कर दिया था। ददुआ के तीन लड़के हैं—एक चला गया तो दो तो रह जाएँगे—लेकिन मेरे लिए?—मेरा केवल एक ही आधार है!"

"लेकिन मैं मजबूर हूँ!" विश्वम्भरदयाल ने कहा, "केवल एक उपाय है—प्रभानाथ अपने साथियों का नाम बतला दे—और मैं ज़िम्मेदारी लेता हूँ कि वह साफ़ छूट जायगा!"

वीणा ने कहा, "आप मुझे उनसे मिला दें—मैं उन्हें इस बात पर राज़ी कर दूँगी। उन्हें जीवित रहना चाहिये, अपने लिए न सही, पर मेरे लिए तो! मेरी आपसे यही विनय है कि एक बार आप मुझे उनसे मिला दें! मैं उन्हें राज़ी कर लूँगी!"

विश्वम्भरदयाल मन ही मन प्रसन्न हो रहा था। जिस उलझन में वह पड़ गए थे, अनायास ही उस उलझन से निकलने का एक बहुत सुगम साधन उसके हाथ में आ गया था। उसने कहा, "अच्छी बात है, मैं अभी आप को प्रभानाथ से मिलाता हूँ चल कर, लेकिन याद रखियेगा कि अगर आपके घर वालों ने आपको सिर्फ़ इस बात के लिए भेजा है कि आप

वीणा उसके साथ कार पर बैठ गई, "आपके बँगले के सामने मेरा ताँगा खड़ा है—वहीं चलिये; वहाँ से मैं चली जाऊँगी !"

विश्वम्भरदयाल के साथ वीणा उनके बँगले पर लौट आई। वहाँ कोई ताँगा नहीं था।

"मालूम होता है मेरा इंतजार करते-करते ताँगा वाला चला गया। आप अपने नौकर से कोई ताँगा मँगवा दीजिये, बड़ी कृपा होगी !"

विश्वम्भरदयाल इस समय काफ़ी उदार हो रहे थे, "आप मेरी कार ले जाइये न !"

"नहीं, आप ताँगा मँगवा दीजिये।"

विश्वम्भरदयाल ने कार के ड्राइवर को ताँगा लाने का आदेश देकर वीणा से कहा, "अच्छी बात है—आप तब तक ड्राइंग रूम में बैठिये।"

विश्वम्भरदयाल यह कह कर अन्दर चला गया—जब वह बाहर आया उस समय वीणा चुपचाप बैठी थी। सामने वाली कुर्सी पर बैठते हुए विश्वम्भरदयाल ने कहा, "मैंने नौकर से चा लाने को कह दिया है, आप चा पीकर जाइयेगा !...अरे..." यह कहते कहते उसका चेहरा पीला पड़ गया—वह भय से काँप उठा।

उसने देखा कि वीणा पिस्तौल ताने उसके सामने खड़ी है ! वीणा ने कहा, "तुम समझते हो कि तुम जीते—शैतान कहीं के—मैं कहती हूँ कि तुम हारे। मैंने प्रभानाथ को पोटेशियम साइनाइड दे दिया है—मैं प्रभानाथ को मार कर खुद मरने के लिए निकाली थी। लेकिन खुद मरने के पहले तुम्हें मारने का मुझे मौक़ा मिल गया"...और यह कहते हुए उसने पिस्तौल का घोड़ा दाब दिया; गोली विश्वम्भरदयाल के मत्थे में घुस गई। वीणा लगातार गोलियाँ चलाती गई—और जब उसकी पिस्तौल में एक गोली बाकी बची, उसने वह गोली अपने मत्थे में मार ली।

प्रभानाथ ने आश्चर्य से वीणा की बात सुनी! उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वीणा यह विवाहवाली बात कहाँ से निकाल लाई! उसने कहा, "तो तुम क्या चाहती हो?"

हिचकियाँ लेते हुए उसने कहा, "तुम्हारी यह कैसी हालत है? इन यन्त्रणाओं से तुम कब तक लड़ सकोगे? बोलो? मैं तुमसे कहने आई हूँ कि तुम अपने साथियों का नाम बतला दो!"

प्रभानाथ आसमान से गिरा। "अपने साथियों का नाम बतला दूँ—असम्भव! जाओ मेरे सामने से—जाओ!"

लेकिन वीणा ने प्रभानाथ का हाथ पकड़ लिया। उसने प्रभानाथ की उँगली अपने हाथ वाली अँगूठी पर लगा ली, "मैं जाने नहीं आई हूँ, मैं इस यन्त्रणा से तुम्हें मुक्त करने आई हूँ!"...और वीणा चुप हो गई। इस बीच में उसने अपनी अँगूठी प्रभानाथ को दे दी थी।

प्रभानाथ उस अँगूठी के स्पर्श से वीणा का मतलब समझ गया। तनिक संयत होकर उसने कहा, "मुझे समय दो!"

"नहीं—समय की बात नहीं—तुम्हें अपने साथियों का नाम बतलाना ही होगा, अपने लिए नहीं, मेरे लिए!"

"अच्छी बात है—लेकिन तुम मेरे सामने से जाओ—जाओ!" और प्रभानाथ विश्वम्भरदयाल की ओर घूमा, "मुझे यह न मालूम था कि आप मेरे खिलाफ़ इस अस्त्र का प्रयोग कीजियेगा—मैं हारा!" और प्रभानाथ वहाँ से घूम कर चल दिया।

विश्वम्भरदयाल को ताज्जुब हो रहा था कि कितनी आसानी से उसका काम हो गया। अपनी विजय की प्रसन्नता के भावों में उसने अपने को इतना अधिक खो दिया था कि न वह वीणा के मुख के भावों का अध्ययन कर सका और न प्रभानाथ के मुख के भावों का। उसने मुसकराते हुए वीणा से कहा, "चलिये! जहाँ कहिये मैं आपको पहुँचा दूँ।"

वीणा उसके साथ कार पर बैठ गई, "आपके बँगले के सामने मेरा ताँगा खड़ा है—वहीं चलिये; वहाँ से मैं चली जाऊँगी !"

विश्वम्भरदयाल के साथ वीणा उनके बँगले पर लौट आई। वहाँ कोई ताँगा नहीं था।

"मालूम होता है मेरा इंतजार करते-करते ताँगा वाला चला गया। आप अपने नौकर से कोई ताँगा मँगवा दीजिये, बड़ी कृपा होगी !"

विश्वम्भरदयाल इस समय काफ़ी उदार हो रहे थे, "आप मेरी कार ले जाइये न !"

"नहीं, आप ताँगा मँगवा दीजिये।"

विश्वम्भरदयाल ने कार के ड्राइवर को ताँगा लाने का आदेश देकर वीणा से कहा, "अच्छी बात है—आप तब तक ड्राइंग रूम में बैठिये।"

विश्वम्भरदयाल यह कह कर अन्दर चला गया—जब वह बाहर आया उस समय वीणा चुपचाप बैठी थी। सामने वाली कुर्सी पर बैठते हुए विश्वम्भरदवाल ने कहा, "मैंने नौकर से चा लाने को कह दिया है, आप चा पीकर जाइयेगा !...अरे..." यह कहते कहते उसका चेहरा पीला पड़ गया—वह भय से काँप उठा।

उसने देखा कि वीणा पिस्तौल ताने उसके सामने खड़ी है ! वीणा ने कहा, "तुम समझते हो कि तुम जीते—शैतान कहीं के—मैं कहती हूँ कि तुम हारे। मैंने प्रभानाथ को पोटेशियम साइनाइड दे दिया है—मैं प्रभानाथ को मार कर खुद मरने के लिए निकाली थी। लेकिन खुद मरने के पहले तुम्हें मारने का मुझे मौक़ा मिल गया"...और यह कहते हुए उसने पिस्तौल का घोड़ा दाब दिया, गोली विश्वम्भरदयाल के मत्थे में घुस गई। वीणा लगातार गोलियाँ चलाती गई—और जब उसकी पिस्तौल में एक गोली बाकी बची, उसने वह गोली अपने मत्थे में मार ली।

८

पण्डित श्यामनाथ तिवारी ने देखा—प्रभानाथ का शरीर काला पड़ गया था। पर प्रभानाथ के चेहरे पर एक प्रकार की शान्ति थी, एक प्रकार का संतोष था। श्यामनाथ तिवारी की समझ में नहीं आ रहा था कि यह क्या हो गया।

विश्वम्भरदयाल ने यहाँ तक कर डाला—उनका लड़का उनके सामने मरा पड़ा था। उस समय एकाएक श्यामनाथ की मुद्रा में एक अजीब तरह का परिवर्तन हो गया।

वीणा के जाते ही प्रभानाथ ने अँगूठी में दिया हुआ ज़हर खाकर आत्म-हत्या कर ली थी। कैम्प जेल में एक तरह की सनसनी फैल गई। उसी समय पण्डित श्यामनाथ तिवारी को इस घटना की सूचना भेज दी गई थी।

श्यामनाथ ने जेलर से कहा, "अब क्या होगा?"

"लाश पोस्टमार्टम के लिए भेजी जायगी। शाम तक आपको इत्तिला मिल जायगी!"

"बहुत अच्छा!" शान्त भाव से श्यामनाथ ने कहा, लेकिन उसी समय वे ज़ोर से हँस पड़े, "मरने के बाद भी उसके शरीर को शान्ति नहीं, मरने के बाद भी उसके शरीर की चीर-फाड़ होगी। खूब मज़ाक़ करते हैं आप लोग!

जेलर को पण्डित श्यामनाथ के इस व्यवहार से आश्चर्य हुआ। श्याम-नाथ हँस रहे थे, "भेजिये जेलर साहेब इस लाश को चीर-फाड़ के लिए—इसमें रक्खा ही क्या है? जब ज़िन्दा आदमी को आप लोगों ने उसके बाप से छीन लिया था तब इस मुर्दा शरीर को उस बाप के हवाले करके आप उस अभागे बाप की हँसी उड़ाते हैं। लेकिन मैं ऐसा नहीं हूँ कि आप लोग मेरी हँसी उड़ा सकें।" और यह कहकर श्यामनाथ वहाँ से चल दिये।

अपनी कार पर बैठते हुए श्यामनाथ ने ड्राइवर से कहा, "विश्वम्भर-दयाल के मकान पर चलो!"

श्यामनाथ ने बग़ल में रक्खे हुए एटेचीकेस से अपना सर्विस रिवाल्वर निकाला—आज श्यामनाथ बदला लेने पर तुल गए थे। विश्वम्भरदयाल के बँगले में पहुँचकर उन्होंने देखा कि वहाँ पुलिस वालों की भीड़ लगी हुई है। श्यामनाथ मन ही मन हँस पड़े, "इतने पुलिस वाले अपनी हिफ़ाज़त के लिए इसने रख छोड़े हैं—लेकिन नहीं बचेगा—आज वह नहीं बचेगा!"

श्यामनाथ के कमरे में प्रवेश करते ही पुलिस वालों ने उन्हें रास्ता दे दिया। और श्यामनाथ ने देखा कि विश्वम्भरदयाल मरा पड़ा है।

"यह क्या?" श्यामनाथ ने कहा।

पास खड़े हुए एक सब इंसपेक्टर ने कहा, "इस औरत ने इनकी हत्या करके अपनी हत्या कर ली!" और उसने एक तरफ़ पड़ी हुई वीणा की लाश की तरफ़ इशारा किया।

"अरे—यह तो वीणा है!" श्यामनाथ कह उठे। और वे वीणा के पास जाकर खड़े हो गये।"

"क्या आप इसे पहचानते हैं?" पुलिस इंसपेक्टर ने पूछा।

"पहचानता हूँ? मुझसे पूछते हो इसे पहचानता हूँ!" और श्यामनाथ का स्वर प्रखर होता गया, "यह लड़की मुझसे बाज़ी मार ले गई!" यह कहते हुए श्यामनाथ ने अपना रिवाल्वर निकाल कर विश्वम्भरदयाल की लाश के सामने तान लिया, "मैं आज इस आदमी को मारने आया था—लेकिन इस लड़की ने मेरा अधिकार छीन लिया; चुड़ैल कहीं की!" श्यामनाथ दाँत पीसने लगे, "मेरा अधिकार छीन ले गई यह चुड़ैल! लेकिन—अभी मुझे कुछ और करना है—कुछ और करना है!" यह कहते-कहते उन्होंने अपना रिवाल्वर फेंक दिया और बढ़ कर विश्वम्भरदयाल के शव को एक ठोकर मारी।

पुलिसवालों ने उन्हें पकड़ लिया। श्यामनाथ चिल्ला पड़े, नरक का कीड़ा—मेरे खान्दान को मिटा कर गया—गया!"

८

पण्डित श्यामनाथ तिवारी ने देखा—प्रभानाथ का शरीर काला पड़ गया था। पर प्रभानाथ के चेहरे पर एक प्रकार की शान्ति थी, एक प्रकार का संतोष था। श्यामनाथ तिवारी की समझ में नहीं आ रहा था कि यह क्या हो गया।

विश्वम्भरदयाल ने यहाँ तक कर डाला—उनका लड़का उनके सामने मरा पड़ा था। उस समय एकाएक श्यामनाथ की मुद्रा में एक अजीब तरह का परिवर्तन हो गया।

वीणा के जाते ही प्रभानाथ ने अँगूठी में दिया हुआ ज़हर खाकर आत्म-हत्या कर ली थी। कैम्प जेल में एक तरह की सनसनी फैल गई। उसी समय पण्डित श्यामनाथ तिवारी को इस घटना की सूचना भेज दी गई थी।

श्यामनाथ ने जेलर से कहा, "अब क्या होगा?"

"लाश पोस्टमार्टम के लिए भेजी जायगी। शाम तक आपको इत्तिला मिल जायगी!"

"बहुत अच्छा!" शान्त भाव से श्यामनाथ ने कहा, लेकिन उसी समय वे ज़ोर से हँस पड़े, "मरने के बाद भी उसके शरीर को शान्ति नहीं, मरने के बाद भी उसके शरीर की चीर-फाड़ होगी। खूब मज़ाक़ करते हैं आप लोग!

जेलर को पण्डित श्यामनाथ के इस व्यवहार से आश्चर्य हुआ। श्याम-नाथ हँस रहे थे, "भेजिये जेलर साहेब इस लाश को चीर-फाड़ के लिए—इसमें रक्खा ही क्या है? जब ज़िन्दा आदमी को आप लोगों ने उसके बाप से छीन लिया था तब इस मुर्दा शरीर को उस बाप के हवाले करके आप उन अभागे बाप की हँसी उड़ाते हैं। लेकिन मैं ऐसा नहीं हूँ कि आप लोग मेरी हँसी उड़ा सकें।" और यह कहकर श्यामनाथ वहाँ से चल दिये।

अपनी कार पर बैठते हुए श्यामनाथ ने ड्राइवर से कहा, "विश्वम्भर-दयाल के मकान पर चलो!"

श्यामनाथ ने बग़ल में रक्खे हुए एटेचीकेस से अपना सर्विस रिवाल्वर निकाला—आज श्यामनाथ बदला लेने पर तुल गए थे। विश्वम्भरदयाल के बँगले में पहुँचकर उन्होंने देखा कि वहाँ पुलिस वालों की भीड़ लगी हुई है। श्यामनाथ मन ही मन हँस पड़े, "इतने पुलिस वाले अपनी हिफ़ाज़त के लिए इसने रख छोड़े हैं—लेकिन नहीं बचेगा—आज वह नहीं बचेगा!"

श्यामनाथ के कमरे में प्रवेश करते ही पुलिस वालों ने उन्हें रास्ता दे दिया। और श्यामनाथ ने देखा कि विश्वम्भरदयाल मरा पड़ा है।

"यह क्या ?" श्यामनाथ ने कहा।

पास खड़े हुए एक सब इंसपेक्टर ने कहा, "इस औरत ने इनकी हत्या करके अपनी हत्या कर ली!" और उसने एक तरफ़ पड़ी हुई वीणा की लाश की तरफ़ इशारा किया।

"अरे—यह तो वीणा है!" श्यामनाथ कह उठे। और वे वीणा के पास जाकर खड़े हो गये।"

"क्या आप इसे पहचानते हैं ?" पुलिस इंसपेक्टर ने पूछा।

"पहचानता हूँ ? मुझसे पूछते हो इसे पहचानता हूँ ?" और श्यामनाथ का स्वर प्रखर होता गया, "यह लड़की मुझसे बाज़ी मार ले गई!" यह कहते हुए श्यामनाथ ने अपना रिवाल्वर निकाल कर विश्वम्भरदयाल की लाश के सामने तान लिया, "मैं आज इस आदमी को मारने आया था—लेकिन इस लड़की ने मेरा अधिकार छीन लिया; चुड़ैल कहीं की!" श्यामनाथ दाँत पीसने लगे, "मेरा अधिकार छीन ले गई यह चुड़ैल! लेकिन—अभी मुझे कुछ और करना है—कुछ और करना है!" यह कहते-कहते उन्होंने अपना रिवाल्वर फेंक दिया और बढ़ कर विश्वम्भरदयाल के शव को एक ठोकर मारी।

पुलिसवालों ने उन्हें पकड़ लिया। श्यामनाथ चिल्ला पड़े, नरक का कीड़ा—मेरे खान्दान को मिटा कर गया—गया!"

८

पण्डित श्यामनाथ तिवारी ने देखा—प्रभानाथ का शरीर काला पड़ गया था। पर प्रभानाथ के चेहरे पर एक प्रकार की शान्ति थी, एक प्रकार का संतोष था। श्यामनाथ तिवारी की समझ में नहीं आ रहा था कि यह क्या हो गया।

विश्वम्भरदयाल ने यहाँ तक कर डाला—उनका लड़का उनके सामने मरा पड़ा था। उस समय एकाएक श्यामनाथ की मुद्रा में एक अजीब तरह का परिवर्तन हो गया।

वीणा के जाते ही प्रभानाथ ने अँगूठी में दिया हुआ ज़हर खाकर आत्म-हत्या कर ली थी। कैम्प जेल में एक तरह की सनसनी फैल गई। उसी समय पण्डित श्यामनाथ तिवारी को इस घटना की सूचना भेज दी गई थी।

श्यामनाथ ने जेलर से कहा, "अब क्या होगा?"

"लाश पोस्टमार्टम के लिए भेजी जायगी। शाम तक आपको इत्तिला मिल जायगी!"

"बहुत अच्छा!" शान्त भाव से श्यामनाथ ने कहा, लेकिन उसी समय वे जोर से हँस पड़े, "मरने के बाद भी उसके शरीर को शान्ति नहीं, मरने के बाद भी उसके शरीर की चीर-फाड़ होगी। खूब मज़ाक़ करते हैं आप लोग!

जेलर को पण्डित श्यामनाथ के इस व्यवहार से आश्चर्य हुआ। श्यामनाथ हँस रहे थे, "भेजिये जेलर साहेब इस लाश को चीर-फाड़ के लिए—इसमें रक्खा ही क्या है! जब ज़िन्दा आदमी को आप लोगों ने उसके बाप से छीन लिया था तब इस मुर्दा शरीर को उस बाप के हवाले करके आप इस अभागे बाप की हँसी उड़ाते हैं। लेकिन मैं ऐसा नहीं हूँ कि आप लोग मेरी हँसी उड़ा सकें।" और यह कहकर श्यामनाथ वहाँ से चल दिये।

अपनी कार पर बैठते हुए श्यामनाथ ने ड्राइवर से कहा, "विश्वम्भर-दयाल के मकान पर चलो!"

श्यामनाथ ने बग़ल में रक्खे हुए एटेचीकेस से अपना सर्विस रिवाल्वर निकाला—आज श्यामनाथ बदला लेने पर तुल गए थे। विश्वम्भरदयाल के बँगले में पहुँचकर उन्होंने देखा कि वहाँ पुलिस वालों की भीड़ लगी हुई है। श्यामनाथ मन ही मन हँस पड़े, "इतने पुलिस वाले अपनी हिफ़ाज़त के लिए इसने रख छोड़े हैं—लेकिन नहीं बचेगा—आज वह नहीं बचेगा!"

श्यामनाथ के कमरे में प्रवेश करते ही पुलिस वालों ने उन्हें रास्ता दे दिया। और श्यामनाथ ने देखा कि विश्वम्भरदयाल मरा पड़ा है।

"यह क्या?" श्यामनाथ ने कहा।

पास खड़े हुए एक सब इंसपेक्टर ने कहा, "इस औरत ने इनकी हत्या करके अपनी हत्या कर ली!" और उसने एक तरफ़ पड़ी हुई वीणा की लाश की तरफ़ इशारा किया।

"अरे—यह तो वीणा है!" श्यामनाथ कह उठे। और वे वीणा के पास जाकर खड़े हो गये।"

"क्या आप इसे पहचानते हैं?" पुलिस इंसपेक्टर ने पूछा।

"पहचानता हूँ? मुझसे पूछते हो इसे पहचानता हूँ?" और श्यामनाथ का स्वर प्रखर होता गया, "यह लड़की मुझसे बाज़ी मार ले गई!" यह कहते हुए श्यामनाथ ने अपना रिवाल्वर निकाल कर विश्वम्भरदयाल की लाश के सामने तान लिया, "मैं आज इस आदमी को मारने आया था—लेकिन इस लड़की ने मेरा अधिकार छीन लिया; चुड़ैल कहीं की!" श्यामनाथ दाँत पीसने लगे, "मेरा अधिकार छीन ले गई यह चुड़ैल! लेकिन—अभी मुझे कुछ और करना है—कुछ और करना है!" यह कहते-कहते उन्होंने अपना रिवाल्वर फेंक दिया और बढ़ कर विश्वम्भरदयाल के शव को एक ठोकर मारी।

पुलिसवालों ने उन्हें पकड़ लिया। श्यामनाथ चिल्ला पड़े, नरक का कीड़ा—मेरे खान्दान को मिटा कर गया—गया!"

श्यामनाथ अनायास ही रुक गए—"तुम्हीं मेरे साथ मज़ाक़ नहीं कर सकते—मैं भी तुम लोगों के साथ मज़ाक़ कर सकता हूँ! सुना विश्वम्भरदयाल—एक छोटी-सी लड़की—तुम्हारे साथ मज़ाक़ कर गई!" और श्यामनाथ ज़ोर से हँस पड़े।

६

प्रभानाथ और वीणा की दाहक्रिया समाप्त करके पण्डित रामनाथ तिवारी उन्नाव लौट गए। आज पहली बार उन्होंने अपने जीवन में पराजय की धुँधली छाया देखी थी। स्मशान में पण्डित रामनाथ तिवारी अपनेपन पर अधिकार रक्खे रहे, अविचलित भाव से अपने ही पुत्र का दाह संस्कार उन्होंने किया। पर लौटकर उन्होंने ऐसा अनुभव किया कि उनकी शक्तियाँ उन्हें जवाब देने लगी हैं।

वे उस बड़े बँगले में अकेले बैठे थे, स्तब्ध, मौन! वह पराजय की धुँधली छाया जिसे उन्होंने प्रभानाथ की चिता में आग लगाते हुए देखा था अब धीरे-धीरे गहरी होती जा रही थी। जीवन के प्रति एक प्रकार की भयानक उदासीनता को वे अनुभव कर रहे थे—इतनी थकावट उनके प्राणों में भर गई थी कि वे चिर-विश्राम की कामना करने लगे थे।

उनके मन में न मोह था, न विषाद था। उनकी आत्मा में अशान्ति नहीं थी, विद्रोह नहीं था। एक निष्क्रिय अचेतनता का अन्धकार उनकी आँखों के आगे घिर रहा था। उस अन्धकार के प्रति उनकी क्षीण चेतना आत्मसमर्पण कर रही थी—!

आपकी अध्यापिका—वह मुझसे बाज़ी मार ले गई !" और श्यामनाथ
सने लगे !

"श्यामू !" रामनाथ ने कठोर स्वर में कहा।

रामनाथ के इस कठोर स्वर से श्यामनाथ चौंक उठे। गम्भीर होकर
उन्होंने कहा, "भइया—प्रभा को बचाना है ! मैं उसे न बचा सकूँगा—आप
ही उसे बचाइये !" और श्यामनाथ एक खाली कुरसी पर बैठ कर रोने लगे !

रामनाथ ज़ोर लगा के उठे—श्यामनाथ के सर पर हाथ रख कर
उन्होंने कहा, "श्यामू ! अपने ऊपर अधिकार रक्खो—चलो, थोड़ी देर के
लिए सो जाओ !"

"नहीं भइया—आप जानते नहीं, वे उसे ज़हर खिला देंगे—बड़े शैतान
हैं वह लोग ! मेरे घर से ही मेरे लड़के को पकड़ ले गए—भोला-भाला,
सीधा-सादा ! भइया—क्या कभी प्रभा क्रान्तिकारी हो सकता है ? क्या प्रभा
कभी हत्या कर सकता है ? फिर क्यों उन लोगों ने उसे ज़हर खिला दिया !
उसे बचाइये भइया—उसे बचाइये !"

रामनाथ ने कड़े स्वर में कहा, "श्यामू होश की बात करो !"

श्यामनाथ चौंक कर उठ खड़े हुए, "आप खड़े हैं और मैं बैठा हूँ—
ऐसी ग़लती तो मुझसे पहले कभी नहीं हुई ! मुझे क्षमा कीजिये—आपके पैर
पड़ता हूँ भइया, मुझे क्षमा कीजिये !"

रामनाथ ने श्यामनाथ का हाथ पकड़ कर अन्दर ले चलते हुए कहा,
"लेटो चल कर श्यामू ! जब तक मैं न कहूँ तब तक मत उठना !
सो जाओ !"

श्यामनाथ को पलंग पर लिटा कर रामनाथ लौट आए ! अन्धकार
उनकी आँखों के आगे से हट गया था, चेतना उनकी लौट आई थी। उन्हें
यह अनुभव होने लगा था कि उनके सामने उनका उत्तरदायित्व था !
परिस्थितियों का मुक़ाबिला न कर सकने वाले कमज़ोर और बेबस उनके भाई

को उनकी सहायता की आवश्यकता है। अब भी—इतना सब हो जाने के बाद भी रामनाथ को साहस की ज़रूरत मालूम हुई। उन्हें ऐसा लगा कि उन्हें वज्र की तरह कठोर होना पड़ेगा। पराजय—पराजय की भावना अपने अन्दर है; मनुष्य जब तक अपने अन्दर से पराजित न हो, पराजित नहीं। बाहर वाली परिस्थितियों से लड़कर हारना या जीतना मनुष्य के वश की बात नहीं; असीम शक्तियाँ उसके ख़िलाफ़ केन्द्रित हो सकती हैं। लेकिन अपने अन्दर से हारना या जीतना—यह मनुष्य स्वयम् कर सकता है।

भीतर घर में उन्हें स्त्रियों और बच्चों की आवाज़ सुनाई पड़ रही थी। कानपुर से महालक्ष्मी और राजेश्वरी श्यामनाथ के साथ आ गई थीं। अकेले श्यामनाथ ही नहीं, ये स्त्रियाँ, ये बच्चे, ये सब के सब रामनाथ पर अवलंबित थे, आश्रित थे। उनका स्वामीत्व धीरे-धीरे जाग रहा था। इस निष्क्रिय कमज़ोरी से काम न चलेगा, यह तो जीवित मृत्यु है! उन्हें अन्तिम समय तक लड़ना है, काम करना है।

लड़ना—किससे? काम करना—कौन सा काम!

न वे अपने विपक्षी को देख सकते थे, और न वे अपना कर्तव्य निश्चित कर पा रहे थे। उनके मन में आ रहा था कि एक बार वे अपने विपक्षी को देख पाते! इन परिस्थितियों के चक्र को चलाने वाले के सामने होकर उसकी इच्छा वे जान पाते—उसके कार्यक्रम को वे समझ पाते! उनपर एक के बाद एक वार हो रहे थे—और ये वार एक अदृश्य स्थान से हो रहे थे, एक अदृश्य शक्ति द्वारा! और ऐसी हालत में उन्हें लड़ना था, साहस के साथ उस अदृश्य का मुक़ाबिला करना था।

रामनाथ तिवारी कितनी देर तक इस अर्धचेतन अवस्था में बैठे रहे—इसका उन्हें ज्ञान न था ! उन्हें ऐसा लगा कि किसी ने उनके चरण छुए और एकाएक वे चौंक उठे। आँखें खोलकर उन्होंने देखा—सामने उमानाथ खड़ा था !

"तुम उमा !" रामनाथ ने कहा।

"हाँ ददुआ ! मुझे दुःख है कि मैं स्मशान में नहीं पहुँच सका, मेरे खिलाफ़ पुलिस का वारंट है !"

"मझली बहू से मालूम हुआ कि तुम फ़रार हो ! बैठो ! कैसे आए ?"

उमानाथ रामनाथ के इस भावनाहीन और ठंढे स्वर से घबरा गया, "मैंने सुना ददुआ—प्रभा का यह अन्त होगा, इसकी मैंने कल्पना भी न की थी !"

"प्रभा की बात छोड़ो—वह विगत का सपना बन चुका है ! अपनी बात कहो ! तुम्हारे खिलाफ़ भयानक अभियोग है ! सुना है कि तुम अकेले ब्रिटिश सरकार को ही नहीं, बल्कि हम सब पूँजीपतियों को मिटाने पर तुले हुए हो !"

उमानाथ ने रामनाथ की बात का कोई उत्तर नहीं दिया।

रामनाथ थोड़ी देर तक उमानाथ को देखते रहे, "मिटाना—मिटाना ! यही तुम लोग सीख सके हो—तुम्हारी सारी शिक्षा और सारी संस्कृति तुम्हें केवल इतना सिखा सकी है कि मिटाओ ! लेकिन मिटा वही सकता है जो सबल है !" और रामनाथ हँस पड़े।

उमानाथ अपने पिता से तर्क करने नहीं आया था, उसके पास तर्क करने का समय भी नहीं था।

रामनाथ ने फिर कहा, "बोलो—अब क्या इरादे हैं ? सुना है कि अगर तुम पकड़ गए तो तुम्हें कालेपानी की सज़ा हो सकती है !"

"जी हाँ !" उमानाथ ने कहा, "इसीलिए मैं आपके पास आया हूँ !

"तो मैं सब कुछ ठीक करा दूँगा ! कल मैं तुम्हें साथ लेकर गवर्नर से मिलूँगा—तुम्हारे खिलाफ़ वारंट हट जायगा ! अपनी ज़मीन—जायदा सम्हालो उमा ! शान्तिपूर्वक रहो !"

"आप मेरा मतलब नहीं समझे ! मैं सरकार से माफ़ी माँगने नहीं आय हूँ; मैं हिन्दुस्तान से बाहर जाना चाहता हूँ !"

उमानाथ ने जो कुछ कहा रामनाथ थोड़ी देर तक उसे समझने क कोशिश करते रहे, "समझा ! ब्रिटिश सरकार के हाथ से निकलना चाहते हो—देश के बाहर रह कर तुम ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध युद्ध छेड़ना चाहते हो ! तुम अन्तर्राष्ट्रीय लुटेरों के गिरोह में शामिल होकर दुनिया में एव भयानक उथल-पुथल मचाना चाहते हो ! लेकिन इसके लिए मेरे पास आने की क्या ज़रूरत थी ?"

उमानाथ के अन्दर एक प्रकार की निराशा-सी आ गई थी। उसने दब ज़बान से कहा, "हिन्दुस्तान से बाहर जाने के लिए मुझे रुपयों की ज़रूरत है—अधिक नहीं, दस हज़ार रुपयों से काम चल जायगा !"

रामनाथ मुसकराए, "हम पूँजीपतियों को मिटाने के लिए तुम हमार ही रुपया चाहते हो ? कितनी मज़ेदार बात है और तुम समझते हो मैं स्वयम विनिष्ट होने के लिए तुम्हें शक्ति प्रदान करूँगा—तुम्हें रुपया दूँगा !" रामनाथ कहते-कहते उठ खड़े हुए, "उमा जाओ यहाँ से ! तुम समाज के सब से भयानक शत्रु हो—जाओ मेरे सामने से—जाओ !" रामनाथ का स्वर बहुत अधिक प्रखर हो गया था !

उमानाथ चल पड़ा, मर्माहत-सा ! वह कमरे के बाहर निकला और वह उसने देखा कि महालक्ष्मी खड़ी है ! महालक्ष्मी ने भर्राए हुए स्वर में कहा मेरे साथ आइये !"

उमानाथ चुपचाप महालक्ष्मी के साथ भीतर अपने कमरे में चला गया उमानाथ को बिठला कर उसने अपनी आलमारी खोली। आलमारी से उसने अपने गहनों का बक्स निकाला—और वह बक्स उसने उमानाथ के सामने

रख दिया। उसने कहा, "मैंने आपकी और ददुआ की बात सुनी! मेरे पास कुल दो हज़ार रुपये हैं—बाकी मेरा गहना है! यह सब आप ले जाइये। जल्दी से जल्दी कुशलपूर्वक आप हिन्दुस्तान के बाहर चले जाइये—सिर्फ़ एक विनय है—निरापद स्थान में पहुँच कर किसी तरह अपने कुशल का संदेसा भेज दीजियेगा!" और उमानाथ ने देखा कि महालक्ष्मी उसके चरणों को पकड़े हुए रो रही है।

एकाएक उमानाथ ने उठ कर महालक्ष्मी को अपने आलिंगन-पाश में कस लिया, "महालक्ष्मी—तुम स्त्री नहीं हो, देवी हो! लेकिन...तुम्हारा गहना..."

महालक्ष्मी ने उमानाथ का मुँह बन्द करते हुए कहा, "स्त्री का सब से बड़ा गहना है उसका सुहाग! मेरा सुहाग अचल रहे—मुझे यह गहना नहीं चाहिये! आप इसे लेकर जल्दी से जल्दी चले जाइये!"

उमानाथ का लड़का अवधेश बाहर राजेश और ब्रजेश के साथ था। महालक्ष्मी अवधेश को उठाकर ले आई और उसने उसे उमानाथ की गोद में दे दिया, "अपने लड़के को आप अपना आशीर्वाद दे जाइये!"

उमानाथ ने अवधेश को प्यार किया—इसके बाद उसने अपनी पत्नी का आलिंगन किया। उसने कहा, "महालक्ष्मी—मैं जल्दी लौटूँगा—तुम मेरी प्रतीक्षा करना!" और गहने का बक्स लेकर सर झुकाए हुए वह वहाँ से चला गया।

१०

उमानाथ के जाने के बाद रामनाथ ड्राइंग रूम में बैठ गए! एक अजीब तरह की कठोरता वे अपने अन्दर अनुभव कर रहे थे। कितनी आसानी के साथ उन्होंने उमानाथ को उस रात के अंधकार में निरवलम्ब और विवशता की अवस्था में निकाल बाहर किया! रामनाथ के अन्दर से किसी ने कहा, "तुम मनुष्य नहीं, दानव हो!"

लेकिन रामनाथ की अहम्मन्यता पूरी शक्ति के साथ उभर आई
हरेक पराजय के बाद उनकी अहम्मन्यता और भी अधिक भयानक कटु
कर फिर से लड़ने को तैयार हो जाती थी! "अन्त तक लड़ना है—
झुके हुए!" रामनाथ ने मन ही मन कहा, "पराजय—नहीं, मुझे
पराजित नहीं कर सकता!"

उस समय रात के दस बजे। उसे सुनाई पड़ा, "ददुआ!"

रामनाथ ने चौंककर पीछे देखा, "मझली बहू! क्या है?"

"कुछ खा लीजिये—कल से आपने कुछ खाया नहीं है!"

प्रभानाथ की मृत्यु की खबर पाने के बाद से अभी तक रामनाथ के
में अन्न का एक दाना न गया था। उन्हें भूख भी नहीं मालूम हो र
उन्होंने कहा, "इस वक्त भूख नहीं है बहू! जाओ, तुम सब लोग खा ल
मैं इस समय न खाऊँगा!"

"कुछ थोड़ा-सा तो खा लीजिये—इस तरह कैसे काम चलेगा!"

"कह दिया है जाओ—इस वक्त भूख नहीं है।" रामनाथ ने कड़े
में उत्तर दिया!

महालक्ष्मी चली गई। महालक्ष्मी के चले जाने के बाद रामना
ऐसा लगा मानो उनमें कुछ आवश्यकता से अधिक कटुता आ गई है
उठे और बरामदे में निकल आए। चारों ओर गहरा अन्धकार छाया थ

थोड़ी देर तक वे उस अन्धकार में खड़े रहे। वे कमरे में चलने को
ही रहे थे कि उन्होंने बँगले में एक कार आती हुई देखी! उन्होंने म
मन कहा, "इतनी रात में कौन हो सकता है?"

वे कमरे में बैठ कर आने वाले की प्रतीक्षा करने लगे। और उ
देखा कि आने वाला उनका बड़ा लड़का दयानाथ है!

दयानाथ को देखते ही रामनाथ की भृकुटियों पर बल पड़ गए। उ
दयानाथ को देखते ही कहा, "तुम!"

दयानाथ रामनाथ का चरण छूता-छूता रुक गया "जी हाँ !"

रामनाथ की भृकुटियों के बल नहीं गए, उन्होंने कुछ चुप रह कर कहा, "तुम्हें यहाँ, अपने घर में देख कर ताज्जुब हुआ ! शायद कुल पर जो गहरा धक्का लगा है उसके दुःख में तुम अपने शब्दों को भूल गए !"

दयानाथ ने उत्तर दिया, "जी नहीं ! मैं भूला कुछ नहीं, केवल मैंने अपनी ग़लती अनुभव कर ली है !"

"कैसी ग़लती ?" रामनाथ ने पूछा ।

"कि मैंने काँग्रेस में सम्मिलित होकर ग़लती की ! मैं कांग्रेस छोड़ रहा हूँ !"

रामनाथ ने कड़े स्वर में कहा, "दया ! तुम कांग्रेस को छोड़ कर और भी बड़ी ग़लती कर रहे हो ! मुझे सब कुछ मालूम है ! तुम चुनाव में हारे—और चुनाव में हार कर तुममें निराशा पैदा हो गई । तुम कायर की तरह कहाँ से भाग रहे हो । तुम बाहर से पराजित नहीं हुए—आज चुनाव में हारे हो, कल चुनाव में जीत भी सकते हो, वह सब तो परिस्थितियों पर निर्भर था—तुम पराजित हुए हो अपने ही अन्दर से ! मुझे इस बात का दुःख है ।"

दयानाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया । उसके पिता ने जो बात कही थी उसमें सत्य है, उसने अनुभव किया । वह मन ही मन सोच रहा था—क्या उसने उन्नाव लौट कर ग़लती की !

रामनाथ ने कुछ रुक कर फिर कहा, "तुमने मेरे यहाँ लौट कर ग़लती की । जीवन का क्रम आगे बढ़ना है—पीछे लौटना असम्भव है ! मेरे यहाँ तुम्हें स्थान नहीं है दया—तुम समझदार हो, मेरी बात समझ ही गए होगे !"

दयानाथ लज्जा से गड़ा जा रहा था । उसने कहा, "आप ठीक कहते हैं, मैंने अपने प्रति बहुत बड़ा अपराध किया है—आप ने मेरी कमज़ोरी बतला कर मेरा बहुत बड़ा उपकार किया ।" और यह कह कर उसने अपने पिता के चरण छूए !

रामनाथ बैठे रहे। दयानाथ ने फिर कहा, "मेरी पत्नी और बच्चे-आ गये हैं। उनको लेकर मैं अभी जा रहा हूँ!"

"अपनी पत्नी और बच्चों को यहाँ छोड़ सकते हो—केवल तुम त्या हो, तुम्हारी पत्नी और बच्चे नहीं हैं!" रामनाथ ने कहा।

दयानाथ मुसकराया, "पीछे लौटना असम्भव है ददुआ—आपने अभी बतलाया है! आप ने सारे कुल को मना कर दिया कि तुमसे व सम्पर्क न रक्खा जाय—क्योंकि सारे कुलपर आप का अधिकार था; इस कु का स्वामी होने के कारण! और मैं समझता हूँ कि अपनी पत्नी और बच पर मेरा अधिकार है! अगर मैं आप के लिए त्याज्य हूँ तो आप मेरे लि भी त्याज्य हैं!" और दयानाथ तेज़ी के साथ कमरे के बाहर चला गया।

एक बार रामनाथ के मन में आया कि वे दयानाथ को रोकें—पर उन अहम्मन्यता ने उन पर विजय पाई। राजेश्वरी और उसके बच्चे बि रामनाथ से मिले दयानाथ के साथ चले गए। रामनाथ ने जाती हुई कार शब्द सुना—उन्होंने राजेश्वरी और उसके बच्चों की आवाज़ें भी सुनीं! वह अपने आसन से नहीं हिले। वह समझते थे कि राजेश्वरी और राजे ब्रजेश उनसे मिलने, उनसे विदा लेने आवेंगे!

और दयानाथ के जाने के साथ रामनाथ की चेतना एकाएक ज उठी।

दयानाथ ने रामनाथ के कुल की बात चलाई थी—और आज रामन का कुल उजड़ गया था! उनके तीनों लड़के उनसे बिछुड़ गए थे—शा हमेशा के लिए! सारा कुल नष्ट हो गया, रामनाथ नितान्त अकेले रह गए

और उनके अन्दर से किसी ने कहा, "यह सब तुमने किया—तुम्ह अहम्मन्यता ने! तुम कुलघातक हो!"

रामनाथ बल लगा कर खड़े हो गये। उन्होंने ज़रा ज़ोर से कहा, " मैं कुल घातक हूँ—झूठ! एकदम झूठ! और पागल की तरह वे कमरे टहलने लगे!

रामनाथ विक्षिप्तावस्था में टहल रहे थे और अपने से कह रहे थे, "सब कुछ समाप्त हो गया—कोई नहीं—सब गए ! अकेले तुम प्रेत की तरह मौजूद हो रामनाथ ! प्रभा को मृत्यु से रोक सकता था—अगर जेल में जाकर तुम उससे न मिले होते ! उमा को रुपया देकर तुम बचा सकते थे—लेकिन तुमने उसे अन्धकार और निराशा में ढकेल कर हमेशा के लिए उसे अपना शत्रु बना लिया। और दया—वह तुम्हारे पास आया, अपनी पत्नी और बच्चों के साथ ! लेकिन तुमने उसे निकाल बाहर किया ! अपने ही हाथों तुमसे अपना विनाश किया ! तुम्हारी समर्थता—तुम्हारी अहम्मन्यता—यह सब निर्माण नहीं कर सके—इन्होंने भयानक विनाश किया है—तुम अधम हो—तुम पापी हो !

रामनाथ का स्वर तेज़ होता गया, "तुम्हारा छोटा भाई—तुम पर विश्वास करने वाला, तुम्हारा भरोसा करने वाला, तुम्हें देवता की तरह पूजने वाला—पागल हो गया है ! अब क्या करोगे किससे बोलोगे ? किस पर शासन करोगे ? सब गए—हमेशा के लिए गए ! दुनिया में बिना तुम्हारी सहायता के लोगों का काम चल सकता है। तुम समर्थ नहीं हो, तुम जीवन में जीते नहीं, तुम अपने जीवन में भयानक रूप में हारे हो !"

रामनाथ को सुनाई पड़ा, "ददुआ !"

रामनाथ ने देखा, महालक्ष्मी दरवाज़े खड़ी थी और कह रही थी, "शान्त होइये ददुआ !—थोड़ा सा खा लीजिये चल कर !"

लेकिन रामनाथ ने महालक्ष्मी को कोई उत्तर नहीं दिया, वे अपने से ही कह रहे थे, "तुम पापी हो, तुम हत्यारे हो, तुम कुलघातक हो !" और वे कुर्सी पर बैठ गए !

महालक्ष्मी के पास अवधेश खड़ा था ! महालक्ष्मी ने अवधेश से कहा, बेटा अपने बाबा को लिवा लाओ जाकर खाना खाने के लिए।"

अवधेश जाकर रामनाथ के पास खड़ा हो गया। उसने तुतलाते हुए कहा, "बाबा—बा...बा...खाना...!"

रामनाथ ने अरविन्द को थोड़ी देर तक निर्निमेष दृष्टि से देखा और फि
धीरे धीरे उनके हाथ बच्चे की तरफ़ बढ़े। उन्होंने बच्चे को गोद में ले लि
और वे खड़े हो गए!

और उस समय उन्हें अनुभव हुआ कि दूसरों को उनके सहारे क
ज़रूरत नहीं रही! अब उनको उस बच्चे के सहारे की ज़रूरत है! उ
बच्चे को छाती से चिपटाते हुए उन्होंने कहा, "बेटा—बेटा, इस बूढ़े क
साथ मत छोड़ना!"